Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
D 6661

डॉ० सम्पूर्णानन्द

डॉ० सम्पूर्णानन्द की चुनी हुई रचनाओं का संकलन

समिधा

R
029
11:2

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश का प्रकाशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R
०८१
११:२
6661
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
०८१
११:२
पुस्तकालय 6661
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

विषय संख्या .... आगत नं० ....
लेखक .... सम्पूर्णानन्द ....
शीर्षक .... सोमधा ....

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनाँक	सदस्य संख्या

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6661

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या R 029 / 91:2 आगत संख्या 6661

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
D 6661

समिधा

(डॉ० सम्पूर्णानन्द के लेखों का संकलन)

डॉ० सम्पूर्णानन्द

DONATION

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० सम्पूर्णानन्द जन्मशती पर प्रकाशित

प्रथम संस्करण
अक्टूबर 1989

प्रकाशक:
अशोक प्रियदर्शी
निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

R
७८१

मुद्रक:
प्रतिभा प्रेस
नया गाँव, लखनऊ–226 001
फोन: 247101, 248383

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

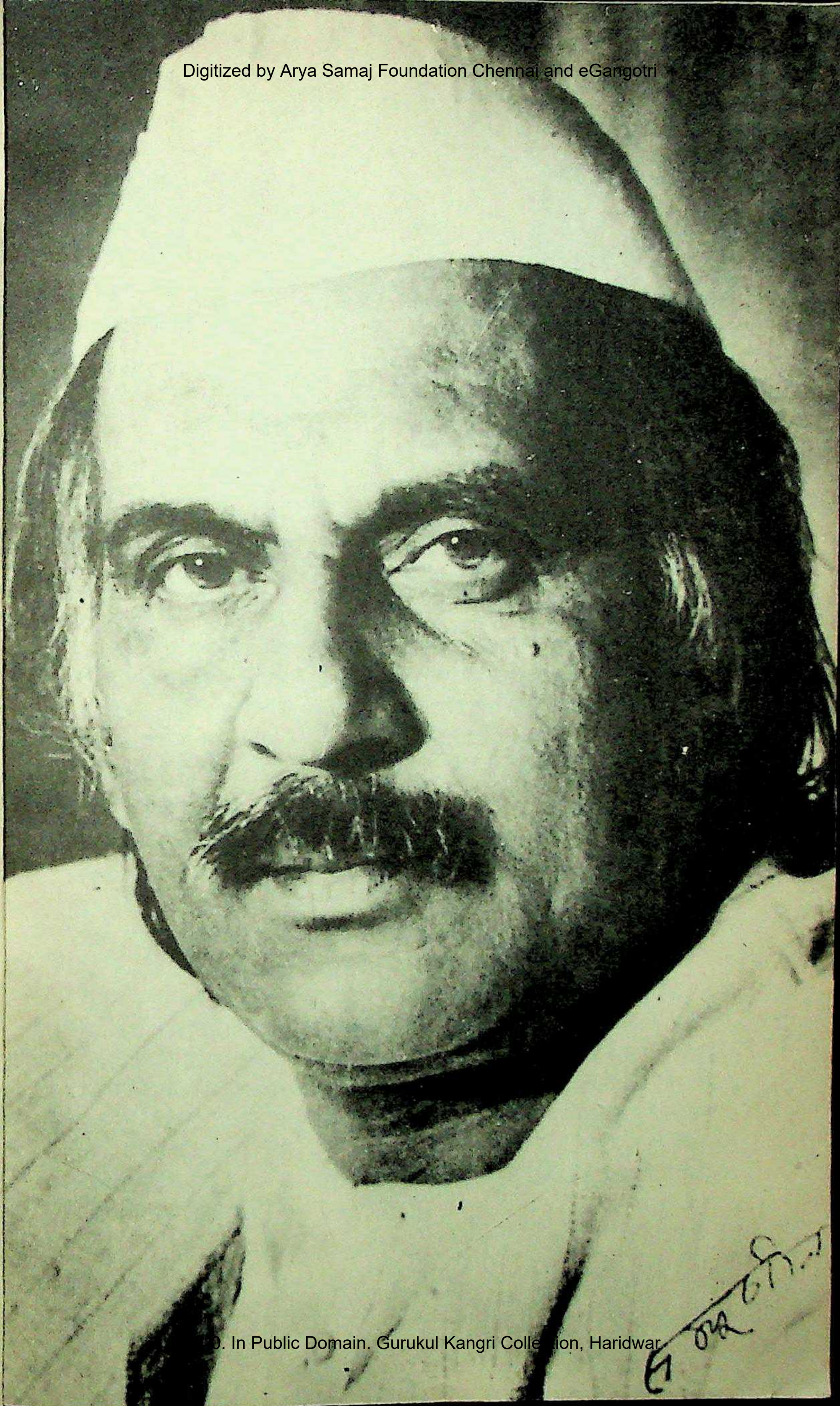

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य मंत्री
उत्तर प्रदेश

प्रस्तावना

डॉ० सम्पूर्णानन्द समर्पित देशभक्त तथा सहृदय राजनीतिज्ञ के साथ ही उदारचेता शिक्षाविद्, कुशल पत्रकार, समाजवादी चिंतक तथा बहुआयामी प्रतिभा के धनी प्रतिष्ठित लेखक थे। भारतीय संस्कृति के अनुयायी तथा प्राचीन जीवन-मूल्यों के पक्षधर होते हुए भी वह वैज्ञानिक विकास के हामी थे। दर्शन, इतिहास, विज्ञान तथा समाजशास्त्र आदि अनेक विषयों में उनकी गहरी पैठ थी तथा लोकतांत्रिक परम्परा में गहरी आस्था थी।

अंग्रेजी और विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह पहले शिक्षक बने, फिर पत्रकार के रूप में कार्य किया और कालान्तर में गांधी जी से प्रभावित होकर राजनीति में प्रवेश किया। अपने राजनीतिक जीवन में उन्होंने बड़ी कठोर यातनाएं झेलीं और अपना सारा जीवन होम कर दिया। उनकी तपश्चर्या और आपदाओं को झेलते हुए अपने पथ पर डटे रहने की साहसिक्ता को देखते हुए नवीन जी ने उन्हें 'विषपायी कहा था। वह संग्राम का समय था और गांधी जी के आह्वान पर बहुतेरे स्वाधीनता-सेनानी अपना तन-मन-धन न्योछावर करने निकल पड़े थे। लेकिन उनमें से कम लोग ऐसे थे जिनके मन में भावी भारत का कोई स्पष्ट स्वरूप भी रहा हो। सम्पूर्णानन्द जी के मन में स्वाधीन भारत को लेकर जो परिकल्पना थी वह समाजवादी व्यवस्था पर आधारित एक आदर्श देश की कल्पना थी और इसी कल्पना ने उन्हें ''समाजवाद'' नामक पुस्तक लिखने के लिए प्रेरित किया था। वह चाहते थे कि भारत समाजवाद के नाम पर दूसरे देशों का पिछलग्गू न बने, बल्कि भारतीय परिवेश तथा भारतीय जीवन-दर्शन को देखते हुए ''समाजवाद'' का स्वतंत्र रूप विकसित करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्री और मुख्यमंत्री के रूप में सम्पूर्णानन्द जी ने प्रशासनिक कार्य–प्रणाली में कई सुधार लाने की कोशिश की थी। अंग्रेजी सरकार 'अविश्वास और रोक' के सिद्धान्त पर शासन चला रही थी, इसके विपरीत सम्पूर्णानन्द जी ने 'विश्वास और गति' का सिद्धान्त अपनाना हितकर माना। शिक्षामंत्री के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने पाया था कि विज्ञान तथा दूसरे कई गंभीर विषयों पर हिन्दी में पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। इस कमी को दूर करने के लिए उन्होंने महत्वपूर्ण ग्रंथों के लेखन-प्रकाशन की एक योजना प्रारम्भ की थी जो न केवल इस प्रदेश में बहुत लोकप्रिय हुई थी, बल्कि दूसरे प्रान्तों ने भी उसे अपनाया और आज भी परिष्कृत-परिवर्द्धित रूप में चला रहे हैं। साहित्यकारों तथा कलाकारों को पुरस्कृत तथा सम्मानित करने की जो योजना आज चल रही है, वह उन्हीं की देन है। अपराधी सुधार की दिशा में उन्होंने 'बिना दीवार की जेल' का अनूठा प्रयोग किया था जिसकी सराहना भारत के बाहर भी हुई।

अपने श्रम-दर्शन के लिए भी सम्पूर्णानन्द जी हमेशा याद किये जायेंगे। दूसरी बार, सन् 1946 में जब कांग्रेस सत्ता में आयी तो उसने दो ऐतिहासिक संकल्प प्रस्तुत किये थे। पहला संकल्प जमींदारी समाप्त करने से संबंधित था जिसे श्री रफी अहमद किदवई ने प्रस्तुत किया था। दूसरा संकल्प, जो उद्योगों के समाजीकरण से संबंधित था, सम्पूर्णानन्द जी ने पेश किया था। वह श्रमिकों के सच्चे हितैषी थे और उन्होंने ही सर्वप्रथम श्रमिक बस्तियाँ बनाये जाने की पहल की थी। मजदूर आन्दोलन को भी उन्होंने एक रचनात्मक दिशा प्रदान की।

अपने गुरुतर राजनैतिक एवं सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते हुए भी अत्यन्त व्यस्त जीवन में से समय निकालकर, उन्होंने विविध विषयों पर जिन पुस्तकों की रचना की थी वे अद्वितीय हैं। आश्चर्यजनक तो यह था कि गम्भीर बीमारी के दिनों में भी वह स्वाध्याय तथा सृजन से विरत नहीं हुए। यह बड़े हर्ष का विषय है कि सूचना विभाग ने उनकी पूर्व प्रकाशित कुछ कृतियों का नया संकलन "समिधा" नाम से प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। मुझे विश्वास है कि पाठकों को यह संकलन उनके विचार और चिंतन को समझने का अवसर देगा और यही सम्पूर्णानन्द जी के प्रति हमारी विनम्र श्रद्धांजलि होगी।

— नारायण दत्त तिवारी
मुख्यमंत्री
उत्तर प्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवेदन

डॉ० सम्पूर्णानन्द उन इनेगिने नेताओं में से थे, जिन्होंने राजनीति में रहकर भी समाज के हर पक्ष को अपने सुविचारित लेखन तथा महत्वपूर्ण भाषणों से प्रभावित किया। उनकी पुस्तकों में विविध सामाजिक विषयों के सम्बंध में उनके मूल्यवान विचार मिलते हैं। उन्होंने विभिन्न विषयों पर अनेक पुस्तकों की रचना की।

जिन दिनों सम्पूर्णानन्द जी उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे, तत्कालीन सूचना निदेशक, श्री भगवती शरण सिंह के विशेष प्रयासों से सूचना विभाग को भी उनकी कुछ पुस्तकें हिन्दी-अंग्रेजी में प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जिनकी बड़ी सराहना हुई थी। हम यहाँ उन्हीं में से चुनी हुई पुस्तकों का एक संकलन "समिधा" नाम से उनके पुण्य-स्मरण स्वरुप प्रकाशित कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि हमारे पाठक इस प्रकाशन का स्वागत करेंगे।

— अशोक प्रियदर्शी
निदेशक
सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग
उत्तर प्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय सूची

पृष्ठ

समाजवाद

1. समाजवाद, धर्म और मजहब 1
2. गाँधीजी और समाजवाद 13
3. जेल–संस्मरण 19

भारतीय बुद्धिजीवी

4. भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग की कुंठा 29
5. भारतीय बुद्धिजीवी क्या करें? 38
6. बौद्धिक का कर्त्तव्य 44

स्फुट विचार

7. कला और साहित्य के प्रति हमारा कर्तव्य 51
8. राष्ट्रभाषा का प्रश्न 57
9. संस्कृत शिक्षा की उपयोगिता और पठन व्यवस्था 63
10. कामायनी दर्शन 67
11. हिन्दी का भविष्य उज्जवल है 75
12. वैदिक अग्नि 81
13. निरामिष भोजन 86
14. देवनागरी लिपि का प्रश्न 91
15. संस्कारों की भाषा संस्कृत हो या हिन्दी 96
16. ईश्वर, समाजवाद और भारतीय संस्कृति 100
17. हिन्दू धर्मशास्त्र में संशोधन 103
18. हमारा सांस्कृतिक पतन 116
19. योग्यता, दायित्व और पुरस्कार 131
20. समाज में पुरस्कारों का विभाजन 135
21. जनता की सुरक्षा 139
22. बन्दी सुधार प्रशासन 142

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

23. भावी समाज में स्त्रियों का स्थान 151
24. अपने ऊपर अविश्वास 162
25. व्यायाम का महत्व 167

अन्तरिक्ष यात्रा

26. अन्तरिक्ष यात्रा 177

भारतीय समाजवाद आर्थिक संयोजन और विकेन्द्रीकरण

27. भारतीय समाजवाद का दार्शनिक आधार 199

समिधा

28. उपनिषदों में नीति-शास्त्र 221
29. देव गण 236
30. वैज्ञानिक सम्भावनाएं 241
31. वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार 243
32. वैज्ञानिक ज्ञान और उसका उपयोग 249
33. वैज्ञानिक का कर्तव्य 255
34. मनोवैज्ञानिक चिकित्सा 261
35. शिक्षा-शास्त्रियों के सामने समस्याएं 265
36. शिक्षा में नवीन दृष्टिकोण 272
37. शिक्षा के आदर्श केन्द्र 277
38. शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य 281
39. शिक्षा में सामाजिक संकट 288
40. एक महत्वपूर्ण प्रश्न 295
41. विश्वविद्यालयीय शिक्षा 300
42. विश्वविद्यालयीय स्वायत्तता और शिक्षा-सुधार 305
43. माध्यमिक शिक्षा की पुनर्व्यवस्था 314
44. ऐतिहासिक प्रदर्शनियां 319

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजवाद, धर्म और मजहब

समाजवाद के सम्बन्ध में जहां लोगों के चित्त में बहुत-सी शंकाएं उठती हैं, वहां एक यह भी है कि समाजवादी युग में धर्म की क्या गति होगी, समाजवादियों को इन शंकाओं से घबराना न चाहिए प्रत्युत यह देख कर प्रसन्न होना चाहिए कि लोग इस मत में अभिरुचि रखते हैं और उसका सम्यगृध्ययन करना चाहते हैं। जिस विषय पर मनुष्य मनन करता है उसी के सम्बन्ध में शंकाएं खड़ी करता है। उनका समाधान करना सैद्धान्तिकों का कर्त्तव्य है। अभी तक इस कर्त्तव्य पालन का प्रयत्न सुचारु रूप से नहीं हुआ है। जिन लोगों ने इस विषय का चंचु प्रवेश मात्र अध्ययन किया है, वह तो इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि समाजवाद धर्म का प्रत्यक्ष और पूर्णतया विरोधी है और जड़वाद का उपदेश देता है। बात यहां तक पहुंच गई है कि बहुत से ऐसे लोग जो अपने को समाजवादी कहते हैं वह भी ऐसा समझने लगे हैं कि समाजवाद और धर्म का परस्पर असामञ्जस्य है। रूस में अनीश्वरवाद का जो सरकारी तौर पर प्रचार हुआ, उसने इस धारणा को और भी दृढ़ कर दिया।

पहिली बात जो निश्चय कर लेने की हैवह यह है कि इस विवाद से 'धर्म' शब्द को निकाल देना चाहिए। इसलिए इस लेख के शीर्षक में 'धर्म' और 'मजहब' दो पृथक शब्दों का उपयोग किया गया है। प्राचीन आचार्यों ने धर्म की व्याख्या इस प्रकार की है 'यत्तोभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः सद्धर्म्मः', 'धारणाद्धर्म्म इत्याहुः' जिससे ऐहिक और पारलौकिक कल्याण हो, जिससे प्रजा का, समाज का धारण अर्थात् सुचारु रूप से संचालन हो, उसको धर्म कहते हैं। धर्म उन कर्त्तव्यों का समूह है जिनका निरन्तर पालन करने से व्यक्ति और समाज की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। यह स्मरण रखने की बात है कि इस देश के प्राचीन आचार्यों ने अधिकारों पर कभी जोर नहीं दिया, कर्त्तव्य की ही रट लगाते रहे। कर्त्तव्य के भीतर ही अधिकार भी निहित है; पर उसका स्पष्ट उल्लेख उतना हितकर नहीं है, जितना कर्तव्य का। अस्तु, कुछ धर्मांग तो नित्य हैं जैसे सत्य, अस्तेय, शम, दम इत्यादि। इनकी आवश्यकता प्रत्येक मनुष्य और नर समूह को पड़ती है। कुछ धर्मांग परिवर्तित होते रहते हैं यह परिवर्तन देश, काल और पात्र के अनुसार होता है। जैसे, यदि स्नान करना मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हितकर है तो वह मनुष्य का कर्त्तव्य अर्थात् धर्म है। पर जहां ग्रीष्म ऋतु में या उष्ण प्रदेश में नदी में स्नान करना धर्म हो सकता है, वहाँ ठंडे प्रदेश में बंद कमरे में स्नान करना भी धर्म हो सकता है। रोगी के लिए स्नान न करना ही धर्म है। खाने, पीने, सोने, खेलने, हंसने, बोलने, समाज के आर्थिक और राजनीतिक संचालन, आदि के जितने भी हितकर नियम हैं, वह सब धर्म के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्गत हैं। अनेक सूक्ष्म तथा भौतिक कारणों से मनुष्य की प्रकृति तथा वाह्य परिस्थिति में अंतर पड़ जाता है और इसी से धर्म के स्वरूप में भी अन्तर पड़ा करता है। यदि वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए हमारी यह धारणा हो कि समाजवाद को अंगीकार करने में ही मनुष्य का कल्याण है, तो समाजवाद ही युग धर्म है। इसका प्रचार करना, इसके सिद्धान्तों को कार्यान्वित होने का अवसर देना ही हमारा कर्त्तव्य अर्थात् धर्म है। आज से दो-तीन सौ वर्ष पहले यह धर्म नहीं था, सम्भव है कभी आगे चलकर न रहे। धर्म की इस शास्त्रसम्मत व्याख्या को सामने रखते हुए, समाज़वाद का धर्म से कोई विरोध न है न हो सकता है। मानव समाज के हित के लिए जो भी उत्तम विधान किया जाय वह सब धर्म के अन्तर्गत है। यथास्थान अहिंसा भी धर्म है और शस्त्र चलाना भी; पर हां, काम कर्त्तव्य-बुद्धि से होना चाहिए। अतः मैं यहां फिर दोहराना चाहता हूँ कि नित्य धर्मों के विषय में समाजवादियों तथा अन्य लोगों में कोई मतभेद नहीं है। इस समय के लिए युगधर्म क्या है, इस विषय में मतभेद है और कार्यशैली भी भिन्न होगी, परन्तु धर्म से किसी को बैर-विरोध हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह तो किसी न किसी रूप में सदैव रहता है। कठिनाई यह है कि संस्कृत से भिन्न जो भाषाएँ हैं, उनमें धर्म का कोई पर्याय नहीं है और संस्कृत में 'मज़हब' या 'रेलिजन' के लिए कोई ठीक शब्द नहीं है, अतः पूर्णतया उपयुक्त न होते हुए भी रेलिजन या मजहब के लिए धर्म शब्द से काम लिया जाता है, और इस अनुचित अनुवाद के आधार पर भ्रांति और काल्पनिक वैर-विरोध का एक पहाड़ खड़ा कर दिया जाता है।

मजहब या रेलिजन के अन्तर्गत भी कई अर्थ और भाव हैं पर एक बात सभी मजहबों में सामान्य है। प्रत्येक मजहब एक ईश्वर या अनेक स्वतंत्र देव-देवियों या एक ईश्वर के अधीन अनेक देव-देवियों को मानता है और इनकी उपासना की, इनको तुष्ट करने की, इनसे इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त करने की, इनके साक्षात्कार करने की, कोई न कोई विधि वतलाता है। प्रत्येक मजहव को—मजहव का अर्थ सम्प्रदाय से कुछ—कुछ निकलता है—अपने उपास्य और अपनी पूजा विधि पर अनन्य श्रद्धा है। उसको विश्वास है कि जो हमसे सहमत नहीं हैं वह पतित हैं और पतितों का उद्धार शास्त्र से , समझाने-बुझाने से, न हो सके तो शस्त्र से, डंडे के जोर से, भी किया जा सकता है। यहीं पर धर्म और मजहव का भेद स्पष्ट हो जाता है। ब्रह्मवादी वेदान्ती, कर्मवादी मीमांसक, ईश्वरवादी, नैयायिक और अनीश्वरवादी कापिल एक धर्म के भीतर रह सकते हैं, पर खुदा या मुहम्मद से इंकार करने वाला व्यक्ति इस्लाम में जगह नहीं पा सकता और न ईश्वर, ईसा और दिव्यात्मा रूपी त्रिक को अस्वीकृत करने वाला व्यक्ति अपने को ईसाई कह सकता है। इस्लामी सम्पर्क का इतना प्रभाव भारतीय संस्कृति पर भी पड़ गया है कि लोग नास्तिक को जघन्य मनुष्य समझने लगे हैं और मीमांसा और सांख्य के विद्वान भी अपना अनीश्वरवाद छिपाये रहते हैं। नास्तिक शब्द का यह प्रयोग भी नया है। उनका पुराना अर्थ निरीश्वरवादी नहीं था।

मजहब की इस व्याख्या को प्रमाण मानकर यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि समाजवाद को मजहब से सिद्धांतरूपेण कोई विरोध नहीं है। मनोविज्ञान और भौतिक विज्ञान ने इस विश्व का सारा रहस्य जान लिया है, यह तो झूठा दावा होगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उनके अनुसंधान से जो ज्ञान प्राप्त हुआ है वह अगण्य नहीं है। इस ज्ञान-सामग्री का अध्ययन करके और मजहबों के इतिहास पर तुलनात्मक दृष्टि डालने के बाद यदि कोई मनुष्य यह निश्चय करता है कि इस जगत का नियन्त्रण किसी अलक्ष्य शक्ति द्वारा हो रहा है और उस शक्ति को कोई विशेष नाम देकर उसकी उपासना विशेष रूप से करना चाहता है तो समाजवाद उसको रोकने न जायेगा। यदि वह दूसरों को भी अपना अनुयायी बनाना चाहता है तो बनाये, पर उसको समाजवादी सरकार से किसी विशेष सुविधा की आशा न रखनी चाहिए, क्योंकि वह इस विषय में तटस्थ होगी। प्रत्येक समाजवादी तथा असमाजवादी को इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वह किसी विशेष मजहब को माने या न माने, पर एक बात स्पष्ट है, यदि कोई मजहब किसी ऐसी बात का प्रचार करना चाहे जो धर्म अर्थात् लोकहित के विरुद्ध प्रतीत हो तो समाजवादी सरकार उसे ऐसा न करने देगी। ऐसी प्रथाओं का उन्मूलन करना समाजवादियों का कर्त्तव्य होगा, जिससे समाज में अशुचि, कुरूप, कुसंस्कृत, दुर्बल, अल्पमेधावी व्यक्ति पैदा होते हैं। ऐसी शिक्षाओं का प्रसार रोकना होगा, जिनसे मनुष्य मनुष्य में, समुदाय समुदाय में, द्वेष और कलह फैलता है। 'हम अच्छे हैं' कहना तो स्यात् सहन कर लिया जा सके; पर 'तुम बुरे हो' कहने का अधिकार तो किसी सम्प्रदाय को नहीं मिल सकता और न कोई ऐसी उपासना-विधि रहने दी जा सकती है, जो सार्वजनिक सुरुचि और संस्कृति के विरुद्ध हो। मजहब का पृष्ठ-पोषण इस प्रकार की बातों की रक्षा नहीं कर सकता। यदि मजहब समाजवादी जगत में रहना चाहता है तो उसे ये बन्धन स्वीकार करने ही होंगे। न कोई बलात् एक मजहब से दूसरे मजहब में लाया जा सकेगा, न सार्वजनिक उत्सव के रूप में पशु वध होगा, न मंदिरों में देव दासियां नाचेंगी, न मजहब के नाम पर किसी को विलास में धन का अपव्यय करने का अवसर मिल सकेगा। मजहब का सार्वजनिक बातों में कोई निर्णायक स्थान न रह जायेगा। कौन किसको कैसे पूजता है, इससे राष्ट्र को कोई मतलब नहीं है। न किसी सार्वजनिक काम के लिए यह प्रश्न पूछा जायेगा, न किसी विशेष मजहब का मानना न मानना, किसी विशेष पद या सुविधा के प्राप्त करने में साधक या बाधक होगा। समाजवादी शासन धर्म पर स्थित होगा और सत्यादि नित्य धर्म तथा समाजवाद रूपी युग धर्म का प्रचार करेगा, पर वह अपने को मजहब की ओर से तटस्थ और उदासीन रखेगा। ऐसे वातावरण में मजहब की क्या गति होगी हम नहीं कह सकते। पर यह समझ में आता है कि जो मजहब अधिकतर धर्म-सम्मत होगा, जो अपने यहां बुद्धि और तर्क को स्थान देगा और जो युग धर्म को पहिचानेगा, उसी के जीवित रहने और पनपने की अधिक सम्भावना है।

सिद्धांततः समाजवाद के मजहब की ओर से तटस्थ रहने पर भी यह देखा जाता है कि बहुत से समाजवादी अनीश्वरवादी होते हैं, और रूस में जो एक मात्र ऐसा देश है जहां समाजवाद का प्रयोग हो रहा है 'ईश्वर विरुद्ध' आन्दोलन बड़े जोरों पर चलाया जा रहा था। यह बात लोगों को खटकती है। लोग तटस्थता समझ सकते हैं, पर सक्रिय विरोध से घबराते हैं। यहां पर हम इसी विषय पर विचार करना चाहते हैं। पहली बात जो सदैव स्मरण रखने की है वह यह है कि बहुत से शिक्षित व्यक्ति—मेरा तात्पर्य पाश्चात्य ढंग की शिक्षा प्राप्त किये लोगों से है—समाजवादी न होते हुए भी अनीश्वरवादी है। इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
लिए कुछ वह स्वयं उत्तरदायी है, कुछ परिस्थिति उन्हें विवश करती है। प्राचीन काल में अनेक प्रकार के बंधन लोगों को मजहबी बनाये रहते थे। यूरोप में रह कर ईसाई मजहब को न मानना अर्थात् यह कहना कि मैं नहीं मानता सुकर न था। मजहब की छोटी से छोटी बात से भी इंकार करना मुसीबत का सामना करना था। न जाने कितने आदमी कैद किये गये, जला दिये गये तथा अन्य प्रकार की वीभत्स रीतियों से मारे गये। बहुत-सी अच्छी पुस्तकें नष्ट कर दी गयीं, उनका पढ़ना, छापना, बेचना दण्ड्य बना दिया गया। ज्योतिष तथा विज्ञान की अन्य शाखाओं के सम्बन्ध में सच्ची बातों को कहना प्राणों की बाजी लगाना था, पर अब कई कारणों से, जिनको इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं, मजहबी संस्थाओं का जोर टूट गया है। डंडे के बल कोई व्यक्ति ईश्वरवादी नहीं बनाया जा सकता, किसी को अनीश्वरवाद का प्रचार करने से रोका नहीं जा सकता। अतः जहां कुछ लोग पहले लुक-छिप कर अनीश्वरवादी रहे होंगे, वहां अब खुल कर अपने को अनीश्वरवादी कह सकते हैं। मजहबी संस्थाओं की पुरानी सख्तियों के विरुद्ध प्रतिक्रिया का भाव भी स्वभावतः उत्पन्न हो गया है। ऐसा भाव उठता है कि जो मजहब इतने सितम ढाता था वह अवश्य बुरी चीज होगी और जो ईश्वर अपने को तलवार की नोक पर मनवाता था वह अवश्य कल्पित और झूठा होगा। इस प्रकार से लोग मजहब की ओर से न केवल उदासीन प्रत्युत उसके विरुद्ध हो जाते हैं। दूसरी बात यह है कि ईश्वरवादी को आरम्भवाद से बड़ी सहायता मिली है। आरम्भवादी कई प्रकार के होते हैं, पर सभी ऐसा मानते हैं कि ईश्वर इस जगत का स्रष्टा, कर्ता है। नैयायिक जैसे आरम्भवादी भी जो गौतम के 'क्षित्यपतेजो वायुराकाशः कालदिगात्मा मनासि नवैव' सूत्र के अनुसार अनेक नित्य पदार्थों की सत्ता स्वीकार करते है, यह मानते हैं कि ईश्वर के बिना सृष्टि नहीं हो सकती थी। यूरोप में इसे 'आर्ग्युमेन्ट फ्राम डेजाइन' कहते हैं। घड़ी के पुर्जे मौजूद हो तब भी घड़ीसाज के बिना वह नहीं बन सकती। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि अनादिकाल से इस सृष्टि की मूल सामग्री, उसका रूप चाहे जो हो, चली आ रही है और अनन्त काल तक चली जायेगी। इसके साथ ही प्राकृतिक नियम भी, जिनको वेदों में ऋत् और मीमांसकों की परिभाषा में कर्म कहते हैं, अनादि और अनन्त है। बस इन नियमों के अनुसार सृष्टि की मूल सामग्री से जगत् की उत्पत्ति होती है। यदि कोई ईश्वरवादी इस पर यह आक्षेप करे कि यह मूल सामग्री और नियम आप से आप कैसे रह सकते हैं, इनका भी कोई बनाने वाला होगा, क्योंकि बिना बनाने वाले के कोई वस्तु होती नहीं तो इसके उत्तर में यह पूछा जा सकता है कि ईश्वर का बनाने वाला कौन है? यदि ईश्वर बिना सृष्टि के रह सकता है तो जगत् को भी अर्थात् इसके मूलभूत तत्वों और नियमों को भी, स्रष्टा की आवश्यकता नहीं है। इतने से ही यह महत्वपूर्ण और गम्भीर प्रश्न समाप्त नहीं हो जाता, पर इस प्रकार का तर्क बहुत लोगों को ईश्वरवाद से विमुख करने के लिए पर्याप्त है। तीसरी बात यह है कि वैज्ञानिक आविष्कारों ने जगत् के बहुत से रहस्यों का उद्घाटन करके ईश्वर की आवश्यकता घटा-सी दी है। पहले जो बातें समझ में नहीं आती थीं—औषधियों का विकास, ग्रह-नक्षत्रों का जन्म और अन्त, पशु-पक्षियों का अन्योन्य तथा वनस्पति और मानव वर्गों से संबंध, मनोविज्ञान की ग्रंथियां, मनुष्य शरीर का गर्भ में विकास, शरीर में रक्त संचार, नाड़ी-जाल की अद्भुत कार्यशैली , दिक् और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल का गणितानुकूल-स्वरूप, परमाणु विश्लेषण—यह अब धीरे-धीरे समझ में आने लगी हैं। पहले जहां पदे-पदे ईश्वर की दुहाई दी जाती थी वहां अब विज्ञान कोई न कोई कारण पेश करता है। यह ठीक है कि विज्ञान 'अंतिम क्यों' का उत्तर नहीं दे सकता, उसका काम 'कैसे' समझना है पर जो कुछ वह कहता है वह भी बहुत से लोगों को अनीश्वरवादी बना देता है। जब बात-बात में ईश्वर का नाम लेने और हर प्रश्न के उत्तर में "भगवान की लीला है इसे कौन जान सकता है" कहने का अभ्यास कम हो जाता है तो ईश्वर को पुकारने और उसका अस्तित्व स्वीकार करने की प्रवृत्ति भी क्षीण हो जाती है। विज्ञान ने मनुष्य को प्रकृति पर जो विजय दिलायी है वह भी अनीश्वरवाद को पुष्ट करती है। हवा, पानी, भाप, बिजली को वश में करके उनसे काम लेने वाला, चार-पांच जड़ तत्वों को मिलाकर उनमें प्राण संचार करने की आशा रखने वाला मनुष्य आत्मविश्वासी हो गया है और भय के वश में होकर ईश्वर पर ईमान लाने को तैयार नहीं है। यह बातें शिक्षित समुदाय मात्र से न्यूनाधिक सम्बन्ध रखती हैं। समाजवाद स्वयं एक वैज्ञानिक सिद्धांत है और समाजवादी अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए पदे-पदे विज्ञान से काम लेना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में यह तो निश्चित ही है कि समाजवादियों में अन्य शिक्षित और विज्ञान पर विश्वास रखने वाले मनुष्यों से कम अनीश्वरवादी न होंगे।

पर इतनी ही बात नहीं है, ईसाई मजहब ने एक विशेष रूप धारण कर लिया था। उसने अपने को सरकार के ढंग पर संगठित किया था। जिस प्रकार नीचे से ऊपर तक ग्राम मुखिया से लेकर बादशाह या राष्ट्रपति होता है, उसी प्रकार ग्राम पादरी से पोप तक परम्परा चली गयी थी। यह बात रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय की है, अन्य सम्प्रदायों का प्रभुत्व कैथोलिक सम्प्रदाय की भांति सार्वभौम न था पर क्रम उनका भी यही था। यह संगठन बड़ा दृढ़ था। जो दीन कृषक छोटे-छोटे अधिकारियों या जमींदारों के हाथों भीषण अत्याचार सह लेते थे वह पादरी की आज्ञा से, जो उनके लिए ईश्वर का आदेश था, बड़ी सरकारों का सामना कर सकते थे। इसलिये बड़े-बड़े नरेश इस मजहबी संस्था—चर्च— से घबराते थे। उस बर्बरतापूर्ण काल में चर्च ने बहुतों की बड़ी सहायता की, शिक्षा का प्रदीप बुझने से बचाया और बादशाहों और सरदारों की उद्दण्डता को अकुंश के नीचे रखा। पर चर्च स्वतंत्र विचारों को सहन नहीं कर सकती थी, क्योंकि वह जानती थी कि जहां स्वतन्त्र विचारों का प्रचार हुआ वहां उसका भी पतन हो जायेगा। इसीलिये जब यूरोप में स्वतंत्र दार्शनिक और वैज्ञानिक विचारों ने सिर उठाया तो चर्च ने राज संस्था से मेल कर लिया। एक-दूसरे की सहायक बन गयीं। चर्च के शत्रुओं को राज दण्ड देता था, राज के विरुद्ध सिर उठाने वालों की चर्च शत्रु बन जाती थी और यह बात अंत तक रही। यूरोप में स्वेच्छाचारी शासकों में सब से अन्तिम रूस के जार थे, और नरेश तो अपना अधिकार खो चुके थे। जर्मनी में भी नरेश को उतना अधिकार नहीं था और अन्त तक रूस में प्रजा को दबाने में उसे अज्ञान में रख कर, नरक का भय दिखा कर राजभक्त बनाये रखने में, चर्च ने रूस सरकार का अर्थात् जार का साथ दिया।

प्रजा के विरुद्ध प्रायः हर षड्यंत्र में चर्च के बड़े अधिकारियों का भी हाथ रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि सारे यूरोप में ही उदार चेता मनुष्यों को स्वेच्छाचारी सरकारों की भांति स्वेच्छाचारी चर्च से घृणा हो गयी। यह स्पष्ट था कि जो राज की शक्ति तोड़ना चाहेगा उसे चर्च की शक्ति भी तोड़नी होगी। जो क्रोध और द्वेष नरेशों के प्रति उत्पन्न हुआ था वह उन मजहबी अधिकारियों के सिर पर भी चला गया जो नरेशों की सहायता करते थे, और मजहब का आधार एक कल्पित शैतान-सा प्रतीत होने लगा जिसके नाम पर इस प्रकार का अन्याय और रक्तपात किया जा सकता था। दो देशों में लड़ाई हो, दोनों के नरेश अपने को पृथ्वी पर ईश्वर के प्रतिनिधि (नाविष्णु: पृथिवी पतिः—यह मनु का भी सिद्धांत है) कहें और ईश्वर की दुहाई देकर लड़ें, इसका अवश्यम्भावी परिणाम ईश्वर की सत्ता पर से विश्वास उठ जाना था।

इन्हीं सब कारणों से उदार विचार के लोगों में सामान्यतः और समाजवादियों में, जो सबसे अधिक सताये गये हैं,विशेषतः अनीश्वरवाद का प्रचार हुआ है। इसलिए रूस ऐसे देश में, जहां सरकार और मजहब दोनों ने जनता का उत्पीड़न खूब जोरों से आज से लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व तक किया था, मजहब और ईश्वर का सबसे अधिक विरोध है। ईश्वर पर विश्वास करना मानसिक दुर्बलता और गुलामी का चिह्न हो गया था।

एक तीसरा कारण भी है, मजहब न केवल शासकों का सहायक, प्रत्युत धनिकों का भी बराबर मित्र रहा है और आज भी पूंजीवाद का प्रपोषक है। बाइबिल में अनेक स्थानों पर बड़ी सुन्दर भाषा में ऐसी बातें कही गयी हैं जो समाजवादी पुस्तकों के अवतरण-सी प्रतीत होती हैं, पर आजकल उनका उपदेश नहीं दिया जाता। गरीब का बहिष्कार हो सकता है, पर जो धनिक चर्च को रुपया दे सकता है, गिरजाघर बनवा या सजवा सकता है, उसके सभी अपराध माफ हैं। महाजन और व्यापारी लोग सरकारों को उभाड़ कर युद्ध छिड़वा देते हैं और स्वयं धन कमाते हुए ईश्वर और देश के नाम पर लाखों गरीबों को कटवा देते हैं, पर कोई धर्माध्यक्ष चूं नहीं करता। ऐसे लोगों से भी जिनको सब जानते हैं कि यह गरीबों, किसानों और कृषकों के रक्त चूसने वाले हैं, कोई यह नहीं कहता कि 'सावधान! तुम अपवित्र हो। गिरजा में पांव रखने के अधिकारी नहीं हो'। गरीबों को यह कह कर चुप करा दिया जाता है कि घबराओ मत, मरने पर स्वर्ग में अनेक कष्टों का पुरस्कार पाओगे। इस दुरंगी चाल, इस दम्भ और धनिक पूजा ने मजहब को विचारशील व्यक्तियों की आंखों से गिरा दिया है। विशेषतः वह लोग जो धनिकों के हाथों सताये हुए हैं, जो पूंजीवाद से लड़ रहे हैं, मजहब के प्रायः विरोधी हो गये हैं। इन कारणों से समाजवादियों में,और विशेषकर रूस के साम्यवादियों में, अनीश्वरवाद ने जबर्दस्त घर बना लिया था और वह लोग ईश्वर विरुद्ध आन्दोलन का चलाना समाजवाद के प्रचार का आवश्यक अंग समझने लगे थे। उनको आशंका थी कि यदि ईश्वर रहने पाया तो मजहब का पूरा-पूरा संगठन क्रमशः आ जायेगा, उसके साथ ही लोगों में दासता, अज्ञान और अन्धविश्वासमय मनोवृत्ति बढ़ेगी और आर्थिक तथा राजनीतिक स्वेच्छाचार को फिर पनपने का अवसर मिल जायेगा।

इस जगह यह प्रश्न स्वभावतः उठता है कि क्या भारत में भी समाजवाद और विभिन्न मजहबों में यूरोप, विशेषतः रूस जैसा संघर्ष होना अवश्यम्भावी है? दूसरे शब्दों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में, क्या भारत में भी समाजवाद की सफलता के लिए मजहब का विनाश और अनीश्वरवाद का प्रचार आवश्यक है? इस प्रश्न का उत्तर जटिल है और कई बातों पर निर्भर करता है। आजकल जो लोग अपने को समाजवादी कहते या समझते हैं उनका व्यवहार पर्याप्त उत्तर नहीं है। एक तो सभी शिक्षितों की भाँति भारतीय शिक्षितों को भी तर्कशैली मुग्ध करती है जिसका उल्लेख इसके पहले आ चुका है। नवशिक्षित समाज का बड़ा भाग, चाहे वह समाजवादी हो या न हो, यदि अनीश्वरवादी नहीं है तो मजहब की ओर से उदासीन अवश्य है। इसके अतिरिक्त, भारतीय नवयुवक समाजवादियों के सामने रूस का उदाहरण और समाजवाद का इतिहास है। वह भारत के साम्प्रदायिक दंगों और राजनीतिक मंच पर साम्प्रदायिक कलाबाजियों को भी देखते रहते हैं। इसलिये उनके हृदय में मजहब के प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी है और वह अनीश्वरवाद और मजहब विरोध को समाजवाद का अनुषंगी समझने लग गये हैं। पर यह न तो तात्विक विवेचन है, न हमारे प्रश्न का उत्तर। इसके लिए सबसे पहले हमें भारतीय मजहब के स्वरूप पर और यहां की परिस्थिति पर ध्यान देना होगा। यहां पर मुख्यतः दो मजहब हैं हिन्दू और मुसलमान। इस्लाम पूरा मजहब है। बिना अल्लाह और रसूल पर ईमान लाये कोई व्यक्ति मुसलमान नहीं हो सकता। वह अपने को एक मात्र सच्चा मजहब अर्थात् मोक्ष का साधन मानता है। इसलिए उसकी दशा ईसाई मजहब जैसी है। पर एक बड़ा फर्क है जिसका उल्लेख आगे होगा। हिन्दुओं की अवस्था दूसरे प्रकार की है। उनके धर्म का नाम सनातन धर्म या आर्य धर्म है। वह मजहब नहीं है, कम से कम, मजहब का अंश उसमें बहुत कम है। उसमें ईश्वरवाद, अनीश्वरवाद सब के लिए स्थान है। यही उसकी दुर्बलता और यही उसका बल है।वह मजहबी आक्रमण का जवाब कमर कस कर दे ही नहीं सकता। जहां मानने या न मानने का छोटा-सा सूत्र होता है वहां जम कर युद्ध ठन सकता है। सनातन धर्म के पास कोई ऐसा सूत्र नहीं है, इसलिए न वह आक्रमण करता है न अपने अनुयायियों को एक झंडे के नीचे खड़ा करके आक्रमणकारी का सामना कर सकता है। पर इसी कारण से उस पर विजय पाना असम्भव-सा है। जो धर्म वेदों को नित्य और अपौरुषेय मानता हुआ भी अनीश्वरवाद को अपने क्रोड़ में स्थान दे सकता है उससे पार पाना कठिन है। वह बात-बात में बुद्धि और तर्क की सहायता लेता है। इसलिए वह अनेक विपरीत वादों का समन्वय कर सकता है। अपने मौलिक प्राचीन सिद्धांतों को संभालते हुए समय के साथ बदलना और नवीन को प्राचीन चादर ओढ़ा कर अपना लेना उसका मुख्य लक्ष्य रहा है। मेरा ऐसा विश्वास है कि सनातन धर्म और समाजवाद का खुल कर संघर्ष न होगा। कम से कम सनातन धर्म स्वयं आक्रमण न करेगा, वरन् समाजवाद को भी अपनाने का प्रयत्न करेगा और यदि स्थिति अनुकूल रही तो सफल भी हो जायेगा। उसने समय के साथ अपना रूप बदलना आरम्भ कर दिया है। ब्रह्म समाज ने उसे जगाना आरम्भ किया और स्वामी दयानन्द सरस्वती के नेतृत्व में इस काम ने और जोर पकड़ा। आज सब लोग ब्रह्मसमाजी या आर्यसमाजी नहीं हैं। सच तो यह है कि यह दोनों सम्प्रदाय धीरे-धीरे सनातन धर्म में विलीन होते जा रहे हैं—पर धर्म के व्यावहारिक रूप में बहुत उलटफेर हो गया है। बहुत-सी कुरीतियां लुप्त होती जा रही हैं। अछूतोद्धार या हरिजन आन्दोलन स्पर्शास्पर्श के भूत को भगा रहा है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री भगवानदास जी जैसे विद्वान वर्णाश्रम व्यवस्था की नई व्याख्या करके उसे आजकल के समय के अनुकूल बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। मालवीय जी, लोकमान्य तिलक, देशबन्धु दास तथा महात्मा जी जैसे राजनीतिक नेताओं का सनातन धर्मावलम्बी होना एक ओर इस धर्म के प्रति श्रद्धा बढ़ाता है दूसरी ओर धर्म के अनुयायियों में उन सुधारों का प्रचार सुकर बना देता है जिसके पक्ष में ऐसे लोग होते हैं। भारतीय दर्शन की, जो सनातन धर्म का मूल स्तम्भ है, प्रशंसा विदेशी विद्वानों ने भी मुक्तकण्ठ से की है और इसका प्रभाव भारतीयों पर भी पड़ा है। उधर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे जगद्विख्यात कवि, श्री जगदीश चन्द्र बोस जैसे जगद्विख्यात वैज्ञानिक और सर राधाकृष्णन् जैसे प्रकाण्ड पण्डित भारत की उस पुरानी आध्यात्मिकता का यशोगान करते हैं। इन सब बातों का परिणाम यह है कि इस धर्म में भीतर ही भीतर कायापलट हो रहा है। कुछ धर्मोपजीवियों के विरोध ने गर्द उड़ा रखी है, पर सच बात यह है कि आडम्बर और कर्मकाण्ड से हट कर लोगों की श्रद्धा आध्यात्मिकता की ओर बढ़ रही है। यह असम्भव नहीं है कि धर्म फिर संभल जाये और अपने में समाजवाद को मिलाकर समयानुकूल और बलवान हो जाय।

एक बात और है, आर्य धर्म और इस्लाम, दोनों में ही ईसाई धर्म की अपेक्षा एक विशेषता है। इनमें कोई धर्म संस्थान, संगठन, चर्च नहीं है। प्रत्येक मठाधीश, उपदेशक, पुजारी, पुरोहित, पंडित, मौलवी स्वतंत्र है। सनातन धर्मावलम्बियों में तो यह बात पराकाष्ठा तक पहुंची हुई है। किसी दिन किसी समय किसी मन्दिर में जाने की अनिवार्य आवश्यकता नहीं है, कोई सामूहिक उपासना नहीं है। ऐसे धर्म समाजवाद या किसी अन्य वाद का संगठित विरोध नहीं कर सकते। यदि किसी अवसर विशेष पर जल्दी में कोई संगठन किया भी गया तो न तो वह सार्वभौम होगा, न चिरस्थायी, न सब उसको मानेंगे। किसी एक की आज्ञा मानने की आदत ही नहीं है। दूसरी ओर, ऐसे धर्म का कोई एक अधिकारी या केन्द्र न होने से कोई उसे मर्माहत नहीं कर सकता। बड़े-बड़े मठों और पण्डे-पुजारियों के गायब हो जाने पर भी वह जीवित रह सकता है और समय पाकर फिर फल-फूल सकता है। इस्लाम में मस्जिदों में सामूहिक उपासना की जो व्यवस्था है वह संगठन के अभाव की आंशिक पूर्ति करती है पर चर्च का स्थान नहीं ले सकती। संगठन के अभाव का एक और परिणाम है। हिन्दू समाज की सूत्रात्मा ने उसे विदेशी शासन का विरोधी बना रखा है, पर यदि ऐसा न भी होता तब भी सनातन धर्म विदेशी सरकार की सहायता नहीं कर सकता था। कौन फरमान निकालता? कौन मानता? एक सम्प्रदाय का अधिकारी दूसरे के लिए साधारण लौकिक व्यक्ति है, एक पंडित का वक्तव्य दूसरे के लिए अमान्य है। विदेशी सरकार किसी प्रकार का प्रलोभन या भय दिखला कर सनातन धर्म को अपना समर्थक नहीं बना सकती, अतः विदेशी शासन का विरोध करते समय समाजवादियों को उससे उलझने की आवश्यकता नहीं है। इस्लाम की परिस्थिति कुछ भिन्न है, पर इसकी बहुत कम आशंका है कि वह समाजवाद का विरोध करने में सरकार की सहायता करेगा।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि भारत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजवाद और धर्म की लड़ाई न होना असम्भव नहीं है, पर उन बातों की ओर भी दृष्टि डालना आवश्यक है, जो संघर्ष पैदा कर सकती हैं। प्राचीन आर्य उदार थे। उदार न होते तो यहूदियों, सीरियन, ईसाइयों और पारसियों को आश्रय न देते, पर आज हिन्दुओं में वह उदारता नहीं है। अन्य धर्मावलम्बियों की तो बात दूर रही, वह अपने को भी आश्रय नहीं दे सकते। किसी को कर्मणा पतित और किसी को जन्मना नीच कह कर दूर भगाते फिरते हैं। इस्लाम दूसरों को खूब अपनाता है, पर उसमें असहिष्णुता की मात्रा बड़ी जबरदस्त है। माना कि यह दोनों ही रूप विकृत हैं, पर आज तो हमारे सामने यही है। इनको देख कर मजहब के प्रति घृणा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। जब मजहब मनुष्यों में भ्रातृभाव और सहिष्णुता नहीं फैला सकता, तो फिर वह किस मर्ज की दवा है? पर यहां दशा यह है, कि सौहार्द्र फैलाने के बदले मजहब कलह फैलाता है। आये दिन दंगे होते हैं। खुदा और ईश्वर के नाम पर निरपराधों की हत्या की जाती है और पैशाचिक काण्ड रचे जाते हैं। इन बातों से क्षुब्ध होकर यह विचार अनायास ही उठता है कि यह सारे प्रपंच की जड़ ही काट देनी चाहिए। न मजहब का नाम रहेगा न इस प्रकार की खून-खराबी होगी। वह कैसा ईश्वर है, जो हजारों वर्षों के परिश्रम के बाद भी अपने अनुयायियों को मनुष्य नहीं बना सका? यदि दंगे जारी रहे और धर्म के नाम पर कमाने वाले पण्डे, पुरोहित और नासमझ ब्राह्मण नामधारी व्यक्ति तथा जाहिल मुल्ला, मौलवी अपनी इसी चाल पर चलते रहे और असभ्य उपायों से सामाजिक सुधारों का विरोध करते रहे तो वह धर्म और मजहब के प्रति अश्रद्धा बढ़ाते ही जायेंगे। आजकल इन लोगों ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए सरकार से भी मदद लेना शुरू किया है। इन्होंने ही नहीं, दोनों मजहबों के कुछ स्वार्थी नेताओं ने अपने को सरकार के हाथ बेच-सा दिया है, आपस में मेल करना नहीं चाहते, सारे देश को साम्प्रदायिक वैमनस्य का अखाड़ा बना रखा है। पाकिस्तान आन्दोलन का आधार क्या है? मज़हब का नाम लेकर चालिस करोड़ मनुष्यों के सुख और स्वतंत्रता में बाधा डाली जा रही है। इन बातों ने भी समझदारों में मजहब के प्रति चिढ़ पैदा कर दी है। ऐसी ही बातें मजहब विरोधी आन्दोलन को पैदा करती हैं। यदि भारत में ऐसा आन्दोलन उठा और मजहब को आघात पहुंचा तो उसकी जिम्मेदारी उसके इन अन्धे समर्थकों पर होगी।

यह भी सम्भव नहीं है कि असंगठित रूप से मजहब समाजवाद का विरोध करे। मन्दिरों और मस्जिदों को बड़े-बड़े दान देने वाले और बड़े-बड़े वक्फ करने वाले सेठ साहूकार और जमींदार ही होते हैं। बड़े-बड़े मठाधीश स्वयं जमींदारी और महाजनी करते हैं। यह लोग पक्के पूंजीवादी और समाजवाद के नैसर्गिक विरोधी हैं। इनके द्वारा पलने वाले शास्त्र, धर्म और मजहब के नाम पर समाजवाद का विरोध अवश्य ही करेंगे। किसान त्राहि-त्राहि पुकार रहा हो, मजदूर के लड़के-बच्चे भूखों मर रहे हों, ब्याज के बोझ से दबकर गरीब का भर्ता निकल रहा हो पर कोई धर्माध्यक्ष सरकार, पूंजीपति या जमींदार के विरुद्ध आवाज नहीं उठाता। दक्षिणा पापी से पापी के लिए, मन्दिर और स्वर्ग का द्वार खोल देती है। कोई जमींदार कितना ही जालिम हो, कोई सरकारी अहलकार कितना ही ज़बरदस्त रिश्वतखोर या प्रजापीड़क हो, कोई महाजन कितना ही रक्त-शोषक, सूदखोर हो, पुरोहित उसके यहां यज्ञ या श्राद्ध कराने से इनकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करता। ऐसे धर्मव्यवसायी समाजवाद का विरोध जरूर ही करेंगे और आप तो डूबेंगे ही, मजहब को भी ले डूबेंगे। इनका विरोध समाजवाद की प्रगति को रोक नहीं सकता, पर चींटी के काटने से भी चिढ़ होती है।

मेरी समझ में भारत में मजहब और समाजवाद का संघर्ष रोकना कठिन नहीं है। समाजवाद को अपनी सफलता के लिए अपनी ओर से मजहब से लड़ाई ठानने की आवश्यकता भी नहीं है। पर संघर्ष का होना न होना उन लोगों के हाथ में है, जो धर्म से श्रद्धा रखते हैं और धार्मिक जगत में प्रभाव रखते हैं। यदि वह धर्म को आडम्बर, अनुदारता और असहिष्णुता से शुद्ध कर सके, उसके समय की गति परख कर, विदेशी शासन और पूंजीवाद का समर्थक होने से रोक सके, तो संघर्ष रुक सकता है। अन्यथा, संघर्ष होगा और एक बार वही रूप धारण करेगा जो उसने यूरोप में पकड़ा है।

अभी थोड़े ही दिन हुए रूस में ईसाई चर्च को समाज में फिर से शासन-सम्मत स्थान मिला है। रूस के शासकों ने समाजवाद का त्याग नहीं किया है। उनका चर्च को मान लेना इस बात को प्रमाणित करता है कि उनके अनुभव में समाजवाद और मजहब का नैसर्गिक विरोध नहीं है, समाजवादी व्यवस्था के भीतर मजहब के लिए भी स्थान निकल सकता है। इस प्रयोग से समाजवादी और असमाजवादी दोनों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

अभी तक मैं धर्म और मजहब को एक दूसरे से पृथक रखता आया हूँ। इसका यह आशय नहीं कि मैं दोनों में असामञ्जस्य का आरोप कर रहा हूँ। धर्म में मजहब का भी स्थान हो सकता है और प्रायः होता है। यदि कोई मनुष्य ऐसा मानता है—ऐसा मानने के लिए उसके पास क्या आधार है? यह हमारे लिए अप्रासंगिक है—कि जगत् में उन प्राणियों के सिवाय जिनका ज्ञान हमको साधारण उपकरणों द्वारा होता है देवादि का भी अस्तित्व है तो फिर उस मनुष्य के लिए उसके प्रति भी कर्त्तव्य हो जाते हैं और यह कर्त्तव्य भी उसके लिए धर्म के अंग होंगे। यदि किसी का ऐसा विश्वास है कि आत्मा नित्य है और उसके स्वरूप का ज्ञान चित्त को संसारी विषयों से हटाकर किन्हीं विशेष युक्तियों से संयत करने से ही हो सकता है तो उसके लिए इन उपायों का आलंबन धर्म होगा। इस प्रकार उपासना, मजहब भी धर्म के अन्तर्गत हो जाता है। इन सब बातों के सम्बन्ध में मतभेद और व्यवहार भेद होते हुए भी लोगों के आचरणों में, उनके धर्म संबंधी विश्वास और व्यवहार में, बहुत कुछ सादृश्य हो सकता है। इसलिए विभिन्न सम्प्रदायों और मजहबों के सदस्य समाजवादी व्यवस्था में एक साथ रह सकते हैं।

परन्तु एक बहुत बड़ी अड़चन है, उसे भी समझ लेना चाहिए। समाजवाद, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था विशेष का ही नाम नहीं है। इस व्यवस्था के पीछे एक पुष्ट दार्शनिक मत है। यह मत अनीश्वरवादी ही नहीं अनात्यवादी भी है। जब हम समाजवाद का नाम लेते हैं तो हमारा लक्ष्य मार्क्स और एंगेल्स द्वारा प्रवर्तित वाद होता है और वह निःसन्देह अनात्यवाद की नींव पर खड़ा किया गया है। मार्क्स के एक अनुयायी का एक विशेष दृष्टिकोण होता है। वह आत्मा को नित्य नहीं मानता, जगत् के मूल तत्व को चेतन नहीं मानता, उसके लिए यह प्रतीयमान जगत् ही सब कुछ है अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उसकी सारी वैयक्तिक और समुदायगत चेष्टाएं एक विशेष दिशा की ओर झुकी होती हैं। उसके लिए यह जगत ही सब कुछ है, परन्तु जितने भी सम्प्रदाय या मजहब हैं सब उस लोक के सिवाय दूसरे लोकों की सत्ता और देवादि के अस्तित्व को मानते हैं। बौद्ध आत्मा को नित्य नहीं मानता परन्तु पुनर्जन्म सिद्धान्त को मानता है और निर्वाण के लिए ध्यानादि की उपयोगिता पर जोर देता है। सनातन धर्म ईश्वर को मानने न मानने को अनिवार्य नहीं कहता परन्तु दिव्य शरीरियों की सत्ता को स्वीकार करता है, आत्मा को नित्य बतलाता है और आत्मज्ञान के साधनों की करणीयता पर ज़ोर देता है। अतः इन सभी धर्मों या सम्प्रदायों के अनुयायियों के लिए यह प्रतीयमान जगत् सब कुछ नहीं है इसका बहुत बड़ा महत्व है, आत्मोन्नति के उपासनादि साधनों से इसमें ही काम लिया जा सकता है, फिर भी यह एक लंबी यात्रा का एक टुकड़ा मात्र है। कर्त्तव्यों का क्षेत्र इस तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता। बच्चों को शिक्षा केवल इसीलिए ही नहीं देनी है कि वह, उसका कुशल नागरिक बन सके वरन् इसलिये भी कि इसके साथ-साथ वह आयुष्मिक उन्नति भी कर सके। सारे विचारों और चेष्टाओं का झुकाव ऐसी दशा में होगा जो इस लोक को सर्वस्व मानने वाले से भिन्न होगी।

यहीं संघर्ष की सम्भावना आती है। जीवन किस ढांचे में ढाला जाय, शिक्षा कैसे दी जाय, आरम्भ से ही आत्मदर्शन और उपासना की प्रकृति को प्रोत्साहन दिया जाय या उसे दबाया जाय, यह प्रश्न उपेक्षणीय नहीं है। समाज को इनके सम्बन्ध में कोई न कोई नीति निर्धारित करनी होगी। मेरी अपनी ऐसी सम्मति है कि वर्तमान समय में व्यावहारिक समाजवाद को अपनाने में ही कल्याण है। यदि साम्राज्यशाही हमको बुरी लगती हो, यदि हम शोषण को मिटाना चाहते हों, यदि हम मनुष्य को वस्तुतः देखने की इच्छा रखते हों और पृथ्वी पर सुख, शान्ति और समृद्धि की कामना करते हों तो हमको आर्थिक और सामाजिक संघटन उसी ढंग का करना होगा जिसका समाजवादी समर्थन करते हैं। परन्तु इसके साथ ही यूरोपीय उग्र समाजवाद का अपनाया हुआ ईश्वर विरोधी आन्दोलन छोड़ना होगा। उसकी अब आवश्यकता नहीं रही इतना ही नहीं, समाजवाद को वेदान्त की नींव पर खड़ा करना चाहिए। वेदान्त में उन सब अच्छी बातों के लिए स्थान है जो समाजवाद की देन हैं, परन्तु उसकी दृष्टि बहुत व्यापक है। यदि वेदान्त के मूल सिद्धान्त को मानकर शिक्षा का आयोजन किया जाय और समाज की व्यवस्था की जाय तो मनुष्य जीवन का गाम्भीर्य्य और महत्व शतगुण बढ़ जायेगा। किसी के लिए कोई उपासना शैली अनिवार्य न होगी, आत्मा या ईश्वर का मानना न मानना अपनी बुद्धि पर निर्भर होगा। परन्तु धर्म कर्तव्य के सम्बन्ध में प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि अधिक उदार, अधिक सतर्क, अधिक दूरगामी होगी।

ऐसी व्यवस्था धर्ममूलक होगी पर उसमें किसी ऐसी उपासना शैली, किसी ऐसी शिक्षा के लिए स्थान नहीं हो सकता जो मनुष्य-मनुष्य में, वर्ग-वर्ग में, बिलगाव करने वाली हो। इस व्यवस्था में पले हुए प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में यह बात अंकित होगी कि हम सब प्राणिमात्र—विराट् पुरुष के शरीर के अवयव हैं, सबका दुख-सुख एक सूत्र में बंधा है, सब एक-दूसरे के सहयोगी हैं। अभेददर्शन के आधार पर जो संस्कृति खड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी वह मानव समाज को ऐसे कुटुम्ब के रूप में ग्रथित करने में समर्थ हो सकेगी जिसमें प्रत्येक सदस्य दृढ़ चरित्र और स्वावलम्बी हो, जिसमें शोषण, उत्पीड़न और परस्वापहरण के लिए स्थान न हो। ऐसे समाज में किसी के चित्त में अधिकारों का प्रश्न ही न उठेगा। सबका ध्यान अपने कर्तव्योंपर, अपने धर्म पर होगा। अधिकार आप ही आ मिलेंगे। यह भले ही न पूछा जाय कि कौन किसकी किस प्रकार उपासना करता है परन्तु विद्या, धर्म और तप का आदर होगा, जो सबसे बड़ा सेवक होगा वह मूर्धन्य स्थान पाने का अधिकारी होगा।

आज युद्धोत्तरकालीन पुनर्निर्माण की चतुर्दिक चर्चा हो रही है। ऐसी अवस्था में यह आवश्यक है कि हम सब इन प्रश्नों की ओर ध्यान दें। मुझे भय है कि समाजवाद को उसके मित्र और शत्रु दोनों ही हानि पहुंचाते हैं। यदि वह केवल शास्त्रीय वाग्विलास का विषय होता तो कोई बात न थी, परन्तु हममें से जो लोग यह चाहते हैं कि सर्वत्र, कम से कम भारत में, भावी व्यवस्था समाजवाद के व्यावहारिक आधार पर हो वह यह देख कर दुखी होते हैं कि उसके साथ कई ऐसी धारणाएं जुड़ी हुई हैं जिनका महत्व आजकल यूरोप में भी नहीं है, जिनका तिरस्कार रूस भी करता जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँधीजी और समाजवाद

मेरी 'समाजवाद' नामक पुस्तक का पहिला संस्करण सन् १९३६ में निकला। महात्मा जी उसे आद्योपान्त पढ़ गये। समाप्त करने पर उन्होंने मुझे लिखा कि उसमें समाजवाद का जो रूप निरूपित है वह उनको अभिमत है। उसी सिलसिले में उन्होंने मुझे यह आदेश दिया कि तुम मार्क्स के दार्शनिक विचारों के स्थान में अद्वैत वेदान्त को जिस प्रकार समाजवाद का आधार मानते हो, इस विषय में एक पुस्तक लिखो। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप 'चिद्विलास' लिखी गयी। जो प्रति मैंने महात्मा जी को भेंट की वह उनसे कोई ले गया। उनकी आज्ञा से मैंने दूसरी प्रति भेजी। पता नहीं वह उसे देख पाये या नहीं।

इस घटना का उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ कि बहुत लोगों को ऐसा भ्रम है कि महात्मा जी समाजवाद के सर्वथा विरोधी थे। वह कभी-कभी अपने को समाजवादी कह देते थे। इस पर कुछ लोगों को आश्चर्य होता था। आश्चर्य निराधार भी नहीं था। यूरोप और अमेरिका में सोशल डेमोक्रेट तथा कुछ अन्य मतों के अनुयायी भी पाये जाते हैं, परन्तु भारत में तो समाजवाद मार्क्सवाद का पर्याय हो गया है। कम्युनिस्ट तो शुद्ध मार्क्सवादी हैं ही। दूसरे दल भी, जो अपने को समाजवादी (सोशलिस्ट) कहते हैं यह स्पष्ट कर देते हैं कि वह मार्क्स के ही अनुयायी हैं। ऐसा न करने से उनकी आस्तिकता पर धब्बा लगता है। जिन दिनों मैं कांग्रेस समाजवादी दल का सक्रिय सदस्य था कम्युनिस्ट तथा इसी प्रकार के अन्य लोग मुझे वेदान्ती समाजवादी कहा करते थे। यह उपाधि आदर सूचक नही वरन् निन्दात्मक थी।

महात्मा जी उन लोगों में थे जिन्होंने अपने व्यवहार और विचार से यह दिखलाया कि मार्क्स के आधारभूत सिद्धान्तों को न मानते हुए भी उन निष्कर्षों पर पहुंचा जा सकता है जिनका प्रतिपादन मार्क्सवादी करते हैं। अभी हाल ही में आगा खां ने बतलाया है कि महात्मा जी ने उनसे स्वयं कहा था कि वह भी उस दिन की प्रतीक्षा करते हैं जब 'राज सत्ता झड़ जायेगी', अर्थात् जब मनुष्य इतना उन्नत हो जायेगा कि समाज का संचालन राज और सरकार के बिना ही लोगों के सहयोग और सद्भाव मात्र के सहारे हो जाया करेगा। वह भी वर्गहीन समाज को आदर्श समझते थे, कम से कम इधर कुछ दिनों से उनके शब्दों में यह बात प्रतिध्वनित होने लगी थी इसमें संदेह नहीं कि आज से कुछ वर्ष पूर्व वह राजा और रंक, पूंजीपति और श्रमिक, जमींदार और किसान, उभय पक्ष के स्वत्वों की रक्षा पर जोर देते थे। इसका यही अर्थ निकाला जा सकता था कि वह वर्ग-भेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
को कायम रखने के पक्षपाती थे। यदि यह बात ठीक हो तो यह भी मानना होगा कि वह शोषण के भी, जो वर्ग-भेद का कारण और परिणाम दोनों ही है, समर्थक थे। इसी आधार पर दूसरों की भांति मैंने भी उनकी कटु आलोचना की थी। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वर्गहीन समाज की श्रेष्ठता का विचार बीजरूप से उनके चित्त में पहिले से ही था, काल पाकर वह स्पष्ट और सुदृढ़ हो गया। ऐसा वह सदा से मानते थे कि धन और विशेष अधिकार मनुष्य को पतित कर देते हैं। लार्ड कर्जन के दरबार के बाद राजों-महाराजों को देखकर उनके मन में जो भाव उठा था उसको यों व्यक्त किया है —

How heavy is the tool of sins and wrongs that wealth power and prestige exact from man.

सन् १९१८ में अहमदाबाद के मजदूरों में मिल मालिकों के प्रति बहुत असंतोष था। जब कोई और उपाय न देख पड़ा तो गांधी ने उनको हड़ताल करने की राय दी। उनके नेतृत्व में हड़ताल आरम्भ हुई। पहिले तो बड़ा जोश था परन्तु गरीब आदमी धनिकों के साथ सुगमता से ठहर नहीं सकता। मजदूर हिम्मत हारने लगे। गांधी जी ने इस पर अनशन कर दिया। विचित्र अनशन था! वह मालिकों के विरुद्ध नहीं वरन् मजदूरों के विरुद्ध, उनका प्रतिज्ञा करके उससे हटने के विरुद्ध था। मालिकों के नेता गांधी जी के परम मित्र सेठ अम्बालाल साराभाई थे। उनसे गांधी जी यही कहते थे आप लोग मेरे अनशन की परवाह न करें यदि आपको अपनी टेक ठीक प्रतीत होती है तो उस पर दृढ़ रहें। उधर वह मजदूरों को बराबर शांत रहने की शिक्षा देते थे। उन्होंने उनसे यह शर्त करा ली थी कि यदि कोई मजदूर हड़ताल तोड़ कर काम पर जायेगा तो उसके साथ छेड़-छाड़ न की जायगी। क्रोध में आकर कुछ हड़तालियों ने इस प्रतिज्ञा को तोड़ा था, इसीलिए गांधी ने अनशन किया था। इक्कीस दिन के बाद समझौता हुआ, हड़ताल बंद हुई, मालिकों की ओर से श्रमिकों को मिठाइयां बांटी गयीं।

इस घटना का जिक्र करते हुए महात्मा जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, "हमारे देश में दरिद्रता और भुखमरी लोगों को इस तरह पीस रही है कि प्रतिवर्ष बहुत से व्यक्ति भीख मांगने पर विवश होते हैं। इन लोगों को रोटी के लिए जैसी भयानक लड़ाई लड़नी पड़ती है उससे उनमें आत्मसम्मान और लज्जा का भाव रह ही नहीं जाता और हमारे दानी लोग उनके लिए काम का आयोजन करने, और कमा कर रोटी खाने का प्रबन्ध करने के स्थान में उनको भीख देते हैं!" महात्मा जी का कहना अक्षरशः सत्य है। किसी स्वस्थ मनुष्य के सामने जो काम कर सकता है और करना चाहता है और भीख के टुकड़े फेंकना उसके चरित्र को गिराना और मानवता को अपमानित करना है। अपनी शक्ति और योग्यता के अनुरूप काम पाना प्रत्येक व्यक्ति का सहज अधिकार है। जहां तक कि किसी समाज में इसकी सुविधा नहीं है, वहां तक वह समाज अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर रहा है।

जब हम गांधी जी के संबंध में समाजवादी शब्द का व्यवहार करते हैं तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि वह उन व्यक्तियों में थे जो समाज से शोषण, उत्पीड़न, दरिद्रता, विशेषाधिकार जैसी भेदमूलक बातों को मिटा देना चाहते थे। उनके ऐसे विचार उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने अनुभव से उत्पन्न हुए थे। मार्क्स और एंगेल्स की रचनाओं को, जो मार्क्सवाद के प्रस्थान ग्रंथ हैं, उन्होंने पढ़ना तो दूर रहा स्यात् देखा भी नहीं था। मुझे याद है कि एक बार श्री जयप्रकाश नारायण और आचार्य नरेन्द्र देव के साथ मैं महात्मा जी से काशी विद्यापीठ में मिला था। बात चलने पर उन्होंने कहा कि मैंने सुना है कि एञ्जिल की लिखी समाजवाद पर कोई प्रामाणिक पुस्तक है। हम लोगों ने बतलाया है कि उक्त ग्रंथकार का नाम एंगेल्स है। इस पर उन्होंने हँस कर कहा कि विद्यापीठ में आने से यह लाभ हुआ कि मैं शुद्ध उच्चारण जान गया। अस्तु, समाज से जिन बुराइयों को गांधी जी दूर करना चाहते थे उनके विरुद्ध प्रत्येक समाजवादी हैं। परन्तु लक्ष्य की पूर्ति के लिए जिन साधनों का अवलम्बन गांधी जी को अभीष्ट था उनको पूर्णतया स्वीकार करना दूसरे समाजवादियों के लिए बहुत कठिन था। सबसे पहिली बात तो अहिंसा थी। गांधी जी के साधनागार में हिंसा के लिए कोई स्थान न था। वह वर्ग संघर्ष की जगह वर्ग सहयोग को बढ़ा कर वर्गभेद को मिटाना चाहते थे। वह यह मानते थे कि आज के युग में दण्डनीति को एकदम हटाना संभव नहीं है, इसलिए सरकार भी रहेगी, कानून भी रहेगा, परन्तु इन सब बातों के साथ-साथ उनको यह भी विश्वास था कि धर्मोपदेश के द्वारा विवेकबुद्धि को जगा कर पूंजीपतियों तथा दूसरे ऐसे लोगों को, जो शोषक और उत्पीड़क माने जाते हैं, सन्मार्ग पर लाया जा सकता है। उनका विश्वास था कि मनुष्य को वास्तविक मनुष्य बनाने के लिए उसके अधमस्व, उसकी स्वार्थ बुद्धि को जगाने के बदले उसके उत्तमस्व, उसकी धर्म बुद्धि को जगाना चाहिए। उनके मत में सभ्यता का इतिहास भौतिक और आर्थिक शक्तियों के संघर्ष का इतिहास नहीं है वरन् दैवी और आसुर सम्पदाओं के संघर्ष का इतिवृत्ति है। सुख और शान्ति, वासनाओं की तृप्ति से नहीं वरन् आत्मसंयम से मिलती है।

आज मेरे भाषण का जो विषय है उसे देखते हुए यह बातें अप्रासंगिक प्रतीत होंगी। परन्तु बात ऐसी नहीं है। इधर कुछ महीनों में भारत में बहुत से परिवर्तन हुए हैं। देश स्वतंत्र हो गया है, राजे-नवाबों का बल कच्ची दीवारों की भांति मिट्टी में मिल रहा है, जमींदारी प्रथा अपनी अन्तिम घड़ियां गिन रही है। फिर भी देश में शोषण तो है ही, धनी दरिद्र का भेद है ही। यह भेद सन्निकट भविष्य में मिटने वाला भी नहीं है। भले ही कुछ व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण हो जाय, परन्तु पूंजीपति और मजदूर का भेद रहेगा। प्रत्येक व्यक्ति का योग्यतानुसार काम पाने का अधिकार स्वीकृत नहीं हुआ है। सैद्धान्तिक रूप से चाहे इस अधिकार की दुहाई भी दी जाती हो परन्तु जल्दी इसके कार्यान्वित होने की संभावना नहीं देख पड़ती।

जब इतनी विषमता है तो संघर्ष भी होगा। हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि संघर्ष की मात्रा और तीव्रता बढ़ती जा रही है। आये दिन हड़तालें हो रही हैं। कारखाने बन्द होते हैं, मारपीट होती है, गोलियां चलती हैं। देश में वस्त्रादि सभी आवश्यक वस्तुओं की कमी है। उत्पादन का बढ़ना परम आवश्यक है परन्तु वह स्थिति नहीं आने पाती जिसमें उत्पादन बढ़ सके। हमको इस बात पर गम्भीरता से विचार करना है।

जो लोग समाजवादी व्यवस्था को नापसन्द करते हैं उनको यह सोचना है कि उसकी जगह वह ऐसा कौन सा प्रबन्ध करेंगे जिससे विषमता दूर हो और शांति स्थापित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हो। जो लोग समाजवादी व्यवस्था को ही सब झगड़ों की रामबाण औषधि समझते हैं उनको यह तय करना है कि इसको किस ढंग से स्थापित किया जाय, लेनिन की कार्यशैली द्वारा या महात्मा जी की कार्यशैली द्वारा। और तीसरी महत्वपूर्ण समस्या यह है कि इस समय क्या किया जाय। हम भले ही नये जगत् के निर्माण में यत्नशील हों पर जब तक पुराना जगत् है तब तक इसमें कैसे व्यवहार किया जाय?

मजदूर को अपनी अवस्था सुधारने का पूरा अधिकार है। इसके लिए उसे अपना दृढ़ संगठन करना चाहिये और पूंजीपतियों और सरकार पर यथासमय वैध प्रकार से दबाव भी डालना चाहिए। यह उसके हक के भीतर है। उसके लिए उसे कोई दोषी नहीं ठहरा सकता। पर मैंने यहां 'वैध' शब्द से काम लिया है। जो बात कानून के विरुद्ध है वह वैध नहीं है। मजदूर को कानून तोड़ कर कोई आन्दोनल नहीं करना चाहिए। राष्ट्रीय सरकार के कानून को तोड़ना, उसकी आज्ञा के विरुद्ध काम करना राष्ट्र का अहित करना है, मजदूर को यह याद रखना चाहिए कि वह भी नागरिक है। देश के भले में उसका भी भला है। यदि वह कानून तोड़ता है, बात-बात में हड़ताल कर बैठता है, कारखाने में जाकर काम नहीं करता, समझौता होने पर समझौते की शर्तों को तोड़ता है, तो वह देश का नुक्सान करता है। समाज की जड़ खोदकर मजदूर समाज की सहानुभूति खो देगा।

मिल-मालिकों को गांधी जी की एक बात याद दिलाता हूँ। १९२० में मदरास में उन्होंने एक व्याख्यान में कहा था: "यह मेरा व्यापक अनुभव है कि मालिक लोग मजदूरों के प्रति अपने कर्तव्यों का जिस प्रकार पालन करते हैं उससे कहीं अधिक क्षमता और सच्चाई के साथ श्रमिक अपने कर्तव्यों का पालन करता है" (It is my universal experience that as a rule Labour discharges its obligation more effectively and more conscientiously than the master who has corresponding obligations towards the labourers.) मालिकों के पास धन है, उसकी सहायता से वह बड़े-बड़े दिमागों को मोल ले सकते हैं। मजदूर अपने हाथ पांव से कानून तोड़ता है, इसलिए पकड़ा जाता है, धनिक दूसरों की बुद्धि के बल से कानून तोड़ता है, इसलिए प्राय: बच जाता है। मजदूर उससे कहां तक लड़े चार दिन में भूखों मरने लगता है। उसकी ओर से बड़े वकील खड़े नहीं हो सकते। मैं इतना ही कहता हूँ कि इस वर्ग को सोचना चाहिए। धन और चालाकी कुछ दिनों तक तो काम दे सकती है पर अब समय बदल गया है। समाज इन बातों को बर्दाश्त नहीं कर सकता। यदि पूंजीपति की चालों से उत्पादन में कमी पड़ेगी तो समाज उसके साथ भी दया नहीं करेगा।

पूंजीपति और श्रमिक के हकों का निर्णय सामाजिक न्याय (Social Justice) के आधार पर ही हो सकता है। युक्तप्रान्त की सरकार इसी कसौटी को अपने सामने रखती है। जब कभी मालिकों और मजदूरों का झगड़ा हमारे सामने आता है तो हम इसी आधार पर चलने का यत्न करते हैं। एक आधार वह न्याय भी हो सकता है जो साधारण दीवानी फौजदारी अदालतों में बरता जाता है परन्तु उससे यहां काम नहीं चल सकता। वह न्याय स्थिर अचल है। कानून नित्य नहीं बनते एक बार बनने पर बहुत दिनों तक नहीं बदलते। परन्तु जगत परिवर्तनशील है। कभी-कभी उसमें बड़े वेग से परिवर्तन होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। नये जगत में पुराने कानून बेमेल लगते हैं, परन्तु न्यायालय उनको ही बरतते जाते हैं। एक उदाहरण लीजिये। कोई नंगा-भूखा मनुष्य जिसके बाल-बच्चे भी नंगे-भूखे हैं किसी करोड़पति की एक इकन्नी आंख बचा कर ले लेता है। अब न्यायालय की दृष्टि में वह चोर है और न्यायाधीश को चाहिए कि उसे दंड दे। परन्तु इस बात पर दूसरी दिशा से भी दृष्टि डाली जा सकती है। किसका मूल्य अधिक है, जान का या माल का? समाज को पहिले किसकी रक्षा करनी चाहिये, किसी के धन की या किसी के प्राण की? क्या समाज ने ऐसी व्यवस्था की है कि कोई नंगा-भूखा न रहे? जिसके पास अपनी आवश्यकता से अधिक है उससे लेकर अपने प्राण को जो अन्यथा बच नहीं सकता, बचाने का यत्न क्यों अपराध है? विचार की यह दिशा सामाजिक न्याय की दिशा में और परिवर्तन काल में कभी-कभी साधारण न्याय से बहुत भिन्न होती है।

इस प्रकार विचार करने में जो अड़चन है वह स्पष्ट है। लिखा कानून अच्छा हो या बुरा, उसके शब्दों की लकीर पकड़ कर चलने में सुगमता होती है। प्रायः सब ही लोग उन शब्दों का एकसा ही अर्थ लगावेंगे। परन्तु जहाँ यह निर्णय करना हो कि इस समय समाज का हित किस बात में है वहां मतभेद होना अधिक सम्भव है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि अधिकार(Right) वहीं तक हैं जहाँ तक राज की स्वीकृति हो। इसका तात्पर्य यह हुआ कि कानून में जैसा लिखा है उसी के अनुसार हक होता है। आज यदि वह कानून बन जाये कि प्रत्येक व्यक्ति की प्रथम सन्तान बलि दे दी जायेगी तो किसी को प्रथम सन्तान को जीवित रखने का अधिकार न होगा। दूसरा मत यह है कि कुछ अधिकार मनुष्य के सहज ही, मनुष्य होने के नाते से ही प्राप्त हैं। वह राज के कानून की अपेक्षा नहीं करते। उदाहरण के लिए जीवित रहने का अधिकार लीजिये। कानून कुछ भी कहे प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि अपने को चाहे जैसे हो जीवित रखे। इस अधिकार पर एक बंधन है। ऐसा ही अधिकार सबको है। अतः इससे वहीं तक काम लिया जा सकता है जहां तक कि दूसरों के साथ हस्तक्षेप न हो।

किसी व्यक्ति के सहज अधिकारों, उसकी मांगों के औचित्य के निर्णय में एक समीक्षा से सहायता ली जाती है, समाज में यह किस स्थान को भर रहा है, इसके हट जाने से कौन-सी जगह रिक्त हो जायेगी, यदि यह काम छोड़ बैठे तो समाज की कितनी क्षति होगी? यह कहना न होगा कि यह निर्णय भी सरल नहीं है। किससे समाज की कितनी सेवा हो रही है, जिसके बिना समाज की कितनी हानि होगी, यह नाप-तौल की बातें नहीं हैं। अलग-अलग मनुष्य अलग निर्णय कर सकते हैं परन्तु और कोई साधन है भी नहीं। परिवर्तन-काल में समाज की आवश्यकताओं का रूप बदलता रहता है। तदनुसार सेवाओं और कामों का मूल्य बदलता रहता है, समाज विवेक बुद्धि जिसको एक समय धर्म या उचित समझती है उसी को दूसरे काल में निन्द्य मानती है। सामाजिक न्याय के अन्तर्गत यह सब विचार आते हैं।

एक उदाहरण लीजिये। कोई व्यक्ति किसी कारखाने में मजदूरी करता है। मजदूरी आपस में तय हो जाती है। कल को उस मालिक को कोई ऐसा आदमी मिलता है जो उतनी ही मजदूरी में ड्योढ़ा काम करने को तैयार है। साधारण बुद्धि तो मालिक को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमति दे देगी कि पहिले को निकालकर दूसरे को रख ले परन्तु सामाजिक न्याय ऐसा नहीं करने देगा। वह इस बात को देखेगा कि इस समय की परिस्थिति देखते हुए कम से कम कितनी मजदूरी प्रत्येक श्रमिक को मिलनी चाहिए और अधिक से अधिक कितना काम लेना चाहिये। वह किसी की बेबसी का लाभ उठाकर मजदूरी देने या अधिक काम लेने या निकाल देने की अनुमति न देगा।

जब समाज की अवस्था में कुछ स्थिरता आती है तो तत्कालीन सामाजिक न्याय के अनुरूप कानून बनते हैं और साधारण अदालतों में बरते जाने लगते हैं।

आज भारत में केन्द्र और प्रांतों में राष्ट्रीय सरकारें हैं। वह जानती हैं कि वर्तमान साधारण दीवानी कानून मजदूर की रक्षा नहीं कर सकता, इसलिए एक ओर तो मजदूरों के लिए विशेष कानून बनाये जा रहे हैं। दूसरी ओर श्रमिक न्यायालयों के फैसलों के द्वारा सामाजिक न्याय को व्यवहार में लाने का यत्न किया जा रहा है। मजदूरों को इतना विश्वास रखना चाहिए कि चाहे शुद्ध समाजवादी व्यवस्था के कायम होने में देर हो परन्तु उनका हित उन लोगों को ध्यान में निरन्तर है जिनके हाथों में आज शासन की बागडोर है। अनुशासन और नियम का पालन करके मजदूर उन हाथों को मजबूत करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेल–संस्मरण

मेरे जैसे व्यक्तियों के सामने, जो कई बार जेल गये हैं और कई वर्ष जेल में बिता चुके हैं, एक बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। सैकड़ों स्मृतियां मंडलाने लगती हैं, किस-किस को दूसरों के सामने रखा जाय? बहुत-सी घटनाओं पर उस समय भी हंसी आती थी, आज भी आती है। कुछ जो उस समय बड़ी गम्भीर प्रतीत होती थीं, आज तुच्छ और हास्य-जनक लगती हैं।

जेल यात्रा का श्रीगणेश दिसम्बर, १९२१ से हुआ। इस प्रकार का पहिला अनुभव था। जेल हमारे लिए नया था। हमारे जैसे कैदी जेल वालों के लिए नये थे। आज जेल में 'सी' क्लास के बंदियों को जो भोजन मिलता है। उसकी निन्दा की जाती है, निन्दा ठीक ही है परन्तु अब वह भोजन कहां जो हमको १९२१ में मिला था? पांव से आंटा मांडा जाता था। इसे कांग्रेसी कैदियों ने बन्द कराया। मिट्टी के मेल से रोटी ऐसी खस्ता हो जाती थी कि जमीन पर पटक देने से खिल-सी जाती थी। उस बार कांग्रेस के वर्तमान प्रेसीडेण्ट आचार्य कृपलानी भी हमारे साथ ही कैद थे। यह बात बहुत कम लोग जानते होंगे कि उनको पेड़ों पर चढ़ना खूब आता है। बनारस से बदल कर हम लोग लखनऊ भेज दिये गये। वहां हमारे बारिक के हाते में एक पंक्ति में कई पेड़ थे। कृपलानी जी तथा काशी के पं० शिवविनायक मिश्र का वृक्षारोहण कौशल देखने योग्य था, पता नहीं अब इन लोगों को यह विद्या आती है या भूल गयी।

जेल में 'तिकड़म' शब्द बहुत चलता है। अब तो बाहर भी प्रयोग में आ चला है। जेल के नियमों के विरुद्ध जो कोई काम किये जाते हैं वह तिकड़म के प्रसाद से ही होते हैं। राजनीतिक बंदियों में भी अनेक प्रकार के व्यक्ति थे, स्यात् १००० में १ ऐसा भी होगा जो तिकड़म के सर्वथा विरुद्ध रहा हो। शेष थोड़ी या बहुत दूर तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से तिकड़म का अनुमोदन कर लेते थे। कम से कम अखबारों के लिए तो मैं भी तिकड़म का दोषी रहा हूँ। संभव है सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर लेने से अपराध का भार कुछ हल्का हो जाय। जिन दिनों हम लोगों को समाचार-पत्र मिलना बंद था, 'लीडर' या 'आज' की एक-एक प्रति के लिए कभी-कभी एक रुपया तक दिया गया है। रुपया भी तिकड़म की ही देन होता था। तिकड़म की एक रोचक कहानी हमारे १९२२ के लखनऊ जेल-जीवन से संबद्ध हैं। एक दिन जब सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री क्लेमेंट्स बारिक में घूमने आये तो श्री रंगा अय्यर सामने दीवार पर श्रीकृष्ण का चित्र लटकाये ध्यानमुद्रा में बैठे थे। ध्यान तो खैर जैसा था वैसा था, परन्तु सुपरिण्टेण्डेण्ट की ओर उन्होंने दृष्टिपात भी न किया। क्लेमेंट्स ने उस चित्र को हटवा दिया। दूसरे दिन जब क्लेमेंट्स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये तो हम सब जितने हिन्दू बंदी थे सब के सब ध्यानमग्न बैठे थे, सब के सामने दीवार पर श्रीकृष्ण का रंगीन चित्र लटक रहा था। क्लेमेंट्स बेचारे क्या करते, चुपचाप चले गये। रात-रात में इतने चित्रों का आ जाना तिकड़म का चमत्कार था।

उन दिनों की बनारस जेल की भी एक कहानी याद आती है। हम लोगों ने वसन्त पंचमी पर महायज्ञ करने का निश्चय किया। बाहर से एक बोरा हवन सामग्री भी चंदे से मंगा ली गयी। पं० कृष्णचन्द्र शर्मा हमारे पुरोहित हुए। प्रश्न यह था कि घी कहां से आये। इसके पहिले हम लोगों के लिए कई बार बाहर से मित्रों ने भोजन की सामग्री भेजी थी, जिससे हमने जेल से खाना नहीं लिया था। जो राशन इस प्रकार बचा था उसका मूल्य हमारे हिसाब से घी के एक टिन के बराबर हुआ। हमने जेल के अधिकारियों से कहा कि हमें एक टिन घी दे दीजिये। उन्होंने अस्वीकार किया। अब मैं समझता हूँ कि उनका ऐसा करना ठीक था, परन्तु उस समय तो हम सब अड़े हुए थे। वसन्त पंचमी को तीन दिन शेष थे कि हमको एक दैवी सहायता मिल गयी। हम लोगों में बेचन नाम के एक स्वयंसेवक थे। वह जाति के कान्यकुब्ज हलवाई हैं। जल्दी में जेल वाले उनको कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिख गये थे। एक-एक साथ ६०-६०, ७०-७० व्यक्ति गिरफ्तार होकर रात में आते थे। रजिस्टर में ठीक-ठीक लिखना कठिन होता था। किसी को पहिचानते थे नहीं, हम लोगों की सहायता से ही काम चलता था। अस्तु, उत्सव के तीन दिन पहिले बेचन की रिहाई के दिन आ गये। जेल वाले सब बेचन 'महाराज' को ढूँढ़ते फिरते थे, कोई पता न बताता था। अधिकारियों को यह चिन्ता थी कि रिहाई के बाद किसी को रोकने से उन पर हब्स बेजा का अभियोग चल सकता था। हम लोग यह कहते थे कि यदि यहां बेचन महाराज होंगे तो यज्ञाग्नि से प्रकट होंगे। हारकर जेल वालों ने घी का टिन दिया। यज्ञ हुआ और बेचन उनको सौंप दिये गये। छोड़ते समय जेल वालों ने उनकी खुशामद की कि आप जो तीन दिन रुके रहे इस पर कोई कार्रवाई मत कीजियेगा।

उर्दू अक्षरों के कारण भी बड़े तमाशे होते थे। गांधी आश्रम के श्री 'वीरेश्वर अय्यर' का नाम जैसा कुछ लिखा गया उसको बाद में 'हरसू अहीर' पढ़ा गया और उनकी इसी नाम से खोज लगायी गयी।

१९३० में बनारस जेल में 'ए' क्लास में मुझसे पहिले दो लड़के पहुंच चुके थे। जेल के अधिकारी उन पर बड़ी कड़ी दृष्टि रखते थे। दिन रात पहरा रहता था, पहरेदार भी जेलर साहब के बहुत विश्वासपात्र होते थे। लड़कों को यह बात खलती थी। उन्होंने छुटकारे की खूब युक्ति ढूंढ़ निकाली, उनको जेलर साहब के घर के लड़कों के नाम मालूम हो गये थे। बस कभी तो पहरे के वार्डर से कहते कि अमुक से पूछते आना कि जो बम उनको दिये गये थे। वह सुरक्षित तो हैं, कभी पिस्तौल का पता पूछते। वार्डर जेलर से कहते। जेलर ने सोचा कि कहीं इन लड़कों ने ऐसी बातें सुपरिण्टेण्डेण्ट या कलेक्टर या किसी अन्य अधिकारी के सामने कीं तो हमारे घर के लड़के व्यर्थ में फंस जायेंगे। उन्होंने पहरा ही हटवा दिया।

उन दिनों हमारे साथ श्री बैजनाथ सिंह किंकर भी थे। किंकर जी ब्रजभाषा के अच्छे कवि हैं। ७५ वर्ष से ऊपर का वय हो गया। फिर भी लिखते रहते हैं। जेल में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः प्रतिदिन कुछ नयी रचना किया करते थे। मैं उनकी आंख बचा कर कभी-कभी उनकी नोटबुक में उनके नाम से अपनी तुकबन्दी लिख देता था। न मुझे ब्रजभाषा पर अधिकार, न छन्दशास्त्र का ज्ञान, मेरी लिखी चीज भला उनसे क्या मेल खाती। मैं विषय यह रखता था कि वह जेल से ऊब कर छुटकारा चाहते हैं, यह उनका भाव भी नहीं था। अस्तु, कभी-कभी पन्ना उलटने पर उनको ऐसी रचना मिलती। वह आश्चर्य में पड़ जाते और सोचने लगते कि मैं कब और किस धुन में ऐसा लिख गया। कई दिनों के बाद उनका ध्यान अक्षरों पर गया। आखिर एक दिन उनको पता चल गया और उन्होंने बनारस की बोली में कहा 'हम जान गइली, ई तोहरै बदमासी हौ' (मैं जान गया, यह तुम्हारी ही बदमाशी है।) मैं उनकी नोट बुक को जैसी रचनाओं से भ्रष्ट किया करता था उनका एक छोटा-सा उदाहरण यह दोहा है:

D 6669

भैरव भव भय बन दहन, संकट मेटन हार।
क्यों न बेगि भंजहु प्रभो, किंकर कारागार।।

R 021 ना.2

जेल में 'पगली'-भी विशेष महत्त्व रखती है। यदि कभी कोई कैदी भाग जाय तो उस समय जो कुछ होता है उसके 'रिहर्सल' को पगली कहते हैं। देर तक घंटा बजता है, प्रत्येक कैदी को दौड़ कर बारिक में जाना होता है, बारिक बन्द हो जाते हैं और गिनती होने लगती है। यदि सारे जेल की गिनती पूरी मिल गयी तो बंदूक दागी जाती है। तब जाकर पागलपन का अन्त होता है। महीने में एक बार किसी दिन पगली होनी चाहिए। एक बार अनजान में मैं पगली कराने का कारण होने जा रहा था। रायबरेली जेल में 'ए' क्लास में मैं अकेला था। मुझे ज्योतिष का थोड़ा-सा रस है, इसके पीछे अपने को कुत्ते से भी कटवा चुका हूँ। गर्मी के दिन थे। हाते में घूम-घूम कर आकाश देख रहा था। बारिक की दीवार ऐसी थी कि दक्षिण दिशा के तिमि आदि पुंज नहीं देख पड़ते थे। मैं कुर्सी रख कर पाखाने की दीवार पर चढ़ गया। इतने में दूर से डंडे के किसी वार्डर की दृष्टि मुझ पर पड़ी। बाहरी दीवार को डंडा कहते हैं। उसने आवाज लगायी। मैं चुपके से उतर आया। किसी कारण उसको अपनी आंखों पर संदेह ही हो गया था नहीं तो कोई कैदी भागना चाहता है, इस आशंका पर पगली हो ही गयी होती।

यदि वातावरण अच्छा हो, साथी अच्छे मिल जायं और बारिक में बहुत भीड़-भाड़ न हो तो जेल में खूब अध्ययन हो सकता है। १९४२ में गवर्नमेण्ट ने जेलों में बहुत से पढ़े-लिखे व्यक्तियों को बंद कर दिया। परन्तु न तो अखबार की अनुमति थी न पेंसिल नोटबुक की। इससे बहुत अशांति थी। इस प्रकार तंग करना अशोभन है और मनोविज्ञान के प्रतिकूल है। मैं अपने को इस बात में भाग्यशाली समझता हूँ कि मुझे जेल में प्रायः पढ़ने-लिखने की सुविधा रही। साथी अच्छे मिले। जो वय में छोटे थे वह भी लिहाज और कृपा करते थे। उनको भी पढ़ने का शौक पैदा हो गया। काशी विद्यापीठ में अध्यापक होने के नाते मुझे बहुत से विद्यार्थी प्रोफेसर साहब कह कर पुकारते हैं। जेल में बहुत से युवक मुझे इसी नाम से पुकारते थे। मैं थोड़ी बहुत प्रोफेसरी कर भी लेता था। दर्शन, समाजवाद, सामान्य विज्ञान का कुछ न कुछ चर्चा रहता था। बनारस और फतेहगढ़ जेल में ४०-५० व्यक्तियों ने राशियों, नक्षत्रों और दूसरे तारकपुंजों को

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहिचानना सीखा। मैं नहीं कह सकता अब कितनों को वह सब याद है। एक बार मैंने कुछ मित्रों को तीन बजे रात में उठाकर गुरु और शुक्र की द्युति दिखलायी थी।

मेरी कई पुस्तकें जेल में लिखी गयी हैं। जीवन और दर्शन, भारतीय सृष्टिक्रम विचार, ब्राह्मण सावधान, चिद्विलास, ऋग्वेदीय पुरुषसूक्त सब जेल की कृतियां हैं। १९२१ में अपनी भारत के देशी राष्ट्र के आधार पर मैंने एक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी। इसके लिए मुझे विशेष रूप से स्व० श्री ऐण्ड्रूज ने प्रेरित किया था। वही उसे प्रकाशित कराना चाहते थे। परन्तु दुर्भाग्य से पाण्डुलिपि उनके जिस ट्रंक में थी वह ट्रंक ही कहीं यात्रा में खो गया। यह घटना स्यात् दक्षिणी अफ्रीका की है। पुस्तक अप्रकाशित ही रह गयी।

राजनीतिक कैदियों में जो लोग 'ए' क्लास में रक्खे जाते थे। उनमें से बहुतों का कुछ न कुछ समय पाकशाला में बीतता था। मैं भी ऐसे लोगों में था, मुझको लड़कपन से ही खाना बनाने में रूचि है। जेल में भी इस काम में काफी समय लगाता था। दो एक चीजें अच्छी बना लेता--कम से कम साथियों का यही कहना था। यों कुछ नहीं तो दाल साफ करने और आलू छीलने में ही सहायता देता था। एक बार १९४० में फतेहगढ़ जेल में पाचनकला की कुशलता ने मुझे संकट में डाल दिया। मैंने थोड़ा—सा बेसन का हलवा बनाया था। अच्छा बन गया था। दीवाली आयी। साथ में श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन थे। उन्होंने राय दी कि हलवा बना कर सभी राजनीतिक बंदियों में बांटा जाय। ऐसा 'ए' क्लास वाले अवसर पाने पर किया करते थे। कोई दिक्कत नहीं थी। परन्तु टण्डन जी ने यह भी आदेश दिया कि हलवा बेसनकाहो,वहभी गुड़ में, क्योंकि वह स्वयं मिल की शक्कर नहीं खाते। मेरे ऊपर ही बनाने का भार था। मैंने कभी मन—डेढ़ मन हलवा तो बनाया नहीं था। वह भी बेसन का और फिर गुड़ में। जरा सी चासनी बिगड़ जाय तो आंच तेज हो जाय तो सारी सामग्री नष्ट हो जाय, परन्तु टण्डन जी की आज्ञा तो माननी ही थी। भगवान का नाम लेकर हाथ लगा, बारे काम सफल रहा।

जेल में दो बातें बहुत बढ़ जाती हैं। एक तो धर्म—भाव उमड़ आता है। हनुमान चालीसा से लेकर वेद तक के पाठ करने वाले देख पड़ते हैं। दूसरे, व्यायाम खूब होता है। इन बातों से चित्त हल्का रहता है, दुःख भूला रहता है। संभवतः इसीलिए शेर जैसे बड़े पशु पिंजड़ों में घंटों घूमते रहते हैं। मैंने दुःख भूलने का चर्चा किया है, परन्तु सच तो यह है कि वहां जाकर घर भूल सा जाता है। जेल से रिहाई पाना सुखद बात है परन्तु रिहाई के समय जेल के साथियों से बिछुड़ने का सचमुच बहुत दुःख होता है। जो लोग कुछ दिनों तक एक साथ जेल में रह चुके हैं उनमें एक अपूर्व स्नेह बन्धन पड़ जाता है।

नेता माने जाने वालों को बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ती थीं। उनको प्रायः 'ए' या 'बी' क्लास में रक्खा जाता था। वह अपने साधारण साथियों से पृथक् रक्खे जाते थे, परन्तु जेल के अधिकारियों के 'सी' क्लास के बन्दियों से झगड़े हो ही जाते थे और फिर उनमें 'ए', 'बी' वालों को खिंचकर आना ही पड़ता था। जेल में ३-४ बार मुझे भी अनशन करना पड़ा है, एक बार तो ८ दिन तक यही क्रम रहा। सबके पीछे यही बात थी। मैं १९३३ में झांसी जेल में था। जाड़े के दिन थे। 'सी' क्लास के कैदियों को काफी कपड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं मिले [illegible] कष्ट थे। उन्होंने यह तय किया कि हम लोग सब कपड़े उतार कर फेंक देंगे। मैंने जेल के अफसरों को समझा-बुझा कर राजी किया कि दो-तीन दिन में कपड़े दे दें और 'सी' क्लास के साथियों से कहा कि आप लोग अभी शान्त रहें। यदि इन्होंने अमुक तारीख तक कपड़े न दिये तो मैं भी आपका साथ दूंगा। कपड़े सचमुच नहीं मिले। सब लोग उद्विग्न थे। मैंने भी सब कपड़े उतार दिये और लंगोट के ऊपर गले में कंबल लपेट लिया। नतीजा यह हुआ कि अधिकारियों का आसन हिला और कपड़ों की समस्या सुलझ गयी।

बुजुर्गी भी कठिन चीज है। यदि बुजुर्ग हर बात पर चुप रह जाय तो अनर्थ हो सकता है, यदि हर बात पर टोकता रहे तो बुजुर्गी ही समाप्त हो जाय। लखनऊ जेल की बात है। एक बारिक के आधे में श्री वेंक्टेशनारायण तिवारी के साथ मैं रहता था। दूसरे आधे में कुछ नवयुवक साथी थे। बीच में किवाड़ था। एक दिन एक युवक ने अपनी टोपी दूसरे के पलंग पर भूल से छोड़ दी। उन्होंने उसे फेंक दिया। काफी झकझक हुई। एक कहता है कि मेरी टोपी मुझे दे देनी थी, फेंका क्यों? दूसरा कहता था बिस्तरा मेरा है, उस पर टोपी रखी क्यों गयी। अस्तु, वह विवाद तो समाप्त हुआ। तीन-चार दिन बाद काफी शोरगुल मचा। जिन साहब ने टोपी फेंकी थी वह टोपी वाले से कह रहे थे कि मैंने एक खटमल भूल से आपके बिस्तरे पर रख दिया था। वह क्या हुआ? आपको अपनी टोपी प्यारी है, तो मुझे अपना खटमल प्यारा है। आपने उसे क्यों फेंका, मुझे बुलाकर दे देते। यह बहस दो-तीन घंटे तक चली। रात के लगभग ११ बज गये। तब धीरे से तिवारी जी और मैंने अपनी बुजुर्गी के अधिकार से दबे स्वरों में काम लिया। इतना ही पूछा, "कहिये, आज क्या विषय छिड़ गया है?" बहस समाप्त हुई और टोपी-खटमल काण्ड पर पटाक्षेप हुआ।

जेल मानव चरित्र के अध्ययन के लिए बहुत उपयुक्त प्रयोगशाला है। बाहर की दुनियां में कृत्रिम सज्जनता खूब चल सकती है। थोड़ी देर के लिए एक दूसरे से मिलना होता है, मीठी-मीठी बातें कर लेते हैं। यदि किसी बात में कोई हल्का-सा मनमुटाव भी आ गया तो दस कामों में भूल जाता है। जेल में एक दूसरे का दिन-रात का साथ होता है, बाहर जैसे काम होते नहीं, छोटी-छोटी बातें भी महत्व प्राप्त कर लेती हैं। कृत्रिमता कहां तक निभायी जाय। स्वभाव खुल ही जाते हैं। यदि किसी व्यक्ति को अपने जेल के साथियों का आदर प्राप्त हुआ हो तो सचमुच उसके चरित्र की प्रशंसा करनी चाहिये, ऐसी सतर्क आलोचना के सामने ठहरना सुकर काम नहीं है। हममें से अच्छे से अच्छे व्यक्ति किस प्रकार छोटी-छोटी बातों पर फिसल सकते हैं यह देख कर आश्चर्य और क्षोभ होता है। इसके साथ ही कभी-कभी उन कैदियों में जो चोरी, डकैती जैसे बुरे कामों के लिए जेल गये हैं सौजन्य, कृतज्ञता और परोपकार की झलक देखकर भी आश्चर्य होता है और मानवता के लिए आशा बढ़ती है, सहानुभूति की शिक्षा जेल के बराबर अन्यत्र नहीं मिल सकती।

समाज की वर्तमान परिस्थिति में जेल रखने ही होंगे, परन्तु यदि उनके प्रबन्ध से सम्वेदना और मनोविज्ञान को अधिक स्थान दिया जाये तो उनसे उन अभागों का सचमुच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभ हो सकता है, जो समाज के संघटन के साथ अपनी प्रवृत्तियों का सामंजस्य न कर सकने के कारण जेल भेजे जाते हैं। आज तो समाज का विद्रोही रह जाता है। वह शक्ति के सामने सिर झुका दे पर भीतर आग जलती रहती है। यह बात बहुत कुछ बदली जा सकती है, परन्तु इसके लिए एक बात आवश्यक है। समाज को स्वयं अपने ह्दय का परिर्वतन करना होगा। उसको यह दो बातें माननी होंगी, यदि कोई जेल जाता है तो इसके लिए अंशतः समाज भी दोषी है और जो जेल जाता है तो उसने चाहे जो अपराध किया हो, पर वह भी मनुष्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय बुद्धिजीवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग की कुंठा

मुझे भय है कि मैंने बड़े विस्तृत विषय को उठाया है, प्रथमतः मेरे इस लेख के शीर्षक को पढ़ कर प्रश्न के आग्रह का भ्रम होता है। परन्तु आज का बुद्धिजीवी वर्ग व्यापक रूप से किसी अलक्षित मानसिक रोग से ग्रस्त है, यह मानने के लिए कोई कारण है या नहीं इसके शास्त्रीय विवेचन में समय नष्ट किये बिना ही मैं यह मान कर चलूंगा कि ऐसा है। कहीं-कहीं इस लेख में मुझे भारत के बाहर की परिस्थितियों की चर्चा करनी पड़ी है। परन्तु इतना स्पष्ट रूप से समझ लिया जाय कि इस संबंध में मैं जो कुछ कहूंगा वह उन देशों पर संभवतः लागू नहीं हो सकता है, जो लौह आवरण वाले कहे जाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वहां के बुद्धिजीवी मानसिक दृष्टि से पूर्णतः स्वस्थ हैं वरन् यह है कि उनका रोग कुछ दूसरे प्रकार का है। इस विषय को मैं बाद में लूंगा।

यहां यह भी स्पष्ट कह दूं कि मेरा व्यक्तिगत अनुभव अपने देश तक ही सीमित है। हो सकता है कि इस अनुभव के आधार पर बाहर की परिस्थितियों को आंकने में अतिरंजन हो गया हो और उसके समर्थन के लिए पर्याप्त उदाहरण न उपलब्ध हों परन्तु भारत और पश्चिमी देशों विशेषकर अंग्रेजी भाषा-भाषी देशों के बीच दूरी के व्यवधान के बावजूद भी इतना गहरा और निरंतर वर्द्धमान बौद्धिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध है कि यह सहज ही विश्वास किया जा सकता है कि यदि मैं यह मान लूं कि जो बातें मुझे भारत में दिखायी देती हैं उनका प्रतिरूप पर्याप्त अंश में अन्यत्र भी मिलता है तो कोई भी भारी भूल न होगी।

बुद्धिजीवियों की कोई जाति नहीं होती और न उनका कोई (आर्थिक) वर्ग ही है। अतः उनको एक परिभाषा में बांधना कठिन है। फिर भी इस बिरादरी के प्रत्येक सदस्य की एक समान चारित्रिक विशेषता भी इस संबंध में बुद्धिसंगत दृष्टिकोण रख सकने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। बुद्धिसंगत दृष्टिकोण का अर्थ होता है—तर्क को ज्ञान-प्राप्ति का न्यायसंगत साधन स्वीकार करना। यह दूसरी बात है कि किन्हीं विषयों में लोग इस कथन से सहमत न हों। यह भी सत्य है कि कुछ विशेष मामलों में उदाहरणतः उनमें जिनका संबंध धर्म से है, कट्टर बुद्धिवादी भी तर्क को ही सत्य की सबसे बड़ी कसौटी मानने को प्रस्तुत न होंगे। तथापि सामूहिक रूप से बुद्धिजीवी वर्ग की यह विशेषता है कि वह जीवन की समस्याओं के प्रति एक तर्कसंगत दृष्टिकोण रखता है, वह प्राप्त प्रमाणों को अच्छी तरह तौलने और आवश्यक हो तो अपना मत भी बदलने को उत्सुक रहता है। वह किसी पूर्व निर्णय के सहारे नहीं चलता है वरन् किसी निर्णय पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुंचने के पहिले सभी पक्षों की बात सुनने को उत्सुक रहता है। सबसे बड़ी बात यह है कि वह वर्ग अपने बहुसंख्यक लोगों के मत के विरुद्ध मत प्रकाशन का अवसर भी देना चाहता है, क्योंकि उसका यह विश्वास है कि इसी प्रकार ज्ञान का विकास हो सकता है——वादे वादे जायते तत्वबोधः।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि बुद्धिजीवी वर्ग अराजकता एवं स्वच्छन्दता का समर्थक है। इस संबंध में प्राचीन भारत के इतिहास का अध्ययन लाभदायक होगा। उस समय कुछ ऐसे सिद्धान्त थे जिनका पालन हिन्दू ढंग का जीवन व्यतीत करने वालों के लिए आवश्यक था। ये सिद्धान्त वर्णाश्रम धर्म कहलाते थे और नागरिकों के आचार संबंधी सामान्य नियम प्रस्तुत करते थे। वे जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में मनुष्य का व्यक्ति और समाज के सुसदस्य के रूप में कर्तव्य स्थिर करते थे। परन्तु विचार-शक्ति को नियंत्रित करने के लिए और अधिक कोई प्रयत्न नहीं किया जाता था। चार्वाक के शुद्ध भौतिकवाद से लेकर कपिल के अनीश्वरवाद तथा वेदांत के अद्वैतवाद तक सभी प्रकार की मान्यताओं के लिए समाज में स्थान था। प्रत्येक व्यक्ति को अपने मत को व्यक्त एवं प्रचारित करने की स्वतंत्रता थी। यदि ऐसी स्थिति न होती तो परम्परा विरोधी विचारधाराएं अक्षुण्ण रूप से पनप न पातीं। बुद्ध और महावीर वेद और उनकी समस्त मान्यताओं के विरुद्ध खुल कर प्रचार करते रहे। यह उस विचार स्वातंत्र्य का ही प्रमाण है जो तत्कालीन समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी।

'लाल सितारे' की छाया में बसे हुए देशों में न तो ऐसी स्वतंत्रता है और न उसकी आवश्यकता ही समझी जाती है। उन देशों में किसी स्वतंत्र दार्शनिक विचार के लिए स्थान नहीं मिल सकता है। वहां जो अपने को दार्शनिक कहते हैं उनका काम केवल इतना है कि मार्क्स और एंगल्स द्वारा मानव जाति के सम्मुख उद्घाटित मान्यताओं का भाष्य करते रहें। यदि यह अंकुश केवल विचारक्षेत्र तक ही सीमित रहता तो संभवतः लोगों को इतना नहीं खलता, परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं है। विज्ञान, मनोविज्ञान, इतिहास, साहित्य और समाज-शास्त्र सभी इस अंकुश का अनुभव करते हैं। शोध द्वारा तथ्य दृढ़ एवं ठोस होते हैं। परन्तु वहां के विद्वान और लेखक इसके लिए बाध्य हैं कि वे उन्हें तोड़-मरोड़ कर उनका ऐसा अर्थ निकालें जो साम्यवाद के ढांचे में ठीक-ठीक बैठ जाय। अनेक वैज्ञानिकों, इतिहासकारों और साहित्यिक आलोचकों को वहां की पार्टी का संचालन करने वाले भाग्य-विधाताओं के सम्मुख धूल में माथा रगड़ना पड़ता है, क्योंकि उनकी दृष्टि में वे मार्क्सवादी मार्ग से पथ-भ्रष्ट होने के अपराधी थे और उसका यही प्रायश्चित था। कुछ का तो यह प्रायश्चित स्वीकार कर लिया गया किन्तु अधिकांश दूसरे सदा के लिए अन्धकार के गर्त में ढकेल दिये गये और अब 'लाल सितारे' के इस अशुभ प्रकाश के घेरे में चीन भी आ गया हैं। परन्तु इस तरह का वातावरण कभी स्वास्थ्य-प्रद नहीं हो सकता है। वह भय और दुश्चिन्ता को जन्म देता है। ऐसे वातावरण में पलने वाले नवयुवक तथा नवयुवतियां साम्यवाद के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म को नहीं जानते, उनके हृदय में सारे संसार को अपने ही विचारों के रंग में रंग देने के लिए धर्म प्रचारकों का सा जोश होता है। जिनका धर्म परिवर्तन संभव नहीं होता उनका उद्धार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता है, चाहे इस उद्धार के क्रम में उनकी जान ही क्यों न चली जाये। यह कट्टरपन चाहे वांछनीय न समझा जाये फिर भी समझ में आता है। किन्तु इसको बल प्रदान करने में एक और तत्व सहायक है। कभी-कभी साम्यवादी बुद्धिजीवी का अत्यन्त बंधी विचारशैली का अभ्यस्त मस्तिष्क भी डांवाडोल हो जाता है, जब कुछ ऐसे टेढ़े तथ्य सामने आ जाते हैं जो उस ढांचे में बैठते ही नहीं जिसके सम्बन्ध में उसे परम श्रद्धा का भाव रखने का पाठ पढ़ाया गया है। वह यह जानता है कि सच्चे हृदय से भी यदि वह किसी प्रकार की शंका का भाव प्रकट करेगा तो भारी विपत्ति मे पड़ जायेगा। ऐसी स्थिति में एक अपार मानसिक संघर्ष आरम्भ हो जाता है और उसी से कुंठा का जन्म होता है। तब किसी अंश तक मानसिक संतुलन बनाये रखने के लिए उसके सम्मुख एक ही मार्ग रह जाता है कि वह कर्म क्षेत्र में अंधा-धुन्ध कूद पड़े और ऐसे लोगों पर दायें-बायें हमला बोल दें जो उस सिद्धान्त और व्यवहार को अस्वीकृत करते प्रतीत होते हैं जिसे पूरी तरह सत्य मानने से अब स्वयं उसका मस्तिष्क भी इनकार करने लगा है। अपने विचारों से त्राण पाने के लिए उसके पास यही मार्ग रह जाता है। ऐसा विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि भारतीय कम्युनिस्टों ने साम्यवादी सिद्धान्तों के साथ-साथ अपने विदेशी मित्रों से यह कुंठा भी बड़ी उदारता से ग्रहण की है।

भारतीय बुद्धिजीवी तथा न्यूनाधिक भेद के साथ अन्य अनेक सभ्य देशों का भी बुद्धिजीवी वर्ग जिस कुंठा से ग्रस्त है वह कुछ दूसरे प्रकार की है यद्यपि वह भी पलायनवाद के परिचित ढंग के माध्यम से ही अपने को व्यक्त करती है। उदाहरण-स्वरूप उस अनुशासनहीनता का बहुत कुछ अंश जिसके लिए भारतीय विद्यार्थी वर्ग ने पर्याप्त कुख्याति कमायी है, मेरे विचार से उनकी कुंठाग्रस्त मानसिक अवस्था का ही प्रत्यक्ष परिणाम है। अपने आपसे पलायन के अर्धचेतन प्रयास में वह इसी तरह के कार्यों की शरण लेता है और यह कार्य जितने अधिक अराजकतापूर्ण हों उतना ही उनके लिए अच्छे हैं।

मेरे विचार से भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग के इस रोग का पहिला कारण है अनिश्चय और अस्थिरता का वातावरण। आज के जिस युग मे हमने स्वतंत्रता प्राप्त की है उसमें साम्यवादी और लोकतांत्रिक शक्तियां एक-दूसरे के विरुद्ध प्राणांतक संघर्ष के लिए कटिबद्ध हैं और इन दोनों के बीच अनेक लाल-पीली मान्यताओं में विश्वास रखने वाले दूसरे एकाधिक संघर्षशील दल हैं। भारत इन विचारधाराओं और उनके मानने वालों का एक प्रमुख संघर्ष क्षेत्र बनने के लिए नियतिबद्ध है। आज के भारतीय युवक की शिक्षा-दीक्षा और यहां के नेताओं के संस्कार उसे लोकतंत्र के समर्थकों के साथ खड़ा करते हैं, परन्तु साम्यवाद की पुकार का आकर्षण भी कम नहीं है। साम्यवादी देशों की सफलता की कहानियां रोज ही उसे सुनने को मिलती हैं। आये दिन हमारे यहां से सद्भावना मंडल भेजे जाते हैं। इनमें साधारणत: या तो मतवाद से परे रहने वाले व्यक्ति या ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनके जीवन का एकमात्र यही उद्देश्य है कि वे अपने देश में दोष निकालें और पड़ोसी साम्यवादी देशों की प्रशंसा करें। फिर इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है कि नयी पीढ़ी साम्यवाद की ओर अधिकाधिक आकृष्ट होती जाती है, परन्तु साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही वह लोकतंत्र के प्रति अपनी कमजोरी को पूरी तरह दूर भी नहीं कर सकती।

हमारी आर्थिक अवस्था भी उतनी ही निराशाजनक प्रतीत होती है। देश में धन चाहे जितना हो किन्तु क्रय-शक्ति का बेहद ह्रास हो गया है। बहुत बड़ी संख्या के सम्मुख बेकारी की समस्या है और कांग्रेसी कार्यकारिणी तथा नियोजन आयोग जैसी संस्थाओं द्वारा पास किये गये निर्जीव प्रस्ताव उन लोगों को आशा का कोई संदेश देने में असमर्थ हैं, जो असहाय धीरे-धीरे भुखमरी के मुख में खिसकते जा रहे हैं। सामाजिक संगठन की स्थिति भी उतनी ही शोचनीय है। पुराने बंधन ढीले होते जा रहे है। उदाहरण के लिए सयुक्त परिवार का विघटन होता जा रहा है। पश्चिमी प्रभाव से नये-नये विचार उत्पन्न हो रहे हैं और उनमें से अनेक बिना सोचे-समझे ग्रहण भी कर लिये जाते हैं। नये सामाजिक कानून बड़ी तेजी के साथ गढ़े जा रहे हैं, इसलिए नहीं कि उनकी कोई बड़ी मांग है वरन् इसलिए कि हमारे कानून के रजिस्टर में उनकी अनुपस्थिति हमें पश्चिमी देशों की दृष्टि में हीन कर देगी। किन्तु इसके मूल में चाहे जो भी बात हो इसका प्रभाव जीवन के अविच्छिन्न प्रवाह को उद्वेलित किये बिना नहीं रह सकता। विवाह योग्य शारीरिक अवस्था एवं आर्थिक दृष्टि से विवाह का भार संवहन करने योग्य अवस्था के बीच बढ़ती हुई दूरी, उन्माद, विषण्णता और ऐसे ही अनेक स्नायु रोगों का कारण बनती है।

परस्पर विरोधी धाराओं के थपेड़े खाते-खाते भारतीय बुद्धिजीवी के मस्तिष्क में यदि स्थायी अनिश्चय और निराशा का भाव घर कर जाये तो क्या यह आश्चर्य की बात होगी? अपने आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास को बनाए रखना उसके लिए कठिन हो गया है और इससे उसके भीतर भय का संचार होता है। जैसा पहले कहा गया है, अपने को विक्षिप्तावस्था से बचाने का एक ही मार्ग उसके पास रह जाता है कि वह वास्तविकता की ओर से मुख मोड़ ले, सोचना बन्द कर दे और हर समय किसी न किसी प्रकार के कार्य में लगा रहे। समाज ने उसके प्रति न्याय नहीं किया है। यदि यह अनुभव करने वाला व्यक्ति ऐसे कार्यों से संतोष का अनुभव करता है जिनमें उसे अपने प्रति किये गये अन्याय के प्रतिकार का भास होता है तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता है। कोई भी जान-बूझ कर अपने ही देश को हानि पहुंचाना नहीं चाहता है परन्तु बुद्धिजीवियों की एक बड़ी संख्या ज़िस प्रकार सरकारी योजनाओं पर वाद-विवाद करते हैं उसे सुनकर ऐसा प्रतीत होता है कि इन योजनाओं की असफलताओं में उन्हें एक द्वेषजन्य सुख मिलता है चाहे उससे राष्ट्र को बहुत बड़ी हानि की आशंका ही क्यों न हो।

यह मानसिक अवस्था स्वास्थ्य की द्योतक नहीं है। अवश्य ही सच्चे हृदय की शंका आधे मन से किये गये विश्वास से अच्छी होती है और समाज में अनास्थावादियों के लिए भी स्थान होता है परन्तु जब सारा का सारा राष्ट्र या उसका प्रबुद्ध अंग (दोनों का तात्पर्य एक ही है) निराशावादी हो जाये तो यह चिंता का विषय हो जाता है। राष्ट्र निर्माण के बड़े से बड़े प्रयत्न इस चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो जायेंगे। 'संशयात्मा विनश्यति' श्रीकृष्ण के इन शब्दों में एक ठोस सत्य निहित है। जिस मनुष्य को निरन्तर शंकाएं घेरे रहती हैं उसका नाश अवश्यंभावी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय बुद्धिजीवियों की नितान्त विश्वास-हीनता की जड़े उनकी कुंठा है। अंग्रेजी के 'फेथ' शब्द के लिए संस्कृत में श्रद्धा शब्द का प्रयोग होता है। 'श्रद्धा' शब्द 'श्रत' धातु से निकला है जिसका अर्थ है सत्य। मनुष्य श्रद्धा उसी के प्रति रख सकता है जिसे वह अटल सत्य मानता है। वह वस्तु जिसमें कोई अपना अडिग विश्वास आरोपित कर सके उसके लिए ढाल उसके जीवन-संबल के समान है अथवा प्रतिकूल नियति के समस्त घात-प्रतिघातों को सहन करने की शक्ति उसी से प्राप्त होती है और उसी से मनुष्य को न केवल भविष्य का सामना करने वरन् उसका इच्छानुकूल निर्माण करने के लिए भी आशा, उत्साह एवं प्रेरणा प्राप्त होती है। यदि किसी प्रकार यह प्रकट हो जाय कि जिस वस्तु पर हमारा विश्वास है वह इस विश्वास के योग्य नहीं है तो एक ऐसे खोखलेपन का अनुभव होने लगेगा जिससे जीवन दुःखमय हो जायेगा।

जिस संकट और परीक्षा के काल से भारत गुज़र रहा है उसमें कोई असाधारणता नहीं है। समान परिस्थितियों में किसी भी देश को संक्रान्तिकाल में इनका सामना करना पड़ सकता है। किन्तु जिस कारण हमारा बोझा भारी मालूम पड़ता है वह तो यह है कि इसको सहन करने योग्य आत्मिक बल का हममें अभाव है। न हममें विश्वास है और न वह वस्तु ही है जिस पर हम अपना विश्वास टिका सकें। सामाजिक और आर्थिक ढाँचे के विघटन के साथ पुराने मूल्य भी स्थान-भ्रष्ट होते जा रहे हैं परन्तु उनका स्थान नये मूल्यों ने अभी तक ग्रहण नहीं किया है। धर्म एक स्वांग भर रह गया है और वे प्राचीन परम्पराएं जिनमें इस राष्ट्र के हज़ारों वर्षों के इतिहास की स्मृतियां हैं, जिनमें उसकी आशा और आकांक्षाएं, उसके आदर्श और अनुभव निहित हैं, संजो रखने वाली हमारी प्राचीन परम्पराओं की ओर से उपेक्षा के साथ मुंह फेर लिया जाने लगा है। आज आध्यात्मिक खोखलापन ही अधिकांशतः बौद्धिक उच्चता का चिन्ह बन गया है।

किन्तु बुद्धिजीवियों की नयी पीढ़ी को इसके लिए दोष नहीं दिया जा सकता है। वे तो स्वयं एक विचित्र षड्यंत्र के शिकार हैं। इसके लिए तो कुछ और ही लोग उत्तरदायी हैं।

उदाहरण के लिए विश्वविद्यालयों को ही लीजिये। विशुद्ध बौद्धिक क्षेत्र में उन्होंने जितना भी बड़ा कार्य किया है मैं उसे कम करके आंकना नहीं चाहता हूं। परन्तु सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्होंने अपने कर्त्तव्य का बिल्कुल पालन नहीं किया है। जहां तक मेरी जानकारी है उन्होंने एक नया सांस्कृतिक आंदोलन चलाने, एक नयी विचारधारा का सृजन करने अथवा एक ऐसी नयी संस्कृति (या धर्म कहिये) को रूप देने का प्रयत्न नहीं के बराबर किया है, जो वर्तमान युग के सभी नवीन एवं मंगलकारी तत्वों को अपने में पचा कर एक ऐसा ढांचा प्रस्तुत करती जिसके भीतर अपनी आध्यात्मिक भूमि पर दृढ़ता के साथ जमी हुई राष्ट्र की आत्मा विकास और आत्माभिव्यक्ति का पूरा अवसर प्राप्त करती। हमारे विश्वविद्यालय समाज के प्रति अपने इस कर्तव्य से अवगत प्रतीत नहीं होते हैं। उनमें से कुछ ने भारतीय संस्कृति और समाज-शास्त्र की शिक्षा की व्यवस्था की भी है, लेकिन कुल मिलाकर उससे उतना ही लाभ है जितना कि सुमेरियन या पूर्व-मान्टे-ज्यूमा पेरू सभ्यता की पढ़ाई से हो सकता है। इस शिक्षा में अतीत को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वर्तमान से इस प्रकार जोड़ने का कोई प्रयत्न नहीं है, जिससे वह भविष्य के लिए सीढ़ी का काम कर सके। कला और विज्ञान के विभिन्न पाठ्य-विषय न्यूनाधिक कुशलता के साथ पढ़ा दिये जाते हैं। कुछ शोधकार्य के उपक्रम का भी प्रयास रहता है परन्तु ज्ञान को एक सुसम्बद्ध रूप देने की कोई चेष्टा नहीं दिखायी देती है, सम्पूर्ण व्यक्ति की आवश्यकताओं का ध्यान नहीं रखा जाता है और न ऐसे साधन ढूंढ़ निकालने का सचेष्ट प्रयत्न किया जाता है जिनसे मनुष्य के पूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो सके। अत: यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हमारे विश्वविद्यालयों का वातावरण अनास्था एवं अश्रद्धा के भाव से पूर्ण है।

एक और दिशा से भी हमें इस कठिन समय में निराशा मिली है। अपनी महान क्रान्ति के बाद भी रूस किसी भीषण आध्यात्मिक अव्यवस्था में नहीं फंसा। इसका एक कारण यह था कि रिक्त स्थान को भरने के लिए मार्क्सवादी दर्शन उपलब्ध था और दूसरा यह था कि उसे सौभाग्य से लेनिन जैसा कर्णधार प्राप्त था जिसकी सहायता के लिए एक गोर्की भी था। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में मार्क्सवाद का प्रचार तो हुआ परन्तु वहां की संस्कृति की जड़ें जमी रहीं। मध्यवर्गीय होने पर भी पुरानी कला और साहित्य को इसका पूरा अवसर दिया गया कि वे नये साहित्य और कला के निर्माण में पूरा योग दे सकें। इसलिए आज इन क्षेत्रों में रूस योरुप का नेतृत्व कर रहा है। जिनके हाथों में शासन की बागडोर थी उनका देश की जनता से गहरा सांस्कृतिक लगाव था। अत: वे इसका नेतृत्व करने के लिए पूरी तरह उपयुक्त थे।

हमारी स्थिति इससे एकदम भिन्न है। वह व्यक्ति जो भारत की जनता को पूरी तरह पहचानता था क्योंकि उसके दिल की धड़कन उनकी धड़कनों से मिली हुई थी, जिसकी आवाज में हमारी पुरातन परम्पराएं और आदर्श बोलते थे, वह आज नहीं रहा। उसे क्रूरतापूर्वक हमसे छीन लिया गया। जो नेता बचे हैं उनका भारतीय मनोदशा से कोई सम्पर्क नहीं है। उनके और जनता के बीच आचार और विचार की गहरी खाई है। वे रीति-रिवाज, गीत और लोक-कथाएं जो जनता के लिए बड़ा आकर्षण रखती हैं उनसे हमारे राष्ट्रीय नेताओं को चिढ़ है। जैसा बच्चों के खिलवाड़ को सहन किया जाता है इस तरह अपने मूढ़ देश भाइयों की कमजोरियों को सहन करना एक बात है और उनकी आत्मा में पैठ कर उनके हृदय की धड़कन को समझना दूसरी बात है। यह सत्य है कि सभी भारतीय संस्कृति की बात करते हैं और दावा करते हैं कि उनके अतिरिक्त इस शब्द का अर्थ भी कोई नहीं जानता। उस्तादों को हम प्रश्रय देते हैं और सुदूर देशों तक भारतीय संस्कृति का संदेश पहुंचाने के लिए अपने गायक और नर्तक भेजते हैं। परन्तु इन चीजों के लिए हमारे मन में यदि कुछ मूल्य है भी तो वह केवल बौद्धिक है। जिस प्रकार युग-युग से हमारी गायन और नृत्य-कला का विकास होता आया है उस प्रकार के विकास के लिए कोई गम्भीर प्रयत्न नहीं किया जा रहा है, क्योंकि वास्तव में हमारे नेताओं के मन में उनके लिए कोई आकर्षण नहीं है। यही बात साहित्य के संबंध में भी लागू होती है। जो लोग विदेश जाते हैं वे अपने साथ प्राचीन-परम्पराओं का शव मात्र ले जाते हैं — जैसे कोई हजारों वर्ष पुरानी कला के स्मारक के रूप में खुदाई से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्राप्त कुछ प्रस्तर-खण्ड तथा मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े ले जायं।
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे बीच से कोई राधाकृष्णनन् संसार का दौरा करता है और वह घूम-घूम कर वेदान्त की जीवन सम्बन्धी मान्यताओं की व्याख्या करता है, हममें से प्रत्येक बात-बात में महात्मा जी और उनके उपदेशों का हवाला देता है। परन्तु यह सब बहुत कुछ विदेशियों के लिए ही है। देश के जीवन पर इसका प्रभाव नहीं के तुल्य है। हमारे संविधान में निस्संदेह बड़ी-बड़ी बातें हैं। यह स्वीकार करना होगा कि उसमें वे सभी गुण हैं, जो उन संविधानों में पाये जाते हैं जिनके आधार पर उसकी रचना की गयी है। परन्तु इसकी एक अपनी विशेषता यह है कि कितनी भी खोज करने पर इसमें वेदान्त अथवा गांधीवाद का, यद्यपि ये दोनों दर्शन परस्पर विरोधी नहीं हैं, या किसी अन्य सैद्धान्तिक आधार कर चिन्ह भी नहीं मिलेगा कि संविधानकारों को इसका तनिक भी अनुमान न था कि जीवन का उद्देश्य और उसकी प्राप्ति के उपाय क्या होने चाहिए। इस बात का कोई संकेत इसमें नहीं मिलता। अतः जहां तक संविधान का सम्बन्ध है उससे ऐसा कोई निर्देश नहीं प्राप्त होता कि जीवन में सफलता-प्राप्ति के लिए किसी प्रकार की शिक्षा व्यवस्था अपेक्षित है। उसमें किसी ऐसे आदर्श की स्थापना नहीं है जिसकी प्राप्ति के लिए कोई प्रयत्न कर सके और जिसकी प्राप्ति के लिए आत्मोत्सर्ग कर सके।

यह सच है कि लोक कल्याणकारी राज्य की कल्पना उसमें है। परन्तु दुर्भाग्यवश यह अत्यधिक साधारण है। आदर्श तो ऐसा होना चाहिए जो मनुष्य को अपने से ऊंचा उठा सके, जो उसके व्यक्तिगत स्वार्थ से परे हो। लोक-कल्याणकारी राज्य की कल्पना में यह बात नहीं है, क्योंकि व्यक्ति स्वयं उस कल्याण का भागी होगा। साधारणतः मनुष्य ऐसी चीजों के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग नहीं करता। भोजन, वस्त्र, मकान, सड़क, अस्पताल और स्कूल सभी अच्छी चीजें हैं परन्तु यह दैनिक जीवन की छोटी-छोटी आवश्यकताओं के ही कुछ ऐसे विस्तृत रूप हैं जिनमें उस पवित्रता का आरोप नहीं हो सकता, जो किसी भी आदर्श में होती है।

हमारे नेता ऐसा समझते प्रतीत नहीं होते हैं। यह सत्य है कि लोक-कल्याणकारी राज्य की सफल स्थापना परस्पर सहयोग से ही हो सकती है। भारतीय दर्शन ने हमें और सृष्टि के शेष प्राणियों को एक विराट का ही अंग बताया है और कहा है कि "परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवास्प्यथ"—एक दूसरे की सेवा से ही तुम परम कल्याण को प्राप्त कर सकते हो। परन्तु यह पद "वेलफेयर स्टेट" हमें पश्चिम से प्राप्त हुआ है, जहां के निवासियों को पीढ़ियों से जीवविज्ञान पर गलत ढंग से आधारित उस दर्शन का पाठ पढ़ाया गया है जो अस्तित्व के लिए संघर्ष की बात करता है, उस संघर्ष की जिसमें सबल अर्थात् अविचारी एवं अहम्वादी की ही विजय होती है। जीवन की वास्तविकताओं पर यह दर्शन इतना सच्चा उतरता प्रतीत होता है कि परस्पर सहयोग के लिए कितनी भी अपील की जाये वह लोगों के दिमाग से एकदम नहीं निकल सकता। इस तरह के संघर्ष में उत्सर्ग के लिए भला क्या स्थान हो सकता है? अधिक से अधिक यही हो सकता है कि व्यक्ति अपने स्वार्थ के साथ दूसरों के स्वार्थ के प्रति भी जागरूक हो जाय।

हमारे वर्तमान नेताओं की सफलता की द्योतक एक और चीज जो सामने रखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है वह है धर्म-निरपेक्ष राज्य की कल्पना। मैं तो केवल इतना कहूंगा कि इस पद का मूल भाव उतना ही प्राचीन है जितना हमारा इतिहास। अशोक, गुप्त राजाओं और अकबर के साम्राज्य सभी दृष्टियों से धर्म-निरपेक्ष थे। शासक का अपना एक धर्म होता था जिसको शासन प्रोत्साहन देता था परन्तु उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति एक मात्र योग्यता के आधार पर ही होती थी। ब्रिटेन में एक राज धर्म है अतः वह सही अर्थ में धर्म-निरपेक्ष राज्य नहीं है, यह कहना एक कोरा अटकल होगा। परन्तु हमारे देश में तो साम्प्रदायिकता के हउवे ने धर्म-निरपेक्षता को धर्म-विरोधिता का समानार्थक बना दिया है। किसी मामले में हिन्दू धर्म की ओर तनिक-सा संकेत भी संशय की दृष्टि से देखा जाता है। हम भारतीय संस्कृति और उसके संयुक्त रूप की बात करते हैं। ठीक है, परन्तु यह भी नहीं भुलाया जा सकता कि इसकी मुख्य धारा जिसमें अनेक सहायक स्रोत मिलते गये हैं सरस्वती के तट पर प्रथम वैदिक ऋषि के सामगान से ही फूट कर मानवोचित सभ्यता के प्रसार को निकल पड़ी थी।

मानवोचित सभ्यता के प्रसार की बात मैं इसलिए कहता हूं कि सहनशीलता की महान् शिक्षा ऋषि के इन्हीं शब्दों से ही मिली "एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति"— अर्थात् परम तत्व एक ही है, बुध जन उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। प्रतियोगिता के स्थान पर सहकारिता को जीवन का सिद्धांत बनाने की शिक्षा देने के लिए क्या इससे अधिक उत्तम तरीका हो सकता है कि हम बतायें कि मानव मात्र एक ही तेज पुंज विराट के अविभाज्य अंग हैं। उपनिषदों में कहा गया है, "कुर्वन्तेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समा"—मनुष्य को अपना समस्त जीवन कर्म में रत होकर ही व्यतीत करना चाहिए, और आगे स्पष्ट किया गया है कि "त्यक्तेन भुंजीथा"—त्याग द्वारा भोग आनन्द प्राप्त करो। मानव आचरण के इनसे अधिक सुन्दर नियम और क्या हो सकते हैं। निराशा मग्न व्यक्ति में क्या एक नये उत्साह का संचार न हो उठेगा यदि उसे स्मरण करायें कि वह भाग्य का दास नहीं है वरन् स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। वह अमृतस्य पुत्राः में से एक है और उसमें और ईश्वर में कोई तात्विक अन्तर नहीं है।

यहां हिन्दू धर्म का उपदेश करने की मेरी इच्छा नहीं है परन्तु यह भी कहे बिना नहीं रहा जाता कि भारतीय विचार-जगत के श्रेष्ठतम तत्वों को जिन साधनों ने प्रेरणा प्रदान करने की उनकी एक ही संज्ञा है और वह है हिन्दू। इन्हीं तत्वों पर,जो हमारे राष्ट्रीय जीवन के ताने-बाने हैं,हम अपनी भावी संस्कृति को आधारित कर सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि नयी चेतना प्रदान कर एक बार पुनः इन्हें एक क्रियाशील शक्ति के रूप में परिणत कर दिया जाय। इस आधार पर यदि कोई अपील की जायेगी तो उसका गहरा प्रभाव पड़ेगा और हमारा जीवन एक जीवंत उद्देश्य से प्रेरित हो उठेगा। इन तत्वों में एक नयी मानवता के सृजन की कल्पना है जिसमें सहनशीलता और सद्भाव होगा, जिसमें व्यक्ति समाज की चिंता करेगा और समाज व्यक्ति की, जिसमें मनुष्य अपने पड़ोसी से अपने ही समान प्रेम करेगा, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का यह अटल विश्वास होगा कि उसका पड़ोसी वास्तव में उससे पृथक नहीं है। यह महान् संदेश किसी एक जाति, धर्म-देश और राजनीतिक दल तक सीमित नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा। "इमांवाचं कल्याणी भावदानि जनेभ्यः"—यह मंगल वाणी जन-जन तक पहुंचा दो।

हम, जो जनता के नेता कहे जाते हैं,उससे उस भाषा में बात करते हैं जो पश्चिम से उधार ली गयी है, क्योंकि दूसरी भाषा हमे आती ही नहीं है। साथ ही यह भय भी बना रहता है, जो निर्मूल होते हुए भी पूरी तरह छाया हुआ है कि गत चार हजार वर्षों के व्यवहार द्वारा शक्ति सम्पन्न अपने यहां की भाषा का प्रयोग करने से हिन्दू साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिलेगा। इसका परिणाम वही हुआ है जो कि ऐसी स्थिति में होना चाहिए था। नयी पीढ़ी के बुद्धिजीवी जो हमारा अनुकरण करते हैं हम से इतना सीख गये हैं कि जो कुछ प्राचीन है उससे वे घृणा करें। उनकी दृष्टि में धर्म निरर्थक बकवास और प्राचीन बौद्धिक जीवन अंधविश्वासों और पुजारियों की शोषण कलाओं का विवरण मात्र है। परन्तु अविश्वास और उपेक्षा ही मस्तिष्क का भोजन नहीं है अपनी विवेक-हीनता के कारण जो स्थान हमने रिक्त कर दिया उसे भरने के लिए कोई नयी सामग्री हमने प्रस्तुत की नहीं। यही हमारे नये बुद्धिजीवियों का रोग है। बाहर से उन्हें कुछ प्रकाश प्राप्त नहीं हो रहा है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि पाश्चात्य जगत स्वयं बौद्धिक उप्लव की अवस्था में है। आत्मा के क्षेत्र में और उसी प्रकार आर्थिक जगत में पुरानी अहस्तक्षेप नीति (लैसी फेयर) का अन्त होता जा रहा है। किसी एक राजनीतिक दल के अनुकूल मार्ग को अपनाने के लिए बलात् सैनिकीकरण जैसा प्रयत्न तो अत्यधिक हानिकर होगा ही परन्तु यह भी अधिकांशतः स्वीकार किया जाने लगा है कि आर्थिक सम्पन्नता के लिए व्यक्ति के उच्चतर अहं-आत्मा की उपेक्षा का भयंकर परिणाम हुआ है। मनुष्य के प्रयत्नों का एक निश्चित लक्ष्य क्या है यह जाने बिना ज्ञान की खोज कभी भयंकर हानि का कारण बन जाती है। यह तो प्रत्यक्ष ही दिखायी दे रहा है कि किस प्रकार बड़े-बड़े शक्तिशाली राष्ट्र जहां बौद्धिक विकास का पूरा अवसर रहा है, एक ऐसे मार्ग पर तेजीसे अग्रसर हो रहे हैं जिसका अन्त यदि मानव-जाति के विनाश में नहीं तो उसकी सभ्यता के विनाश में तो होगा ही। अतः पश्चिम के देश जो स्वयं घोर मानसिक परेशानी के चंगुल में फंसे हुए हैं दूसरों को मानसिक संतुलन की दिशा में सहायता करने की स्थिति में नहीं हैं।

हमें स्वयं अपना घर सम्हालना हैं। इस देश के निवासियों के सांस्कृतिक जीवन को ढालने में हमारे नेताओं को सक्रिय भाग लेना चाहिए। भारतीय बुद्धिजीवी आज जिस निराशा, असहायावस्था और घोर अनास्था के दलदल में फंसे हुए हैं उससे उनका उद्धार करने का यही एकमात्र उपाय है। तभी भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग राष्ट्र के और शेष मानवता के चतुर्दिक विकास में योगदान कर सकेगा।

•

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय बुद्धिजीवी क्या करें?

यह एक विचित्र संसार है जिसमें हम रह रहे हैं। कोई भी मनुष्य विशुद्ध तर्क के आधार पर निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि उसकी धारणाएं जीवन में जो कुछ सत्य है उससे मेल खाती हैं। हमारी अत्यन्त प्रिय और बद्धमूल धारणाएं चतुर्दिक मनोभावों के आवरण से ढंकी हुई हैं और उन्हीं से उनको बल मिलता है। मनोभावों का यह आवेग ज्यों-ज्यों कम होने लगता है त्यों-त्यों हमारी धारणा भी दुर्बल पड़ने लगती है और अंततः सामान्य दैनिक कर्म और स्वभाव जैसी बन कर रह जाती है। विश्व के इतिहास में ऐसे भी समय आये जब कि मनुष्यों ने बलपूर्वक किन्हीं धारणाओं से चिपके रहकर उन्हीं के आधार पर अपने क्रियाकलापों का संचालन किया और अपने इन कार्यों को भावावेग की एक ऐसी शक्ति से अनुप्राणित किया जो निश्चय ही कोरे तर्कों के आधार पर बनाये गये विश्वास में सर्वथा दुर्लभ थी। ये धारणाएं सही थीं या गलत और इनसे जिन कार्यों की प्रेरणा मिली वे लाभप्रद थे या नहीं, यह बिल्कुल ही एक पृथक् प्रश्न है। लेकिन गलत या सही, मनुष्य का विश्वास या उसकी धारणा जीवन को एक सुनिश्चित प्रयोजन प्रदान करती है, उसके सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करती है जिसे वह जीवन का लक्ष्य बना सके, जिसके लिए वह जीवित रहे और यथावसर मरने को भी उद्यत हो जाये। यह व्यक्ति के उन सभी अलग-अलग कार्यों को परस्पर संबद्ध करके एक निखरा हुआ रूप प्रदान करती है, जो ऐसा न होने पर क्षणिक चित्तवृत्तियों की बिखरी हुई अभिव्यक्ति मात्र रह जाते और साथ में सदैव यह आशा भी बनी रहती है कि यदि आरम्भ में कोई धारणा गलत भी है तो कालान्तर में उसका स्थान सही धारणा ग्रहण कर लेगी। मानव स्वभाव अपनी धारणाओं के लिए तर्क का आधार प्राप्त किये बिना संतुष्ट नहीं होता और यदि किसी धारणा के तार्किक आधार अस्थिर भी हैं तो धीरे-धीरे और प्रायः अनजाने ही उसका स्थान प्रायः समान ही किन्तु अपेक्षाकृत अधिक तर्कसम्मतधारणा ग्रहणकर लेती है।इसी पद्धति से विश्व के अनेकानेक धर्मों ने दर्शन के विदेशी तत्वों को आत्मसात् करके उन्हें अपनी आस्था का आधार बना लिया है। मूल विश्वास तो वाह्य रूप में वस्तुतः ज्यों का त्यों बना रहता है, किन्तु उसके आंतरिक तत्व प्रत्येक विशुद्ध तर्क के प्रकाश में निरन्तर समृद्ध होते रहते हैं।

व्यक्ति के जीवन में ऐसे भी कष्टप्रद समय आते हैं जब कि दूसरे प्रकार की धारणाओं से निश्चित रूप से संबद्ध हुए बिना ही मनोभावों का आवरण धारणाओं की एक श्रेणी पर से हट जाता है। यह संदेह का समय होता है। पुरानी धारणाओं का ढांचा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ढह चुका होता है किन्तु उसके रिक्त स्थान की पूर्ति नयी धारणाओं द्वारा तब तक नहीं हो पायी रहती है। मस्तिष्क एक पतवार या लंगड़ से रहित नाव की भांति काम करता है। दूसरे शब्दों में एक रिक्तता या खोखलेपन की भावना, स्नायुविक तनाव और अन्धकार में टटोलने की जैसी स्थिति बनी रहती है। इस प्रकार का सच्चा संदेह कितनी ही धारणाओं से अधिक अच्छा सिद्ध हो सकता है। यह मनः स्थिति जब तक रहती है कष्टप्रद होती है, किन्तु प्रायः यह किसी न किसी प्रकार के विश्वास या धारणा का पूर्वाभास होती है। एक बार मस्तिष्क को विश्वास का सहारा मिला नहीं कि मानसिक संतुलन पुनः ठीक हो जाता है और जीवन पुनः सार्थक तथा सोद्देश्य बन जाता है।

सभी देशों के बुद्धिजीवियों को इस प्रकार के अनुभवों से होकर गुजरना पड़ता है और भारत का बुद्धिजीवी इसका अपवाद नहीं। जीवन के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्तर पर होने वाले वाले संक्रांतिकाल के अनुरूप ही बौद्धिक और आध्यात्मिक स्तर पर भी संक्रमण-काल का होना अनिवार्य है। जीवन में पुराने मूल्यों को या तो नये मूल्यों के लिए स्थान रिक्त करना पड़ता है अथवा उन्हें नयी परिस्थिति के अनुसार अपने स्वरूप में परिवर्तन करना पड़ता है और पुराने तथा नये में इस ढंग से समझौता करना पड़ता है जिससे दोनों में एकरूपता स्थापित हो सके। उन समस्त तत्वों का निस्संकोच भाव से बहिष्कार करना है, जो पुराने और रूढ़िग्रस्त हो गये हैं साथ ही उन तत्वों को भी अपने से अलग ही रखना है जिनमें नवीनता की तड़क-भड़क के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्राचीन और नवीन में इस प्रकार का समन्वय लाने के क्रम में जो मनुष्य को उच्चतर जीवन की दिशा में प्रेरित करता है, जितने भी कष्ट तथा मानसिक यातनाएं उठानी पड़ती हैं उनकी पर्याप्त क्षति-पूर्ति हो जाती है। विश्वास की इस पुनः स्थापना के साथ जीवन अपनी भावनात्मक पूर्णता पुनः प्राप्त कर लेता है।

किन्तु यहां यह खतरा भी बना रहता है कि संदेह और आलोचनात्मक विश्लेषण का काल अन्ततः उस अभीप्सित मानसिक स्थिति में न भी ले जा सके। स्वयं रोग को स्वास्थ्य के लक्षण के रूप में स्वीकार करके मानसिक संतुलन फिर से प्राप्त किया जा सकता है। विश्वास का संचालन करने वाले तत्व की खोज में आकुल मानव मस्तिष्क को शांति तो तभी मिलती है जब वह यह विश्वास करने लग जाय कि वास्तव में विश्वास करने लायक कोई वस्तु है ही नहीं। विज्ञान के नियम तो हैं सही, किन्तु उनके सिद्धांत से उस भावात्मक शक्ति का उद्रेक नहीं होता, जो वास्तविक विश्वास या धारणा की परिचायिका है। यहां यह भलीभांति समझ लेना होगा कि इस प्रकार की मनोदशा अनीश्वरवादियों (नास्तिक) की मनोवृत्ति विशेष से सर्वथा भिन्न है। अनीश्वरवादी तो केवल 'अस्ति' तत्व को प्रकट करने वाले साधनों की निरर्थकता मात्र स्वीकार करता है। वह तो यदि संभव हो सके तो उनका अतिक्रमण करने के लिए इच्छुक रहेगा। दूसरी और अनास्थावादी ने अपना यह मत बना लिया है कि उन वस्तुओं के अतिरिक्त जानने या विश्वास करने लायक अन्य कुछ है ही नहीं जिनको जानने या मानने के लिए विवश होना पड़ता है। वह शिष्टता के आवरण में अपने भावों को छिपा सकता है किन्तु जीवन में जो कुछ पवित्र समझा जाता है उसके प्रति उसका दृष्टिकोण असम्मान का होता है तथा उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
व उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। जो व्यक्ति इतना दुर्बल होता है कि किन्हीं भी भौतिकेतर वस्तुओं पर अपना विश्वास आधारित करता है, प्रारंभिक शिक्षा और स्वभाव के कारण वाह्य रूप से उसका आचरण भले ही अत्यन्त उच्च कोटि का प्रतीत हो, किन्तु उसका दृष्टिकोण अवश्व ही अधार्मिक होगा। वह अपने जीवन सिद्धांत को इस शव्द से वले ही न प्रकट करे किन्तु 'भोगवाद' ही एकमात्र शव्द है जिससे उसके जीवन सिद्धांतो का उचित वर्णन हो सकता है। ऐसा मनुष्य अपने वर्तमान में ही रह सकता है। उसके लिए जीवन का कोई उच्चतर उद्देश्य नहीं होता और वह वर्तमान से ही अधिकाधिक तृप्त होने की चेष्टा करता है, जबकि अन्य लोग भविष्य में इस प्रकार की तृप्ति या संतोष का आरोप करते हैं।

यह प्रवृत्ति आज दिन हमारे देश में अवांछनीय व्यापकता ग्रहण करती दिखायी दे रही है। आध्यात्मिक कहे जाने वाले प्रत्येक तत्व के प्रति अविश्वास तथा धर्म सम्बन्धी सभी वस्तुओं के प्रति असम्मान और उपेक्षा का भाव प्रदर्शित करना जैसे बुद्धिजीवी वर्ग ने अपना पेशा बना लिया है। जीवविज्ञान का विद्यार्थी चीर-फाड़ करने वाली चाकू के नीचे पड़े हुए मृत मंडूक में जिस प्रकार की रुचि दिखाता है उसके अलावा ऐसी चीजों में अन्य किसी प्रकार की दिलचस्पी लेना पुरातनवादिता अथवा साम्प्रदायिकता, जो उससे भी अधिक निकृष्ट है, का परिचायक समझा जाता है। बिरले ही लोग अपने को उपहासास्पद बनाने का साहस कर सकते हैं। इस प्रकार सत्य की खोज में रुकावट पड़ने लगती है, प्रश्न स्पष्ट रूप से नहीं पूछा जाता। अंततः मस्तिष्क अपनी आंतरिक संघर्ष की स्थिति से बचकर एक ऐसी मानसिक स्थिति में पहुंच जाता है जहां अविश्वास का अभाव ही विश्वास बन जाता है। इस प्रकार अविश्वासियों की सेना बढ़ती ही जाती है और जो लोग इस सम्बन्ध में कोई प्रश्न उठाने का साहस करते हैं उन्हें चुप कर दिया जाता है। जो अब भी हृदय से अथवा स्वभाव से किसी प्रकार के विश्वास से चिपके हुए हैं, उनका इतना नैतिक ह्रास हो गया है कि वे अपने विश्वास को प्रकट भी नहीं कर पाते।

मानवता नकारात्मकता के आधार पर अधिक दिनों तक विकसित नहीं रह सकती। सत्य की तथा कुछ ऐसे स्थायी तत्वों, जो दृश्य जगत् के परे हैं, की खोज का प्रयास कुछ समय के लिए भले ही दबा दिया जाय किन्तु आगे चलकर खोज की यह प्रवृत्ति पुनः अधिक वेग से जागरित होगी। वर्तमान से परे जीवन का कोई अर्थ न होने से समाज में अवसरवाद एवं स्वार्थ को खुलकर खेलने का अवसर मिल जायगा। मनुष्य ने आज तक जिस प्रासाद का निर्माण किया है उसे स्वयं ध्वस्त कर डालेगा, सभ्यता मिट्टी में मिल जायगी। कदाचित् ऐसा भी हो और इसकी संभावना भी है कि चक्र का फेरा दूसरी ओर हो जाय और विनाश रोका जा सके। किन्तु विवेक बुद्धि वापस आने से पूर्व इसके लिए भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। सत्य से विमुख होना, विश्वास तथा आस्था के लिए उपयुक्त तत्व की खोज स्थगित कर देना तथा विश्वास से जीवन पर भावुकता का जो गहरा रंग चढ़ जाता है उसका तिरस्कार करना एक महंगा नशा है।

जैसा मैंने पहले कहा है कि मानव जाति नकारात्मकता पर जीवित नहीं रहती है। भौतिक जगत की भांति ही आध्यात्मिक जगत में भी प्रकृति रिक्तता से घृणा करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अत: प्राय: ऐसा होता है कि मनुष्य का मस्तिष्क लगातार किसी अविश्वास से ही संतुष्ट रहने के बजाय अन्य प्रकार से अपना संतुलन स्थापित कर लेता है। किसी न किसी प्रकार का विश्वास पुरातन आस्थाओं की निन्दा द्वारा उत्पन्न अविश्वास के छद्म से मस्तिष्क में अनजाने प्रवेश कर जाता है। संशय की लहरों पर डूबते-उतराते हुए बुद्धिजीवी के नये और पुरातन के बीच उचित समन्वय स्थापित कर सकने के पूर्व ही उसके मस्तिष्क में साम्यवादी विचार धारा धीरे-धीरे घर कर लेती है और उसके मन के खाली आसन पर वह एक परम तेजवान देवता की प्रतिमा स्थापित कर देती है। यह सच है कि इस प्रसंग में एक व्यक्ति का जीवन बहुत कम महत्व रखता है। उसका उतना ही कम महत्व है जितना कि मानव शरीर में एक ग्रंथि का परन्तु समाज का एक सदस्य होने के नाते वह व्यक्ति में यह परिवर्तन बड़ा महत्वपूर्ण और गंभीर रूप धारण कर लेता है। अपनी आयु पूरी करके व्यक्ति संसार से विदा हो जाता है परन्तु समाज तो अमर है। उसके द्वारा वह भविष्य में भी प्रविष्ट हो जाता है और उसकी आत्मशोध की प्रवृत्ति पर अंकुश लग जाता है। सिजलाव मिलोज नामक पोल लेखक ने अपनी पुस्तक "द कैप्टिल माइंड" में इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है कि किस प्रकार लौह आवरण वाले देशों में वहां की सरकार को सहज ही प्राप्त प्रच्छन्न साधनों की सहायता से साम्यवाद एक के बाद दूसरे बुद्धिजीवी पर अदृश्य रूप से आक्रमण करता है। साम्यवाद पर मत प्रकाशन का यहां अवसर नहीं है। वह मैं अन्य अनेक अवसरों पर कर चुका हूं। परन्तु जो इसके मोह में नहीं फंसे हैं उनके लिए यह विचारणीय है कि किस प्रकार आज का बौद्धिक वातावरण इस वाद के प्रसार में सहायक सिद्ध हो रहा है।

बुद्धिजीवियों में एक ऐसा वर्ग है और ऐसा वर्ग सभी देशों में पाया जाता है, जिसमें अपनी मान्यताओं को प्रकट करने का साहस नहीं होता है। इस वर्ग के सदस्य को मन ही मन भास होता है कि ऐसी कुछ चीजें हैं जिन पर वह विश्वास कर सकता है। भटकते-भटकते उनमें से कुछ तक सम्भवत: वह पहुंच भी चुकी है परन्तु उनके प्रति अपनी आस्था वह स्वीकार नहीं करता। इसके विपरीत कुछ कारणवश, जो समझ में तो आते हैं परन्तु सराहनीय नहीं कहे जा सकते, वह किसी अन्य सिद्धांत के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करता है। एक प्रसंग में यह सिद्धांत साम्यवाद का हो सकता है और अन्य में मात्र अनास्थावाद का भी हो सकता है, यदि नकरात्मक दृष्टिकोण रखने वाली विचारधारा को सिद्धांत का नाम दिया जा सके। ये बुद्धिजीवी अपने मन की शांति के लिए और उन लोगों के कृपा-पात्र बनने के लिए जो समर्थ हैं ऐसी मिथ्या और काल्पनिक बातों को अपना लेते हैं जिनकी वास्तविकता छिपी हुई नहीं है।

जिस सीमा तक कोई बुद्धिजीवी अपने मस्तिष्क को इस प्रकार कार्य करने देता है उसी सीमा तक वह अपनी मान्यताओं के प्रति विश्वासघात करता है। उसे वास्तविकता से पलायन का सुगम मार्ग नहीं ग्रहण करना चाहिए। सत्य कटु होता है परन्तु अपने को भुलावे में डालने से या वास्तविकता से मुंह छिपाने से उसकी कटुता कम नहीं हो जायगी। लोगों की भीड़ में अपने को खो देने से गर्व और संतोष का अनुभव तो होता है परन्तु इसका अन्तिम परिणाम स्वयं के लिए और समाज के लिए घोर अकल्याणकारी होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिजीवी का समाज के प्रति एक निश्चित कर्त्तव्य है। सत्य की खोज के मार्ग से उसे पीछे नहीं हटना चाहिए और जो सत्य है उसे प्रकट करने में हिचकना भी नहीं चाहिए चाहे वह उस समय फैशन के कितना भी प्रतिकूल दिखायी दे।

हम भारतीयों ने लोकतंत्र को अपनी राजनीति का आधार बनाया है। यहां यह स्पष्ट समझ लेने की आवश्यकता है कि लोकतंत्र उसी समाज में चल सकता है, जो यह समझता है कि व्यक्ति अपने कार्यों के लिए पूर्ण उत्तरदायी है और उसे कुछ ऐसे अधिकार प्राप्त हैं जो जन्मसिद्ध हैं, और छीने नहीं जा सकते। इस धारणा का आधार वह मान्यता है जिसमें यह स्वीकार किया जाता है कि व्यक्ति साधन मात्र नहीं है वरन् स्वयं साध्य है तथा उसके जीवन का एक अपना उद्देश्य और महत्त्व होता है। अवश्य ही वह उद्देश्य समाज में रह कर ही पूरा हो सकता है। समाज के प्रति कर्त्तव्य की बात यहीं से उठती है और उसका औचित्य भी इसी से सिद्ध होता है। जीवन का यह चरम प्रयोजन और उद्देश्य क्या हो, इस प्रश्न का उत्तर धर्म और दर्शन ही दे सकते हैं। इस प्रश्न के उत्तर की खोज से अधिक महान् और आवश्यक शोधकार्य दूसरा नहीं हैं, क्योंकि इसी पर मनुष्य और उसके समाज का सम्पूर्ण आचरण आधरित होगा।

हम बुद्धिजीवी कहे जाने वाले वर्ग के लोगों को चाहिए कि अपने वर्ग के अनुरूप ऊपर उठें। आज भारतीय बुद्धिजीवी के सम्मुख एक अपूर्व अवसर उपस्थित है। वह एक नये राष्ट्र के जीवन का निर्माण कर सकता है और उसे देश में तथा देश के बाहर शांति और स्वतंत्रता के मार्ग पर ले जा सकता है। वह अपने देश भाइयों का आस्थाहीन बौद्धिक मरुभूमि से उद्धार कर उनके मन में आस्था और भावुकता की वह उर्वरता भर सकता है, जो कर्म को आनन्दप्रद और सुन्दर बना देती है और जो देश के साधारण नागरिक को भी एक जन-नायक मे रूप में परिवर्तित कर देती है। हमारे बुद्धिजीवी को अपने गगनलोक से नीचे उतरना चाहिए और जनता के बीच उस मंगल—उल्लास का संदेश देना चाहिए, जो मनुष्य को मनुष्योचित प्रतिष्ठा प्रदान करेगा और प्रत्येक मनुष्य को उसकी क्षमता के अनुसार उस आध्यात्म जगत का दर्शन करायेगा जहां सभी भेदभाव मिट जाते हैं। 'एनकाउंटर' मासिक के नवम्बर के अंक में आर्थर कोइस्लर ने अपने लेख 'ए गाइड टू पोलिटिकल न्यूरोसिस' में कहा है कि अनुकूलतम परिस्थितियों में भी बीसवीं सदी के मानव का आचरण विशुद्ध तर्क से निर्देशित नहीं होता है। वह न्यूनाधिक कुंठाग्रस्त होता है। आज विश्व एक सामूहिक मानसिक असंतुलन के युग से गुजर रहा है। भारत की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियां स्कूलों और कालिजों की हमारी नयी पीढ़ी को इस असामान्य परिस्थिति का शिकार बनाने में सहायता पहुंचाती हैं। उन्हें जीवन कटु लगने लगता है और इस कटुता से उत्पन्न असह्य मानसिक तनाव से छुटकारा पाने के लिए वे किसी भी उपस्थित अवसर को हाथ से जाने नहीं देते और अधिक से अधिक उच्छृंखलतापूर्ण कार्य कर बैठते हैं। समाज-विरोधी विचारों और कार्यों में उनके मन को एक सुख का अनुभव होता है क्योंकि कुछ भाग्यवानों को छोड़कर शेष के प्रति समाज जिस हृदयहीनता का व्यवहार करता प्रतीत होता है उसका प्रतिकार ऐसे ही कार्यों में उन्हें दिखायी देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी मानसिक स्थिति से किसी का भी भला नहीं हो सकता है। प्रौढ़ बुद्धिजीवियों का यह कर्तव्य है, विशेष रूप से उनका जो अध्यापक, लेखक अथवा कलाकार है कि वे हमारे नवयुवकों को इस भंवर में पड़ने से बचायें। जीवन को आध्यात्मिकता प्रदान करने के अपने प्रयत्नों के कारण हो सकता है उन्हें गलत समझा जाय और उपहास का पात्र बनाया जाय, परन्तु उन्हें अपने को कर्तव्य-पालन से विमुख नहीं होने देना चाहिए। आज के बुद्धिजीवी का यह कर्तव्य है कि वह हमारी नयी पीढ़ी में एक महान कर्त्तव्य की भावना भर दें जो वर्तमान काल के उपयुक्त हो और हमारी पुरातन परम्पराओं के अनुरूप हो, जो उन्हें, जिन पर कि राष्ट्र की आशाएं टिकी हुई हैं, अपने सीमित अहं से ऊपर उठा सके और आशा एवं उत्साह के साथ वर्तमान का सामना करने में उनका सहायक हो सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धिक का कर्त्तव्य

पश्चिमी भाषाओं के 'इण्टेलेक्चुअल' या 'इण्टेलिजेन्सिया' का यथार्थ पर्याय एकाएक समझ में नहीं आता, इसलिए काम चलाने के लिए मैं 'बौद्धिक' शब्द का व्यवहार कर रहा हूं। 'बुद्धिजीवी' बहुत संकीर्ण हो जाता है। जो लोग अध्येतव्य शास्त्रों के साथ-साथ समाज के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्नों पर शास्त्र-दृष्ट्या मनन करते हैं और कला तथा साहित्य के द्वारा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं वे सभी न्यूनाधिक बौद्धिक हैं।

बौद्धिक को इन विषयों में रस आता है, इसलिए वह उनका अनुशीलन करता है परन्तु अपने अनुभव की व्यञ्जना करते समय वह अकेला नहीं होता। उसके सामने श्रोता और साक्षी की अस्फुट प्रतिमा रहती है। स्वान्तः सुखाय के साथ-साथ परतुष्टि की भावना भी रहती है, भले ही वह 'पर कालो ह्यनन्तो विपुला च' मान कर कहीं अतिदूर देश और काल में कल्पित किया गया हो। भगवान हो, जनता हो, व्यक्त करने की प्रेरणा किसी दूसरे को अपनी अनुभूति का सहानुभोक्ता बनाने की प्रेरणा से पृथक नहीं की जा सकती। यह भी स्पष्ट है कि वह 'दूसरा' कोई ऐसा होता है जिसके लिए चित्त में आदर होता है, जिसकी सहमति का अपने लिए मूल्य होता है।

परन्तु क्या प्रत्येक अनुभूति ऐसी होती है कि उसको दूसरों के पास तक पहुंचाया जाय? कई कवि और कलाकार अपनी प्रत्येक भावना को हथेली पर लिये फिरते हैं, यह चाहते हैं कि सारी दुनिया उनकी आह कराह के साथ स्वर मिला कर रोती रहे। इच्छाभिघात के इन शिकारों की समझ में यह बात नहीं आती कि अपना दुखड़ा रोकर सम्वेदना की भीख मांगना गौरव की बात नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना रोना है, कवि के दुःखों के भार ढोने की क्षमता किसमें है और शौक किसको है? ऐसी कृतियां फूस की आग की भांति क्षण भर चमक कर सदा के लिए लुप्त हो जाती हैं।

इसके कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि काव्य और कला में वेदना की अभिव्यक्ति के लिए स्थान नहीं है। यदि यह बात होती तो करुणरस का नाम रसों की गणना में न आता। परन्तु वेदना की व्यञ्जना वहीं तक वैध है जहां तक कवि अपने युग का, किन्हीं व्यापक परिस्थितियों का प्रतीक है या जगत की प्रेरक किन्हीं प्रबल शक्तियों का मिलन-बिन्दु है। ऐसी अवस्था में उसकी रचना प्रेक्षक कोअपने संकुचित व्यक्तित्व से ऊपर उठाकर विश्वमञ्च पर क्रीड़ा करने वाले देवताओं, शक्तियों का साक्षात्कार कराती है और अनुभूति की परिधि को बढ़ाती हैं। ऐसी भी अवस्थाएं आती हैं जब किन्हीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कारणों से—ऐसे कारण मुख्यतया राजनीतिक रूप में सामने आते हैं— देश के देश वेदनाग्रस्त हो जाते हैं। आज तो सारा सभ्य जगत् वेदना और चिन्ता के गर्त में डूबा हुआ है। इस महासागर के सामने व्यक्तिगत इच्छाभिघातों का कोई मूल्य नहीं है। जिस कृति में इस दिगन्तव्यापी ज्वालामाल को उतारा जा सकता है, वह हृदय में सीधा घर करती है। उससे परिस्थिति का केवल चित्रण नहीं होता। उसके गर्भ में विद्रोह, श्रृंखला तोड़ने की लालसा, उत्साह और आशा का सन्देश छिपा होता है। बन्द कमरे के अँधेरे का विशेष महत्व नहीं होता, परन्तु निशीथ के पर्दे में उषा झलकती है।

बौद्धिक को यह बात सतत याद रखनी होगी। उसको व्यथित जगत् को शिव का मार्ग दिखलाना है। यह दायित्व उसके ऊपर है। इस उद्देश्य को दृष्टि से ओझल करना अनाचार और प्रतिभा का वैसा ही घोर दुरुपयोग है जैसे भूखों के बीच में किसी का जिन्हा के स्वाद के लिए अन्न को नष्ट करना।

परन्तु शिवमार्ग दिखलाने के पहिले शिवमार्ग का ज्ञान होना चाहिए और ज्ञान के पहिले खोज। शिव क्या है और किसका शिव ढूंढ़ा जाय? वस्तुत: 'किसका' का निश्चय होने पर ही 'क्या' का स्वरूप स्थिर किया जा सकता है। बौद्धिक के सामने यह बड़ा जटिल प्रश्न है। आर्थिक और राजनीतिक उलझनों ने जीवन को दूभर बना दिया है। कही चैन नहीं मिलता। समाज के पुराने बन्धन ढीले पड़ रहे हैं, क्योंकि वह आज की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है। धर्मग्रंथ और धर्माचार्य आज की समस्याओं का कोई उत्तर नहीं बताते। इसलिए कहीं टिकने का स्थल चित्त को नहीं मिलता। दूर तक सोचना व्यर्थ प्रतीत होता है, जब कि किसी दिन भी युद्ध छिड़ सकता है और एक बम लाखों मनुष्यों के जीवन को मुट्ठी भर राख में बदल सकता है। परिणामत: 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्' जिन्दगी से जो कुछ सुख, मजा, खींचते बने खींच लो, लक्ष्य स्थानीय हो गया है और जीवन सिमट कर वर्तमान काल, वर्तमान क्षण के बिन्दु पर आ थमा है। भले ही ईश्वर, आत्मा, परलोक, पाप, पुण्य, जैसे शब्दों का व्यवहार किया जाय परन्तु इनका जीवन से गहरा सम्बन्ध नहीं है। इनकी और इनके वाक्यों की सत्ता वाग्विलास की सामग्री मात्र है।

जिस व्यक्ति की आंखों के सामने आ-आकर सुख ओझल हो जाता हो, जिसकी जीवन-नौका बिना लंगर की नाव की भांति परिस्थितियों के थपेड़ों का शिकार हो रही हो, जिसके लिए काल वर्तमान में केन्द्रीभूत हो गया हो, वह आत्मविश्वास खो बैठता है। प्रबल प्राकृतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक नियमों के सामने अपनी सत्ता नगण्य प्रतीत होती है। इन अकाट्य नियमों के बीच से कतराकर निकल जाना ही बुद्धिमत्ता, नीतिमत्ता है। जहां सिवाय जड़ पदार्थों और अचेतन शक्तियों के, जो आर्त की पुकार सुनने में असमर्थ और उसकी ओर से अगत्या उदासीन हैं, कुछ है ही नहीं तो श्रद्धा किस पर की जाय, किसके शरण जाने की बात सोची जाय? ऐसी अवस्था में जीवन निरुद्देश्य हो जाना है, पानी में बुलबुला उठा, थोड़ी दूर बहा, फूट गया—उसका उद्देश्य क्या?।

विज्ञान का अनुभव है कि प्रकृति को शून्य से चिढ़ है। सच यह है कि प्रकृति आध्यात्मिक रिक्तता से भी चिढ़ती है। वह उसे भरना चाहती है। जिस परिस्थिति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन ऊपर से अनुच्छेद में हुआ है उससे आध्यात्मिक शून्य उत्पन्न हो जाता है। जीवन अश्रद्धा, नैराश्य, अनाशा, स्वार्थमूलकता का प्रतीक बन जाता है, सोचना घबराहट पैदा करता है। कुछ करते रहने में ही आराम मिलता है। मनुष्य भी ऐसी अवस्था से वर्गवाद, कम्युनिज़्म लाभ उठाता है। कई ख्यातनामा बौद्धिक इस बात का संकेत दे चुके हैं। अविश्वास का वेष धरकर विश्वास रिक्त स्थान को भरता है। वह इस बात को दृढ़ करता है कि वस्तुतः व्यक्ति का मूल्य कुछ नहीं है, वह अमिट, अटल, नियमों का वशंवद है। इतना कह कर तब उसके सामने यह बात आती है कि व्यक्ति का मूल्य तो कुछ नहीं परन्तु समाज का मूल्य है। वस्तु मिट जायगा। समाज रहेगा। जीवन में कष्ट भले ही हो पर यदि इस कष्ट से आगे चल कर समाज का कल्याण होने वाला हो तो फिर इस कष्ट को हंसते-खेलते झेलना चाहिए। एक बार जब यह बात चित्त में बैठ जाती है, जब चित्त अपने अस्थिर स्व का समाज के स्थिर स्व के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है, तो फिर श्रद्धा और विश्वास के लिए आधार मिल जाता है, नैराश्य की जगह त्याग की भावना ले लेती है, जीवन को उद्देश्य मिल जाता है, काम पलायन का साधन न रह कर लक्ष्यसिद्धि का उपाय बन जाता है और सब विश्वासों को काट कर यह विश्वास चित्त में घर बना लेता है।

आज भारत में हमारे सामने दोनों दृश्य हैं। एक ओर निर्जीव श्रद्धाहीन, शंकाग्रस्त, वर्तमान की परिधि में बंधे बौद्धिक हैं। स्कूल, कालिजों में, विश्वविद्यालयों में, शिक्षित वर्गमात्र में इनका बाहुल्य है। रचनाएं होती हैं पर उनमें गम्भीरता नहीं, आशा नहीं, सत्य की झलक नहीं, श्रद्धा नहीं, सन्देश नहीं। दूसरी ओर वह बौद्धिक भी हैं, जो मुक्त हो गये हैं, जो शंका से उठकर वर्गवाद, मार्क्सवाद के आलोककल्प प्रदेश में आ गये हैं, उनकी रचनाओं में उत्साह है, सन्देश है, घोष है, विश्वास है।

बौद्धिक बच नहीं सकता। उनको अपने हिताहित, अपनी मानस-शांति की प्यास की बात तो सोचनी ही है, उसके ऊपर दूसरों का भी दायित्व है। क्या यही दो गतियां सम्भव हैं या कोई और भी मार्ग है?

•

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फुट विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला और साहित्य के प्रति हमारा कर्तव्य

कला और साहित्य की सेवा करना हमारा कर्तव्य है, यह कथन एक परम्परागत सत्य को दुहराना मात्र है। परन्तु शब्द-कोष से प्राप्त समानार्थक शब्दों को छोड़ कर कोई दूसरी उक्ति मुझे ऐसी नहीं लगती जिसमें इतने संक्षेप में इतनी बात कही जा सके। किसी वस्तु की सेवा के साथ यह तो बिना कहे ही स्पष्ट हो जाता है कि हम सेव्य वस्तु के केवल वाह्य रूप को ही नहीं, वरन् उसके अन्तस्तत्त्व को भी पूर्णतया समझते हैं और हमें उसके विकास की दिशा एवं उसकी सार्थकता का पूर्व ज्ञान है। सेवा के साथ ऐसा सक्रिय प्रयत्न भी जुड़ा हुआ है जिसके द्वारा सेव्य वस्तु का विकास का तथा अपनी सभी संभावनाओं को प्रगट करने का पूरा अवसर मिल सके।

कला क्या है

अब प्रश्न यह है कि जब हम कला की सेवा की बात कहते हैं, जिससे मैं समझता हूं सभी सहमत होंगे, तो हमारा तात्पर्य किस वस्तु की सेवा से होता है। यहां मैंने साहित्य का नाम अलग से नहीं लिया है क्योंकि साहित्य सर्वमान्य रूप से कला का ही एक विभाग है। व्यापक अर्थ में जैसा किएक लेखक ने कहा है ऐसी कोई भी क्रिया जो स्वेच्छाजनित है और साथही संयमित भी है, कला है। ''कला का इतिहास व्यापक रूप में मानव जाति की कल्पना एवं उसकी आविष्करण शक्ति का इतिहास कहा जायगा और उसके अन्तर्गत शिल्प कला, स्थापत्य कला, उद्योग, चिकित्सा, शासन एवं कानून तथा शिक्षा के क्षेत्र के सभी मानव प्रयत्न आ जायेंगे। अपने उद्देश्य के प्रति सजग, संयमित कल्पनाशीलता ही कला है।'' इतने व्यापक अर्थ में कला शब्द का प्रयोग तो पूर्णतः उचित है परन्तु इसकी परिधि इतनी विस्तृत है कि एक छोटे लेख के सीमित स्थान में इसके प्रति पूरा न्याय कर सकना असंभव होगा। अतः, जिन्हें उपयोगी कलाएं कहा जाता है उन्हें छोड़ कर यहां मैं कला के केवल उस सीमित रूप की चर्चा करूंगा जो कि सौन्दर्य शास्त्र का विषय है।

इस क्षेत्र में भी कला की परिभाषा के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। कुछ लोग हैं जो ग्रीक दार्शनिकों से सहमत होकर कहते हैं कि कला अनुकृति है और प्रकृति के सामान्य रूपों की अनुकृति (इमिटेशन) प्रस्तुत करती है। जो कृति प्रकृति को प्रतिबिम्बित नहीं करती, जो प्रकृति के सूक्ष्म ब्योरे की बात न करें तो भी उसके प्रति सच्ची नहीं है, वह कला नहीं कही जा सकती। अन्य लोग कल्पना को प्रधान मान कर इस विषय पर दूसरी ही दृष्टि से विचार करते हैं। उनके मतानुसार कला-जगत के अपने मूल्य हैं और उन्हीं पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधारित मानदण्डों द्वारा कलाकृतियों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इस सिद्धान्त का निष्कर्ष है, 'कला के लिए कला'। इनके अतिरिक्त कुछ और लोग भी हैं जो कला को एक प्रकार की भाषा अथवा अभिव्यंजना मानते हैं। उनके लिए कला की अभिव्यंजना में ही उसका आकर्षण केन्द्रित है। उनके अनुसार कला और साधारण भाषा में केवल इतना अन्तर है कि भाषा का माध्यम अमूर्त है और सीधा अर्थ तक पहुंचा देता है जबकि कला का माध्यम बहुत कुछ मूर्त है और दर्शक अथवा श्रोता को अपनी ओर आकृष्ट करता है।

यहां इन विभिन्न सिद्धान्तों में और गहरे जाने की आवश्यकता नहीं है। जहां तक एक साधारण कला प्रेमी अथवा विद्यार्थी का संबंध है उसके लिए तो इन तीनों मतों का समन्वित रूप ही सत्य को प्रगट करता है, क्योंकि वास्तव में ये तीनों मत परस्पर विरोधी नहीं हैं, वरन् एक दूसरे के पूरक हैं। पहला और तीसरा मत तो निश्चय ही एक दूसरे की पूर्ति करता है। कल्पना का तो भौतिक विज्ञान में भी, जिसकी आत्म-निरपेक्ष दृष्टि को सभी स्वीकार करते हैं एक महत्वपूर्ण स्थान है। कला के क्षेत्र में कल्पना की उपेक्षा का अर्थ होगा कि सुन्दर फोटोग्राफ की सी चित्रित कृति ही कलाकृति मानी जायगी। इसके विपरीत कल्पना को ही प्रमुख स्थान देने का अर्थ होगा कला के सामाजिक रूप को स्वीकार न करना। कल्पना स्वभावतः एकदम व्यक्तिगत और निजी चीज है और केवल इस पर आधारित सौन्दर्यानुभूति सब लोगों के लिए सुबोधगम्य न हो कर कुछ के लिए ही होगी। स्पष्टतः यह अनुभव के विरुद्ध है। कलाकार अपनी कृति स्वान्तः सुखाय ही क्यों न रचता हो किन्तु मूल में इस प्रेरणा के होने के बावजूद भी वह अपनी अनुभूति, अपना आनन्द दूसरों तक पहुंचाने में समर्थ होता है। भले ही वे सब उसके बुद्धि-जगत और उससे उत्पन्न कल्पना में पूरा योग न दे सकें।

सामाजिक पहलू

कला के सामाजिक पहलू को जितना भी महत्व दिया जाय कम है। अवश्य ही मनुष्य की विचार-शक्ति पर प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता है। वह यदि चाहे तो अपनी कल्पना को समस्त मर्यादाओं के उल्लंघन के लिए उन्मुक्त छोड़ दे, परन्तु उसकी ऐसी कल्पना द्वारा उद्भूत दृश्यों के अंकन को कला की कोटि में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यदि कुछ समय के लिए कोई एक बार फिर बच्चों के कल्पना-लोक में चला जाय जहाँ कल्पना ही वास्तविकता का स्थान ले लेती है तो वह क्षम्य हो सकता है परन्तु जिस विधि निषेध, कर्तव्य और अधिकार के जगत में हम साधारणतः रहते हैं उससे अधिक समय तक दूर रहना हमारे लिए संभव नहीं है। और न यही संभव है कि कलाकार को एक कैमरा मान लिया जाय और उसे सम्पूर्ण प्रकृति की अनुकृति उतार कर रख देने की छूट दे दी जाय। उसे तो एक चेतन कैमरे की भांति संग्रह एवं त्याग की दृष्टि से कार्य करना होगा। उसे कुछ अंशों को छोड़ना होगा और कुछ को अपनी ओर से जोड़ना होगा। भारतीय जीवन विषयक मिस मेयो की रचना, जिसे गांधी जी ने "ड्रेन इंस्पेक्टर की रिपोर्ट" कहा है, कलाकृति नहीं है। कलाकार स्रष्टा होता है और सर्जन सदा सोद्देश्य होता है। लक्ष्यहीन, दिशाहीन कृतियां तो किसी मनोवैज्ञानिक के लिए अध्ययन सामग्री ही प्रस्तुत कर सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब प्रश्न यह है कि वह कौन सा उद्देश्य है जो कलाकार को रचना के लिए प्रेरित करता है। 'काव्य प्रकाश' में लेखक अथवा साहित्यिक कलाकार का एक उद्देश्य 'शिवेतरक्षति' अर्थात् जो अशिव है, कल्याणकारी नहीं है उसका नाश, बताया गया है। जो साहित्य के लिए सत्य है वही समस्त कलाओं के लिए भी सत्य है। परन्तु सुन्दर को शिव से पृथक् नहीं किया जा सकता है। तब समस्या यह उठती है कि शिव क्या है? और इस प्रकार सौन्दर्यशास्त्र की समस्या आचारशास्त्र की समस्या बन जाती है।

मेरा अपना मत तो उस सिद्धान्त के पक्ष में है जिनका प्रतिपादन कुछ बड़े गण्यमान्य ग्रीक विचारकों ने किया है।परन्तु उनका 'अनुकृति' शब्द मुझे नहीं रुचता। यह ठीक-ठीक अर्थ नहीं दे पाता और अपर्याप्त भी है। इस अनन्त विविधतापूर्ण विश्व का, जिसके अध्ययन के लिए सैकड़ों शास्त्र हैं परन्तु कोई भी जिसे पूर्ण तरह समावृत नहीं कर पाता, मूल ताना बाना, उसका अंतस् तत्व 'सत्य' है। इसी को उपनिषदों ने ब्रह्म कहा है, इसकी प्रकृति का जहां तक वर्णन संभव है, वह सत् एवं चित् है, पूर्ण है और अपरिवर्तनशील है। योगी तथा द्रष्टा साधना एवं कठोर आत्मानुशासन द्वारा जब विश्व की द्विविधा से ऊपर उठ जाता है तभी वह इस परम सत्य से तादात्म्य, अद्वैत तत्व का ज्ञान अथवा अनुभव प्राप्त करता है। और तभी उसे परम पूर्ण तत्व का ज्ञान या अनुभव हो पाता है। बौद्धिक स्तर पर इसकी झलक विचारक, दार्शनिक और वैज्ञानिक को भी प्राप्त होती है। इसी प्रकार कर्मशील व्यक्ति को भी उन दुर्लभ क्षणों में इसका भास होता है जब वह एक नितान्त विशुद्ध एवं सद् कर्म कर रहा होता है। धधकती अग्नि अथवा दुस्तर जलप्रवाह में जब कोई व्यक्ति दूसरे की रक्षा के लिए कूद पड़ता है, उस क्षण वह अह-त्वम् के भेद को एक छलांग में ही पार कर जाता है। इसी प्रकार कलाकार भी जब प्रकृति के ध्यान में अपने को खो देता है तो उस तत्व की एक झलक प्राप्त कर लेता है। मुस्कराते हुए फूल, हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियां, विक्षुब्ध सागर की लहरें, बछड़े को दूध पिलाती गाय, इनमें से कोई भी दृश्य मनुष्य को उस उदात्त भाव भूमि तक पहुंचा सकता है। दैनिक जीवन की इच्छा-आवश्यकताओं से ऊपर उठ कर तथा पार्थक्य, द्वैत और पक्ष-विपक्ष की भावना उत्पन्न करने वाली वासना के दमन द्वारा उन देवताओं, उन शक्तियों से साक्षात्कार किया जा सकता है जिन्हें प्लेटो ने 'आइडिया' कहा है और भौतिक तत्व ही जिनका मूर्त रूप है। साधारण जन के लिए यह आत्म-दर्शन भी संभव नहीं है। परन्तु कलाकार यदि एक पीढ़ी और चढ़ सका तो उस परम देवता का दर्शन कर लेता है। इसी प्रकार कलाकार प्रकृति के चित्रण से आरम्भ कर के प्रकृति के विधाता तक पहुँच जाता है जिसे परम सत्य कहते हैं।

सत्य का स्वयं अनुभव करने के बाद कलाकार उसे दूसरों के लिए अनुभव साध्य बनाने का प्रयत्न करता है। कला का यही सामाजिक पक्ष है। अपने ढंग से वह वही करता है जो दार्शनिक या वैज्ञानिक करते हैं। जहाँ दार्शनिक या वैज्ञानिक सीधे मनुष्य की बुद्धि से आग्रह करता है वहां वह हृदय को, आत्मा की बोधशक्ति को प्रभावित करता है। यहीं पर कला भाव-प्रकाशन की भाषा के रूप में सामने आती है। कलाकार उन रूपाकृतियों का प्रयोग करता है जिन्हें वह वांछित प्रभाव उत्पन्न कर सकने के उपयुक्त समझता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस अनुभव से गुजरने का उसे सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह चाहे सभी को न हुआ हो परन्तु ऐसा शायद ही कोई मनुष्य होगा जो उसे ग्रहण करने में सर्वथा असमर्थ हो। आत्मा की बोध-शक्ति हम सभी में विद्यमान है यद्यपि वह प्रच्छन्न अवस्था में रहती है। यह काम कलाकार का है कि वह उसे सजग करे। जिस सीमा तक हम विश्व की किसी घटना के पीछे देवताओं, भौतिक आध्यात्मिक शक्तियों के घात-प्रतिघात को लक्ष्य कर सकते हैं उसी सीमा तक हम सौन्दर्य का दर्शन कर सकते हैं। रेखाओं की समस्त अव्यवस्था के बीच से स्वतः एक रूप उभर आता है। जो अद्वैत और परम सत्य तत्व हममें और हमारे द्वारा गतिमान है और जिसका मूर्तरूप हम और हमारा विश्व है, उसकी एक हल्की क्षणिक झलक भी हमें सृष्टि में जो कुछ है उससे जोड़ देती है। इससे मनुष्य का उत्थान होता है, वह ईश्वर की, सत्य की अनुभूति में आत्मविभोर हो जाता है।

और जो सुन्दरम् है वह शिवम् भी है। द्वैत और पार्थक्य की भावना एवं तज्जनित स्वार्थों की लड़ाई संसार के समस्त कलुष के मूल में हैं। जैसा पाल डेवसन ने कहा है अपने पड़ोसी से आत्मवत् प्रेम करने के सनातन नियम का औचित्य इस अधिकता एवं एकता के सिद्धांत से ही सिद्ध हो सकता है क्योंकि वास्तव में मैं ही अपना पड़ोसी हूँ, पड़ोसी से प्रेम तो करना ही होगा तब, क्या शिव है, इसका मापदंड यही है कि जो भी भेद को दूर करे, जो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य समाज से अलग करने वाली समस्त दृश्य-अदृश्य खाइयों को पाट दे एवं जो मानव-मात्र के लिए और उसके चारों ओर की प्रकृति के नाना रूपों के प्रति आत्मीयता उत्पन्न करे वही शिव है। जिस सत्य का दर्शन कलाकार को होता है उसे दूसरों तक पहुंचाने के अपने लक्ष्य में वह उसी सीमा तक सफल कहा जायेगा जहाँ तक वह अपनी कुछ अनुभूतियों को दूसरों के हृदय में जगा सके और उसके फलस्वरूप जहाँ तक वे अपने संकुचित अहं से ऊपर उठ कर आत्मेतर सृष्टि के निकट पहुँचने का प्रयास करें।

हमारा कर्तव्य

यहाँ तक पहुँचने के बाद अब हम यह निश्चित कर सकते हैं कि हमारा कर्तव्य क्या है। शासन अथवा समाज कलाकारों का निर्माण नहीं कर सकता है ठीक वैसे ही जैसे कि वह योगियों और दार्शनिकों का निर्माण करने में असमर्थ है। कला की प्रेरणा तो अपने अन्तः करण से ही प्राप्त करनी होगी। हाँ, समाज के लिए यह संभव है कि वह ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे जिनमें कलाकार का संदेश लोगों तक पहुँचने का अधिकतम अवसर प्राप्त हो सके। पार्थक्य की भावना से उत्पन्न जीवन की कुरूपताओं को जो भी तत्व प्रोत्साहन और प्रश्रय दें उनका उन्मूलन आवश्यक है। शोषण, उत्पीड़न, जातिगत या जन्मगत अधिकार, अज्ञान, रोग और अभाव जैसी मनुष्य रचित बाधाओं के विरुद्ध घोर संघर्ष की आवश्यकता है। सम्पत्ति संबंधी अधिकारों तथा नागरिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों की पूरी व्यवस्था में परिवर्तन करना है। नये मूल्यों का सृजन करना है। मनुष्य की सम्पत्ति को महत्त्व न देकर स्वयं उसको महत्त्व देना है। उसके ज्ञान, तपस्या और लोक-संग्रह को महत्त्व देना है, न कि उसकी संपत्ति, शक्ति और पद को। जीवन और उसकी समस्याओं के प्रति सम्पूर्ण दृष्टिकोण को ही बदलना है। प्रतियोगिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के स्थान पर सहयोग पर बल देना है और एक ही विराट पुरुष के अंग होने के नाते परस्पर अन्योन्याश्रय संबंध की भावना को मन के अंतरतम में पैठाना है। समाज को नये सिरे से संगठित करना तथा एक नया रूप देना है और शिक्षा की एक ऐसी प्रणाली ढूँढ़ निकालनी है जो आज के इस नये मानव के व्यक्तित्व के पूर्णतम विकास में सहायक हो। हमारे नगरों और गांवों को पुनः इस प्रकार नियोजित करना होगा जिससे सभी को प्रकृति का सहज सान्निध्य प्राप्त हो सके। मानव की प्रतिभा को उन बंधनों से मुक्त करना होगा जो शक्तिशालियों के लोभ ने आज उस पर लगा रखे हैं। उसे विनाश अथवा मिथ्या प्रचार के जुए में बलात् जुतने नहीं दिया जायेगा, वरन् स्वतंत्र छोड़ दिया जायेगा जिससे कि वह अपने प्रकृत मार्ग पर चल कर समाज की सेवा कर सकें; एकता के बंधनों को दृढ़ कर सके और पूर्वाग्रह तथा भेदभाव की उस कालिमा को धो सके जिसे पोत कर मनुष्य स्वयं अपने सहज रूप की हँसी उड़ाता है। राज्य को कोई अधिकार नहीं है कि वह कलाकार को किसी वाद-विशेष की सीमाओं में बंध कर अपनी कला की अभिव्यक्ति करने को कहे। अपना मार्ग निश्चित करने के लिए कला-जगत को स्वतंत्र छोड़ देना ही श्रेयस्कर है।

परन्तु यह सब तभी संभव है जबकि समाज के नेता स्वयं दर्शन और कला में सक्रिय रुचि लें। कला के क्षेत्र में उन्नति किये बिना भी सभ्यता और विज्ञान में महती प्रगति की जा सकती है। परन्तु एकता-मूलक दर्शन को आधार न मानने वाला ज्ञान मनुष्य की प्रतियोगिता की भावना को उत्तेजित करेगा और उसकी हीन आकांक्षाओं का दास बन जायेगा। वह उसकी पार्थक्य और विरोध की भावना का पोषण करेगा और इस प्रकार उस सत्य की प्राप्ति में, जो परम तत्व है, बाधक होगा। इस ज्ञान का वर्तमान मूल्यों के अनुसार कोई उपयोग नहीं है। स्थिति यह है कि किसी प्रकार का प्रोत्साहन प्राप्त न होते हुए भी यदि कोई मनुष्य इस ज्ञान की ऊँचाई तक पहुंच भी जाय तो भी उसे अपने ज्ञान का प्रचार नहीं करने दिया जायेगा और यों भी ऐसे स्वप्नदर्शी की बात सुनने वाले विरले ही होंगे। ऐसे जगत में जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए ही जीवित है वहाँ आदर्शों के लिए कोई स्थान नहीं है, यदि है भी तो मनोरंजनार्थ धारण की जाने वाली नाटकीय वेश-भूषा के ही रूप में है। जो शासक, नेता और विचारक के रूप में समाज का मार्ग-निर्देशन करते हैं उन्हें यह समझना चाहिए कि इस स्थिति को यो हीं बने रहने देना मानवता के विनाश को निमंत्रित करना है। उन्हें 'प्रेय' जिसमें भोग का सुख है और जो विभेद उत्पन्न करता है तथा 'श्रेय' जो सद् है, और एकता लाता है, इन दोनों के बीच के अंतर को स्वयं भी समझना चाहिए और दूसरों को भी समझना चाहिए।

एक बड़ी कठिनाई

परन्तु यहां हम भारतीयों के समक्ष कठिनाई यह है कि हमारे नेताओं ने इसे या किसी अन्य जीवन-दर्शन को स्वीकार नहीं किया है। वे प्रगति तो अवश्य चाहते हैं परन्तु प्रगति-पथ के निर्देशन के लिए उन्होंने कोई सार्वभौम सिद्धान्त नहीं अपनाया है। इसीलिए विदेशी राजनीतिक आधिपत्य से मुक्त होने के बावजूद भी प्रत्येक क्षेत्र में हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य देशों से प्रेरणा लेते हैं। आज चारों ओर ऐसे लाखों नर-नारी, जिन्हें प्रकृति ने अपने किन्हीं श्रेष्ठतम गुणों से संपन्न किया है, अनास्था, समाज के विरुद्ध व्यक्ति के संघर्ष और वर्ग के विरुद्ध वर्ग के संघर्ष की भावना तथा एक प्रकार के असहाय क्रोध, झुँझलाहट तथा निराशा से आक्रांत हैं।

ऐसे विक्षुब्ध वातावरण में कला की उन्नति नहीं हो सकती है। आज यूरोप और अमरीका को जो सम्पत्ति और इंजीनियरिंग कौशल प्राप्त है वैसा संसार में कभी भी नहीं देखा गया परन्तु उस युग का सदा के लिए अन्त हो गया जबकि वहां के महान गिरजाघरों के सम्मुख सभी श्रद्धा से सिर झुकाने के लिए विवश हो जाते थे। ईसाई धर्म के प्रति लोगों की जो भी धारणा हो परन्तु वह मनुष्य के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत करता था और उसे सद् प्रयत्न और त्याग के लिए प्रेरित करता था। उसके द्वारा मनुष्य को उस सौन्दर्य तथा उदात्त तत्वों की झलक मिलती थी जो मनुष्य और ईश्वर के बीच के अज्ञानान्धकार को मिटा देते हैं। संत फ्रांसिस, संत कैथरीन, संत जौन का युग रैफेल और माईकेल एंजेला का भी युग था। आज धन तो है परन्तु धन किसी भी प्रेरणा का स्रोत नहीं हो सकता है, इसके विपरीत वह व्यक्तित्व को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। इसी प्रकार आजानु बाहु, नुकीली उंगलियां, आसन मुद्राएं और बंकिम नेत्र, जो विगत कालीन कला के कौशल थे उनकी कोरी नकल से हम उस प्रेरणा को पुनः प्राप्त नहीं कर सकते जिसने हमें तत्कालीन महान स्थापत्य कला, मूर्तियां और गुहा चित्र प्रदान किये। मैं यह नहीं कहता कि भूतकाल के पुनरंकन की क्षमता हम में नहीं है, परन्तु कोई कारण नहीं दिखायी देता कि उसका प्रयत्न किया जाय। मुझे आशंका इस बात की है कि जब तक हमारे जीवन का और सोचने-विचारने का वर्तमान ढंग चलता रहेगा तब तक हम किसी ऐसी उदात्त कला का सर्जन नहीं कर सकते, जो विश्व-संस्कृति को आधुनिक भारत की देन कही जा सके। हम कला की सेवा कर सकें इसके लिए उसका अस्तित्व आवश्यक है और जब तक भारत अपनी खोई हुई आत्मा को पुनः प्राप्त नहीं कर लेता है तब तक कला का अस्तित्व असंभव ही है। सत्य का संदेश, दृश्य जगत के पीछे छिपे हुए परम तत्व का संदेश, उस अद्वैत का संदेश जो सत्यं शिवं सुन्दरम् है हम सुनते आ रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम उसके अनुरूप आचरण करें, व्यक्तिगत रूप से और पूरे समाज के रूप में उसे जीवन में उतारें। इसी में हमारा उत्थान है, यही वह भूमि है जिसमें कला और कला की अनुभूति का बिरवा पनपेगा, और इसी से हमें उस शान्ति और सद्भाव की प्राप्ति होगी जिससे एकता एवं तादात्म्य उत्पन्न होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रभाषा का प्रश्न

राष्ट्रभाषा के प्रश्न के साथ-साथ लिपि का प्रश्न भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। परन्तु जहां तक मुझे मालूम है हिन्दी को राजभाषा के पद पर आसीन देखने के विरोधी भी नागरी-लिपि को स्वीकार करने लगे हैं। वस्तुतः अपने इस निर्णय के कारण वे बधाई के पात्र हैं। बहुत से भारतीय शब्दों की आधारभूत ध्वनियों को व्यक्त करने में पूर्णतया असमर्थ, अवैज्ञानिक तथा ध्वनि की अनुकूलता से परे अरबी लिपि को आश्रय देना राष्ट्रहित के प्रति द्रोह करना होगा। लगे हाथ उदाहरण के लिए मैं अपने ही नाम में आने वाले एक अक्षर 'ण' को लेता हूँ। अरबी लिपि को स्वीकार करने का अर्थ तो भारतीय-संस्कृति के द्योतक अनेक ऐसे शब्दों के रूप विकार को स्वीकार करना होगा जो हमारी संस्कृति के प्रकाश की अनिवार्य किरणें हैं। अरबी लिपि का अरमान तो 'ब्राह्मण' शब्द की एक क्षीण आभा 'बरहमन' मात्र लिखने में ही पूरा हो जाता है। प्रायः संयुक्त व्यंजनों के सभी शब्द इस लिपि में गलत लिखे जायेंगे और फ़लस्वरूप गलत उच्चरित होंगे। अतएव हमें आशा है कि कम से कम इस सर्वनाश से हम मुक्त रहेंगे।

एक दुरूह समस्या

भाषा की समस्या बड़ी दुरूह समस्या है। आजकल उर्दू के पक्षपाती हिन्दुस्तानी की आड़ में खड़े हो गये हैं। जो कोई भी इनके भाषणों और लेखों को पढ़ता होगा वह मानेगा कि हिंदुस्तानी उर्दू का छद्म रूप है। हमें इस बात को देख कर सन्तोष होता है कि इनमें से कुछ सचमुच उर्दू की अभारतीयता को दूर करने के लिए उत्सुक हैं। वह बहुत से विदेशी शब्दों को भारतीय व्याकरण द्वारा—मेरा तात्पर्य व्याकरण के उन नियमों से है जो उर्दू और हिन्दी दोनों में प्रचलित हैं—अनुशासित कर 'मतरूक' की शरारतभरी चाल से मुक्त होना चाहते हैं। इस प्रकार वे साधारण बोलचाल के देशज शब्दों को भी अपनाना चाहते हैं। इस क्षेत्र में उनकी सफलता, उर्दू लेखकों द्वारा उर्दू को उसके हिन्दी उद्गम से जानबूझ कर अलग करने का कारण बनायी गयी खाईं को कम करने में सहायक सिद्ध होगी। किन्तु यह परिष्कृत हिन्दुस्तानी भी उर्दू ही होगी। संस्कृत के तत्सम शब्दों को बिना बिगाड़े वे स्वीकार नहीं कर सकते। उनका अपने शुद्ध रूप में स्वीकृत होने से उर्दू की उस रूह से तादात्म्य नहीं होता जो कि हिन्दुस्तानी की भी रूह है। उदाहरण के लिए देश को ही लीजिए। उनके लिए अपना 'देश' सदा 'देस' ही बना रहता है। हिन्दी को 'वेश' उनका 'भेस' बनता है। वे हमारे 'प्रसाद' को 'परसाद' के ही रूप में ग्रहण करना चाहते हैं। 'साम्राज्य' को उनके यहां 'समरा' या 'सामराज' बनना पड़ता है। कहां तक गिनाया जाय। किन्तु अरबी और फारसी से आये हुए शब्दों को स्पर्श भी नहीं किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता भले ही फ़, ग़, क़ाफ़ पूर्णतया जनता द्वारा न बोले जाते हों। हमारा देहाती जब देश को देश कहता है तो वह फ़कीर को फ़कीर और ग़रीबी को गरीबी भी कहता है। किन्तु हिन्दुस्तानी के हिमायती 'देस' को तो ले लेते हैं पर उसकी 'गरीबी' और 'फकीरी' इनके यहाँ पुनः 'ग़रीबी' और 'फ़कीरी' हो जाती है। इतना ही क्यों कभी-कभी तो उसे 'ग़ुरबत' में भी जाना पड़ता है। अतएव हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तानी के हिमायतियों के उद्देश्यों को हम स्पष्ट और सही तरीके पर समझ लें।

उन्मत्त प्रलाप कभी किसी समस्या का समाधान नहीं कर सकता। भावनाओं की दुहाई देना तर्क नहीं कहा जा सकता और अपने विपक्षी के उद्देश्यों में सन्देह करना वितंडा के स्तर से भी नीचे उतरना होता है। महात्मा जी के आदेशों और मतों का हमारे हृदयों में उच्चतम स्थान है यद्यपि जीवन-काल में उन्हें पागल समझने वालों को अब उनके मतों की दुहाई देते देख कर उन्हें ढोंगी कहने से हम अपने को रोक नहीं सकते। यह सोचने की बात है कि जब हम अपने संविधान, शासन, रक्षा और जीवन की विकट आर्थिक-समस्याओं को अपनी बुद्धि के अनुसार हल कर रहे हैं तो फिर हम इस बुद्धि से ही भाषा की समस्या भी हल करने का यत्न क्यों न करें? अपने विपक्षियों को साम्प्रदायिक कह देना उर्दू के पक्षपातियों का ब्रह्मास्त्र है। हिन्दी-भाषी द्वारा भारतीय-संस्कृति के प्रति किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति इस्लाम के कट्टर विरोध की द्योतिका हो जाती है। वह लोग अनुत्तरदायित्व की किस सीमा तक जा सकते हैं इसका परिचय हमें १९४८ में लखनऊ में हुए हिन्दुस्तानी सम्मेलन में मिला। श्री सुन्दर लाल जी द्वारा टंडन जी और अपने ऊपर उछाले गये कीचड़ की ओर मैं विस्तारपूर्वक संकेत न करूंगा। उनके जैसे मनुष्यों से इससे अधिक कुछ आशा भी नहीं की जा सकती। किन्तु स्वागतकारिणी समिति के अध्यक्ष श्री कृष्ण प्रसाद कौल के भाषण के कुछ वाक्य प्रस्तुत समस्या पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। मैं उनके उर्दू में छपे 'एडरेस' के पृष्ठ १३ की ओर ध्यान आकर्षित कर रहा हूँ। "सायंस के इस दौर में जब जम्हूरियत और इसतराकियत का डंका बज रहा है हमसे उम्मीद की जाती है कि हम पुराने फलसफे की गुत्थियों में उलझ कर और पुरोहितों के कर्मकांड के जाल में फँस कर फिर एक मरतबः बरहमनों की पदवी बढ़ाने का ढिंढोरा पीटें।" इसी प्रकार पृष्ठ १७ पर "आप ही ईमान लगती बात कहिए कि जबान पर इनकलाब जिन्दाबाद के नारे और दिलों में प्राचीन भारतवर्ष के गड़े मुर्दे उखाड़ने के सब अरमान कहां तक जेब देते हैं।" तथा इसी से मिलती-जुलती भाषा में कतिपय अन्य स्थानों पर व्यक्त किये गये विचार प्रत्येक हिन्दी-भाषी को सावधान करने के लिए पर्याप्त हैं।

स्पष्ट है कि इनको यह पता भी नहीं है कि प्राचीन भारत के जिस वेदान्तदर्शन की हँसी उड़ाने की उन्होंने कुचेष्टा की है वह आज के उच्चतम विचारकों द्वारा विश्व की समस्याओं के समाधान का एकमात्र मार्ग माना जाने लगा है। हमें उनके अज्ञान पर दया आती है। हम उन्हें पृष्ठ १२ पर यह कहते हुए देखते हैं कि "बौद्धमत की बला काटने के बाद जब शंकराचार्य ने वेदान्त के ज्ञान और अवतारों के पूजा पाठ की रचना करके फिर एक मरतबः बरहमनों की पदवी बढ़ाने की कोशिश की" इत्यादि। किन्तु प्रत्येक देश को अपने इतिहास पर गर्व होना चाहिए। भारत को तो, जिसने संस्कृति, विज्ञान तथा दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेत्र में अप्रतिम उन्नति की थी, और भी गर्व होना चाहिए। अरब, पठान और मोगल आक्रमणों का अनुसरण करती हुई जो धारा आयी उसके महत्त्व को कम करना हमारा उद्देश्य नहीं है। अब तो वह हमारी सभ्यता का अनुच्छेद्य अंग हो गयी और यदि उनको दूर करना सम्भव भी हो तो कोई पागल ही ऐसा करने का प्रयत्न करेगा। लेकिन श्री कौल और वह लोग जिनका वह प्रतिनिधित्व करते हैं हमसे यह स्वीकार कराना चाहते हैं कि सिन्ध में अब बिन कासिम के शुभागमन के पूर्व का भारतीय इतिहास उस कागज के बराबर भी मूल्यवान नहीं है जिस पर वह लिखा गया है। उनके अनुसार उस स्वर्णयुग के पूर्व के इतिहास को देखना गड़े मुर्दे उखाड़ना होगा। उसके पूर्वकालीन इतिहास में अपने आदर्शों को देखना उनके मतानुसार राष्ट्रद्रोह जैसा जघन्य अपराध है। कठिन होते हुए भी हम ऐसे वक्तव्यों को अज्ञानजनित मान सकते हैं। किन्तु प्रथम अवतरण के बारे में क्या कहा जाय, वह तो हिन्दी के समर्थकों के विरुद्ध जानबूझ कर किया जाने वाला गंदा प्रचार है। यह कहना कि आज के वैज्ञानिक प्रगतिवादी युग में हिन्दी प्रतिक्रियावादी और दकियानूसियत की प्रतीक है और टंडन जी तथा मैं ब्राह्मण न होते हुए भी पुनः ब्राह्मण राज की स्थापना की दुरभिसंधि कर रहे हैं, न केवल मूर्खता है वरन् शरारत है। ऐसी बातों को कहने वाले या तो सही बात जानते नहीं या जान कर भी कहना नहीं चाहते। आज भी हिन्दी में विज्ञानादि सम्बन्धी जितनी पुस्तकें उपलब्ध हैं उतनी उर्दू में नहीं फिर भी हिन्दी के प्रति झूठे प्रचार किये जा रहे हैं और संभवतः इस देश के कुछ उच्च-पदस्थ लोगों का सहयोग असत्य के इन प्रचारकों को प्राप्त है। इस 'एडरेस' के एक दूसरे वाक्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दुस्तानी के समर्थक आज भी अपने को साम्प्रदायिकता से ऊपर नहीं उठा सके हैं। हिन्दी के समर्थकों के इस दावे का कि पर-प्रान्तीय भाषाओं के संस्कृत बाहुल्य होने के कारण हिन्दी उनके द्वारा भी स्वीकृत होगी श्री कौल इस प्रकार खंडन करते हैं। यह भी सोचना था कि 'इन्डियन यूनियन के ४।। करोड़ मुसलमानों को जो संस्कृत से बिलकुल नावाकिफ हैं किस मुसीबत का सामना होगा' इस प्रकार स्थानगत विशेषता के आधार से धार्मिक आधार पर आना उस वातावरण की ओर लाक्षणिक संकेत करता है जो हिन्दुस्तानी के हिमायती अपने प्रचार के लिए आवश्यक समझ कर उत्पन्न करना चाहते हैं। संभवतः वे नहीं जानते कि पूर्वी बंगाल के मुसलमानों ने उर्दू को अपनी भाषा मानने से इन्कार करते हुए बंगाली को ही अपनी मातृभाषा माना है।

हिन्दी व्याकरण का अनुशासन

मेरे जैसे व्यक्ति हिन्दी नाम उसके एकार्थवाची होने के कारण चाहते हैं। प्रत्येक जीवित-भाषा के समान हिन्दी ने बहुत से विदेशी शब्दों को अपना लिया है और अपनाती रहेगी। इनमें कुछ तो अपने शुद्ध विदेशी रूप में ही रह गये हैं। और कुछ हमारी उच्चारण-प्रकृति के अनुसार बदल गये हैं। किन्तु सभी को हमारे व्याकरण के नियमों से अनुशासित होना पड़ा है। अब वे हमारे हो गये हैं। हमने उन्हें अपना लिया है और अब उन्हें निकालने की तनिक भी इच्छा नहीं है। यही नहीं, हमारी इच्छा आवश्यक और उचित नवागन्तुक शब्दों को रोकने की भी नहीं है। यह हो सकता है कि कुछ परिमाण में संस्कृत बहुलता ने कहीं-कहीं कृत्रिमता ला दी हो किन्तु यह भी संस्कृत के सीधे-सादे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्सम शब्दों का हिन्दुस्तानी में बहिष्कार और विदेशी शब्दों के व्यवहार की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही हुआ है। इस प्रतिक्रिया को भारतीय शब्दों के अराष्ट्रीकरण की प्रवृत्ति ने भी बल दिया है। उदाहरण के लिए श्री कौल ने हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि रसखान का नाम रस खां लिखा है। थोड़े दिनों में स्वाभाविक ढंग से भाषा अपने प्रकृत रूप में आ जायेगी।

हमें इस समय जो मुख्य बात देखनी है वह यह है कि नवीन शब्दों का उद्गम क्या हो। विधान-परिषद् को हाट-बाजार के लिए या सामाजिक वार्तालाप के लिए भाषा नहीं चुनना है। उसे तो राजकीय भाषा और तदनुरूप उच्च-शिक्षा की भाषा क्या होने जा रही है, इसका निश्चय करना है। परिभाषा के अनुसार हिन्दुस्तानी वह भाषा है जो साधारणतया उत्तरी-भारत के पढ़े-लिखे लोगों के व्यवहार में आती है। यहां यह बात ध्यान रखने योग्य है कि लखनऊ और पश्चिमी नगरों में बोली जानेवाली तथा न्यायालयों में व्यवहृत होनेवाली भाषा बनारस और प्रयाग तथा अन्य पूर्वी जिलों के पढ़े-लिखे लोगों की भाषा से तथा उस बोली से, जिसका व्यवहार वह लोग करते हैं जिनका न्यायालयों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं, कुछ भिन्न है।

पश्चिमी जिलों की अपेक्षा जो न्यूनाधिक उर्दू जैसी है, पूर्वी जिलों की भाषा संस्कृत-बहुल है। किन्तु इस बात को मान लेने पर भी कि हिन्दी औरउर्दू का एक ही आधार है जिसको हम क्षण भर के लिए हिन्दुस्तानी पुकार लेते हैं, यह निर्विवाद सत्य है कि हिन्दुस्तानी हमारी राष्ट्रभाषा के उद्देश्यों की पूर्ति में सर्वथा असमर्थ है। इसके पास अंग्रेजी के फाइनैंस, रेवेन्यू, इकोनोमिक, इण्टरनैशनल, डेमोक्रेसी, कांस्टि्टयूशन जैसे उपयोगी शब्दों के लिए अपने स्वतंत्र पर्याय नहीं हैं।

यदि हम ऐसे शब्दों को ज्यों का त्यों लेकर इस प्रकार बनी हुई खिचड़ी भाषा को ही हिन्दुस्तानी कहना चाहते हैं तो फिर हमको शब्दों का निर्माण करना होगा। किन्तु किस आधार के समीप जाना श्रेयस्कर है? दो ही मार्ग हैं, या तो हम संस्कृत की ओर जायँ या अरबी फारसी विशेषकर अरबी की ओर। हम दोनों को साथ-साथ नहीं अपना सकते। एक ही वाक्य में एक ही भाव के लिए दो भाषाओं के अलग-अलग दो शब्दों का एक ही स्थान पर प्रयोग मूर्खतापूर्ण ही नहीं असुन्दर भी होगा। किन्तु जो भाषा बनेगी वह इन शब्दों के अनुपात के अनुसार या तो उर्दू या हिन्दी होगी। और यह बात स्पष्ट है कि इस मूल प्रश्न के उत्तर के उपरान्त ही कोष-कार कोष बनायेगा। इस स्पष्ट प्रश्न को नामों का भेदमात्र कह कर छिपाना और परदा डालने का प्रयत्न बौद्धिक बेईमानी है।

संस्कृत का स्थान

भारतीय जीवन में जो स्थान संस्कृत का है वह किसी भी दूसरी भाषा का नहीं। यह परम्परागत हमारी अविच्छिन्न संस्कृति की प्रतीक है। उर्दू के साथ भी उसकी एक परम्परा है किन्तु वह जिस संस्कृति की प्रतीक है उसका भारतीय भूमि से गहरा सम्बन्ध नहीं है। यद्यपि भारतीय संस्कृति कई संस्कृतियों का समुच्चय है किन्तु मुख्य-धारा कौन सी है इस सम्बन्ध में दो रायें नहीं हो सकती हैं। यह वह धारा है जो उस समय से अबाध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गति से बहती चली आ रही है जब किसी ऋषि ने ऋग्वेद के प्रथम मंत्र का उच्चारण किया था। यह वही धारा है जो भारतीय-संस्कृति को व्यक्तित्व प्रदान करती है और विश्व-संस्कृति को भी जो भारतीय-संस्कृति की देन है।

प्रत्येक भाषा में ऐसे शब्द होते हैं जो अपने में उस देश के सदियों के इतिहास को मूर्तिमान बनाये रखते हैं। जो कोई शब्दों के अर्थ को जानता है वह प्रारब्ध और किस्मत के आकाश-पाताल के भेदों को समझेगा। जहां प्रारब्ध भारतीय कर्म-सिद्धांत की ओर संकेत करता है वहीं किस्मत स्वेच्छाचारी, शासक की अकाट्य आज्ञा का द्योतक है। आप चाहें तो परमात्मा को ख़ुदा के लिए व्यवहृत कर सकते हैं किन्तु शब्द एक ही व्यक्तित्व के दो भिन्न पहलुओं के व्यंजक हैं। पहिला अव्यकृत विश्वात्मा का द्योतक है तो दूसरा एकेश्वरवादियों का 'जेहोवा' है जो अपने ईर्ष्यालु होने की स्वयं घोषणा करता है।

हिन्दी का परप्रान्तीय भाषाओं से रूप और अर्थ-साम्य होना आसानी से भुलाया नहीं जा सकता। इसका संस्कृतगर्भ होना इसे बृहत्तर भारत की सिंहली और श्यामी जैसी अन्य भाषाओं के भी निकट ला खड़ा करता है। यद्यपि हिन्दी का संस्कृत से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है परन्तु वह स्वतन्त्र भाषा है। वह संस्कृत के शब्दों को तत्सम रूप में भले ही ले ले परन्तु उन शब्दों को अपने व्याकरण का ही जामा पहनाती है। उसके वाङ्मय में ऐसी कृतियां हैं जो विश्व-साहित्य में उच्चतम कोटि में गिनी जाती हैं। वह भारत की राष्ट्रभाषा मानी जाने के सर्वथा योग्य है।

इस बात पर बड़ा जोर दिया जाता है कि कई हिन्दुओं ने उर्दू में रचना की है और आज भी कुछ हिन्दू उर्दू की शैली के पक्षपाती हैं। मैं इस प्रश्न को साम्प्रदायिक स्तर पर नहीं ले जाना चाहता। यह तो स्पष्ट है कि जिस समय उर्दू राजभाषा थी उन दिनों नगरों में रहने वाले कुछ लोगों को उर्दू लिखने-बोलने में सुविधा होती होगी और हिन्दू हों या मुसलमान, लेखकों को भी उर्दू लिखने से प्रचार और पुरस्कार की अधिक आशा रहती होगी। अभ्यासवशात् ऐसे लोग आज भी उर्दू का राग अलापते जाते हैं और अपने पक्ष में गलत सही हेतु ढूंढ़ते जाते हैं। यह कौन नहीं जानता कि पिछले सौ वर्षों में बहुत से भारतीयों ने अच्छी अंग्रेजी लिखने-बोलने का अभ्यास किया। उनमें से कुछ की रचनाएं तो बड़े आदर से देखी जाती हैं। घरेलू पत्र-व्यवहार में भी अंग्रेजी में काम लिया जाता रहा है। परन्तु क्या हम यह कह सकते हैं कि अंग्रेजी भारतीयों और अंग्रेजों की सम्मिलित कृति है और अब भी हमारी राष्ट्र भाषा रह सकती है? कुछ हिन्दुओं का उर्दू में ग्रंथ लिखना आश्चर्य की बात नहीं है। विस्मय की बात तो यह है कि कबीर, जायसी, रहीम और रसखान ने हिन्दी को अपना साध्यम चुना। जिस भाषा को राजाश्रय प्राप्त न हो उसमें रचना तभी की जायगी जब रचयिता को यह दृढ़ विश्वास हो कि इसमें व्यंजनाशक्ति तथा लोकप्रियता अधिक है।

उर्दू के कुछ समर्थकों का यह डिंडिम घोष है कि वह हिन्दी को राजभाषा न होने देंगे। मैं नहीं कह सकता कि उनको कहां तक किन्हीं गण्यमान्य नेताओं का आशीर्वाद प्राप्त है। यह भी सम्भव है कि वह सफलता की आशा कम होने पर निर्णय स्थगित कराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का यत्न करें। मैं यही आशा कर सकता हूं कि जो लोग हमारा संविधान तैयार करने जा रहे हैं वह भाषा के प्रश्न का भी धैर्यपूर्वक निर्णय करेंगे और हिन्दी को उस जगह आसीन करेंगे जो उसका प्रकृत स्थान है। परन्तु यदि हिन्दी का विरोध करने वालों का कुचक्र सफल हो जाय तब भी हम हताश न होंगे। हिन्दी ने जो उन्नति की है वह अपने बल पर की है। राजसत्ता से उपेक्षित रहते हुए भी वह फूलती-फलती गयी है। यह क्रम बन्द न होगा। जो लोग अज्ञान या द्वेष के वशीभूत होकर भारतीय संस्कृति की जड़ काटना चाहते हैं उनको अन्त में पराजित होकर हटना पड़ेगा और इस बीच के कटु अनुभव से परिष्कृत होकर भारतीय-आत्मा पुनः हिन्दी को अपने विचार और संकल्प की अभिव्यक्ति का उपकरण बनायेगी।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने एक बार कहा था कि भाषा के सम्बन्ध में अल्पसख्यकों को दबाना उचित नहीं है। हम इस बात से सहमत हैं। परन्तु यदि यह बात जबरदस्ती न मान ली जाय कि इस्लाम और उर्दू का अनिवार्य सम्बन्ध है तो हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने में अल्पसंख्यकों को दबाने का प्रश्न ही नहीं उठता। पूर्वी बंगाल की जनता ने सिद्ध कर दिया है कि कट्टर मुसलमान के लिए भी उर्दू को अपनी भाषा मानना आवश्यक नहीं है। हाँ, हिन्दी को अस्वीकार करना बहुसंख्यकों को दबाने के समान होगा। हिन्दी के समर्थक सभी राजनीतिक समुदायों में हैं। यदि नेतागण हिन्दुस्तानी के पक्ष में पार्टी का चाबुक चलवा कर मत-संग्रह करेंगे तो देश का अहित होगा और पार्टियाँ भी दुर्बल हो जायँगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत शिक्षा की उपयोगिता और पठन व्यवस्था

शिक्षा संस्कृत विद्यालयों के छात्रों को दी जाये या हाई स्कूल और कालेज के छात्रों को उसके सामने स्पष्ट लक्ष्य होना चाहिए। यों तो आजकल भी कुछ न कुछ लक्ष्य रहता ही है और कुछ नहीं तो यह उद्देश्य रहता है कि शिक्षा समाप्त होने पर स्नातक चार पैसा कमा सके। आज कल थोड़ा बहुत इस बात को भी ध्यान में रखने का प्रयत्न किया जाता है कि वह समाज का अच्छा नागरिक निकले परन्तु इतना पर्याप्त नहीं है। शिक्षा का अपना कोई स्वतन्त्र लक्ष्य नहीं हो सकता, इसलिए कि वह साधन है, साध्य नहीं। उसका काम यह है कि समाज का जो लक्ष्य हो उसकी सिद्धि में सहायक हो। समाज जैसे नागरिक चाहता है वैसे नागरिकों को तैयार करना शिक्षा का काम है। समाज को कैसे नागरिक चाहिए इसका निर्णय तभी हो सकता है जब वह किसी विशेष दार्शनिक विचारधारा को अंगीकार कर ले। दर्शन ही इस बात का निश्चय कर सकता है कि मनुष्य जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य, हमारे पुराने शब्दों में, सबसे बड़ा पुरुषार्थ क्या है? पुरुषार्थ का निश्चय हो जाने के बाद सामूहिक और वैयक्तिक जीवन के सभी अंगों को उसी साँचे में ढालना होगा और शिक्षा भी तदनुकूल ही होगी। इस समय पृथ्वी पर एक ही देश है जो इस प्रकार अपने जीवन का संचालन कर रहा है या करने का प्रयत्न कर रहा है। वह देश रूस है। मार्क्सवाद अच्छा हो या बुरा, पर रूस ने उसको पूर्णतया अपना लिया है। रूस के शासक यदि किसी नयी नीति का अवलंबन करना चाहते हैं तो वह पहले मार्क्स और ऐंगिल्स के, जो इस शास्त्र के प्रणेता ऋषि थे, ग्रन्थों पर टीका लिखते हैं। लेनिन और स्टालिन दोनों ने ही इस प्रकार की टीकाएँ लिखी हैं। वे अपने देश के समाज संघटन, अर्थनीति, राजनीति, दण्डविधान और शिक्षा सबको ही इसी मत पर अवलंबित करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जीवन के सभी पहलुओं में सामंजस्य आ जाता है।

पश्चिम का प्रभाव

भारत ने अपने जीवन का कोई दार्शनिक आधार नहीं निश्चित किया है। इसका कारण स्पष्ट है जिन लोगों के त्याग और अनबरत परिश्रम से देश स्वतंत्र हुआ है उनमें से अधिकांश के जीवन पर पश्चिमी यूरोप के रहन-सहन की गहरी छाप पड़ी है। इंगलैण्ड और अमेरिका के, जिनको पश्चिमी यूरोप का प्रतीक कह सकते हैं, जीवन का कोई दार्शनिक आधार नहीं है। विभिन्न क्षेत्रों में जो विचारधाराएं उनको थोड़ा-बहुत स्फूर्ति देती रहती है उनको यदि कोई नाम देना ही हो तो उदारतावाद कह सकते हैं। इसका इतना ही अर्थ है कि मनुष्यों के परस्पर व्यवहार में जाति, वर्ण, धर्म आदि के भेद के कारण ऊंच-नीच का भेद न होना चाहिए। लोगों की सहज प्रवृत्तियां वहीं तक रोकनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए जहां तक उनसे समाज को क्षति पहुंचने की आशंका हो और अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार सबको रूपया कमाने तथा अन्य प्रकार से समाज में आगे बढ़ने का अवसर मिलना चाहिए। भारतीय नेता भी न्यूनाधिक ऐसे ही विचार रखते हैं। और इसकी छाया आज की शिक्षा-पद्धति पर भी पड़ रही है और पड़ती जायेगी। परन्तु ये विचार समाज के सामने कोई लक्ष्य नहीं रखते। इनके अनुसार अच्छे नागरिक को सत्कर्म में प्रवृत्त करने का उत्तरदायित्व उसकी संयत स्वार्थ-बुद्धि पर ही है।

भारतीय आदर्श

इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय-विचारकों ने मोक्ष को परम् पुरुषार्थ बतलाया है। मोक्ष संबंधी विषयों का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र वेदान्त है। मैंने अपनी 'चिद्विलास' तथा 'व्यक्ति और राज' नाम की पुस्तकों तथा कुछ लेखों में यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि वेदान्त को सामूहिक जीवन का आधार बनाना श्रेयस्कर है और शिक्षा को वेदान्त की नींव पर अवलंबित करना संभव और उचित है। परन्तु अकेले मेरे लिखने से तो काम नहीं चलता। जो लोग इस भारतीय आदर्श को समाज के लिए कल्याणकारी समझते हों उनका कर्त्तव्य है कि इसको लोकनायकों के सामने रखने का प्रयत्न करें।

वर्णाश्रम धर्म

कांग्रेसजन या दूसरे अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की निंदा करना व्यर्थ और अनुचित है। कांग्रेसजनों ने देश को स्वतंत्र करने का बीड़ा उठाया था। यह काम उन्होंने पूरा किया। यह स्वाभाविक है कि आज वे लोग अपनी बुद्धि के अनुसार देश का संचालन चाहते हैं। जो लोग स्वातंत्र्य-युद्ध के समय तटस्थ या शत्रु के न्यूनाधिक सहायक थे उनको अधिक शिकायत करने की जगह नहीं है। यह कहना भी कठिन है कि यदि उनके हाथ में शासन का सूत्र होता तो वह देश के कामों को किसी गम्भीर आध्यात्मिक-तत्व पर अवलंबित करने का यत्न करते। अब तक एक ही बात सुनी गयी है। वह यह है कि जो वर्णाश्रम-धर्म भारतीय परम्परा का प्राण है उसको न्ये शासन-विधान में कोई स्थान नहीं दिया जा रहा है। इस प्रसंग में वर्ण का अर्थ जन्मना प्राप्त वर्ण ही है परन्तु यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या आजकल 'जन्मना वर्ण' के सिद्धान्त पर शासन चलाना संभव है! अकेले युक्तप्रान्त में लगभग ढाई करोड़ पिछड़ी जातियों के मनुष्य हैं और लगभग एक करोड़ लोग ऐसे हैं जिनको 'हरिजन' कहते हैं। आज किस सरकार को ऐसा साहस हो सकता है कि इन साढ़े तीन करोड़ से ऊपर व्यक्तियों से कहें कि तुम औरों से छोटे हो और हम अपने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सव्यूहन में तुमको कम अधिकार देंगे, हमारा अधिकार शासन, तुम्हारा कर्त्तव्य संतोष है। मैं ये बातें इसलिए लिख रहा हूँ कि किन कारणों में इस देश ने किसी विचारधारा को अब तक नहीं अपनाया है, यह बात अब समझ में आ जाये। यदि सामूहिक और वैयक्तिक जीवन का लक्ष्य स्थिर हो जाय तो शिक्षा संचालक और शिक्षक का काम भी सुकर हो उसको यह मालूम हो जाय कि किस दिशा में जाना है तो पाठ्यक्रम और शिक्षण-शैली सब विशेष प्रकार की बनायी जाय और आरम्भिक से लेकर उच्चतम कक्षाओं को उसी दिशा में ले जाने का साधन बनाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जाय। आज तो ऐसे आदर्श का अभाव है। शिक्षक, शिक्षा-संचालक तथा शिक्षा-सचिव को अकेली अपनी बुद्धि का आश्रय लेना पड़ता है। उसको इस बात का भरोसा नहीं होता कि वह सचमुच वही वस्तु दे रहा है जिसे समाज मांगता है। सच तो यह है कि समाज को इस बात का पता ही नहीं है कि वह क्या चाहता है।

कूप-मण्डूक पण्डित समुदाय

पिछले एकहजार वर्ष की दासता में हम अपनी सारी पुरानी बातें भूल गये। यदि प्राचीन काल के छात्र को उस प्रकार का व्यापक ज्ञान न होता जिसकी ओर शुक्रनीति आदि में संकेत किया गया है तो फिर वह जीविका के लिए या तो पाठशाला में अध्यापक की जगह ढूँढ़ता या पुरोहिती करता। साचिव्य, दौत्य, सेनासंचालन, आदि से उसे दूर ही रहना पड़ता। आज हमारा पण्डित समुदाय न जाने क्यों इतिहास, भूगोल से भड़कता है। कौटिल्य ने अर्थ-शास्त्र में जिन विभिन्न राजों के इतिहास की ओर संकेत किया है उनका ज्ञान आखिर उनको कैसे हुआ श्रुति, स्मृति, पुराणों में तो वह चर्चा मिलती नहीं। सायण का वेद-भाष्य आज बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है परन्तु सायण ने स्वयं किन पुस्तकों को पढ़-कर 'सुबक' के राज्य का संचालन किया था। "संस्कृत पढ़ने वाले विद्यार्थियों को इतिहास, भूगोल, विज्ञान जैसे विषयों को पढ़ाने में इस बात का ध्यान रखा जाय कि प्राचीन ग्रन्थों की ओर से उनके मन में अश्रद्धा न उत्पन्न हो जाय।" यह बात सिद्धान्ततः ठीक है। संस्कृत विद्यार्थी ही क्यों, हम तो चाहते हैं कि सभी भारतीयों के मन में प्राचीन बातों के प्रति श्रद्धा बनी रहे, परन्तु इसका साधन क्या है? यदि आज कोई भी छात्र यह पूछ बैठे कि दूध, दही और गन्ने के रस के समुद्र कहां हैं तो भूगोल का अध्यापक क्या उत्तर देगा? वह यह कह सकता है कि तुम इन बातों के जानने के अधिकारी अभी नहीं हो। इनको योगी ही समझ सकता है। परन्तु छात्र यह तो पूछ ही सकता है कि हमारी पोथियों में इन भौतिक समुद्रादि का क्या वर्णन दिया हुआ है जो चर्मचक्षुओं से देखे जा सकते हैं। गणित और विज्ञान का थोड़ा ज्ञान रखने वाला भी सूर्य की दूरी को नाप सकता है। यदि वह अपने को पागल न समझता हो तो फिर उसको यह मानना पड़ेगा कि पुरानी पोथियों में सूर्य की जो दूरी लिखी है वह गलत है। इन बातों का सामंजस्य कैसे किया जाय? प्राचीन भारत के भूगोल के सम्बन्ध में अब तक जो कुछ जानकारी हुई है वह कनिंघम और उनके बाद कई अंग्रेजी पढ़े हुए भारतीयों की खोज का ही परिणाम है। आर्य लोगों के मूल-निवास के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ लिखा है उस पर कई विद्वानों ने भी कृपा करके साधुवाद कहा है। इसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। परन्तु आज से कुछ काल पहले तक तो इस क्षेत्र में वे ही बातें मान्य थीं जिनकी प्रतिष्ठा पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी गवेषणा के बल पर की थी। भले ही संस्कृत के विद्वान उन बातों को न मानते रहे हों परन्तु उन्होंने उनके खंडन का रत्ती भर भी प्रयास नहीं किया। संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों को इस मिथ्या ज्ञान से बचा लेना मात्र पर्याप्त नहीं था। करोड़ों भारतीय विद्यार्थी उन्हीं बातों को पढ़ रहे थे और आज भी उनके ऊपर उन बातों का संस्कार पड़ा हुआ है। तर्क का खंडन तर्क से होता है। "यह बात असत्य है" कहना पर्याप्त नहीं होता। मेरा या एकाध और व्यक्तियों का एकाध पुस्तक या निबन्ध भी लिख देना काफी नहीं है। जिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतों के पीछे सैकड़ों विद्वानों का पचासों वर्षों का अध्यवसाय है उनको यों ही नहीं टाल दिया जा सकता। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आर्यों का निवास भारत में ही था, ऐसा मानने वाले भी उन्हीं लोगों में से निकले हैं जिन्होंने पहले यह पढ़ा था कि आर्य बाहर से आये थे। यदि संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों की बुद्धि और तर्कशक्ति जबरदस्ती कुंठित न कर दी गयी तो वह सत्य का निर्णय आप ही कर लेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी दर्शन

"कामायनी' ऋग्वेदोक्त मनु और श्रद्धा की कथा है जिसको 'प्रसाद' जी ने हिन्दी जगत् को भेंट किया है। एक कवि की अनुभूति, जो कभी वैदिक भाषा में व्यक्त हुई थी, दूसरे कवि के द्वारा सहस्रों वर्ष बाद हिन्दी में अवतरित की गयी है। भले ही वेद अपौरुषेय हो, ईश्वर का प्रश्वास हो, पर ईश्वर भी तो कवि है। स्वयं श्रुति उसको 'कविम् पुराणम् अनुशासितारम्' कह कर लक्षित करती है।

कलाकार की रचना को कृति कहने का दस्तूर है। कृति अनुपयुक्त शब्द है। एक मिस्त्री जिस कुर्सी या मेज को तैयार करता है उसको भी कृति कह सकते हैं। परन्तु इस प्रकार की कृति में और एक अच्छे गायक की उठायी हुई रागिनी या एक महाकवि की रचना-रूपी कृति में आकाश-पाताल का अन्तर है। कृति फोटो को भी कह सकते हैं और अजन्ता या सारनाथ में मिली हुई बुद्ध की मूर्तियों को भी। परन्तु दोनों को एक कोटि में रखना कला शब्द की निर्मम हत्या के समान होगा। सच्चे कलाकार की रचना के उद्गम का स्रोत इस दृश्यमान जगत् से बहुत दूर होता है। उसकी पीठिका कलाकार के मस्तिष्क से बहुत ऊपर होती है। जिस जगत् में सच्चा कलाकार रहता है वह उस जगत् में ओतप्रोत है और इसके बाहर भी है। ऐसे कलाकार की रचना को कल्पना शब्द से भी व्यक्त करना बहुत ठीक नहीं जंचता। चार सूँड का हाथी कहीं देखा नहीं गया है, परन्तु थोड़ा-सा प्रयत्न करने से चित्त में चार सूँडों वाले हाथी का चित्र बैठाया जा सकता है। पद्य में, गद्य में, पत्थर और धातु में, उसको अवतरित किया जा सकता है इसको कल्पना कहते हैं। अच्छे कलाकार की रचना ऐसी नहीं होती। रामलीला के अवसर पर दस मुंह और बीस हाथ वाला रावण सामने आता है। वाराणसी में खरदूषण युद्ध के दिन, जिसको साधारण बोल-चाल में 'नक्कटैया' कहते हैं, दुर्गा और काली के रूप देखने में आते हैं। यह सब कल्पना है। परन्तु शंकराचार्यकृत, 'सौन्दर्य लहरी' में देवी के स्वरूप का वर्णन पढ़िये। उसमें भी एक स्त्री विग्रह के नखशिख का चित्रण है। पढ़ने के साथ ही प्रतीत होगा कि इस सारे वर्णन में जिन शब्दों का व्यवहार किया गया है उनका ध्वनितार्थ तथा व्यंग्यार्थ कुछ और ही है, जो कल्पना का विषय नहीं है। इसी सन्दर्भ में मैंने अनुभूति शब्द का प्रयोग किया है।

जगत् की सत्ता

इस जगत् का जो प्रतीयमान रूप है वह इसका यथार्थ रूप है, ऐसा कोई समझदार नहीं कह सकता। विज्ञान के अनुसार जगत् की मूल सामग्री, वह ईंटें जिनसे इस भवन का निर्माण हुआ है, विभिन्न तत्वों के परमाणु हैं। परमाणु सब के सब गतिशील हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमाणु के बीच में शून्य, रिक्त स्थान है। यह हमारे ठोस जगत् की दृढ़ता है। कुछ लहरियां हैं जो हमारे अक्षिपटल से टकरा कर रंगों का परिचय कराती हैं और गम्भीर दृष्टि से विचार करके वैज्ञानिक कहता है कि जगत् सम्भावनाओं की लहरियों (waves of probability) के सिवाय और कुछ नहीं है और इससे भी आगे बढ़ कर एक विद्वान् का कहना है कि ऐसा प्रतीत होता है कि यह जगत् किसी महागणितज्ञ के चित्त में उठा हुआ विचार है। कहने का तात्पर्य यह है कि दार्शनिकों की बात को तो जाने दीजिए, विज्ञान भी ऐसा मानता है कि इस जगत् की सत्ता उसके इस बाहरी दृश्यमान् रूप से भिन्न है। इस अवसर पर स्वभावतः ही यह प्रश्न उठता है कि वह सत्ता क्या है? कैसी है? यह निश्चय है कि वह इस जगत् में सर्वत्र व्याप्त है और इसके प्रतीयमान रूप के बाहर भी है जैसा कि श्रुति ने कहा है 'स भूमिम् सर्वतः स्पृत्वा, अत्यतिष्ठत् दशांगुलम्'। वह इस विश्व को हर जगह स्पर्श करता है और इस दशांगुल अर्थात् दस दिशाओं वाले विश्व के बाहर भी है। उस सत्य का यथार्थ वर्णन नहीं हो सकता। वाणी को भी उसी से प्रकाश मिलता है। अंश की यह शक्ति नहीं है कि अंशी का वर्णन कर सके। सोने के हजारों विकार होते हैं। इनमें से किसी एक विकार, जैसे अंगूठी में यह सामर्थ्य नहीं है कि वह सोने के सम्पूर्ण स्वरूप और सारी महत्ता को बता सके। इसीलिए श्रुति उसको नेति—यह नहीं—कहती है।

परन्तु सम्पूर्ण विवरण न सही, कुछ न कुछ तो जाना, समझा और कहा जा ही सकता है। इसकी पहिली सीढ़ी तो वैज्ञानिक विचार है। मनोवैज्ञानिक, भौतिक विज्ञान, गणित, मुख्यतः जगत् के स्वरूप का भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन करते हैं। उनके सामने जो निष्कर्ष आते हैं उनकी समीक्षा और तत्परम् उनका समन्वय दर्शन का विषय है। आदि दार्शनिक कपिल और फिर उनके बाद प्लेटो, शंकराचार्य, कान्ट, हीगेल् शोपेनहार, बेर्ग्सां तथा बौद्ध और जैन विचारकों ने अनेक दृग्विन्दुओं से इस कार्य का सम्पादन किया है। दार्शनिक जिस निष्कर्ष पर पहुंचता है उसमें एक कमी होती है, जिसको ब्रह्म-सूत्र में इस रूप में कहा गया है: तर्काप्रतिष्ठानात्—तर्क अप्रतिष्ठित है कोई भी विषय हो, उसके सम्बन्ध में किसी सिद्धान्त के स्थिर करने के लिए दो साधन, पारिभाषिक शब्दों में दो प्रमाण, काम देते हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। एक तीसरा प्रमाण और है जिसको आगम या शब्द कहते हैं। शब्द का अर्थ है आप्त पुरुष का वाक्य, ऐसे पुरुष का कहना जो विषय को जानता हो, विषय को बतलाना चाहता हो और बतलाने की क्षमता रखता हो। मैं चीन नहीं गया परन्तु यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो जो मेरी दृष्टि में आप्त हो और वह मुझसे कहे कि चीन में अमुक स्थान पर अमुक नाम का एक प्रासाद है तो मैं उसकी बात मान लूंगा। परन्तु आप्त किसको माना जाय, इस सम्बन्ध में घोर मतभेद हो सकता है। कपिल, व्यास, बुद्ध, महावीर, ईसा, मोहम्मद, यह सब किसी न किसी की दृष्टि में आप्त और दूसरों की दृष्टि में अनाप्त हैं। अतः सहारा प्रत्यक्ष और अनुमान का ही रह जाता है। दार्शनिक को मुख्यतः इन्हीं दोनों साधनों से काम लेना पड़ता है। परन्तु इस प्रकार सर्वसम्मत निर्णय होना कठिन होता है। अनुमान का भी अन्तिम आधार प्रत्यक्ष है। अमुक पर्वत पर अग्नि है क्योंकि उस पर से धुआँ उठ रहा है, तर्क का यही रूप है और इस निगमन पर पहुंचने के लिए 'हेतु' दिया जाता है कि रसोई के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूल्हे में धुआँ उठता है और वहाँ आग देख पड़ती है। ऐसे ही हलवाई या भड़भूजे की भट्टी में, अंगीठी में आग जलती हुई देखी गयी है। यदि यह सब बाते मान जायं तो धुआं देख कर पर्वत पर आग का होना सिद्ध हो जायेगा। परन्तु यदि कोई इस बात को न माने कि जहां-जहां धुआं है वहां-वहां आग होती है तो वह यह कह सकेगा कि अमुक स्थान पर धुआं देख पड़ता है पर वहां आग न होगी। यह भी कहना सम्भव है कि उस पहाड़ पर जो वस्तु देख पड़ती है। वह धुआं नहीं बल्कि कुहरा है, या इस प्रकार की कोई और वस्तु है। तो फिर निर्णय कैसे हो? जहां प्रत्यक्ष सर्वसम्मत न हो या दो परस्पर विरोधी हेतु दिये जा सकते हों वहां अनुमान एक-सा नहीं हो सकता। किसी जगह नदी में बाढ़ आयी। हो सकता है कि जिधर से नदी आ रही है वहां वर्षा हुई हो या इंजीनियर ने नहर खोल कर नदी में पानी डाल दिया हो। ऐसी दशा में दो विचारकों का निर्णय एक-सा नहीं हो सकता। इसलिए कहा है कि तर्क अप्रतिष्ठित है। किसी समय बड़े-बड़े विद्वान् सोने को शुद्ध तेज मानते थे। आज विज्ञान का प्रथम कल्पिक छात्र भी ऐसी बात स्वीकार नहीं कर सकता।

तब फिर जगत् के मूलभूत स्वरूप का, पूरा नहीं तो आंशिक ही सही, ज्ञान कैसे प्राप्त हो? एक ही उपाय है——प्रत्यक्ष। पहाड़ पर आग है या नहीं, इसका अन्तिम और असंदिग्ध निश्चय पहाड़ पर जाने से हो सकता है। इसी प्रकार जगत् की सत्ता का अनुभव प्रत्यक्ष के द्वारा ही हो सकता है। वह प्रत्यक्ष इन्द्रियों के द्वारा नहीं हो सकता। इन्द्रियां तो प्रतीयमान जगत् का प्रत्यक्ष करा सकती हैं, इसलिए उस साक्षात्कार को अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं। वह प्रत्यक्ष उस अवस्था में होता है जिसको हमारे आचार्यों ने समाधि कहा है। समाधि की कई भूमिकाएं हैं। जो चित्त आज इस दृश्य जगत् में विचरण कर रहा है वह यकायक समाहित नहीं हो सकता। धीरे-धीरे ही प्रगति होगी। भूमिकाओं का अर्थ यही है। समाधि के दो मुख्य भेद हैं——सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। असम्प्रज्ञात अन्तिम रूप है। सम्प्रज्ञात के भी पतंजलि ने चार भेद इस प्रकार बतलाये हैं——"वितर्क विचारानन्दास्मितानुगमात् सम्प्रज्ञातः" अर्थात् सम्प्रज्ञात की चार सीढ़ियाँ हैं: वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता। वितर्क और विचार के भी दो-दो भेद हैं: सवितर्क और निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार। जो मनुष्य समाधि के मार्ग पर चलता है उसको योगी कहते हैं। योगी को क्रमशः एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर चढ़ते हुए जगत् के स्वरूप का साक्षात्कार स्पष्ट रूप से होता जाता है।

समाधि-भाषा

यदि योगी अपना अनुभव दूसरों के पास तक पहुंचाना चाहे तो उसको बड़ी कठिनाई होती है। दूसरों के पास किसी ज्ञान को पहुंचाने का एक ही साधन है——भाषा। परन्तु भाषा तो मनुष्य के उन अनुभवों को व्यक्त करने के लिए बनी है जो उसको जाग्रत अवस्था में होते हैं। उनकी भी पूरी अभिव्यक्ति शब्दों के द्वारा नहीं हो सकती। किसी माता को अपने बच्चे के प्रति जो स्नेह होता है, पति और पत्नी में जो प्रणय का बन्धन होता है, किसी आर्त को देखकर हृदय में जिस दयाभाव का उद्रेक होता है, अनाचार की प्रतिक्रिया में जो क्रोध प्रज्वलित हो उठता है, उपास्य के स्मरण-मात्र से भक्त जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना से गद्गद् हो उठता है——इन सब को दूसरी तक ले जाने की क्षमता शब्दों में कहां? कुछ टूटे-फूटे शब्द, कुछ संकेत, कुछ हृदय की धड़कन और बस। फिर जो अनुभूति जाग्रत का विषय है ही नहीं, वहां पहुंचने के पहिले ही भाषा के पर जल जाते हैं। ऐसी दशा में योगी जिस साधन से काम लेता है उसको समाधि भाषा कहते हैं। मैंने पहिले 'सौन्दर्य लहरी' की चर्चा किया है। उसमें देवी के स्वरूप का जो वर्णन है वह समाधि-भाषा का बड़ा सुन्दर उदाहरण है। जिन लोगों ने संस्कृत के ऐसे ग्रन्थ नहीं देखे हैं उन्होंने कबीर की रचनाओं को देखा होगा। वह भी समाधिभाषा के निर्देशनों से भरपूर हैं। वैदिक, बौद्ध, सूफ़ी साधकों की रचनाओं में यही बात मिलती है। यही बात पश्चिमी जगत् के सेन्ट थेरीसा, सेन्ट जान आफ दि क्रास, रोलो जैसे महात्माओं के वचनों में भरी पड़ी है। दार्शनिक ग्रन्थों में जहां विभिन्नता है, वहीं संतों की वाणियों में समता और एकता है वैसी ही एकता जैसी कि कुर्सी या टेबुल या कलम के वर्णन में मिलेगी, वर्णन करने वाले चाहे किसी देश के रहने वाले हों, उनका चाहे कोई काल रहा हो। वस्तु एक, अनुभव एक, वर्णन एक, यदि कुछ थोड़ा-बहुत अन्तर देख पड़ता है तो अलग-अलग भाषाओं के मुहाविरों के कारण।

कलाकार की अनुभूति

साधारणतः कलाकार योगी नहीं होता। वह योग की किसी साधना का अवलम्बन नहीं करता। परन्तु पूर्वजन्मों के संस्कार उसके चित्त को एक विशेष दिशा में झुकाते हैं। हमारे प्राचीन शब्दों में उसको योगभ्रष्ट कहते हैं। वह ऐसा व्यक्ति है जो पिछले किसी जन्म में योग मार्ग का अनुसरण करने वाला रहा होगा, परन्तु किन्हीं कारणों से पर्याप्त दूरी तक नहीं जा सका। अस्तु, कोई पूर्वजन्म के सिद्धान्त को माने या न माने, यह तो मानना ही पड़ता है कि सच्चे कलाकार के चित्त की एक विशेष स्थिति होती है। वह दार्शनिक विवेचन करने नहीं बैठता, सम्भवतः विज्ञान की बातों को कम ही जानता है। फिर भी जगत् के प्रतीयमान रूप के पीछे उसको किसी और ही सत्य की झलक देख पड़ती है।

वर्ड्सवर्थ ने साधारण मनुष्य के सम्बन्ध में कहा है:

"A primrose by the river's brim,
A yellow primrose is to him,
And it is nothing more."

सरोवर के बीच में कमल खिला हुआ है, कुछ चौड़े-चौड़े हरे-हरे पत्ते हैं जिनका उपयोग स्यात् यही हो सकता है कि उनसे थाली का काम लिया जाय। बीच में एक फूल है जिसकी स्वेत या गुलाबी रंग पंखुड़ियां है और बस। यह चीज सबको देख पड़ती है। फोटोग्राफर इसका सादा और रंगीन चित्र खींच सकता है, परन्तु कवि को उसके पीछे भी कुछ देख पड़ता है। एक कुतिया अपने बच्चे को दूध पिला रही है। इसको सब देखते हैं, परन्तु किसी-किसी को उसके पीछे वह जगद्धात्री आद्याशक्ति देख पड़ती है जो मातृरूप से सारे विश्व का पालन कर रही है। कवि को और दूसरे सच्चे कलाकार को उसी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दर्शन होते हैं। मोर नाचता है, नर्तकी नाचती है, परन्तु उनके नृत्य को देखते हुए किसी-किसी को उस नटराज की पदध्वनि सुनायी पड़ती है जिसके डमरू से शब्द-शास्त्र की सृष्टि हुई थी, जिसके नृत्य के साथ इस जगत् का संकोच होता है, जिसके श्रमसीकरों से प्रतिक्षण अनन्त ब्रह्मांडों का सर्जन होता रहता है। वही व्यक्ति कलाकार है। मेरा ऐसा मत है कि पारिभाषिक शब्द में योगी न होते हुए भी सच्चा कलाकार वितर्क का अतिक्रमण करके विचार और आनन्द की भूमिकाओं के बीच पैंगें मारता रहता है। साधना के अभाव के कारण वह किसी एक जगह टिक नहीं सकता, परन्तु थोड़ी देर के लिए उसको सत्य की जो आभा देख पड़ती है, जड़-चेतन के आवरण के पीछे अर्द्ध-नारीश्वर की जो झलक मिलती है, वह उसको इस जगत् के ऊपर उठा देती है, उसके जीवन को पवित्र और प्रकाशमय बना देती है।

ऐसे कलाकार के सामने भी वही कठिनाई है जो योगी के सामने होती है, अपनी अनुभूति दूसरों तक कैसे पहुंचायें? बिना पहुँचाये जी भी नहीं मानता। जब नशा चढ़ता है तो मुंह खुल ही जाता है। फारसी में एक सूफी ने कहा है—''मन नमींगोयम् अनल्हक यार मी गोयद बगो''—मैं 'अहम् ब्रह्मास्मि' नहीं कहता मेरा प्रियतम मुझको विवश करता है कि तू ऐसा कह।

यही दशा कलाकार की होती है। उसके ऊपर भी उसके माध्यम का बन्धन है। यदि वह मूर्तिकार है तब तो बन्धन बहुत ही स्थूल है। चित्रकार की तूलिका का मार्ग कुछ अधिक प्रशस्त है, फिर भी माध्यम स्थूल है। सब से ऊंची कला संगीत है। गायक शब्दों से नहीं, स्वरों से काम लेता है, जो बहुत ही उन्मुक्त हैं और सार्वभौम हैं। जहां तक कि गीत गाये जाते हैं वहां तक शुद्ध संगीत नहीं है, गाकर पढ़ी गयी पद्य रचना है। मैं संगीत के विषय को यहीं छोड़ता हूँ। गायन से नीचे परन्तु और सब कलाओं से ऊपर, काव्य है। यों तो 'वाक्यम् रसात्मकं काव्यम्' के अनुसार गद्य और पद्य दोनों ही काव्य हो सकते हैं। शंकराचार्य का वेदान्त भाष्य देखिये। पन्ना पर पन्ना उलटते जाइए। काव्य का आनन्द आता है। फिर भी गद्य की अपेक्षा पद्य में कवि को सुविधा होती है। छन्द, माना पढ़ने के ढंग से स्वास प्रश्वास की क्रिया आदि से भाव के उद्बोध मे सहायता मिलती है। फिर भी शब्द से कुछ काम लेना ही पड़ता है और शब्द सार्वभौम नहीं होते। एक भाषा में किसी शब्द का जो ध्वनितार्थ होता है वह प्रायः दूसरी भाषा में उसके पर्याय में नहीं मिलता। पतिपरायण स्त्रियां सर्वत्र होती हैं, परन्तु सहधर्मिणी का अर्थ किसी दूसरी भाषा में किस प्रकार व्यक्त किया जाय? दुर्गा-सप्तशती के साथ जो अर्गलास्तोत्र पढ़ा जाता है उसमें पत्नी के लिए जहां 'मनोवृत्तानुसारिणी' कहा गया है वही उसे 'दुर्ग संसार सागरस्य तारिणी'-अपने तपोबल से पति को इस कठिन संसार सागर से पार कराने वाली-कहा गया है। यह अर्थ सहधर्मिणी शब्द में हैं परन्तु मेरी जानकारी में किसी दूसरी भाषा के शब्द में नहीं मिलता। अपनी भाषा में भी यह अपने ढंग का निराला ही शब्द है। फिर, एक ही शब्द समय-समय अपने अर्थ को बदलता रहता है। एक तो भाषा यों ही दुर्बल माध्यम है, क्योंकि वह ऐसे अनुभवों को व्यक्त करने के लिए बनी नहीं जो दृश्य जगत् से भिन्न प्रकार के हों। यह सब कठिनाइयां हैं, इसलिए कवि को भी समाधि भाषा के समान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही उपाय से काम लेना पड़ता है। इसको रहस्यमयी भाषा या और जो कोई नाम उचित हो दिया जा सकता है।

कामायनी की व्याख्या

यह सब अप्रासंगिक प्रतीत होता है, परन्तु मेरी सम्मति में बिना इन बातों को ध्यान में रखे वैदिक आख्यानों का ठीक-ठीक विवेचन नहीं हो सकता और न 'कामायनी' की ठीक-ठीक व्याख्या हो सकती है। मैं 'प्रसाद' जी को अनुवादक की दृष्टि से नहीं देखता। यह मेरा दुर्भाग्य है कि आधुनिक हिन्दी कवियों में बहुतों की रचना मैं समझ नहीं पाता और अपनी इस कमी के कारण उनमें से अधिकांश का रसास्वादन नहीं कर पाता। परन्तु कामायनी मेरे लिए भिन्न कोटि का ग्रन्थ है। उसमें मुझको स्वारस्य है और वह इसलिए कि मेरी दृष्टि में काव्य की उस कसौटी पर उतरता है जिसकी मैंने चर्चा किया है।

मनु प्रथम मनुष्य नहीं थे। प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ में एक मनु होते हैं। इस प्रकार एक कल्प में १४ मन्वन्तर और १४ मनु होते हैं। आजकल श्वेत वाराह कल्प चल रहा है। मनुओं की कथा मार्कण्डेय पुराण में विस्तार से मिलती है। इनमें सावर्णि मनु की कथा तो दुर्गा पाठ के रूप में नवरात्र के दिनों में घर-घर पढ़ी जाती है। पता नहीं कितने व्यक्ति इसको समझने का यत्न करते हैं। जल-प्लावन हुआ। जगत् का बहुत-सा अंश नष्ट हो गया। प्राणी नष्ट हो गये। मत्स्य रूपी भगवान् की कृपा से मनु ऐसे स्थान पर पहुंचे जो सुरक्षित था। वहां पर उनका श्रद्धा से साक्षात्कार हुआ और फिर मनु और श्रद्धा ने मन्वन्तर की सुव्यवस्था की नींव डाली। वेद मंत्रों की मीमांसा की अनेक शैलियां हैं, ऐतिह्य शैली के अनुसार यह ऐतिहासिक घटना हो सकती है। जल-प्लावन का होना तो एक प्राकृतिक घटना है। इसके बहुत प्रमाण मिलते हैं। यह भी हो सकता है, जैसा कि नैरुक्त शैली संकेत करती है कि यह किन्हीं प्राकृतिक दृग्विषया का वर्णन हो। बादल, पानी, सूर्य, प्रकाश, अन्धकार का ही रूपक बांधा गया हो। परन्तु तीसरे प्रकार से भी व्याख्या हो सकती है। मनु का अर्थ मंत्र भी होता है और मनु और मंत्र दोनों शब्द जिस धातु से निकले हैं उसका अर्थ होता है मनन करना। मैं श्रृंखलाबद्ध और पुष्ट व्याख्या करने का यत्न नहीं करना चाहता। परन्तु कुछ संकेत मात्र जरूर सामने रखता हूं जल के लिए बहुव्यवहृत वैदिक शब्द है 'अप' और अप शब्द वेद में बहुत से स्थलों पर कर्म के लिए भी आता है। साधक अपना उन्नयन चाहता है। मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावनाओं के द्वारा लोकहित करके चित्त का प्रसाद अर्जित करने का इच्छुक है। परन्तु उसको एक ही मार्ग का ज्ञान है कर्म मार्ग का। व्यक्ति कर्म करता है, कर्म उसको स्वर्ग तक ले जा सकता है, परन्तु 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकम् विशन्ति'। कर्म, कर्म का फल, कर्म के द्वारा एक लोक से दूसरे लोक तक घूमते रहना, यह एक विचित्र फन्दा है। उससे छुटकारा पाने का कोई मार्ग नहीं देख पड़ता। कर्म अर्थात् अप अर्थात् जल का प्लावन हो गया। समुद्र की भांति कर्म ने चारों ओर से घेर लिया है। जीव इसमें डूबता-सा जा रहा है। इच्छाभिघात और निराशा का शिकार हो रहा है। ऐसी अवस्था में उसको मत्स्य की सहायता मिलती है जो उसकी नाव को इस समुद्र के बाहर सुरक्षित स्थान तक पहुंचाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है। यौग के ग्रन्थों में योग की क्रिया को मत्स्य की गति से उपमा दी गयी है।

''उल्टा पवन चढ़ै जस मीना, है सद्गुरु का मारग झीना''— यह उपमा इसलिए दी जाती है कि ऐसा माना जाता है कि मछली जल के प्रवाह के विरुद्ध चल कर ऊंचे गन्तव्य स्थान तक पुहंचती है। इसी प्रकार योग की क्रिया मनुष्य को जगत् के प्रवाह के विरुद्ध ऊपर को ले जाती है। निश्चय ही योग में लगना गुरु और ईश्वर की कृपा का ही फल है। ईश्वर के लिए कहा भी है : 'स एव पूर्वेषामपि गुरु :वह गुरुओं का भी गुरु है। श्रुति ने भी कहा है कि मोक्ष मार्ग पर वही चल सकता है 'यमेवैषा वृणुते'——जिसका वह परमात्मा स्वयं वरण करता हो, जिसको वह आप अपनाता हो। साधक को यही परमात्मा-शक्ति कर्म समुद्र से ऊपर उठा कर ले गयी। योग दर्शन में पंतजलि ने कहा है कि योग में सिद्धि होती है तो सबसे पहले श्रद्धा उत्पन्न होती है, तब वीर्य जागता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि साधक की श्रद्धा से भेंट हो और तब श्रद्धा के प्रसाद से उसको जो काम करना है उसके करने की शक्ति प्राप्त हो, वह जगत् के संनियमन में समर्थ हो। एक और बात है। योग की क्रिया के द्वारा साधक ऊपर तो पहुंच गया, परन्तु स्खलित होने का भी बहुत बड़ा डर रहता है। आचार्यों ने कहा है कि योग में सफलता से अभिमान का उदय हो सकता है। पंतजलि ने उपदेश दिया है कि योगी को स्मय न करना चाहिए, इस बात पर मुस्कराना नहीं चाहिए कि देखो मैं कहां तक ऊपर उठ गया। इसलिए योग के अंगों में प्राणायाम के पीछे प्रत्याहार की चर्चा है। प्राणायाम के द्वारा जब कुछ सिद्धि होती है तो विषयों के भोग की बहुत बड़ी शक्ति आ जाती है और इच्छा मात्र से बहुत से भोग उपलब्ध हो जाते हैं। उस समय यदि चित्त उधर की ओर झुका तो सारी साधना नष्ट हो जायेगी। इसलिए प्रत्याहार की आवश्यकता होती है। प्रत्याहार में सफलता प्राप्त करने के लिए भी श्रद्धा की आवश्यकता होती है। श्रद्धा शब्द की उत्पत्ति 'श्रत्' से हुई है और 'श्रत् इति सत्य नाम सुपठितम्'। श्रत् का अर्थ है सत्य। गुरु और शास्त्र का वाक्य पूर्णतः सत्य है, ऐसी निष्ठा का नाम है श्रद्धा। इसके बल पर प्रत्याहार बर्ता जा सकता है। इसलिए जो मननशील साधक कर्मजाल से योग की साधना द्वारा ऊपर पहुंचता है वह एक ओर तो श्रद्धा की सहायता से प्रत्याहार करके अपने को योग की ऊंची भूमिकाओं की ओर ले जाता है, दूसरी ओर श्रद्धा की सहायता से उसको कार्य-सम्पादन के लिए वीर्य प्राप्त होता है। बिना मनु और श्रद्धा के मेल के लीला वहीं की वहीं समाप्त हो जाती, साधक जल-प्लावन से निकलकर मोहप्लावन में डूब जाता।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के १५१वें सूक्त का नाम श्रद्धा सूक्त है। इसकी ऋषिका अर्थात् मंत्र द्रष्टी ऋषि का नाम श्रद्धा है। वह काम गोत्र मे उत्पन्न होने से कामायनी भी कहलाती थीं। काम शब्द का वैदिक वाङ्मय में विशेष अर्थ है। नासदीय सूक्त में कहा है 'कामस्तदग्रे अभवत्', उससे सबसे पहले काम उत्पन्न हुआ। उसी प्रकार जगत् के सर्ग का वर्णन करते हुए श्रुति में कहा गया है 'सोऽकामयत्'। कामना यह थी 'एकोऽहम् बहुस्याम' मैं एक हूँ अनेक हो जाऊं। महाप्रलय के समय जगत् सिमट कर परमात्मा में विलीन हो गया था। काल पाकर जीवों का कर्म फलोन्मुख हुआ था। इससे परमात्मा में जो स्फुरण हुआ उसका नाम काम है। इस संकल्पयुक्त परमात्मा को हिरण्यगर्भ कहते हैं। इसमें समूचा भावी जगत् विचार रूप से विद्यमान रहता है। पीछे वह विचार विस्तार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्राप्त होता है। परमात्मा के इस काम, इस संकल्प से जहां जगत् का विकास हुआ वहीं श्रद्धा उत्पन्न हुई। समाधि की अवस्था में मनु को परमात्मा का तादात्म्य प्राप्त हुआ। उनके अन्तः करण में श्रद्धा के द्वारा जगत् का वह चित्र, वह योजना उतरी जो आदि में विचार रूप से परमात्मा में उदय हुई थी। उसी चित्र के अनुसार उन्होंने अपने मन्वन्तर का कार्य संचालित किया।

इसी दृष्टि से मैं मूल वैदिक आख्यान को देखता हूं। 'कामायनी' के अवतरण देने की यहां आवश्यकता नहीं। मुझको ऐसा प्रतीत होता है कि 'प्रसाद' जी के सामने कुछ ऐसी ही व्याख्या थी और उस व्याख्या का समुदय पोथियों के पढ़ने से नहीं प्रत्युत उनकी निजी अनुभूति से हुआ था। इस अनुभूति को, इस व्याख्या को, उन्होंने 'कामायनी' के द्वारा व्यक्त करने का प्रयत्न किया है और मेरी ऐसी धारणा है कि जहां तक कि किसी कवि को ऐसे प्रयत्न में सफलता हो सकती है, उनको सफलता मिली है। मुझको ऐसा लगता है कि आधुनिक हिन्दी के बहुत से ग्रन्थ चाहे विलीन हो जायं, परन्तु 'कामायनी' हमारे वाङ्मय में सदैव ऊँचे स्थान पर रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है

प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन का यह अधिवेशन विशेष परिस्थिति में हो रहा है। जो बात आज से बारह महीने पहिले बहुत लोगों के लिए स्वप्न का भी विषय नहीं थी वह आज ध्रुव सत्य है। भारतवर्ष स्वतंत्र है। दुर्भाग्यवशात् देश के दो टुकड़े हो गये हैं, फिर भी जिस भाग में हम रहते हैं वह स्वाधीन है और हमको अब भी यह आशा है कि एक न एक दिन विभाजन का अन्त होगा। सामूहिक रूप से न सही पर वैयक्तिक रूप से हिन्दी साहित्य के कई प्रमुख सेवकों का स्वाधीनता के युद्ध में अग्रगण्य स्थान रहा है। हमारे मनोनीत सभापति पं० बालकृष्ण जी इस कथन के ज्वलन्त उदाहरण हैं। ऐसा होना स्वाभाविक था। साहित्यिक के चेत:प्रदेश में चतुर्दश भुवन समा जाते हैं परन्तु वह स्वयं भूलोकनिवासी होता है। वह भले ही किसी आदर्श जगत् की कल्पना करे परन्तु इस जगत् का रेखांकन इस वास्तविक जगत् के अट्टहास और क्रन्दन, भूख और तृप्ति, अभ्युदय और शोषण की भूमिका में ही हो सकता है। पराधीनता में लेखनी का भी गला घुटता है, हँसी की आड़ से रुलाई झाँकती है, आशा पलायन का आश्रय बन जाती है। अत: साहित्यसेवी स्वभावत: स्वाधीनता चाहता है। सम्मेलन राजनीतिक संस्था नहीं है परन्तु मैं समझता हूँ कि यह बात तो नि:शंक कही जा सकती है कि हम सब स्वाधीनता का स्वागत करते हैं और इस कष्ट-प्राप्त स्वाधीनता की रक्षा के लिए अपनी ओर से सतत यत्नशील रहेंगे।

भारतीय संस्कृति का गोचर रूप

जिस वाराणसी में हम आज मिल रहे हैं उसका भारतीय संस्कृति के इतिहास में स्थान है। ऐसा कह सकते हैं कि वाराणसी का इतिहास वेदोत्तरकालीन भारतीय संस्कृति का इतिहास है। वेदोत्तरकालीन कहना भी अक्षरश: यथार्थ नहीं है। ऋग्वेद काल की संस्कृति का उद्गम और विकास तो सिन्धु और सरस्वती के अन्तर्वेद में हुआ परन्तु यजुर्वेद के ब्राह्मण यह स्पष्ट बतलाते हैं कि विद्या, राज-शक्ति और संस्कृति का केन्द्र पूर्व दिशा की ओर खिसक आया था और काशी उस समय तक सांस्कृतिक आकाश का उज्ज्वल नक्षत्र बन चुकी थी।

वाराणसी में हुए सप्तम प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन में स्वागताध्यक्ष के पद से दिया गया भाषण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत भाषा इस संस्कृति का गोचर रूप है। वह संस्कृति अमर है। मनुष्य मात्र के लिए स्फूर्तिदायिनी, कल्याणकारिणी और शान्तिप्रदा है। इसी प्रकार संस्कृत भाषा भी अमर है। जो लोग उसको मृत भाषा कहते हैं वह भूल करते हैं। परन्तु यह ठीक है कि कुछ अंशों में संस्कृत का स्थान हिन्दी ने लिया है। यों तो सभी भारतीय भाषाएँ संस्कृत की दायाद हैं परन्तु मुख्य दायित्व हिन्दी पर ही है। वह करोड़ों मनुष्यों की मातृभाषा है और कोई माने या न माने समूचे देश के लिए राष्ट्रभाषा है। अतः राष्ट्र की संस्कृति की वही मुख्य वाङ्मय प्रतीक है।

इस संस्कृति को कई अवान्तर धाराओं ने पुष्ट किया है। साहित्य के क्षेत्र को ही लें तो हम जायसी, कबीर, रहिमन, रसखान को कदापि नहीं छोड़ सकते। यह किसी एक धर्म, एक सम्प्रदाय मात्र से सम्बद्ध नहीं है, फिर भी यह मानना ही होगा कि इसका मूल स्रोत इसका चिर नूतन आधार, तो वही है जहां से हमारे ऋषि पूर्वजों को सामगान की प्रेरणा मिली है। हमारे ऊपर बहुत बड़ा दायित्व है। जिस पीठ पर से वशिष्ठ, विश्वामित्र, भृगु, अंगिरा, व्यास, बालमीकि ने 'इमां वाचं कल्याणीं भावदानि जनेभ्यः' का उपदेश दिया था, जिस मंच पर से कालिदास, भवभूति, माघ, वाण, तुलसी, सूर, कबीर, मीरा, की वाणी ने समाज को ऊपर उठाया था उसी पर आज हिन्दी का साहित्यकार बैठा है। वह भले ही भविष्यत् के गगन में लम्बी उड़ान ले, भले ही दूर देशों के विद्वानों के उपदेशों से अपनी बुद्धि को परिष्कृत करे परन्तु उसको यह समझ लेना चाहिए कि वह महती परम्परा का दायाद है। उस परम्परा का उच्छेद करके वह टूटे हुए तारे की भांति क्ष्ण भर चमक कर सदा के लिए विलीन हो जायेगा। कम से कम इतनी बात तो नहीं ही भूलनी चाहिए— हमारे आचार्यों ने ऐसा माना है कि काव्य का उद्देश्य शिवेतरक्षति अर्थात् शिव का विस्तार है और शिव वहीं है, जहां सत्य है, अभेद है, द्वितीया द्वे भयं भवति। आज स्वाधीनता के उषःकाल में हमें यह बात दृढ़ता से हृदयंगम कर लेनी है। व्यथित जगत् के लिए हमारा यही सन्देश होना चाहिए।

उर्दू और हिन्दुस्तानी

मुझे हिन्दी के भविष्य के विषय में कोई चिन्ता नहीं है। राजाश्रय न होते हुए भी हिन्दी पनपी है, आगे भी अपने गुणों के बल पर उन्नति करेगी। मैं जानता हूं कि कुछ लोगों को 'हिन्दुस्तानी' ने वात-व्याधि की भांति ग्रस लिया है। उनमें महात्मा जी जैसी दूरदर्शिता नहीं है, सम्वेदना नहीं है, तितिक्षा नहीं हैं। तपस्या नहीं है, सत्यनिष्ठा नहीं है, किसी भी अंश में महत्ता नहीं है। वह महात्मा जी के बतलाये पथ पर अन्य वातों में दूर तक चलने में असमर्थ हैं। परन्तु हिन्दुस्तानी शब्द को उन्होंने पकड़ लिया है। ऐसे मनुष्य दया के पात्र हैं। भारत के जिस भू-खंड में हम रहते हैं वह किसी के साथ अन्याय नहीं करना चाहता। यहां के अधिकतर निवासी हिन्दू हैं परन्तु वह मुसलमानों की संस्कृति पर आघात नहीं करना चाहते। मुसलमान का धर्म सुरक्षित है, उससे कोई नहीं कहता कि वह धर्मकृत्यों में अरबी को छोड़ दे। इतना ही नहीं, यदि वह समझता है कि उसकी कोई अपनी पृथक संस्कृति है और उस संस्कृति को व्यक्त करने का माध्यम उर्दू है तो वह सुख से उर्दू पढ़-पढ़ाये, परन्तु यह कहां का न्याय है कि १४ प्रतिशत की भाषा को ८६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिशत की भाषा की बराबरी की जगह दे दी जाये?

स्विट्जरलैंड का उदाहरण यहां नहीं बैठता। न तो यहां का इतिहास वैसा है, न समुदायों में वैसा अनुपात है, न हिन्दू-मुसलमान, फ्रेंच, जर्मन, इटालियन की भांति भिन्न जातीय हैं। एक ही पिता की सन्तान हिन्दू और मुसलमान दोनों हो सकती हैं। मनुष्य अपने जीवन में ही हिन्दू से मुसलमान और मुसलमान से हिन्दू हो सकता है। यह बात स्विट्जरलैंड में नहीं होती। वहां धर्म-परिवर्तन तो हो सकता है परन्तु किसी के लिए अपने जर्मन या फ्रेंच या इटालियन होने से पिंड छुड़ाना उतना सुकर नहीं है। अतः हमारे यहां उर्दू हिन्दी के समकक्ष नहीं हो सकती, अविच्छन्न भारत में भी वह हिन्दी के बराबर नहीं हो सकती थी अब पाकिस्तान बनने के बाद तो उसका अनुपात-प्राप्त पद और भी गिर गया। हमारे प्रान्त में तो बराबरी का प्रश्न उठता ही नहीं।

अब उर्दू को छोड़ कर हिन्दुस्तानी को लीजिए, यह हिन्दुस्तानी क्या है? यदि इस पद का अभिधेय हिन्दी या उर्दू में से एक है तो कौन? उर्दू हमारी मुख्य भाषा हो नहीं सकती। हिन्दी नाम में कोई दोष नहीं देख पड़ता एक समय था जब हम मेल के लिए हिन्दी नाम छोड़ कर हिन्दुस्तानी नाम भी स्वीकार कर सकते थे पर अब वह दिन गये जिससे मेल करना था वह तो हमको छोड़ कर चला गया, उसने नया देश ही बना लिया है। यदि हिन्दुस्तानी दोनों से भिन्न कोई पृथक् भाषा है तो हमें कृत्रिम भाषा न चाहिए। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हमारी हिन्दी मतरूक जैसे विषैले सिद्धान्त पर नहीं टिकी है, हम अपनी भाषा से उन शब्दों को हठात् नहीं निकालने जा रहे हैं जो सैकड़ों वर्षों से उसके अंग बन गये हैं। जितना समन्वय प्राकृतिक है उतना हमारी हिन्दी में स्वतंत्र है। इतना हम और स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यद्यपि तर्क की सुविधा के लिए हिन्दू मुसलमानों की जनसंख्याओं का आश्रय लेना पड़ता है परन्तु हम यह नहीं मानते कि हिन्दी केवल हिन्दुओं की भाषा है, वह इस प्रान्त के अधिकतर निवासियों की भाषा है, जिनमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी हैं।

जहां कुछ लोगों के लिए हिन्दुस्तानी वात-व्याधि है वहां कुछ दूसरे लोगों के लिए हौआ ही हो रही है। सतर्क रहना उचित है परन्तु सतर्कता की अतिमात्रता मानस रोग है, कि कुछ लोगों को सर्वत्र हिंदुस्तानी ही देख पड़ती है। उनको प्रति क्षण यही प्रतीत होता हिन्दी पर गुप्त या प्रकट प्रहार हो रहा है। न उनको हिन्दी के आभ्यन्तर, नैसर्गिक, गुणों पर भरोसा है, न अपने ऊपर भरोसा है, न दूसरे भारतीयों के हिन्दी प्रेम या सच्चाई पर भरोसा है। स्वाधीनता की घोषणा हो गयी, पाकिस्तान बन गया, हमारे प्रान्तों की सरकारों को चलाने वालों में अधिकांश हिन्दू हैं, उनको भी हिन्दी से यथोचित स्नेह होगा ही परन्तु हिन्दी के यह भयग्रस्त सेवक सन्तुष्ट नहीं होते उनकी समझ में यह बात आती ही नहीं कि अपने ही आदमियों को, जो आज दायित्व के स्थानों पर हैं, ब्याजरूपेण नासमझ, भीरु, दुर्बल या कपटी कह कर हम हिन्दी की सेवा नहीं कर सकते, प्रहरी को कोसना प्रहार को रोकने का अच्छा उपाय नहीं है।

कोई प्रहार कर रहा हो या न कर रहा हो, हमारे प्रान्त की और इस प्रान्तीय सम्मेलन का क्षेत्र तो यह प्रान्त ही है, मुख्य भाषा तो हिन्दी है और रहेगी। हिन्दी हमारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही संस्कृति, हमारी भावनाओं, आकांक्षाओं, आदर्शों का प्रतीक है, उसी के द्वारा हमारे उज्ज्वल अतीत और उज्ज्वलतर अनागत के समन्वय की यथार्थ अभिव्यक्ति हो सकती है, अब वह प्रान्त की राजभाषा भी हो गयी है। सैकड़ों वर्षों के बाद यह दिन देखने को आया है। दुःख की बात है कि कल्पित भय और आशंका ने कुछ लोगों को इस बात की महत्ता को समझने से वंचित कर दिया है। केवल राजभाषा बन जाने से किसी भाषा का अभ्युदय निश्चित नहीं हो जाता परन्तु राजपद की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। अब हमारा काम है कि एक ओर तो इस बात से यथान्याय लाभ उठायें, दूसरी ओर हिन्दी को सर्वाङ्ग सुन्दर और परिपूर्ण बनाने का यत्न करें।

यदि हिन्दी को साधारण व्यवहार, काव्य और दर्शन के लिए ही नहीं प्रत्युत विज्ञान, अर्थशास्त्र, गणित जैसे शास्त्रों के अध्ययनाध्यापन का भी माध्यम बनना है, यदि उसे सरकारी विभागों के जटिल कामों के उपयुक्त बनना है, यदि उससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में काम लेना है तो हमें उसकी ओर बहुत ध्यान देना होगा। संस्कृत हमारा आकर है, परन्तु आकर से काम लेने में भी बुद्धिमता चाहिए। अभी तो हमने शब्दों से ठीक-ठीक काम लेना सीखा ही नहीं है, जिन्हें नुआंस (Nuance) शेड (Shade) कहते हैं ऐसे सूक्ष्म भेदों को हम ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर पाते। मोटर और बैलगाड़ी के टकराने से, दो डाकगाड़ियों के लड़ जाने तक संक्रामक रोग या दंगे से २, ३ व्यक्तियों के मरने से १०००-२००० के मरने तक, हम सर्वत्र एक ही विशेषण का प्रयोग करते हैं। कोई समाचार-पत्र उठा लीजिए। बस वहीं 'भीषण' मिलेगा। (Customs और Octroi के अर्थभेद को न समझने या व्यक्त न करने से तो जो क्षति होती है वह चाहे सह्य भी हो पर जब हम अच्छी लेखनियों से और प्रतिष्ठित पत्रों में Diplomat को कूटनीतिज्ञ और Diplomatic Relations को कूटनीति सम्बन्ध लिखा देखते हैं तो कांप उठते हैं। हमारी भाषा ऐसी दरिद्र नहीं हैं परन्तु हमको सावधानी से अपने भंडार को ढूंढना होगा कि कहां क्या धरा है।

संस्कृत का सहारा लेना अनिवार्य

एक और बात है। यह कहा जाता है कि संस्कृतमयी हिन्दी देश की भाषा नहीं हो सकती। जो लोग ऐसा कहते हैं वह यह भी स्वीकार करते हैं कि अरबी फारसीमयी उर्दू भी उतनी ही आग्राह्य है। इसलिए वह सीधी-सादी बोली हिन्दुस्तानी का समर्थन करते हैं। साधारण बोली को हिन्दी क्यों न कहा जाय यह बात मैं ठीक नहीं समझ पाता, परन्तु नाम को जाने दीजिए, भाषा के स्वरूप को लीजिए। बहुत से कामों के लिए तो साधारण बोली से काम चल जायेगा परन्तु गम्भीर विषयों के पठन-पाठन के लिए, सरकारी कामों के लिए, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के लिए, तो उसमें शब्द नहीं हैं। कहीं से नये शब्द लेने ही होंगे, फिर हम संस्कृत के सिवाय और कहां से शब्द ले सकते हैं। संस्कृत न केवल बंगला, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगू, मलयालम के लिए आकर भाषा है वरन् आज उसके आधार पर लंका और श्याम तक अपने यहां शब्द-सृष्टि कर रहे हैं। यह संस्कृतमयी भाषा निश्चय ही कुछ कठिन होगी परन्तु इसका उपायोग भी तो विशेष स्थलों पर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। धीरे-धीरे सुबोध भी हो जायेगी। यह कौन नहीं जानता कि अंग्रेजी में लिखी दर्शन और विज्ञान की पुस्तकें बहुत से सुपठित अंग्रेजों के लिए भी दुर्बोध होती हैं। सभी भाषाओं में ऐसा होता है।

परन्तु एक बात में हमको सावधान भी रहना है। भाषा को हठात् दुरूह बनाना उसको कृत्रिम बनाना है। हमको लोकवाणी, जनता की बोली, गांव बाजार की कहावतों और मुहावरों को अपनाना चाहिए। उनमें जनता की अनुभूतियां भरी पड़ी हैं। उनसे भाषा को शक्ति और स्फूर्ति मिलेगी। जनता से दूर पड़ कर हिन्दी भी उर्दू की भांति परायी हो जायेगी।

नाम धातुओं का व्यवहार बढ़ाया जाय

इस संबन्ध में एक बात आपके सामने रखना चाहता हूँ। हमारी भाषा में नाम धातु बनाने की शक्ति अब नहीं रही, इसे फिर से लाना चाहिए। अंग्रेजी में यह गुण है, ग्राम बोली में है, संस्कृत में है। मोटर पर चलने के लिए अंग्रेजी ने 'टुमोटर' धातु बना लिया है, अभिमान करने को देहाती भाई सेखियाना कह लेते हैं। जहां हमको इतना लम्बा वाक्य बोलना पड़ता है, वह हिटलर जैसा आचरण करता है, वहां संस्कृत में 'सहिटलरायते' कहा जा सकता है, किसी विद्वान को साहस करके नाम धातुओं के निर्माण और व्यवहार का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए। इससे उपकार होगा।

हमारे प्रान्त में अब चाहे किसी दल की सरकार हो परन्तु हमको यह विश्वास रखना चाहिए कि उससे हमको हिन्दी साहित्य के विस्तार और उन्नति में सहायता ही मिलेगी। वर्तमान सरकार ने हिन्दी को राजभाषा घोषित ही नहीं कर दिया है वरन् इस बात के लिए बराबर यत्न हो रहा है कि घोषणा कार्यान्वित हो। सभी विभागों के लिए उपयुक्त शब्दों की खोज हो रही है। हम आशा करते हैं कि थोड़े दिनों में सभी दफ्तरों में सब काम हिन्दी में होने लग जायेंगे।

हिन्दी के साथ देवनागरी लिपि भी आती है। यों तो कोई भाषा किसी भी लिपि में किसी न किसी प्रकार लिखी जा सकती है परन्तु जितनी प्रचलित लिपियां हैं उनमें देवनागरी अनुपम है। फिर भी समयानुसार उसमें कुछ परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। लिपि में परिवर्तन करना दोष नहीं हैं। इस लिपि ने बहुत से परिवर्तन देखे हैं। आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक कमेटी काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अनुमोदित तथा अन्य सभी प्रस्तावित परिवर्तनों पर विचार कर रही है।

इससे आगे कुछ कहना स्वागताध्यक्ष के क्षेत्र की सीमा का अतिक्रमण करना होगा, मैं इस पुनीत नगर में आप लोगों का पुनः स्वागत करता हूँ, हिन्दी के इतिहास में हमारा भी स्थान है। हिन्दी साहित्य गगन के दो परमोज्ज्वल नक्षत्रों, कबीर और तुलसी ने यहीं से सुधा-वर्षा की थी। दीनदयाल गिरि, भारतेन्दु, रत्नाकर, प्रसाद, प्रेमचन्द्र ने यहीं से हिन्दी के भण्डार को भरा है। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा की सेवाओं को हिन्दी संसार भूल नहीं सकता। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की नींव डालने का श्रेय भी काशी को है। यह प्रसन्नता की बात है कि प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन ऐसे अवसर पर यहां मिल रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यह हमारे लिए हर्ष और गर्व की बात होगी कि सद्योजात स्वातन्त्रयुग के अनुरूप हिन्दी का सन्देश प्रान्त को पहले यहां से मिलेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक अग्नि

अग्नि शब्द हमारे सामने तीन प्रसंगों में आता है। इन तीनों का एक दूसरे से सम्बन्ध है—प्रथम दोनों तो वस्तुतः एक ही पदार्थ के दो रूप हैं—फिर भी सुविधा की दृष्टि से इन पर पृथक् विचार करना अनुचित न होगा। इतना और कह देना ठीक होगा कि हम काल का व्युत्क्रान्त ढंग से व्यवहार कर रहे हैं जो सबसे पीछे का समय है वह सबसे पहिले लिया जा रहा है।

अग्नि का पहिला रूप और इसी से अधिकतम लोग परिचित हैं, वह है जो पुराणों में आता है। पौराणिक काल में देवों की ठीक संख्या कितनी है यह कहना कठिन है। लोग तैंतीस कोटि मानते हैं। कोटि का अर्थ वर्ग होगा परन्तु साधारण जनता इसको करोड़ के अर्थ में व्यवहार करती है। इतने देवों के नाम गिनाना तो किसी के लिए सम्भव नहीं है। यदि कोटि का अर्थ वर्ग, समूह या गण हो तब भी इन वर्गों की कोई प्रामाणिक और सर्वसम्मत या बहुसम्मत सूची उपलब्ध नहीं है। पौराणिक देवों में कुछ ऐसे हैं जिनको किसी समुदाय या गण का अंग बनाया भी नहीं जा सकता। अस्तु।

अग्नि का ऊँचा पद

अग्नि इन्द्र के प्रधान पार्षदों में हैं। इनकी गणना आठ वसुओं में है। इनके पिता धर्म और माता वसुभार्य्या थीं। इनकी पत्नी का नाम स्वाहा है, उनसे इनके तीन पुत्र हुए। छठे मन्वन्तर में वसुधारा से पैंतालिस पुत्र हुए। पुत्रों को मिला कर उनचास अग्नि कहे जाते हैं। मुख्य पार्षद होने के नाते अग्नि का पद इन्द्र की सभा में निश्चय ही ऊँचा है परन्तु यह न भूलना चाहिए कि पौराणिक इन्द्र की महत्ता बहुत कम है। न जाने कितनी कथाएं ऐसी गढ़ दी गयी हैं जिनसे उनका चरित्र दूषित कर दिया गया है और वह हमारे सामने ऐसे लोभी, कपटी, भीरु, सत्ताधारी के रूप में आते हैं जिसके प्रति श्रद्धा तो क्या सम्मान का भाव भी नहीं हो सकता। स्वयं अग्नि का चरित्र जो कुछ ऐसा कलंकित नहीं किया गया है परन्तु जब स्वयं देवराज इन्द्र, विष्णु और शंकर से ही नहीं प्रत्युत उनके सेवकों से भी तुच्छ गिने जाने लगे तो अग्नि का नगण्य हो जाना आश्चर्य की बात नहीं है। यही बहुत है कि आर्य जाति के पुराने संस्कारों ने उनके नाम को पूर्ण विस्मृति से बचा लिया।

वैदिक वाङ्मय में देवों की संख्या नियत और निर्दिष्ट है। स्पष्ट शब्दों में कहा गया है त्रयस्त्रिंशद्वै देवाः—देव तैंतीस ही हैं। पुराणों में जहां देववर्गों की चर्चा होती है वहां बौद्ध सम्प्रदाय सम्मत ऋतु, आभास्वर आदि देव समुदायों का भी बहुधा उल्लेख किया जाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
परन्तु वैदिक ग्रंथों में तीन ही वर्ग माने गये हैं——वसु, आदित्य और रुद्र। इनमें क्रमात् आठ, बारह और ग्यारह देव हैं। इनके अतिरिक्त इन्द्र और प्रजापति हैं, जो किसी वर्ग में नहीं डाले जा सकते। वैदिक इन्द्र वस्तुतः देवराज हैं। बारबार 'इन्द्र श्रेष्ठा देवाः जैसे वाक्य इन्द्र की महिमा का गान करते हैं। इसके दो अर्थ हैं देवों में इन्द्र श्रेष्ठ हैं अथवा देवों की श्रेष्ठता इन्द्र से है। विष्णु उपेन्द्र और इन्द्रावरज——इन्द्र के छोटे भाई——हैं और रुद्र भी इन्द्र के अधीन हैं। शुक्र यजुर्वेद के समय तक रुद्र के सम्बन्ध में विचार कुछ बदले से प्रतीत होते हैं परन्तु ऋग्वेद में वह निर्विवाद रूप से इन्द्र के सहायक और सखा हैं। इन्द्र का चरित्र उज्ज्वल है और वह ब्रह्मज्ञानी तथा धर्ममूर्ति हैं। कहा गया है कि 'सत्यप्रिया हि देवाः,' देवगण सत्य के प्रेमी होते हैं।

वैदिक अग्नि देव इन्द्र देव के प्रमुख पार्षदों में हैं। इनके ऊँचे पद के दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे। केतोपनिषद् में उमा हैमवती का उपाख्यान आया है। विजयमत्त देवों को सद्बुद्धि देने के लिए पराशक्ति उनके सामने प्रकट होती है। उसकी परीक्षा करने के लिए देवगण केवल अग्नि और वायु को भेजते हैं। इसका स्पष्ट संकेत यह है कि अन्य देवों के तेज और सामर्थ्य को इन दोनों से कम समझा गया। इनके हार मानने पर स्वयं देवराज को जाना पड़ा। श्रद्धालु कर्मठ मनुष्य मरने के पहिले शान्त चित्त से कहता है——और यदि वह नहीं कह सका तो मृत्यु के बाद दूसरे लोग उसकी ओर से कहते हैं——अग्ने नय सुपयारामे, विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्, युयोध्मस्मज्जुहुराणंमेवो, भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम। हे अग्नि, आप हमारे सब कर्मों को जानते हैं। हमसे हमारे पापों को दूर करके हमको उत्तम मार्ग से ले चलिए। हम आपको बारम्बार प्रणाम करते हैं।

यहां मैं इस शास्त्रार्थ में नहीं पड़ना चाहता कि वेद में पृथक् देवों की स्वतंत्र सत्ता मानी गयी है या इन्द्रादि सब नाम केवल ईश्वर के लिए प्रयुक्त हुए हैं। मेरे अध्ययन से यही निकलता है कि पृथक् देवों की सत्ता वेद–सम्मत है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वैदिक ऋषि जगत् के मूल रहस्य से परिचित नहीं थे। देवों का चर्चा होते हुए भी यह कहा गया है कि एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति——वह सत्य पदार्थ एक है, विद्वान उसे अनेक नामों से पुकारते हैं।

देव और देवता का अंतर

यह तो अग्नि देव की बात हुई परन्तु अग्नि शब्द केवल देववाची नहीं देवता–वाची भी है, और वेद में उसका महत्व उसी दृष्टि से है। हिन्दी में देव और देवता का भेद मिट गया है। देवता शब्द का व्यवहार पुलिंग में होता है और वह असुर, दैत्य, दानव के विरोधी समुदाय का वाचक माना जाता है। उसका पर्याय सुर है। देव शब्द देवासुर, देवगण, ऐसे प्रयोगों में तो आता है परन्तु एक वचन में स्यात् ही कभी देख पड़ता हो। संस्कृत में देवता शब्द स्त्रीलिंग है और असुर का विरोधी दल देव कहलाता है। वैदिक भाषा में सुर शब्द है ही नहीं।

देवता के स्त्रीलिंग होने में वैदिक उपासना का गम्भीर रहस्य निहित है। परमात्मा की दिव्य शक्ति, परा शक्ति आद्या शक्ति, परदेवता है। उसे स्वधा भी कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह एक शक्ति अपने को इस जगत् में असंख्य रूपों में व्यक्त कर रही है। भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान आदि शास्त्र जितनी भी आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक, शक्तियों का अध्ययन करते हैं वह सब उसी एक पराशक्ति के भेद, उसी के विभिन्न रूप, उसी की विभिन्न अभिव्यक्तियां हैं। इस प्रकार वह एक होकर भी अनेक हैं। इन सब शक्तियों को वैदिक भाषा में देवता कहेंगे। वेद के प्रत्येक मंत्र की——का नहीं, की——एक देवता होती है। ऐसा माना जाता है कि उस मंत्र का विधिवत् अनुष्ठान करने से वह देवता प्रसन्न होती अर्थात् उपासक को वह शक्ति प्राप्त होती है। अमुक मंत्र की देवता, इन्द्र या विष्णु कहने का तात्पर्य यह है कि उस मंत्र का सम्बन्ध ऐन्द्री या वैष्णवी शक्ति से है। दुर्गा सप्तशती के उत्तम चरित में लिखा है कि पराशक्ति से असंख्य देवताएं उत्पन्न हुईं और फिर सब विभूतियां उसी में समा गयीं। पुराणों में इनको तत्तद् देव की पत्नी कहा गया है, जैसे इन्द्र की इन्द्राणी।

देवों का इन्द्रादि नाम इसलिए पड़ा है कि उन्होंने पूर्व जन्मों में तपस्या करके तत् तत् शक्ति का विशेष रूप से सञ्चय किया है। ऐन्द्री शक्ति सम्पन्न इन्द्र, वैष्णवी शक्ति सम्पन्न विष्णु कहलाते हैं।

अग्नि में सभी देव शक्तियां हैं

इस देवता दृष्टि के अग्नि का पद बहुत ऊँचा है। पराशक्ति का तेज यों तो सूर्य रूप से हमारे सामने आता है। कहा भी है: सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च—सूर्य्य चराचर का आत्मा, सञ्चालक, प्रेरक है परन्तु सूर्य का सदैव प्रत्यक्ष नहीं होता। अग्नि के रूप में वह तेज कभी परोक्ष नहीं होता, दिन रात में, सब ऋतुओं में, प्राप्त हो सकता है। वह तेज व्यापक है इसलिए विष्णु है, सब अर्थों का साधक, स्वामी की भाँति हर प्रकार के कल्याण को देने वाला है इसलिए इन्द्र है, और क्षण भर में भयानक क्षति पहुंचा सकता है, इसलिए रूद्र है। इसीलिए कहा है, अग्निर्वो देवाः—अग्नि में सभी देव शक्तियां निहित हैं। तथा अग्निरग्रे प्रथमोः देवतानामु—अग्नि देवताओं में पहिला है। देवगण मनुष्यों की भाँति हाथ, पांव, मुँह नही रखते। न उनको अन्नपान की आवश्यकता है, परन्तु यज्ञ भाग में लोग श्रद्धापूर्वक जो हवि आग में डालते हैं देवगण उसके सूक्ष्म भाग को, अर्थात् उसके साथ-साथ लगी श्रद्धा और भक्ति को, ग्रहण करते है और याजक को इस भावना का फल मिलता है। इसीलिए देवों को अग्निमुख कहा है, अग्नि ही उनका मुख है।

अग्नि की महत्ता का यह उत्कृष्ट प्रमाण है कि सर्व प्राचीन वेद, ऋग्वेद, का आरम्भ ही अग्नि के स्मरण से होता है। 'अग्नि मीडे पुरोहितमु, यज्ञस्य देवमृत्विजमु, होतारमु, रत्नघातमम्' इस एक मंत्र में अग्नि सम्बन्धी बहुत से मुख्य विचार संगृहीत हैं। मैं अग्नि की बन्दना करता हूँ। अग्नि देव, दयोतन,शील, निर्मल तेजः स्वरूप हैं। वह पुरोहित हैं। जब भी यज्ञ किया जाय या किया गया, अग्नि सामने होगा। दूसरे स्थलों में यह बात यों स्पष्ट की गयी है कि अग्नि देवताओं में अग्रे, सब से पहिले, प्रकट हुई। सृष्टि से पहिले पराशक्ति अपने आप में लीन थी, निश्चेष्ट निष्क्रिय थी अतः उसका कोई वर्णन नहीं हो सकता, सृष्टि काल में उसने जो पहिला सक्रिय रूप धारण किया वह तेजोमय रूप अग्नि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है। सब से पहिले आने के कारण वह पुरोहित है। वही ऋत्विक और होता—यज्ञ करने वाला और कराने वाला—है अर्थात् उसी के कारण धर्म की मर्यादा स्थित है, सब जड़–चेतन यथाविधि कर्म करते हैं, ताकि जगत् का काम निर्विघ्न रूप से होता रहे और सब जीवों का कल्याण हो। इसीलिए वह रत्नधातम्—सब से बड़ा रत्न धारण करने वाला—उत्कृष्ट फलों की देने वाली शक्ति है। वेदों में श्रेष्ठ सामवेद भी, अग्न अत्याहि वीतये—अग्नि स्मरण से ही आरम्भ होता है।

मैंने बार–बार तेज शब्द का प्रयोग किया है। उसका अर्थ किसी प्रकार की चमक नहीं है। क्रियोन्मुख, क्रिया में लगी हुई, शक्ति का नाम तेज है। शक्ति को शक्तिमान से अलग नहीं कर सकते इसलिए परमात्मा और पराशक्ति अभिन्न, एक ही पदार्थ हैं।

यह नहीं समझना चाहिए कि अग्नि का सम्बन्ध केवल भौतिक फलों से, संसारी सुख-समृद्धि से, है। जो भी काम श्रद्धापूर्वक लोकहित को सामने रख कर किया जाय वह यज्ञ है। धर्म युद्ध तक को यज्ञ कहा जाता है। यज्ञ शुद्ध भाव से ही सम्पन्न हो सकता है। इसीलिए उपासक बारबार यह प्रार्थना करता है—तन्मेमनः शिव संकल्पमस्तु—मेरा चित कल्याणमय संकल्पों से पूर्ण हो। सत्संकल्पों को व्रत कहते हैं। शुद्ध भावना का मूल सत्य है। असत्य की नींव पर शुभ कामनाऔर शुभ कर्म नहीं टिक सकते। इसलिए जब मनुष्य अपने जीवन को सुधारना चाहता है और उसको सन्मार्ग में लगाना चाहता है तो वह कहता है—अग्ने व्रतपते, व्रतं चरिष्यामि, तच्छकेयम्, तन्मे राध्यताम्, इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि—हे व्रतों के स्वामी अग्नि, अब मैं व्रत का आचरण करूँगा। ऐसा कीजिए कि मैं उसे पूरा कर सकूं, मेरे व्रत को सम्पन्न कीजिए। मैं अब अनृत को छोड़कर सत्य का पालन करूँगा। एक अन्य मंत्र में अग्नि को अध्वराणां गोपा और ऋतस्य दीदिव—यज्ञों का रक्षक और सत्य का प्रकाशक—बताया है। इसके बाद के मंत्र में उन पर प्रेम और विश्वास प्रकट करते हुए यह प्रार्थना की गयी है कि—नः पितेव सूनवे स्वस्तये भव—जिस प्रकार पिता पुत्र का कल्याण करता है वैसे ही आप हमारा कल्याण कीजिए।

यज्ञों में तीन अग्नियोंका व्यवहार होता है, आहवनीय दक्षिण और गार्हपत्य। इनमें गार्हपत्य वह अग्नि है जो विवाहोपरान्त गृहपति होने पर प्रत्येक गृहस्थ अपने घर में स्थापित करता था यह कभी बुझने नहीं पाती थी और नित्य का हवन इसी में होता था। यह आग परमात्मा के उस दिव्य और सनातन तेज का प्रतीक थी जो मनुष्य को निरन्तर धर्म में, सत्कर्म में, प्रेरित करता रहता है। गृहस्थ का जीवन भोग के लिए नहीं वरन् लोक-संग्रह, धर्म, के लिए है और गार्हपत्याग्नि इस बात का साक्षी और स्मरण दिलाने वाली है।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों के कच्चे विचारों के आधार पर यह धारणा फैल गयी है कि प्राचीन आर्य आग, पानी, हवा, बिजली की उपासना किया करते थे। यह विश्वास नितान्त भ्रान्त है। उस उपासना शैली के पीछे गम्भीर दार्शनिक सिद्धान्त थे और यह भौतिक पदार्थ केवल प्रतीक थे। यदि ऐसा न माना जायेगा तो वेदों का बहुत-सा अंश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरर्थक हो जायेगा। वैदिक वाङ्मय में अग्नि शब्द सर्वत्र एक अर्थ में आता भी नहीं। कहीं वह अग्नि देव का वाचक है, कहीं उस आग का जिसमें हवि डाली जाती है और कहीं परमात्मा के उस दिव्य स्वरूप का जिसका योगी साक्षात्कार करता है। इसको सावित्र अग्नि कहा है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में स्पष्ट उल्लेख है—'अग्नि मुग्धो हैव धूमतान्तः स्वंलोकं न प्रतिप्रजानाति। अथ यो हैवैतमग्निं सावित्रं वेद स एतस्माल्लोकात्प्रेत्य आत्मानं वेद। अयमहमस्मि। स स्वं लोकंप्रतिप्रजानीते। न ह वा स्तस्यर्या न यजुषा व साम्नाऽर्थेऽस्ति, यः सावित्रं वेद'—जो मनुष्य केवल आग में आहुति डालने को सब कुछ समझता है वह स्वलोक को नहीं जानता जो इस सावित्र अग्नि को जानता है वह मरने पर इस लोक को छोड़ कर आत्मा को प्राप्त होता है। मैं यह ब्रह्म हूं ऐसा जान कर स्वलोक को प्राप्त होता है। जो सावित्र अग्नि को जानता है वह मरने पर इस लोक को छोड़कर आत्मा को प्राप्त होता है। मैं यह ब्रह्म हूं ऐसा जान कर स्वलोक को प्राप्त होता है। जो सावित्र को जानता है उसको ऋक्, यजु या साम से कोई तात्पर्य नहीं रहता।

कभी-सभी ऐसा कहा जाता है कि इन्द्र, अग्नि आदि अति प्राचीन काल के वीरों के नाम हैं। इन्द्र और मरुद्गण सम्बन्धी मंत्रों को देख कर ऐसा विचार उठ सकता है। सम्भव है इसमें कुछ तथ्य भी हो परन्तु अग्नि-परक मंत्रों में कम ही ऐसे होंगे जिनको इतिहास पक्ष में लाया जा सके। कहीं-कहीं इन्द्र के सखा के रूप में उनका उल्लेख करते हुए उनको इन्द्र के बलिवध जैसे कामों में सहायक बताया गया है परन्तु उन सब स्थलों में उनका चर्चा बहुत गौण है। मुख्यतया उनका जो रूप सामने आता है उसमें वह देवों और मनुष्यों के बीच के सम्बन्ध के संस्थापक, पराशक्ति की प्रधान अभिव्यक्ति, परामात्मा के दिव्य तेज, धर्म के साक्षी, धर्म के प्रेरक और इस प्रकार भुक्ति-मुक्ति दोनों के दाता हैं।

•

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरामिष भोजन

किन्हीं दूसरे देशों में लोगों के सामने निरामिष भोजन (वेजिटेरियन फूड) की प्रशंसा करने की आवश्यकता हो सकती है परन्तु इस देश में बहुत पहिले से अनुकूल पर्यावरण चला आता है। यह ठीक है कि लोगों को उन तथ्यों का ज्ञान नहीं था जिनका विज्ञान ने आज हमको परिचय कराया है। प्राचीन भारत में लोग प्रोटीन, कार्बो-हाड्रेट, हाइड्रो-कार्बन और विटामिन जैसे शब्दों को नहीं जानते थे और न उन्होंने भोज्य पदार्थों का रासायनिक विश्लेषण किया था। परन्तु भोजन के सम्बन्ध में उनके कुछ विचार थे, जो आज भी अनुसरणीय हैं। उदाहरण के लिए मैं आपका ध्यान भगवद्गीता के उन श्लोकों की ओर आकृष्ट करता हूँ जिनमें सात्विक भोजन की व्याख्या की गयी है। विचार करने से यह व्याख्या निरामिष भोजन के ही अनुरूप प्रतीत होती है। यह कहना गलत होगा कि सब निरामिष भोजी सात्विक महात्मा और सब मांसभोजी दुष्टात्मा होते हैं। हमारा तात्पर्य केवल इतना है कि विशेष प्रकार के भोज्य का विशेष दिशा में झुकाव होता है। यह कहना कि भोजन से ही व्यक्तित्व बनता है घोर अनात्मवाद (Materialism) की गोद में गिरना होगा।

स्वास्थ्य की दृष्टि से विचार

मेरी समझ में स्वास्थ्य की दृष्टि से निरामिष भोजन निश्चय ही सामिष भोजन से अच्छा होता है। जिस प्राणी का मांस खाया जाता है उसके शरीर में यदि कोई रोग-दोष हो तो मांस के साथ उसका अपने शरीर में आना अनिवार्य है। यदि वह प्राणी स्तन्यपायी (मैमल) है तो उसका काय-व्यूह हमारे शरीर से मिलता-जुलता होगा और फलतः उसके कायिक विकार भी हमारे कायिक विकारों के सदृश होंगे। जो रोग-दोष उसके शरीर में स्थान पाते हैं। वह हमारे शरीर में भी स्थान पा सकते हैं। वैसी रासायनिक क्रिया हमारे शरीर में भी हो सकती है। हमारी नाड़ियों पर भी वैसा प्रभाव पड़ सकता है। अतः मांस खाने के परिणामस्वरूप जिसका मांस खाया जाता है वह प्राणी हमारे शरीर और मस्तिष्क दैहिक और भौतिक क्रियाओं को प्रभावित कर सकता है। यह ऐसी बात है

नवम्बर, १९५८ में, पटना में हुए १५वें विश्व निरामिष भोजी सम्मेलन में उद्घाटन-भाषण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जिसकी पुष्टि में विशेष तर्क की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। सुव्यवस्थित देशों में काटने के पहिले पशु की डाक्टरी परीक्षा होती है। इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि रोगी पशु का मांस मनुष्य के भोजन में न मिलने पाये। परन्तु आज के समय जो वैज्ञानिक उन्नति हुई है वह हमको सावधान होने का आदेश देती है। नित्यप्रति रोग के नये कीटाणुओं, नये उद्गमों का पता चलता रहता है। यह देखा जाता है कि बहुत से रोग बीज रूप से शरीर में दबे रहते हैं और दीर्घकाल के बाद व्यक्त होते है। ऐसी दशा में जो थोड़ी-सी डाक्टरी जाँच होती है वह पर्याप्त नहीं हो सकती।

एक और बात स्मरण रखने की है। आज के मनुष्य का जीवन पहिले के जीवन से बहुत भिन्न हो गया है। जिन चीजों का पहिले उस पर प्रभाव नहीं पड़ता था या कुछ कम पड़ता था वह भी आज उस पर गहरा प्रभाव डाल सकते हैं। इसका कारण यह है कि आज के मनुष्य का जीवन प्रकृति-सम्मत जीवन से बहुत दूर जा पड़ा है। जिन परिस्थितियों में आज से सहस्रों या लाखों वर्ष पहिले मानव-शरीर का संग्रथन हुआ था वह आज नहीं है। कृत्रिम प्रकाश, कृत्रिम स्वनों का निरन्तर प्रहार, ऐसी व्यवस्था जिसमें सोने, जागने के प्राकृतिक कालों का पालन नहीं हो सकता, ऐसी सामाजिक और आर्थिक स्थितियां जिनमें विवाह आदि के सम्बन्ध की प्राकृतिक प्रेरणाओं की तुष्टि नहीं हो सकती, इन सब बातों ने हमारे शरीर और नाड़ि-संस्थान को ऐसा बना दिया है कि उन पर ऐसे वाह्य आघातों का प्रभाव पड़ता है जिनका पहले पता भी नहीं लग सकता था। नाना प्रकार की मानस बीमारियां इस बात की प्रमाण हैं। ऐसी दशा में इस बात की भी आशंका हो सकती है कि जिन भोज्य पदार्थों को पहिले का मनुष्य बिना किसी संकोच के खा सकता था वह आजकल के मनुष्य के लिए चिन्ताजनक स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं।

यह कहा जाता है कि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए थोड़ी सी ऐनिमल प्रोटीन आवश्यक है। ऐसा मानने में हमको कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु यह तो सर्वविदित है कि जितनी ऐनिमल प्रोटीन की हमको आवश्यकता है वह दूध और दूध से निकाले पदार्थों द्वारा हमको मिल सकती है।

मांस खाने न खाने का धार्मिक पहलू भी हो सकता है, परन्तु मैं उस पर यहां विचार करना नहीं चाहता। मैं यह जानता हूं कि जैन धर्म के अतिरिक्त किसी धर्म में मांस का पूर्णत: निषेध नहीं है। प्राचीन भारत में भी लोग मांस खाते थे। हाँ, यह निश्चय ही माना जाता था कि 'प्रवृत्तिरेषा भूतानाम्, निवृतिस्तु महाफला' मांस खाना और मद्य पीना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है परन्तु उनका परित्याग करना बहुत लाभदायक है। बहुत-सी बातों में हम पहिले के लोगों का अनुगमन नहीं करते। प्राचीनकाल में मांस का खाया जाना या न खाया जाना पक्ष या विपक्ष के लिए पुष्ट तर्क नहीं हो सकता। इस जगह किसी धर्म विशेष कीं प्रमाणभूत किसी पुस्तक के आधार पर विचार करना भी समीचीन न होगा क्योंकि ऐसी कोई पुस्तक नहीं हो सकती, जो सब लोगों के लिए मान्य हो।

परपीड़न का प्रश्न

परन्तु कुछ बातें निश्चय रूप से कही जा सकती हैं। मांस का निषेध केवल इस आधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर नहीं हो सकता कि जिसका मांस खाया जाता है वह भी जीव है। वह तत्व जिसे जीव कहते हैं सारे विश्व में व्याप्त है। कुछ खाये बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता और जो कुछ भी खाया ज़ायेगा उसमें जीव है। इसीलिए कहा है कि 'जीवो जीवस्य अन्नम्'——जीव जीव का भोजन है। यह भी हो सकता है कि मारने-काटने पर प्रत्येक जीव को कुछ कष्ट होता हो। डा० जगदीशचन्द्र बोस और इसी दिशाओं में शोध करने वाले दूसरे वैज्ञानिकों ने यह दिखलाया है कि पौधों और वृक्षों पर भी मादक वस्तुओं का प्रभाव पड़ता है और छेदन और मारण की दशा में कुछ असाधारण-सी प्रतिक्रिया होती है। परन्तु फिर भी जीव जीव में अन्तर है। सुख और दुःख की अनुभूति नाड़िजाल पर निर्भर है। जिन प्राणियों का नाड़िजाल जितना ही विस्तीर्ण और जटिल होता है उनकी अनुभूतियां उतनी ही व्यापक और तीव्र होती हैं। जो नाड़िजाल मनुष्य के नाड़िजाल से मिलते-जुलते हैं उनमें वेदनाओं (सेन्सेशन्स) के वहन करने की शक्ति उतनी ही अधिक होती है। जिन मस्तिष्कों की बनावट मनुष्य के मस्तिष्क के सदृश होती है उनमें मनुष्य सदृश बौद्धिक क्रियाएँ होती हैं। यह स्पष्ट ही है कि पृष्ठास्थिहीनों (इन्वर्टिब्रेट्स) की अपेक्षा पृष्ठास्थियुक्तों (वर्टिब्रेट्स) के शरीर मानव-शरीर से मिलते हैं। और इनमें भी स्तन्यपायियों में बहुत सादृश्य है। इसलिए स्तन्यपायियों की वेदनाएं, उनकी अनुभूतियां, हमसे अधिक मिलती हैं। कुछ न कुछ तो खाना ही है। परन्तु मनुष्य को शोभा यह देता है कि ऐसी वस्तुओं को खाद्य रूप में लें, जिनमें परपीड़न की कम से कम मात्रा हो। इस दृष्टि से यह स्पष्ट होता है कि उस प्रकार के पदार्थों को जो जीव वर्ग में साधारणतया आते हैं अर्थात् जो पशु-पक्षियों में परिगणित हैं, भोज्य न बनाना अच्छा है। उनमें भी जिसका सादृश्य मनुष्य से जितना ही अधिक है वह उतना ही त्याज्य है। क्योंकि उसकी सुख-दुख की अनुभूति मनुष्य के सदृश होती है।

यह प्रश्न हो सकता है कि भले ही भक्ष्य प्राणी को कष्ट हो परन्तु उसको क्यों न खाया जाय? उसका उत्तर मानस-स्तर पर ही दिया जा सकता है। मनुष्य ने सभ्यता और सांस्कृतिक क्षेत्र में जो उन्नति की है उसका एक बड़ा आधार यह रहा है कि उसने अपनी सहज प्रवृत्तियों का, जो पाशविक प्रवृत्तियों से मिलती हैं, दमन किया है। पशु शत्रु को यदि खाता नहीं तो मार डालता है। पशु रोगियों, बूढ़ों को दुर्बलों की रक्षा नहीं करता। मनुष्य की भी सहज प्रवृत्ति ऐसी हो सकती है। कई घोर जंगली समाजों में शत्रु खा डाला जाता था और दुर्बल तथा बूढ़े यदि खा नहीं डाले जाते थे तो भी मार डाले जाते थे। परन्तु जिन लोगों में ऐसा दस्तूर था वह ऊपर न उठ सके। जिन लोगों ने इन बातों को छोड़ा, क्रूरता की जगह उदारता और दया को दिया, दुर्बल, रोगी और वृद्ध का जीवित रहना स्वीकार किया, इस बात को माना कि शत्रु भी मनुष्य है, उन्हीं समाजों ने उन्नति की। उन्नत समाज दया भाव को केवल मनुष्य तक सीमित नहीं रखता, पशु-पक्षी की चिकित्सा की भी व्यवस्था की जाती है। उनके भी सुख के साधन जुटाये जाते हैं। अतः अपनी क्षुधा-निवृत्ति के लिए निरीह प्राणियों की वेदनाओं का तिरस्कार करना उस पथ से विमुख होना है जिसने मनुष्य को मनुष्य बनाया है।

एक और बात है। यह जानते हुए कि दूसरे को दुःख हो रहा है। उसको दुःख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पहुंचाना अपने चित्त को स्थूल और विकृत बनाना है। राजनीति और इतिहास के पंडित जानते हैं कि जिन समाजों ने दूसरे राष्ट्रों को जीत कर उन पर शासन किया या दूसरे को गुलाम बना कर रखा, उनके चरित्र का भारी पतन हुआ। पशु को काटने वाला खूब समझता है कि उसको कष्ट हो रहा है, फिर भी काटता है। पशु तो थोड़ी देर में अपने प्राणों से जायेगा, परन्तु काटने वाले का चित्त विकृत होता है, उसकी बुद्धि क्रूर होती है और उसका दुष्परिणाम बराबर भुगतना पड़ता है। यदि एक शरीर के छूटने के बाद दूसरे शरीर में जन्म होता हो, तो यह बिगड़ा हुआ अन्तःकरण उस अगले जीवन को भी खराब करके छोड़ेगा। यह साधारण अनुभव की बात है कि बहुत से लोग जो मांस खाते हैं अपनी आंखों से पशु का काटना नहीं देख सकते। परन्तु यह बुद्धि की विचित्र विडम्बना है कि यह जानते हुए कि बुरा काम हो रहा है और मेरे लिए हो रहा है, उस काम को स्वयं न करके दूसरे के हाथों होने दिया जाता है। यह अकाट्य सत्य है कि बुरा कर्म बुरा है, चाहे वह कृत हो, चाहे कारित और चाहे अनुमोदित।

शरीर और बुद्धि का सम्बन्ध बड़ा घनिष्ट है। मानस उपविचारों से बहुत-सी शारीरिक व्याधियों का शमन होता है, चिन्ता क्षय जैसे भयानक रोगों को उत्पन्न कर सकती है। इसी प्रकार शरीर का प्रभाव मानस-क्रियाओं पर पड़ता है। रुग्ण शरीर केवल क्रोध और चिड़चिड़ेपन को जन्म नहीं देता, काम और लोभ को भी बढ़ाता है और सच, झूठ, परहित, न्याय जैसे विषयों में भी बुद्धि का संतुलन बिगाड़ देता है। इसलिए भोजन का प्रश्न केवल शरीर की पुष्टि और जिह्वागत स्वाद से ही सम्बद्ध नहीं है। उसका सम्बन्ध मनुष्य के सारे जीवन से है।

व्यावहारिक कठिनाइयाँ दूर की जायँ

इस प्रकार प्रश्न का एक आर्थिक रूप भी है और हमको उसके ऊपर ध्यान देना है। मैं जानता हूं कि ऐसे बहुत से लोग हैं जिनके लिए मांस खाना अनिवार्य नहीं है। वह चाहें तो उनको दूसरे भोज्य पदार्थ भी मिल सकते हैं परन्तु केवल स्वाद के लिए मांस खाते हैं। ऐसे लोगों का अपराध अक्षम्य है। परन्तु ऐसे भी लोग हैं जिनके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उनको मांस सस्ता पड़ता है। यदि यह बात सही है तो फिर यह गम्भीर प्रश्न है।

यह देखना होगा कि कृषि के नियमों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार का कैसे प्रबन्ध किया जाय कि पृथ्वी की बढ़ती हुई जनसंख्या को पर्याप्त मात्रा में अच्छा निरामिष भोजन मिल सके। इस 'अच्छा' शब्द का व्यवहार मैंने जानबूझ कर किया है। सामिष भोजन में कुछ सुविधाएं हैं। भोजन के कई तत्व एक ही साथ मिल जाते हैं। परन्तु निरामिष भोजन में विचारपूर्वक संतुलन करना आवश्यक होता है। ऐसा माना जाता है कि दूध में भोजन के कई तत्व वर्तमान हैं परन्तु केवल दूध पीकर सबका काम नहीं चल सकता। प्रोटीन, विटामिन आदि जो कुछ चाहिए वह कई पदार्थों को मिला कर खाने से ही प्राप्त हो सकता है। भारत में लोगों के सामने निरामिष भोजन की गाथा गाने की आवश्यकता नहीं है। बहुत से लोग इन बातों को समझते हैं परन्तु आज निरामिष भोजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उनका काम नहीं चलता। शरीर को जो स्निग्ध द्रव्य (फैट) चाहिए वह अलभ्य-सा हो रहा है। शुद्ध दूध बहुत बड़ी जनसंख्या के लिए अप्राप्य है? यही दशा घी की है। फल खाने की बहुतों की हैसियत नहीं है। ऐसी दशा में कुछ लोग विवश होकर मांस खाने की ओर जाते हैं।

मुझसे कुछ मित्रों ने कहा कि उनको अपने बच्चों को अंडा इसलिए देना पड़ा कि वह उनको और कोई पौष्टिक पदार्थ नहीं दे सकते थे। अंडे की महिमा तो देखते-देखते बढ़ी है पहिले जो लोग मांस खाते थे वह भी अंडा नहीं छूते थे। अंडा खाना भ्रूणहत्या माना जाता था। आज बहुत से लोग अंडे को निरामिष गिनने लगे हैं। कई रोगों में डाक्टरों को अंडे के सिवाय कोई पथ्य सूझता ही नहीं। यह व्यावहारिक प्रश्न है। इन समस्याओं को सुलझाना होगा। यदि इन कमियों की पूर्ति का यथेष्ट उपाय नहीं हुआ तो केवल उपदेशों से निरामिषता की रक्षा नहीं हो सकती।

कुछ लोग हर प्रकार के कष्ट सह कर भी निरामिष भोजन पर दृढ़ रहेंगे। वे सर्वथा वन्दनीय हैं, परन्तु साधारण मनुष्य ऐसा बहुत दिनों तक नहीं कर सकता। जब अपने और अपने कुटुम्ब के जीवन और स्वास्थ्य की रक्षा का कोई उपाय न देख पड़े तो पशु को मारने से बहुत दिनों तक लोगों को नहीं रोका जा सकता। उसका ऐसा करना अक्षम्य भी नहीं कहा जा सकता। अतः यह आवश्यक है कि कृषि और गोवंश वृद्धि के लिए पूरा प्रयत्न किया जाय। फल के वृक्षों की संख्या बढ़ायी जाय और ऐसे भोजनों का आविष्कार किया जाये जो निरामिष होते हुए पौष्टिक हों, स्वादिष्ट हों और सस्ते हों।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवनागरी लिपि का प्रश्न

देवनागरी लिपि का प्रश्न देश के सामने किसी न किसी रूप में काफी समय से रहा है। कई व्यक्तियों ने और संस्थाओं ने इस सम्बन्ध में विचार किया है और अपने सुझाव देश के सामने समय-समय पर रखे हैं।यह तो गैरसरकारी लोगों (नान आफीशियल्स)का काम हुआ। इसके सिवाय पिछले कुछ वर्षों में सरकारी ढंग से कम से कम तीन समितियों के सामने यह प्रश्न रहा है। एक तो वह जिसको कास्टीटुएंट असेम्बली ने नियुक्त किया था, दूसरा वह जिसको कि बम्बई सरकार ने नियुक्त किया था और तीसरा वह जिसको कि उत्तर प्रदेश की सरकार ने नियक्त किया था। निश्चय ही इन तीनों समितियों के अधिकारादेश (टर्म्स आफ रिफ्रेंस) बिल्कुल एक से नहीं थे। जो समिति कांस्टीटुएंट असेम्बली द्वारा नियुक्त हुई थी और जिसको कि उसके अध्यक्ष के नाम से प्रायः कालेलकर कमेटी कहते हैं उसके सामने मुख्य विषय था कि नागरी लिपि में उन सुधारों को पेश करना जिनसे वह टेलीप्रिंटरों, लीनोटाइपिंग और टाइपराइटिंग आदि के लिए अधिक उपयुक्त बन जाय।

जो बम्बई की समिति थी उसके सामने मुख्य रूप से मराठी और गुजराती लिपियों का प्रश्न था। फिर भी इन दोनों समितियों की रिपोर्ट को देखने से प्रतीत होता है कि उनका विषय उस विषय का एक अंग था, जो कि मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश वाली कमेटी को सौंपा गया था, जिसको आचार्य नरेन्द्र देव कमेटी कहते हैं।

नरेन्द्र देव कमेटी के सामने सम्यक् रूपेण नागरी लिपि के सुधार के प्रश्न पर विचार करने का लक्ष्य था और उसमें लीनोटाइपिंग, टेलीप्रिंटिंग और टाइपराइटिंग की चीज भी आ जाती है और वह सभी प्रश्न आ जाते हैं जो कि इस विषय से संबंध रखते हैं।

सुधार के कतिपय सुझाव

भिन्न-भिन्न समयों पर जिन व्यक्तियों ने इन प्रश्नों पर विचार किया है उनके सामने इसके दो-तीन पहलू थे। एक पहलू तो यह था कि नागरी लिपि में जो मुख्य रूप से दोष हैं उनको दूर किया जाय ताकि यथासम्भव वह लिपि निर्दोष हो जाय। उदाहरण के लिए हम एक अक्षर 'र' को ले लें। ऊपर की लाइन और सामने की खड़ी लाइन सभी अक्षरों में होती हैं। अब से कुछ पहले 'र' में बायीं तरफ टेढ़ा रूप लगा रहता था। यह रूप 'ɪ' का रहा है, लेकिन सदा ही यह रूप नहीं रहा। निस्संदेह किसी समय 'र' का वह रूप नहीं था

देवनागरी लिपि सुधार सम्मेलन में किया गया भाषण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो आज है। आज दाहिनी ओर झुका हुआ है और किसी समय बायीं ओर को झुका हुआ था यह लुप्त नहीं हुआ है। अब भी हम बायीं तरफ लगाते हैं, जैसे 'प्र' और 'म्र में 'र' का यह रूप आ गया है तो अब अगर ऐसा हो जाय कि यह बायें वाला रूप स्वीकार कर लिया जाय तो संयुक्त अक्षरों में सुविधा हो जाय। आज हम 'ख' इस प्रकार लिखते हैं। यह रव पढ़ा जा सकता है। यदि यह बायें वाला रूप ग्रहण कर लिया जाय तो यह असुविधा भी दूर हो जायगी और इस तरह से यह भ्रम नहीं पैदा हो सकता। इस तरह से नागरी लिपि में प्रत्यक्ष रूप से यह दोष है जिसको दूर करना आवश्यक है।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि कुछ अक्षर ऐसे हैं जैसे ध और भ तथा घ और म। इसमें मुख्यकर एक ही अन्तर होता है। म का जो रूप है यदि वह बीच से कट जाता है तो भ हो जाता है, इसी प्रकार जब घ बीच से कट जाता है तो वह ध हो जाता है। छापे में तो यह गलती होने की सम्भावना कम है परन्तु हाथ से लिखने में बहुत से ऐसे अवसर आ जाते हैं जबकि शब्द ऊपर काटने से रह जाते हैं तो यह इस बात का एक प्रत्यक्ष दोष है। जिसे हमारी लिपि में भ्रम हो सकता है।

इस प्रकार से आप देखें कि कुछ अक्षर ऐसें हैं जिनके दो-दो अथवा तीन-तीन रूप हैं, जैसे 'अ' है। इसके दो रूप हैं एक रूप तो यही है और दूसरा रूप मराठी का है, जैसे अ। इसी प्रकार के झ से तीन रूप हैं। इस तरह से यदि इन अक्षरों का एक ही रूप बना दिया जाय तो सुविधा होगी। यह दोष तो प्रत्यक्ष हैं और इनको दूर करना चाहिए। इसके संबंध में नरेन्द्र देव कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में सुझाव रखे हैं।

दूसरी चीज यह है कि शिरोरेखा रखी जाय अथवा वह निकाल दी जाय। इस पर काफी बहस हुई लेकिन अन्त में लोगों की यही राय हुई कि इसको इस समय निकालना कठिन होगा। इस संबंध में बम्बई की सरकार ने भी एक कमेटी बैठायी थी। उसकी भी यही राय हुई कि वर्तमान समय में यह शिरोरेखा रखनी ही पड़ेगी।

तीसरी चीज यह है कि संयुक्त अक्षरों के जो रूप हैं। उनमें दो-तीन को छोड़ कर प्रायःसंयुक्त अक्षरों को निकाल दिया जाय। एक सुझाव यह भी है कि आजकल जो मात्राएँ नागरी लिपि में लगायी जाती हैं उनमें हाथ से लिखने में चाहे उतनी कठिनाई न हो परन्तु छापे में कम्पोज करने में बहुत दिक्कत होती है। हम इ की मात्रा बायें लिखते हैं और उ की मात्रा नीचे लिखते हैं, ए की मात्रा ऊपर लिखते हैं तो इससे बड़ी दिक्कत होती है। सुझाव यह है कि जितनी भी मात्राएं हैं वह सब दायें तरफ ही खास करके लिखी जायें। जैसे किसी को 'कु' छापना हो तो सुझाव यह है कि 'कु' लिखे। इसे कम्पोज करने में सुविधा होगी। एक सुझाव यह है कि जैसे राष्ट्र लिखना हो तो उसके लिए 'ष' और 'ट' में हलन्त लगा दें तो इस तरह से संयुक्त अक्षरों में बहुत कमी हो सकती है।

एक सुझाव और है वह जरा महत्व का है उस पर काफी मतभेद है। काका साहेब कालेलकर की कमेटी की और कुछ और लोगों की ऐसी राय है कि नागरी में कई अक्षर हैं जैसे 'इ' और 'उ' उनको निकाल दिया जाय और उनके स्थान पर अन्त में मात्रा का चिन्ह जोड़ दें जैसे आज यदि 'इ' लिखना होता है तो हम 'ि' जोड़ देते हैं। उन लोगों की राय है कि ऐसे ही यदि हमको 'इ' लिखना है तो 'अ' के पहले 'ि' जोड़ दिया जाय 'अि'। या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
यदि 'उ' लिखना है तो 'अ' में 'उ' की मात्रा जोड़ दी जाय जैसे 'अु'। यह एक झगड़े का विषय हो गया है। खास कर उत्तरी भारत में तथा भारत के और भी बहुत से हिस्सों में लोगों को यह सुझाव स्वीकार नहीं हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो लोगों का यह ख्याल कि हमारी परम्परा से यह चीज हमको बहुत दूर ले जाती है। दूसरे यह भी ख्याल हुआ है कि यह व्याकरण और फोनेटिक्स के सिद्धान्तों के सर्वथा विरुद्ध है क्योंकि जैसे 'कि' है उसके माने हैं कि कइ जुड़ा है। इसी प्रकार यदि हम अ इ लिखते हैं तो व्याकरण के अनुसार यह ए का स्वर हो जाता है। उनका कहना है कि अगर अ में इ जोड़ा जायगा तो यह व्याकरण के सर्वथा विरुद्ध होगा। दूसरे उनका कहना है कि फोनेटिक्स के हिसाब से 'इ' और 'उ' जो है वह 'अ' का विकृत रूप नहीं है बल्कि यह स्वतंत्र स्वर हैं। इस वास्ते अ में अगर चिन्ह जोड़े जायं तो अक्षरों की तो बचत हो जायगी लेकिन वह सर्वथा व्याकरण परंपरा और फोनेटिक्स के विरुद्ध होगा। इस वास्ते लोग उसको मानने के लिए तैयार नहीं हैं।

तो अगर हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाना है, उसके लिए आप चाहे जो करें, लेकिन अगर हिन्दी लिपि को राष्ट्रलिपि बनाना है तो उसमें ऐसी क्षमता होनी चाहिए कि भारत की जो दूसरी भाषाएं हैं उनके स्वर, शब्द और ध्वनियों के लिए उसमें संकेत होने चाहिए। आज भी फारसी भाषा के कुछ शब्द ऐसे हैं जिनको हिन्दी में हम बिन्दु लगा कर दर्शाते हैं, जिस प्रकार ज के लिए हम 'ज' के नीचे बिन्दु लगाते हैं। लेकिन अभी कई चीजों के लिए हमारे पास कोई संकेत नहीं है जैसा कि मराठी 'ळ' के लिए हमारे यहां इस प्रकार का ड़ नहीं है। 'लड़ाई' लिखने के लिए हम 'ड़' के नीचे बिन्दु लगाते हैं। लेकिन वह 'ड़' उस 'ळ' से भिन्न है जो मराठी और दूसरी भाषाओं में बोला जाता है। उसका हम लोग ठीक उच्चारण भी नहीं कर पाते। दक्षिण में एक और ध्वनि होती है जिसे हम अपने मुँह से नहीं बोल पाते। वह 'र' और 'ड' के बीच में है। इस ध्वनि के चिन्ह को हमें अपनी लिपि में रखना ही होगा। इसी प्रकार शार्ट 'ए' और शार्ट 'ओ' की भी जरूरत होगी। इन सब बातों पर विचार करने में हमें दो-तीन बातों का ध्यान रखना होगा जो नरेन्द्र देव कमेटी के सामने था। अगर यह प्रश्न होता जैसा कि सोवियट रशा के सामने था, जहां कि ४-६ लिपियां बना दी गयीं, तो वह बात दूसरी थी। लेकिन नागरी लिपि ऐसी है जिसे ब्राह्मी से निकले बहुत दिन हो गये और उसमें जो परिवर्तन हुए हैं वह उसमें धीरे-धीरे हुए हैं। ऐसे रूपों को यकायक नहीं बदला जा सकता। इसी लिपि का प्रयोग बहुत व्यापक ढंग से हो रहा है इसलिए केवल इसको साइंटिफिक बनाने के नाम पर उल्टे-पुल्टे परिवर्तन हम नहीं कर सकते जिससे पुरानी पुस्तकें भी पढ़ने में न आ सकें। इन सब बातों का ख्याल करना है तथा जो परमावश्यक परिवर्तन हों उनको ही करना है।

छापेखाने और टाइपराइटर का प्रश्न

अब सवाल छापेखाने और टाइपराइटर्स का आता है। जैसा कि राजा जी ने कहा है, हम अपनी भाषा के सौन्दर्य का मशीन के लिए त्याग (सेक्रीफाइस) नहीं कर सकते। पं० रविशंकर शुक्ल ने भी कहा है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The general principle in standardisation of the Devanagari script should be to retain the existing symbols of various languages, as far as possible and yet adopted for use in modern prints and typewriting machines, either as such or with such rare alterations as are indispensible and feasible."

हमको इस बात का पूरा भरोसा है कि आज टेक्निकल ज्ञान इतना बढ़ गया है कि लिपि परिवर्तन के लिए हम जो निर्णय करेंगे उनको छापेखाने वाले मशीनों में उतार सकेंगे। आचार्य नरेन्द्र देव कमेटी के सामने ये सब बातें थीं। मराठी, गुजराती और दूसरी लिपियों से परिचित ऐसे लोगों से राय लेकर उन्होंने एक रिपोर्ट हमारे सामने रखी है। जो भी सुझाव उनके सामने आये और उनकी एक रूपरेखा उस रिपोर्ट में रखी गयी है। और उस पर देश के सब विद्वानों ने विचार किया है-वह ऐसी रिपोर्ट है जिस पर हम आसानी से विचार कर सक्ते हैं।

एक सुझाव उसमें नहीं था और वह राजा जी ने बाद को दिया है। उनके कहने के अनुसार हम दो तरह से 'श' लिखते हैं। एक तो साधारण 'श' और दूसरा वह जो हम 'श्री' में लिखते हैं। दो रूप होने की कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती। अतः हमें 'श' का वही रूप मान लेना चाहिए जो हम 'श्री' में लिखते हैं अर्थात श्र। नरेन्द्र देव कमेटी में जो सुझाव दिये गये हैं उनमें अगर यह सुझाव भी मान लिया जाय तो यह एक उपयुक्त सुझाव होगा।

जहां तक टाइपराईटिंग की बात है उसमें एक बात कहनी है। काका कालेलकर का यह कहना है कि पोर्टबिल टाइपराइटर में ४२ कीज़ होनी चाहिए। नरेन्द्रदेव कमेटी ने भी यही कहा कि ४२ कीज़ होनी चाहिए। अतः दोनों में कोई मतभेद नहीं है। अब रहा स्टैन्डर्ड टाइपराइटर। काका कालेलकर का कहना है कि ४६ का की-बोर्ड होना चाहिए। नरेन्द्र देव कमेटी की रिपोर्ट में कहा गया है कि वह ४४ का भी हो सकता है और ४६ का भी हो सकता है। हमारे देश में आज कल ६-७ लाख टाइपराइटर्स काम में आ रहे हैं जिनमें ४४ का की-बोर्ड है। उनको फेंक देना एक कठिन बात होगी। इसलिए अगर ४४ का की-बोर्ड माना जाता है तो जो अंग्रेजी का की-बोर्ड है वह अडाप्ट हो सकता है अर्थात् अंग्रेजी से नागरी में बदला जा सकता है। इसलिए यह विचारने की बात होगी कि अगर ४४ का की-बोर्ड स्वीकार किया जाय तो उसमें सुविधा होगी।

जहां तक छपाई की बात है उसमें अपनी ज्यादा राय नहीं दे सकता। उसमें उसके विशेषज्ञों की राय होनी चाहिए और जो भी रूप वे स्वीकार करेंगे वह मशीनों में उतारा जा सकता है। फिर उसमें कोई टेकनिकल कठिनाई नहीं होगी जो बाधक हो सके।

मुझे इतना ही कहना है कि जो प्रश्न आपके सामने है उसके सम्बन्ध में कोई न कोई निश्चय हो ही जाना चाहिए। आप जो रूप स्वीकार करेंगे उसके अन्दर बहुत मुमकिन है कि बेहुत ही बारीक रूप से अगर विचार किया जाय तो कोई दोष निकल आये, लेकिन एक चीज याद रखना चाहिए 'दी बेटर इज़ दी वर्स्ट ऐनीमी आफ गुड'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलकुल सोलहो आने सही चीज। अगर हम कोई काम करना चाहें तो वह व्यावहारिक रूप से नहीं कर सक्ते। कोई न कोई उसमें कुछ न कुछ त्रुटि अवश्य निकाल देगा। इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से मेरा निवेदन है कि जो भी फैसला आप करेंगे उसको कार्यान्वित करने में भी समय लगेगा। मुझे आशा है कि छापे में जो भी परिवर्तन होंगे उनको प्रेस भी स्वीकार कर लेगा। मेरा यही निवेदन है कि नरेन्द्र देव कमेटी की जो सिफारिशें हैं उनको स्वीकार कर लेना चाहिए और अगर जरूरत हो तो उनमें एक-आध परिवर्तन कर दिया जाय।

इस बात का चर्चा हुआ कि सारी भाषाओं की एक लिपि हो जाय। मैं इस विषय में कुछ नहीं कहना चाहता। अगर लोगों की समझ में यह बातें आयें कि देश की तमाम लिपियों की जगह पर एक नागरी लिपि हो जाय तो नागरी के प्रेमी होने के नाते मुझे खुशी हो सकती है, लेकिन फिलहाल हमारे सामने यह प्रश्न नहीं है कि सब जगह नागरी लिपि हो जाय। इसमें पड़ने से समय नष्ट होगा। इस समय प्रश्न यह है कि जो 'हिन्दी इन देवनागरी स्क्रिप्ट' संविधान में स्वीकार की गयी है उस देव नागरी लिपि का सुधार करना चाहिए जिसमें आगे चल कर वह सर्वगुण सम्पन्न हो सके और सभी उसको स्वीकार कर सकें।

•

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कारों की भाषा संस्कृत हो या हिन्दी

श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने एक बार यह मत प्रकट किया था कि हिन्दुओं के संस्कारों के सम्बन्ध में संस्कृत की जगह हिन्दी भाषा से काम लिया जाय। उन्होंने विवाह का उदाहरण दिया था। वर कन्या को परस्पर प्रतिज्ञा के मंत्रों का यों ही पारायण-पाठ करा दिया जाता है या पुरोहित लोग जल्दी-जल्दी कुछ उल्टा-सुल्टा अर्थ कह देते हैं जिसका प्रभाव न वर पर पड़ता न वधू पर, और प्रतिज्ञाओं का महत्व ही नष्ट हो जाता है। यही बातें हिन्दी में कहीं जायं तो गम्भीरता बनी रहे। टण्डन जी ने जिस दुरवस्था की ओर ध्यान आकृष्ट किया था उसकी सत्ता निर्विवाद है, फिर भी मैं उनसे सहमत नहीं हूं। मेरी दृढ़ सम्मति है कि संस्कारों की भाषा संस्कृत ही रहनी चाहिए।

हिन्दुओं के सिवाय कुछ दूसरे समुदायों में भी संस्कारादि के लिए ऐसी भाषा से काम लिया जाता है जो बोलचाल की भाषा से भिन्न होती है। ऐसे अवसरों पर मुसलमान मात्र अरबी का, यहूदी मात्र हिब्रू का, आर्थोडाक्स चर्च के ईसाई ग्रीक का, रोमन कैथोलिक लैटिन का प्रयोग करते हैं। इन लोगों का ऐसा करना अहैतुक नहीं है। उसके पीछे केवल दुराग्रह या पुराणपन्थीपन नहीं है। मैं इस प्रश्न के विभिन्न पहलुओं पर सोचने के बाद जिन कारणों से संस्कृत का समर्थन करता हूं उनमें चार मुख्य हैं।

मन्त्र-भावना का अभाव

संस्कार धर्म का अंग होता है। हिन्दुओं के यहां विवाह और अन्त्येष्टि जैसे कई संस्कार हैं। विवाह को ही लीजिए। यों तो 'सिविल मैरिज' भी विवाह है, उसमें वर-वधू कुछ प्रतिज्ञा करते हैं। गान्धर्व-विवाह में भी हल्की-सी प्रतिज्ञा होती है, आसुर-विवाह में भी हो सकती है पर आज तो ब्राह्म-विवाह प्रचलित है। इसमें वर-वधू की ओर से प्रतिज्ञायें होती हैं पर केवल प्रतिज्ञा कर देना ही विवाह नहीं है और भी कई कृत्य होते हैं। ऐसा माना जाता है कि मन्त्रों के प्रभाव से देवगण उपस्थित होते हैं। ऐसा होता हो या न होताहो पर जिन लोगों के लिए संस्कारों की भाषा बदलने की बात सोची जा रही है उनका ऐसा ही विश्वास है।वे ऐसा मानते हैं कि समाधि से व्युत्थित ऋषियों के मुँह से विशेष अवसरों पर जो शब्द-समूह निकले वे मन्त्र हैं। मन्त्रों को शब्द-समूह न कह कर ध्वनि-समूह या स्वर-समूह कहना अधिक उपयुक्त होगा। मन्त्र में अर्थ का महत्व गौण है, उसके स्वरों के विशेष गुम्फन और विशेष प्रकार से उच्चारण से अपूर्व फल की प्राप्ति होती है। यह फल अनुवाद से नहीं मिल सकता, क्योंकि अनुवाद चाहे संस्कृत में ही हो तब भी वह स्वरक्रम, ध्वनियों का वह सम्मिलित परिणाम, वह अपूर्व प्रभाव तो लुप्त हो ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जायगा। जो भाषा बदलना चाहता हो उसे पहिले लोगों के धार्मिक विश्वासों को बदलना होगा। केवल प्रतिज्ञा की बात होती, तो चतुर वकील समयानुकूल बहुत अच्छा समयपत्र, इकरारनामा, तैयार कर सकते हैं।

परम्परा-विच्छेद

वर-वधू को तथा उनके सम्बन्धियों को व्यक्त या अव्यक्त रूप से यह भावना रहती है कि जो कृत्य आज हो रहा है वह लाखों वर्षों से होता चला आया है। ऐसा ही विश्वास यज्ञोपवीत या श्राद्ध के सम्बन्ध में होता है। वेद लाखों साल पुराने हों या न हों परन्तु उनका कुछ भाग तो दस सहस्र वर्ष से भी पहिले का है। ऋग्वेद में सूर्य के विवाह का वर्णन है। आज हमारे आपके घर उसी का अनुसरण हो रहा है। वैदिक ऋषि पथकृत् (मार्ग बनाने वाले) नः पूर्वेपितरः (हमारे पूर्व पितर), भृगवः अंगिरसः आदि का स्मरण करते हैं। क्या यह थोड़ी बात है कि आज भी हम उन्हीं शब्दों के सहारे लौकिक-पारलौकिक अभ्युदय का द्वार खोल रहे हैं, जिनका प्रयोग आज से सहस्रों वर्ष पूर्व इन पूर्वजों ने किया था? इस विचार में ही कितना गौरव है? इस बात पर ध्यान देने से ही कैसा गाम्भीर्य पूर्ण आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न हो जाता है? हिन्दी में कृत्य होने से वह बात नहीं आ सकती।

मैं जानता हूं कि संस्कृतेतर नवीन भाषाओं में भी विशेष अवस्थाओं में गाम्भीर्य आ सकता है। सिख अपने विवाह को हिन्दू-विवाह से कम गम्भीर या पवित्र नहीं मानता, उसके संस्कारों में भी गम्भीर वातावरण रहता है। बात सीधी है। सिख- -साम्प्रदाय के प्रवर्तक भाषा सुधारक नहीं थे, योगी थे। जब धर्म का ह्रास होता है तो परिस्थिति के अनुसार उसके पुनः संस्थापन के लिए महात्मागण अवतरित होते हैं। वे तपस्वी, योगी होते हैं। उनके समाहित चित्त से जो बात उठती है वह मंत्रकल्प होती है। उसमें शक्ति होती है। पंजाबी, हिन्दी, बंगला, तमिल, चीनी वे चाहे जिस भाषा का प्रयोग करें, नयी परम्परा के प्रवर्तक होते हैं। यदि कोई ऐसा महापुरुष हिन्दी को यह पद दे देगा तो फिर हम वेदमंत्रों की जगह उसके द्वारा अवतरित रचनाओं को दे देंगे, तब तक मंत्र ही रहेंगे। यदि आज लाखों मनुष्य पाली या पंजाबी को धर्मभाषा का स्थान देते हैं तो इसका कारण यह नहीं है कि ये भाषायें संस्कृत से भिन्न हैं——पाली भी अब बोलचाल की भाषा नहीं रही——प्रयुक्त यह कि इनके पीछे गौतम बुद्ध, महावीर, नानक का तप काम कर रहा है।

संस्कृति-संकोच

मुसलमान कहीं भी चला जाय उसको धर्मकृत्यों के अवसर पर अरबी सुनने को मिलेगी। रोमन कैथोलिक के प्रत्येक गिरजा में, प्रत्येक संस्कार पर, लेटिन से काम लिया जाता है। ठीक इसी प्रकार हिन्दू को सारे भारत में——मैं बाहर की बात छेड़ देता हूं——संस्कृत सुन पड़ती है। आज बोलचाल में उसका स्थान नहीं है, फिर भी वह मृतभाषा नहीं है। हर प्रान्त में उपनयन, विवाह, श्राद्ध के वही मंत्र हैं, यज्ञ-होम में स्वाहा के साथ वही वाक्य बोले जाते हैं. मन्दिर में वही स्तोत्र सुन पड़ते हैं। परन्तु आगे चल कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा न हो सकेगा। जो अधिकार हिन्दी को है वही अन्य प्रान्तीय भाषाओं को है और जिस हेतु के बल पर संस्कारों की भाषा बदलने का प्रस्ताव रखा जाता है वह यज्ञ, होम, पूजा——सर्वत्र लागू होता है। फलतः सब कुछ प्रान्तीय भाषाओं में होने लगेगा। हिन्दी भले ही राष्ट्रभाषा हो परन्तु वह देश भर की धर्मभाषा नहीं हो सकती। या तो संस्कृत रहेगी या कोई भी सार्वभौम धर्मभाषा न रह जायगी। प्रत्येक प्रान्त में वहीं की भाषा सुबोध और सर्वबोध होगी। तो फिर प्रत्येक प्रान्त में धर्मकार्यों के लिए पृथक् भाषा होगी।

आज हिन्दू को जो यह भावना होती है कि समस्त भारत में एक धर्म है वह जाती रहेगी। यानी कहीं भी जाय, आज उसके कानों में बारम्बार वही शब्द आते हैं। मैं इतने बड़े समुदाय का अंग हूँ यह सोच कर ही आत्माभिवृद्धि होती है। उक्त सुझाव के मान लेने से ऐसा न हो सकेगा। जिस प्रकार यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों के प्रोटेस्टैण्ट ईसाई एक-दूसरे से पृथक् हैं उसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रान्तों के हिन्दू एक दूसरे से दूर पड़ जायेंगे और जिस संस्कृति का प्रतीक संस्कृत भाषा है वह संकुचित हो जायगी। थोड़े से विद्वान उसको उसी प्रकार पढ़ते जायेंगे जैसे आजकल कुछ लोग लगन से प्राचीन मिस्र या अवकाद या सुमेर के खँडहरों में पड़े मूर्तिखण्डों या प्रस्तर लेखों का अध्ययन करते हैं। परन्तु संस्कृत का, संस्कृत वाङ्मय का, उस प्राचीन संस्कृति का जिसकी अभिव्यक्ति और रक्षा संस्कृत द्वारा हो रही है, हमारे जीवन से स्फूर्तिप्रद सम्बन्ध टूट जायगा। हमारे धर्म और धार्मिक भाषा ने ही अब तक हमको प्रान्तीयता से बचाया था। कोई हिन्दू हो, उसके लिए सभी प्रान्तों के संस्कृत विद्वान एक से हैं, संस्कृत ही सबको एक माला में पिरोये रहती है। प्रान्तीय भाषाओं को धर्मभाषा बनाने से यह डोरी टूट जायगी। सारे देश के धर्माचार्यों को एकत्र करना और उनसे किसी विषय में व्यवस्था लेना प्रायः असम्भव हो जायगा।

हमको हिन्दी से प्रेम है परन्तु धर्म और संस्कृति का स्थान भाषा से ऊँचा है। सम्भवतः हिन्दी का पक्ष उपस्थित करते हुए समस्या के इन पहलुओं पर दृष्टि नहीं गयी है क्योंकि मैं नहीं समझता कि टण्डन जी या उनके जैसे दूसरे लोग इस प्रकार की उथल-पुथल मचाने की बात सोच रहे हैं। हमको इस समय देश में ऐसा कोई सुझाव न रखना चाहिए जो संकुचित भावों को, प्रान्तीयता को, पार्थक्यबुद्धि को, प्रोत्साहन दे। प्रत्येक परिवर्तन वांछनीय सुधार नहीं होता।

अनुवाद की अप्रामाणिकता

मान लिया जाय कि इन सब बातों को गौण ठहरा कर हिन्दी से काम लेना ही तय हो तो अनुवाद कौन करेगा? भिन्न-भिन्न पण्डितों के किये अनुवादों में से कौन मान्य होगा? सनातनधर्मी व्यवस्था चलेगी या आर्यसमाजी या स्वतन्त्र विचार की? गद्य चलेगा या पद्य, तो दोहा-चौपाई-सवैया या शिखरणी, मालिनी, आर्या या रबड़ छन्द? ये बातें यों ही नहीं टाली जा सकतीं। आज व्याख्याओं में चाहे जो भेद हो पर शब्द सर्वत्र एक ही हैं। कल घर-घर शब्दावली भेद देख पड़ेगा। कोई स्थिरता, मर्यादा, गम्भीरता न रहेगी। कभी-कभी न्यायालय तक मामले जायेंगे, सम्पत्ति के लिए यह बात दिखलायी जायगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि अमुक विवाह वैध नहीं है क्योंकि उसमें अमुक वाक्य नहीं पढ़ा गया या अशुद्ध अनुवाद पढ़ा गया, इत्यादि। यह अनवस्था तो किसी को भी अभीष्ट नहीं हो सकती।

यूरोप में जब प्रोटेस्टेण्ट लोगों का यह आन्दोलन चला कि लैटिन की जगह बाईबिल प्रचलित बोलियों में होनी चाहिए तो वहां भी यही दुर्दशा होती परन्तु एक बात ने बचा लिया। इंग्लैण्ड को लीजिए। प्रजा ही नहीं राजा भी प्रोटेस्टेण्ट हो गया। प्रोटेस्टेण्ट मत राज धर्म है। आज भी इंग्लैण्ड का राज 'डिफेण्डर आव दि फेथ' (धर्मगोप्ता) कहलाता है। सब पादरी उसके अधीन हैं। राज की ओर से बाइबिल का अनुवाद कराया गया। इसको 'अथराइज्ड वर्शन' (प्रमाणिक संस्करण) कहते हैं। सब गिरजाघरों में इसी से काम लिया जाता है, राज इसी को मानता है। यदि कहीं अनुवाद में दोष प्रतीत होता है तो राज की ओर से ही संशोधन कराया जाता है। यही बात अन्य प्रोटेस्टेण्ट देशों में हुई। परन्तु भारत में क्या होगा? लोग व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा हिन्दू सामाजिक-प्रथाओं में परिवर्तन कराने का विरोध करते हैं क्योंकि इन सभाओं में भिन्न-भिन्न मतों के मानने वाले सदस्य हैं। तो क्या अब हम विभिन्न मतावलम्बी से बनी राष्ट्रीय सरकारों से प्रार्थना करेंगे कि हमारे धर्म की पुस्तकों की प्रामाणिकता का निर्णय कीजिए?

मैं आशा करता हूँ कि लोग इन बातों पर गम्भीरता से विचार करेंगे और यह हानिकारक सुझाव आन्दोलन की पदवी को प्राप्त न करने पायेगा।

इसके साथ ही हमको उन बातों की ओर तो ध्यान देना ही है जिनके कारण यह बात उठी है। यह आशा तो की नहीं जा सकती कि हमारा ब्राह्मणवर्ग सचेत होगा। उसने तो 'पीत्वा मोहमयी प्रमाद-मदिराम्' सब कर्त्तव्यों से, सब धर्मों से, छुट्टी ले ली है परन्तु धर्म उनका ही नहीं हमारा भी है, उनसे बढ़ कर हमारा है। वैद्य से बढ़ कर रोगी को अपने शरीर से प्रेम होता है। संस्कृत कुछ ऐसी कठिन नहीं है। उसका प्रचार बढ़ाना चाहिए; नित्योपयोगी मन्त्रों और संस्कार-विधियों के अनुवाद निकलने चाहिए और धर्म की मुख्य बातों को लोगों तक पहुंचाना चाहिए। वर-वधू की प्रतिज्ञा ही नहीं दूसरे कृत्यों को समझ करं उनमें भाग लेने से लोगों को रस भी अधिक मिलेगा, पुण्य भी अधिक होगा और धर्म शुष्क क्रिया-कलाप की जगह जीवित स्फूर्तिस्त्रोत बन जायगा।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर, समाजवाद और भारतीय संस्कृति

जिला बोर्डों के चुनाव के सिलसिले में सन् १९४८ में किये गये पंडित गोविन्द बल्लभ पन्त और आचार्य नरेन्द्रदेव के भाषण-प्रतिभाषण से एक ऐसा प्रश्न सामने आया था जिसका महत्त्व चुनाव के क्षेत्र का अतिक्रमण करके हमारे समस्त सांस्कृतिक जीवन सें सम्बन्ध रखता है। प्रश्न यह है कि ईश्वर-निष्ठा भारतीय संस्कृति का अनिवार्य अंग है या नहीं और समाजवाद भारतीय संस्कृति के अनकूल है या प्रतिकूल।

मैं अपनी रचनाओं में बार-बार यह कहता रहा हूं कि समाधिजन्य अनुभव ही ज्ञान का सर्वश्रेष्ठ साधन है। श्रुति को स्वत: प्रमाण मान कर मैंने वेद मंत्रों की व्याख्या की है। 'चिद्विलास' में मैंने यह दिखलाने का प्रयास किया है कि अद्वैतवाद की भित्ति पर व्यावहारिक समाजवाद की स्थापना की जा सकती है। ऐसा व्यक्ति भारतीय, स्पष्ट शब्दों में हिन्दू-संस्कृति का उपासक तो होगा ही। अपने विषय में इतना कह कर मैं यह कहना चाहता हूं कि मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर-निष्ठा हमारी सांस्कृतिक परम्परा का अनिवार्य अंग नहीं है।

ऋग्वेद हमारा प्राचीनतम आम्नाय है। उसमें ईश्वर की ओर कहीं स्पष्ट संकेत नहीं है। यजुर्वेद ऋग्वेद की अपेक्षा अर्वाचीन संग्रह है। उसका कम से कम शुक्ल यजुर्वेद का इतिहास ही बताता है कि वह कलि के आरम्भ में अवतरित हुआ। उसमें ईश्वर का उल्लेख है परन्तु रुद्र के प्रसंग में। यह ठीक है कि 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'। इस न्याय से रुद्रादि परमात्मा के ही विभिन्न नाम हैं। इसी न्याय से रुद्राध्याय में रुद्र को श्वपति, सेनापति, कुलुंचपति, स्तेनपति आदि अनेक नामों से प्रमाण किया गया है। इसी न्याय से प्रत्येक बालुकण, प्रत्येक तिनका, प्रत्येक कीड़ा, परमात्मा से अभिन्न है। परन्तु हम कुत्ता, चोर, सेनापति, घास, दीमक, चट्टान आदि की पूजा नहीं करते। जब तक द्वैतानुभूति है तब तक इन्द्र, रुद्र, अग्नि आदि की पृथक् सत्ता है। यह सत्ता वेद-मंत्रों से स्पष्ट रूप से प्रकट होती है परन्तु उतने स्पष्ट रूप से इन सबमें अनुस्यूत ईश्वर की सत्ता का व्यंजन नहीं होता।

जैमिनि ने जिस शास्त्र का प्रवर्तन किया है उसका काम है संहिता भाग की मीमांसा करना, उसके अर्थ को स्पष्ट करना। मीमांसक को वेद में ऋत्सत्यात्मक कर्म की ध्रुव प्रणाली मिलती है परन्तु ईश्वर नहीं मिलता। यह कहा जा सकता है कि कर्म ईश्वर का ही पर्याय है। सम्भव है ऐसा ही हो परन्तु ईश्वर में जो संकल्प-भावना की जा सकती है वह कर्म में नहीं हो सकती। महर्षि कपिल विष्णु के अंशावतार थे। 'सिद्धानां कपिलो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुनिः' कह कर श्रीकृष्ण उनकी महत्ता स्वीकार करते हैं। उनके मतानुसार जगत् में केवल पुरुष और प्रधान की सत्ता है। सांख्याचार्य ईश्वर को सिद्ध मानते हैं। यह प्रमाण दिखलाते हैं कि भारतीय संस्कृति में अनीश्वरवादी के लिए भी स्थान है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर ने जिन विचार-धाराओं का प्रवर्तन किया वह भारतीय संस्कृति से पृथक् नहीं की जा सकती। बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने भारत की सांस्कृतिक जड़ को पर्याप्त पुष्टि दी है। यह दोनों ही मत अनीश्वरवादी हैं।

यह ठीक है कि हमारे यहां ब्रह्मवादी, परमात्मवादी और ईश्वरवादी के लिए भी स्थान है। ब्रह्म तो अखण्ड, चिद्घन, अद्वय, वाङ्मनसगोचर सत्पदार्थ है। उसका वर्णन नहीं हो सकता, इसलिए श्रुति नेतिनेति—यह नहीं, यह नहीं,—कहती है। उसकी उपासना नहीं हो सकती। ब्रह्म शब्द नपुंसक लिंग का है। परमात्मा मायाप्रबल ब्रह्म है। ब्रह्म चिन्मात्र था, परमात्मा चेतन है। उससे एक स्तर नीचे ईश्वर पद है। एकता अनेकता में परिणत हो चुकी है पुरुष और प्रधान की अभिव्यक्ति हो चुकी है परन्तु इससे ईश्वर की सत्ता विभक्त नहीं होती। वह नानात्व के भीतर और बाहर है, फिर भी अविभक्त और एक है। ईश्वर ज्ञान और शक्ति का समुच्चय है। व्यष्टि, व्यक्ति के अविद्या-जनित, कल्पित, अल्पत्व की अपेक्षा बृहत्, सर्व है। यह सब कुछ होते हुए भी यह ईश्वर इस्लाम या यहूदी धर्म के ईश्वर की भांति निरंकुश और शक्तिमान् नहीं है। शताब्दियों के इस्लामी संसर्ग ने हिन्दू ईश्वर को कुरान के खुदा के रंग में बहुत कुछ रंग दिया, फिर भी वह पूर्णरूप से स्वच्छन्द न बन पाया। उसके वैभव की चाहे जितनी प्रशंसा की जाय परन्तु वह पूर्णतया, 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं' समर्थ न हो सका क्योंकि उसका भक्त यह न भुला सका कि 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा'।

बहुत कुछ भ्रम आस्तिक-नास्तिक शब्दों के दुष्प्रयोग के कारण होता है। हमारे प्राचीन ग्रंथ नास्तिक की निन्दा करते हैं परन्तु अनीश्वरवादी को नास्तिक नहीं कहते, न ईश्वरवादी को आस्तिक कहते हैं। जो वेद को अन्तिम प्रमाण मानता है वह आस्तिक है। जो ऐसा नहीं मानता वह नास्तिक है। अनीश्वरवादी होते हुए भी सांख्यमतानुयायी आस्तिक है, क्योंकि वह वेद को स्वतः प्रमाण मानता है। वेद को न मानने वाला ईश्वरवादी मुसलमान या ईसाई नास्तिक है। बौद्ध अनीश्वरवादी भी है और नास्तिक भी।

मार्क्सवाद के लिए स्थान नहीं

समाजवादी के लिए अनीश्वरवादी होना आवश्यक नहीं है परन्तु अनीश्वरवादी तो क्या, नास्तिक रह कर भी मनुष्य भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के अनुकूल रह सकता है। भारतीय संस्कृति का मूल धर्म, तप, त्याग, आत्मचिन्तन है। यह बात ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी ही नहीं आस्तिक और नास्तिक दोनों को सुलभ है। परन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जड़वाद, भौतिकवाद, प्रधानवाद या अनात्मवाद भारतीय संस्कृति से मेल नहीं खाता। इसलिए शुद्ध मार्क्सवाद के लिए हमारे यहां जगह नहीं है। भारत में एक ही अनात्मवादी का जन्म हुआ परन्तु चार्वाक् अपने नाम के सिवाय और कुछ नहीं छोड़ गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने एक समाचार-पत्र में समाजवाद के विरुद्ध एक विचित्र तर्क देखा। उक्त पत्र का कहना था कि चूंकि समाजवाद सबको बराबर करना चाहता है इसलिए वह कर्म सिद्धान्त को ही काटना चाहता है। कर्मों के अनुसार वैषम्य होना ही चाहिए। अतः समाजवाद अग्राह्य है। इस ज्ञान और बुद्धि की बलिहारी। पहिले तो समाजवाद सबको बराबर करने का दावा नहीं करता परन्तु सबको समान-रूप से अवसर देना चाहता है। वह मनुष्यकृत कृत्रिम विषमताओं को दूर करता है पर यह नहीं कहता कि वह सबको समान रूप से बुद्धिमान, बलवान् या विद्वान् बना देगा। यह प्राकृतिक भेद रहेगा और इनके कारण लोग विभिन्न कामों में लगेंगे। उन कामों को विभिन्न प्रकार से सम्पादित करेंगे और समाज से विभिन्न मान के आदरादि से पुरस्कृत होंगे। यदि वैषम्य को हटाने का प्रयत्न कर्म-सिद्धान्त के विरुद्ध और अभारतीय है तो रोग को दूर करने वाला चिकित्सा-शास्त्र भी अभारतीय है। मेरी तो धारणा है कि समाजवादी व्यवस्था से ही भारत का कल्याण होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू धर्मशास्त्र में संशोधन

जब से केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में हिन्दू-शास्त्र संबंधी बिल उपस्थित किया गया तब से हिन्दू समाज में खलबली मच गयी है। आजकल राव-कमेटी उसके सम्बन्ध में लोकमत संग्रह करने के लिए घूम रही है। फलतः पक्ष-विपक्ष का आन्दोलन और जोर पकड़ गया है। पक्ष में तो कम आन्दोलन हैं, विपक्ष में ही धूमधाम है। दुःख की बात यह है कि यह धूमधाम कम से कम इसका बहुत बड़ा अंश, अज्ञान पर अधिष्ठित है। जो लोग बिल का विरोध कर रहे हैं उनमें से अधिकतर को यह पता नहीं है कि उसमें क्या है। बहुतों ने उसको पढ़ा नहीं है, केवल सुनी-सुनायी बातों के आधार पर शोर कर रहे हैं। कितनों के विरोध का एकमात्र इतना आधार है कि धर्मशास्त्र में संशोधन करने का विचार है, यह अनर्थ है, धर्म का लोप हो जायगा, हिन्दुत्व भूतल से मिट जायगा। बहुत से लोगों को इसी बात से चिढ़ है कि व्यवस्थापिका सभा, जिसमें हिन्दू-अहिन्दू, ब्राह्मण-अब्राह्मण सभी प्रकार के सदस्य हैं, इस कार्य को क्यों करने जा रही है। इस प्रकार के नासमझ व्यक्ति हिन्दू-समाज का हित नहीं कर सकते और न समाज का कल्याण उन लोगों के हाथों हो सकता है। जो बिल का समर्थन केवल इसलिए करते हैं कि इसके अनुसार हिन्दू-विवाह या उत्तराधिकार विषयक विधान दूसरे सम्प्रदायों के विधानों के समान हो जायेंगे।

मैं अपने सम्बन्ध में इतना कह देना चाहता हूं कि जिस रूप में बिल हमारे सामने आया है मैं उसको पसन्द नहीं करता, अतः उसके विरुद्ध हूँ; परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि संशोधन और सुधार को अनावश्यक समझता हूं। मेरा विचार है कि यहाँ बिल के मुख्य अंशों को सामने रख कर विमर्श उपस्थित करूँ। यदि लोगों को इस बात की जानकारी होती कि उसमें क्या-क्या है तो मेरा काम हल्का हो जाता। हमारे समाचार-पत्रों ने भी इस सम्बन्ध में अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया। राव-कमेटी की यात्रा आरम्भ होने के पहिले उनको पूरी बिल छाप देना चाहिए था। जगह बहुत घिरती परन्तु जो चीज समाज को इस प्रकार हिला रही है, जिसका प्रभाव आगे चल कर समाज के रूप को परिवर्तित कर सकता है, उसके लिए जगह निकालनी ही चाहिए थी।

केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में हिन्दू धर्मशास्त्र सम्बन्धी बिल प्रस्तुत होने पर जो आंदोलन उठ खड़ा हुआ था उसी से लक्ष्य कर यह लेख लिखा गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सरकार ने विचारार्थ हिन्दू-धर्मशास्त्र-संग्रह के नाम से इसका अनुवाद प्रकाशित क्रिया परन्तु बहुत ही कम प्रतियाँ छापी गयीं। अब यह संग्रह अलभ्य है।

खोखले तर्क

कुछ और कहने के पहले मैं यह कह देना चाहता हूं कि यह तर्क मेरे लिए निस्सार है कि व्यवस्थापिका-सभा को धर्मशास्त्र में संशोधन करने का अधिकार नहीं है। यह पृथक प्रश्न है कि किसी दिशा विशेष में संशोधन की आवश्यकता है या नहीं परन्तु यदि आवश्यकता प्रतीत हो ही जाय तो संशोधन कैसे होगा? यह सम्भव है कि कोई तपोधन योगीश्वर जन्म लें और अपने व्यक्तित्व के बल पर समाज में संशोधन को प्रचलित कर दें। परन्तु हम अपनी इच्छा मात्र से योगीश्वरों का अवतार नहीं करा सकते और न उनके जन्म लेने की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे रह सकते हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि जब आवश्यकता होगी तब ऐसे महापुरुष आप ही आ जायेंगे। आज लाखों गौएं कट रहीं हैं, कोई अवतारी पुरुष क्यों नहीं आता? क्या अवतार के लिए मुंह ताकते रहें और गौवध रोकने के लिए प्रयत्न किया जाय? जो भी प्रयत्न होगा अन्ततोगत्वा उसको कार्यान्वित करने का दायित्व तो सरकार पर ही होगा। इस समय हिन्दू-राज नहीं है, न निकट भविष्य में ऐसे राज के स्थापित होने की कोई सम्भावना है। जो भी सरकार होगी उसका दायित्व सब भारतीयों के प्रति होगा। उसमें सब भारतीयों का प्रतिनिधित्व होगा। अतः जो भी सुधार होगा उसमें व्यवस्थापिका सभा का हाथ होगा। हाँ, आपस में ऐसा समझौता हो सकता है कि जिस सम्प्रदाय के धर्मशास्त्र में परिवर्तन की बात उपस्थित हो उसी सम्प्रदाय के सदस्यों के बहुमत से निर्णय हो। ऐसा समझौता आज भी है।

क्या धर्म-शास्त्र नित्य है?

यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दुओं का धर्मशास्त्र नित्य है, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। एकाधिक स्मृतियों का अस्तित्व ही इस बात का प्रमाण है कि समय-समय पर शास्त्रीय-व्यवस्था में परिवर्तन होता रहा है। स्मृति का आधार श्रुति, वेद है। वेद नित्य है, वेद प्रतिपादित धर्म का मूल-आधार नित्य है, परन्तु देश, काल, पात्र के अनुसार धर्म का बाहरी रूप बदलता रहा है। ऐसा कहा जाता है कि कलियुग में पाराशर-स्मृति प्रमाण है। पाराशर तो मनु के बहुत से पीछे हुए हैं, इससे स्पष्ट है कि सब स्मृतियों का समय एक नहीं है और प्रस्थान भेद से उनसे काम लिया जाता है। एक ही याज्ञवल्क्य स्मृति की दो व्याख्याओं के अनुसार किसी प्रांत में दायभाग विधि चल रही है, कहीं मिताक्षरा। यदि धर्म का रूप नित्य; एकरस, होता तो ऐसा कब सम्भव होता? जीवित-समाज में आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियां बदला ही करती हैं। आज सभी रेल पर चढ़ते हैं, गली-गली नल का पानी बहता है, सभी को अस्पतालों से काम पड़ता है। क्या आजकल पहिले जैसा स्पर्शास्पर्श व्यवहार सम्भव है? जब यहां सब हिन्दू ही थे तब चाहे जो कुछ हो रहा हो रहा हो पर जब देश में ईसाई, मुसलमान जैसे सम्प्रदाय विद्यमान हैं, जिनमें दीक्षित हुए व्यक्ति पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगाना ब्राह्मणादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिवर्ण के बल की बात नहीं है तो फिर क्या उन पुराने स्मृति-वाक्यों की कोई सार्थकता रह गयी है जिनमें शूद्रों को भांति-भांति दबा कर रखने का विधान किया गया है? यह कौन नहीं देख रहा है कि शुद्ध आर्थिक कारणों के आघात से सम्मिलित परिवार की प्रथा टूट रही है? ऐसी दशा में यह कहते जाना कि हिन्दुओं की सामाजिक अवस्था आज से पांच हजार या दो हजार या दो सौ वर्ष पहिले जैसी है, अपने को उन्मत्त घोषित करना है। जब समाज का स्वरूप बदला है तो धर्मशास्त्र का रूप भी बदलना चाहिए। बुद्धिमानों का काम यह है कि श्रुति-सम्मत शाश्वत तथ्यों की समयानुकूल मीमांसा करके ऐसे उपयुक्त धर्मशास्त्र की रचना करें जो अभ्युदय का स्पष्ट साधक हो और निःश्रेयस की प्राप्ति में भी सहायक हो। यदि समय से ऐसा न किया गया तो लोगों को धर्मशास्त्र की ओर से विरक्ति हो जायगी। प्रस्तुत बिल का विरोध भले ही किया जाय परन्तु यदि इसे विरोधी समझदार, धर्मज्ञ, लोकहिताकांक्षी हैं तो उनको चाहिए की इसके स्थान में कोई दूसरा विधान उपस्थित करें। जो लोग ऐसा कह रहे हैं कि संशोधन की आवश्यकता नहीं है या वर्त्तमान-काल में संशोधन करने का अधिकार किसी को नहीं है वह जानतः या अजानतः हिन्दू-धर्म और हिन्दूसमाज का शत्रु है। आज तो हल्के उपचार से काम चल सकता है पर हिन्दुत्व के नाम पर शोर मचाने वाले एक दिन अंगच्छेद करा के ही चैन लेंगे।

(२)

बिल का उद्देश्य

प्रस्तुत बिल का मुख्य उद्देश्य, जो उसके नाम से भी प्रकट है, हिन्दू-धर्म-शास्त्र का संग्रह, एकत्रीकरण है। धर्मशास्त्र के विधान भिन्न-भिन्न स्मृतियों की टीकाओं, न्यायालयों के फैसलों और कानून की पुस्तकों में बिखरे पड़े हैं। जाति उपजातियों के, तथा विभिन्न प्रदेशों के, लोकाचार भी इस विषय में प्रमाण की पदवी पाते हैं और स्मृतियों के स्पष्ट वाक्यों के बलवत्तर माने जाते हैं। इस बिल में यह प्रयत्न किया गया है कि ऐसी सब बातों को एक जगह कर दिया जाय, एक पुस्तक में लिख दिया जाय ताकि जनता भी अपने कर्त्तव्यों को ठीक-ठीक जान ले, न्यायालयों को भी भटकना न पड़े, वह एक सर्वसम्मत आधार पर निर्णय कर सकें। इस उद्देश्य को बुरा नहीं कहा जा सकता। यदि धर्मशास्त्र सर्वसम्मत या बहुआचार्यसम्मत सिद्धान्तों को एक जगह जमा कर दिया जाय और यह भी स्पष्ट कर दिया जाय कि यह संग्रह आज से अशास्त्रीय अर्थात् शास्त्राधारविहित, लौकिक प्रथाओं की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक माना जायगा तो इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? संग्रह करना तो स्तुत्य प्रयास है, हाँ, यह विवादास्पद हो सकता है कि किन-किन बातों का संग्रह किया जाय। मैं एक बात बतला दूं। प्रस्तुत बिल वस्तुतः उतना व्यापक नहीं है जितना कि इसके नाम से प्रतीत होता है। धर्मशास्त्र के अन्तर्गत तो चारों वर्णों और आश्रमों के धर्म, षोडश संस्कार, दर्शपौर्णमास, व्रत, उपवास आदि विषय भी आते हैं परन्तु इसमें केवल वह बातें ली गयी हैं जिनके सम्बन्ध में मुकदमे चलते हैं या चल सकते हैं। इसलिए इसके प्रथम भाग में, जिसको प्रारम्भिक भाग कहते हैं, परिभाषा आदि आवश्यक भूमिका देकर, शेष पांच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागों में क्रमात् मृत्यु-लेख के अभाव में उत्तराधिकार, मृत्यु-लेख के आधार पर उत्तराधिकार, विवाह और विवाह सम्बन्ध-विच्छेद, अप्राप्त वयस्कता तथा संरक्षकता और दत्तक-विधान का समावेश किया गया है

हिन्दु किसे कहें?

हिन्दू धर्मशास्त्र का प्रश्न कितना टेढ़ा है यह इससे देखा जा सकता है कि हिन्दू शब्द की परिभाषा करना कठिन है। कानून पढ़ने वाले विद्यार्थियों के सामनें यह कठिनता आती है। हिन्दू किसको कहते हैं, इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर देना सुकर नहीं है। यह कहा जा सकता है कि जो वेद को अन्तिम प्रमाण मानता है वह हिन्दू है परन्तु वीरशैव, भागवत और शाक्त श्रुति के स्थान में अपने-अपने आगमों को ही प्रमाणपद देते हैं। क्या जिस प्रकार प्रत्येक मुसलमान कुरान के नाम से परिचित है उसी प्रकार प्रत्येक हिन्दू वेद के नाम से परिचित है? यह हमारे ब्राह्मण वर्ग का अक्षम्य पाप है कि उन्होंने वेद को हमसे छुड़ा दिया पर इस समय वस्तुस्थिति यह है कि सौ में नब्बे से अधिक हिन्दू कहलाने वाले वेद को न जानते हैं, न मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि जो लोग हिन्दू दायविधान मानते हैं वह हिन्दू हैं पर यह परिभाषा भी दूषित है। बम्बई के बोहरे मुसलमान हैं परन्तु उनमें हिन्दू दायविधान चलता है; दूसरी ओर, केरल प्रान्त के परम पवित्र नाम्बूदिरि ब्राह्मणों में शास्त्र से असम्मत दायविधान प्रचलित है--सम्पत्ति का मुख्य अधिकारी पुत्र नहीं वरन् भांजा होता है। फिर हिन्दू किसे कहते हैं? हार कर कुछ विद्वानों का यह मत हुआ है कि जो अपने को हिन्दू कहे वह हिन्दू माना जाय। कोई एक ऐसा उपास्य नहीं है जिसको सब हिन्दू मानते हों। ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करना भी हिन्दू के लिए अनिवार्य नहीं है। हिन्दू-सभा के नेता ऐसा कहते हैं कि जो भारत को अपनी मातृभूमि और पुण्यभूमि माने वह हिन्दू है। फिर यह महत्त्व का प्रश्न है कि मनुष्य हिन्दुत्व से कब च्युत हो जाता है। सम्पत्ति के सम्बन्ध में यह प्रश्न आजकल उठ खड़ा होता है कि अमुक व्यक्ति ने अमुक का छुआ खा लिया उसको वर्णव्यवस्था या किसी दूसरे सिद्धान्त पर आस्था नहीं है, अतः वह हिन्दू नहीं रह गया, सम्पत्ति पर उसका अब कोई अधिकार नहीं रहा। इन सब कठिनाइयों को ध्यान में रख कर बिल में हिन्दू की यह परिभाषा की गयी है--

(क) वह व्यक्ति जो हिन्दू धर्म को अंगीकार कर ले।

(ख) कोई धर्मज या अधमर्ज बालक जिसके माता-पिता हिन्दू हों, यदि मां-बाप में एक ही हिन्दू हो तो यदि बच्चे का पालन-पोषण हिन्दू जैसा हुआ हो तो वह हिन्दू है।

(ग) कोई हिन्दू, सिख, बौद्ध, जैन जो शास्त्रीय-प्रथा से केवल विचलित हो गया हो या जिसने अपने धर्म के किसी सिद्धान्त विशेष में अविश्वास प्रकट किया हो।

(घ) ब्रह्मसमाजी और आर्य-समाजी।

यह परिभाषा बहुत व्यापक है और हिन्दुओं की सम्पत्ति की रक्षा में इससे बहुत सहायता मिलेगी। हिन्दू सभा की परिभाषा इसके भीतर आ जाती है। परन्तु कुछ लोगों को या स्यात् बहुत लोगों को (ख) के एक अंश में कुछ आपत्ति हो। वह लोग इतना तो मान लेंगे कि यदि कोई ब्राहमण अपने घर में शूद्रा उप-पत्नी डाल ले तो जो सन्तान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी वह हिन्दू होगी परन्तु हिन्दू की मुसलमान उप-पत्नी या मुसलमान की हिन्दू उप-पत्नी की सन्तान को हिन्दू कहने में हिचक होती है। सब लोग एक-पत्नी-व्रत रहें यह तो बहुत अच्छा है पर जब सब लोग ऐसे इन्द्रियजयी नहीं हैं, हिन्दू-अहिन्दू का रति-सम्बन्ध होता है, ऐसे सम्बन्ध से सन्तान भी होती है तब फिर क्या किया जाय? वह सन्तान क्या मानी जाय? नासमझ लोग, जो दूर-दूर करना ही महामंत्र समझते हैं, ऐसे बच्चों को विधर्मियों को सौंप देंगे परन्तु यह तो सर्वथा अन्याय है। यदि माता-पिता उसको हिन्दू की भाँति रखते हैं, मुण्डन-संस्कार कराते हैं, सिर पर शिखा रखते हैं, पुराणसम्मत देव-देवियों की पूजा कराते हैं, हिन्दुओं की भांति खाना-पीना-नहाना सिखाते हैं तो फिर बच्चा क्यों न हिन्दू माना जाय? कोई स्पष्ट श्रुतिस्मृति वाक्य इसके पक्ष में नहीं मिलता परन्तु विपक्ष में भी कोई प्रमाण नहीं है। हमारे प्राचीन आचार्यों के सामने यह समस्या थी ही नहीं। परन्तु एक बात देख पड़ती है। वह लोग माता-पिता के रति-सम्बन्ध को चाहे जैसा दूषित मानें परन्तु बच्चों केदण्ड देना उनको अभीष्ट न था, अन्यथा ब्राह्मण सिवाय और किसी विवाह-पद्धति को वैध न मानते। यह ठीक है कि प्रतिलोम रति-सम्बन्ध को वह बुरा मानते थे। हम भी उसका समर्थन भले ही न करें पर समय को भूलना न चाहिए। आज हिन्दू-समाज के बाहर निकल जाने का द्वार खुला है, पहिले ऐसा नहीं था। ऐसी दशा में अपनी संख्या को घटाते जाना बुद्धिमानी नहीं है, संख्या की कमी हमारे राजनीतिक प्रभाव को भी कम कर देगी।

हिन्दू शब्द की परिभाषा से यह देख पड़ता है कि बिल को उपस्थित करने वालों ने केवल प्रचलित विधानों का संग्रह नहीं किया है प्रत्युत जहाँ कोई विधान नहीं मिलता वहाँ अपनी ओर से नयी विधि भी बतायी गयी है। आगे चल कर हम देखेंगे कि उन्होंने प्रचलित विधानों में हेर-फेर भी किया है। यह हेर-फेर ही आक्षेप का लक्ष्य हुआ है।

(३)

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी को बिल के तीसरे भाग (मृत्यु-लेख—वसीयत नामे—के आधार पर उत्तराधिकार), पांचवें भाग (अप्राप्तवयस्कता तथा सरक्षकता) तथा छठें भाग (दत्तक विधान) के सम्बन्ध में अधिक आपत्ति नहीं है। सम्भवतः इधर ध्यान भी कम गया। इनमें कोई बहुत नयी बात है भी नहीं, परन्तु तीसरे भाग में आश्रितों की सूची देकर बहुत अच्छा काम किया गया है। इन आश्रितों की सम्पत्ति के दायभागियों से निर्वाह-वृत्ति पाने का कानूनी अधिकार होगा। यदि सरकार को सम्पत्ति मिल जाय तो वह भी निर्वाह-वृत्ति देने के लिए बाध्य होगी। निर्वाह-वृत्ति के दो अंश हैं—भोजन, वस्त्र, घर और अविवाहिता लड़की का विवाह तथा तत्सम्बन्धी भेंट और उपहार। आश्रितों की सूची ही नहीं दी गयी है वरन् निर्वाह-वृत्ति की मात्रा निर्धारित करने के सिद्धान्त भी दे दिये गये हैं। आश्रितों की क्रमागत सूची इस प्रकार है-पिता, माता, विधवा पत्नी (जब तक वह दूसरा विवाह न करे), पुत्र, मरे पुत्र का पुत्र, मरे पुत्र के मरे पुत्र का पुत्र (जब तक अप्राप्तवयस्क रहे), अविवाहिता पुत्री, विधवा पुत्री, पुत्र की विधवा, मृत पुत्र के पुत्र की विधवा, मृत पुत्र के मृत पुत्र के पुत्र की विधवा, अधर्मज अप्राप्त-वयस्क पुत्र, अधर्मजा अप्राप्तवयस्का पुत्री, वह उप-पत्नी जो साथ रहती रही हो जब तक चरित्र भ्रष्टा न हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(परन्तु यदि उसका सम्बन्ध सगोत्रीय व्यभिचार या पर स्त्रीगमन द्वारा स्थापित हुआ हो तो वह निर्वाह न पा सकेगी)।

लोगों के आक्षेप का क्षेत्र दूसरा और चौथा भाग है। हम पहले चौथे भाग को लेते हैं। इसमें विवाह और विवाह-सम्बन्ध-विच्छेद का विधान है। विवाह के विषय में कोई विशेष नवीनता नहीं है। 'सिविल मैरेज ऐक्ट' का न्यवर्तन तो इसका काम नहीं है परन्तु इसमें यह बात स्वीकार की गयी है कि हिन्दू-समाज में विवाह को जो संस्कार माना जाता है, विवाह-संस्कार की ब्राह्म पद्धति ही आजकल मान्य रह गयी है, विवाह में गोत्र, प्रवर, सपिण्ड जैसी बातों का विचार आवश्यक है। कोई दूसरा कानून भले ही इन बातों में संशोधन कर दे परन्तु प्रस्तुत बिल ने इनको प्रायः ज्यों का त्यों रहने दिया है। उसने नयी बात यह की हैं कि विवाह-विच्छेद को वैधता प्रदान करने का प्रयत्न किया है। विच्छेद के इसमें दो रूप हैं, शिथिलीकरण और उत्पाटन।

शिथिलीकरण

शिथिलीकरण की दशा में सम्बन्ध बना रहता है परन्तु ढीला हो जाता है, परिस्थिति बदल जाने से फिर पूर्ववत् दृढ़ हो सकता है। शिथिलीकरण का अर्थ यह है कि कुछ विशेष अवस्थाओं में पत्नी पति से अलग रहेगी परन्तु पति से निर्वाह-वृत्ति पाती रहेगी। जिन पांच अवस्थाओं में न्यायालय ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं वे ये हैं--

(१) यदि पति किसी ऐसे घृणित रोग से पीड़ित हो जो उसे पत्नी से न मिला हो, या

(२) वह घर में उप-पत्नी रखता हो, या

(३) वह ऐसी क्रूरता करता हो कि उसके साथ रहने में प्राणों के लिए भय हो या अंगभंग का डर हो या साथ रहना अन्य प्रकार अवांछनीय हो, या

(४) वह हिन्दू धर्म छोड़ दे, या

(५) पत्नी का परित्याग कर दे।

उत्पाटन का अर्थ है जड़ से उखाड़ देना, ऐसा मान लेना कि अब तक का सम्बन्ध विवाह था ही नहीं। इसके लिए चार शर्तें रखी गयी हैं--

(१) पति विवाह के समय नपुंसक था, या

(२) दम्पती ऐसी पीढ़ियों में हैं जिनमें सपिण्ड आदि दोषों के कारण विवाह निषिद्ध है, या

(३) विवाह के समय दो में से एक पागल था, या

(४) विवाह के समय पुरुष की कोई दूसरी पत्नी या स्त्री का कोई दूसरा पति जीवित था।

इन शर्तों में बहुत-सी नयी बातें हैं। इससे लोगों का उद्विग्न होना स्वाभाविक है परन्तु उद्वेग से कोई साधुनिर्णय नहीं होता। ठण्डे दिल से विचार करके ही हम भले-बुरे को परख सकते हैं। केवल इतना कहना पर्याप्त नहीं है कि इन बातों से पातिव्रत धर्म का लोप हो जायगा। समाज में व्यभिचार फैल जायगा, हिन्दू धर्म नष्ट हो जायगा।

उत्पाटन तो दूर रहा आज हिन्दू-समाज के लिए शिथिलीकरण भी प्रायः बिलकुल नयी चीज है। 'प्रायः' इसलिए कहता हूं कि पति के धर्मत्याग करने पर सम्बन्ध टूट जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उसको यह भी अधिकार है कि पत्नी को घर से निकाल दे। इस दशा में वह निर्वाह की अधिकारिणी मानी जाती है। परन्तु हिन्दू-समाज ऐसा मानता है कि पति पत्नी को चाहे नित्य-प्रति जितना मारे-पीटे या अन्य प्रकार से सताये, घर में दो-चार रखेलियों को डाल ले या अपने कुकर्म से गन्दे रक्त विकारों को मोल ले ले परन्तु पत्नी उसे छोड़ कर अलग नहीं रह सकती। पुरुष परस्त्री-गमन से हिन्दू धर्म को आंच नहीं आती, स्त्री के यह कह देने से कि आप जो चाहें करें मैं आपके दुराचार की साक्षी बन कर रहना नहीं चाहती, न आपसे गन्दे रोगों का प्रसाद ग्रहण करना चाहती हूं, धर्म की नींव हिल उठती है। जो लोग ऐसा कहते हैं उनको धर्म के स्वरूप की पहिचान नहीं है। हिन्दुत्व का आधार इतना दुर्बल नहीं है, नहीं तो वह कब का रसातल पहुंच गया होता। यह सोचना चाहिए कि सतीत्व अंतःकरण का धर्म है या शरीर का। आज से कई सौ वर्ष पहले कुछ मुसलमान हिन्दू स्त्रियों को बलात् पकड़ कर अपने घर में डाल लेते थे और कभी घर के बाहर नहीं निकलने देते थे। क्या इतने से ही वे स्त्रियां सती, सावित्री, लोपामुद्रा की समकक्ष हो गयीं? दुराचारी से असहयोग करना भी धर्म का अंग है।

सिद्धान्त रूप से इन बातों को मान कर भी हिन्दू ऐसा समझता है कि पति-पत्नी के बीच ये लागू नहीं होती। पति के हाथों सब कुछ चुपचाप सह लेना ही स्त्री का परम धर्म है। ऐसी सर्वसहा पत्नी अपने पति का भी उद्धार करती है। यदि पुरुष दुराचारी है तो नियति उसे आप दण्ड दे लेगी। मुझे इन बातों से स्वारस्य नहीं है। मैं ऐसे कथन को धर्म की विडंबना समझता हूं। सर्वसहा पत्नी पति का उद्धार कर ले यह सम्भव है, वह हमारे लिए आदर की पात्र हो सकती है, परन्तु पुरुष को यह अधिकार नहीं है कि स्त्री को ऐसा सबक पढ़ाये। सब कुछ सह लेना, दुराचारी पति से पराङ्मुख न होना, स्त्री की उदारता भले ही हो, उसका अनिवार्य कर्तव्य नहीं माना जा सकता। आचरण के लिए दो मापदण्ड रखने का क्या आधार है? पुरुष घर में खुला दुराचार करे और स्त्री उफ तक न करे, यह धर्म नहीं हो सकता। यदि स्त्री घर में पशुओं की भांति पति की क्रीत सम्पत्ति है तब तो उसको पति के आचरण की आलोचना करने का अधिकार नहीं है पर हम स्त्री को पति की सम्पत्ति नहीं मान सकते। उसकी स्वतन्त्र सत्ता है, वह भी मनुष्य है, उसके मानवोचित अधिकार हैं। एक ओर तो हम यह पाठ पढ़ते जाते हैं कि जगत् की सब स्त्रियां महामाया से अभिन्न हैं, दूसरी ओर वह काम कर रहे हैं जो महामाया को कदापि प्रिय नहीं हो सकता। स्त्रियों से सीता जैसा आचरण कराना चाहते हैं और उनके गले में रावण से भी अधिक दुराचारी पतियों को मढ़ देना चाहते हैं।

यह अन्धेर अब निभ नहीं सकता। पातिव्रता स्त्री की शोभा है पर पातिव्रत जबर्दस्ती नहीं मनवाया जा सकता। जो स्त्रियां अपना भरण-पोषण स्वयं कर सकती हैं वे पुरुषों के अनाचार को सहन कर लें यह असम्भव है।

उत्पाटन

विवाह-सम्बन्ध के उत्पाटन के बारे में भी कोई ऐसी बात नहीं कही गयी है जो अन्याय्य हो। आज हिन्दुओं में विच्छेद नहीं होता परन्तु इतने से ही विच्छेद अमान्य नहीं हो सकता। सब पुरानी प्रथाएं अच्छी ही होती हैं, ऐसा नहीं माना जा सकता। जो पागल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या षण्ढ है वह उन शर्तों के निबाहने के लिए जो विवाह के समय देवगण को साक्षी करके की जाती हैं असमर्थ है, अतः ऐसा मानना न्याय्य है कि उसके साथ जो कृत्य हुआ वह विवाह नहीं है। योग्यता देख कर ही वैधावैध का निर्णय हो सकता है। यदि मैं किसी दूसरे की सम्पत्ति का बिक्री-पत्र लिख दूँ तो वह अमान्य होगा क्योंकि मुझे उसे बेचने का अधिकार ही नहीं है। हमारे पुराने आचार्य जिनको जीवित, प्रगतिशील, समाज के नेतृत्व का दायित्व उठाना पड़ता था इन बातों को जानते थे और इनके लिए मार्ग ढूँढ़ निकालते थे। आखिर पाराशर की इस उक्ति का क्या अर्थ होगा——

नष्टे मृते प्रव्रजिते, क्लीवे च पतिते पतौ।
पंचस्वापत्यु नारीणां, पतिरन्यो विधीयते।।

आज हमारे विद्वान जो केवल शास्त्रार्थ करना जानते हैं। और समाज के सुख-दुख के दायित्व से कोसों दूर हैं 'पतौ' शब्द को लेकर शब्द-जाल रचते और यह दिखलाना चाहते हैं कि यहां उस पुरुष से तात्पर्य है जिससे केवल वाग्दान हुआ है, विवाह नहीं। पर ऐसा मानने के लिए कोई आधार नहीं है। आर्ष-प्रयोग पुस्तकों में बराबर आते रहते हैं। यहाँ स्पष्ट ही यह कहा गया है कि पति के नष्ट, मृत, प्रव्रजित या पतित हो जाने पर या क्लीव हाने पर स्त्री के लिए दूसरे पति का विधान है। इसके बाद के श्लोक में यह बतलाया गया है कि पति के मरने पर जो स्त्री दूसरा विवाह नहीं करती वह स्वर्ग को प्राप्त होती है। यहां अन्य पति का विधान विवाह-सम्बन्ध के विच्छेद की अनुमति देता है।

स्त्री को जबर्दस्ती पुरुष की वशवर्तिनी रखने से धर्म की रक्षा नहीं हो सकती और स्त्री को मनुष्य मानने से धर्म का ह्रास हो सकता है। स्त्री-पुरुष को समान-रूप से धर्माचारी बनाना ही धर्म को सुदृढ़ रखने का साधन है। पातिव्रत की रक्षा सच्चा प्रेम करता है, कृत्रिम बन्धन नहीं।

बहु-विवाह पर प्रतिबन्ध

उत्पाटनात्मक विच्छेद की अन्तिम शर्त बहु-विवाह की प्रथा का उन्मूलन करती है। किसी-किसी जाति में एक स्त्री के कई पति होते हैं। यह प्रथा बहुत संकीर्ण क्षेत्र में प्रचलित है और उठती जा रही है परन्तु सभी पुरुष कई विवाह कर सकते हैं। कभी-कभी पहली पत्नी को तंग करने के लिए भी दूसरा विवाह किया जाता है।

एक पत्नी के रहते हुए दूसरा विवाह करना कुछ बहुत अच्छा नहीं समझा जाता परन्तु कुछ लोग सचमुच पिण्डदान और परलोक की बात सोचकर भी दूसरा विवाह करते हैं। मेरा निज का विचार है कि बिल में से यह शर्त निकाल दी जाय। थोड़े दिनों के बाद इसका भी समय आ जायगा। तब तक कुछ ऐसी रोक लगायी जा सकती है कि दूसरा विवाह तभी वैध माना जायगा जब पहली पत्नी न्यायालय के समक्ष लिखित अनुमति दे। ऐसी शर्त लगा देने से बहुत से लोगों के दूसरे विवाह रुक जायँगे परन्तु इससे कोई बड़ी क्षति नहीं होगी। यदि शरीर-पात के बाद सद्गति के लिए पुत्र का होना आवश्यक होता तो शास्त्रकार किसी को नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहने का आदेश न देते। विधवाओं, अनाथों, अपाहिजों, शिक्षार्थियों, सन्यासियों की सेवा में सम्पत्ति लगा देने से जो अक्षय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पुण्य संचित होगा वह पुत्रोत्पादन से कहीं अधिक श्रेयस्कर होगा। पुत्र नालायक निकल सकता है, धर्मत्यागी हो सकता है परन्तु सत्पात्र को दिया हुआ दान कभी धोखा नहीं दे सकता।

(४)

मृत व्यक्ति सम्पत्ति के बंटवारे के सम्बन्ध में जो नियम होते हैं उनको दायविधान कहते हैं। इस समय हिन्दुओं में विभिन्न प्रकार के दायविधान चल रहे हैं परन्तु मुख्यतः हमारा दायविधान दो सिद्धान्तों पर अवलम्बित है--

(१) जब तक पुरुष मिलते हों, तब तक स्त्रियों को दाय पाने का अधिकार नहीं होता। स्त्रियों को निर्वाह पाने मात्र का स्वत्व है।

(२) सम्पत्ति किसी एक व्यक्ति की नहीं प्रत्युत सारे परिवार की होती है, परिवार में जन्म लेने मात्र से उसमें स्वत्व प्राप्त हो जाता है।

प्रस्तुत बिल में ये दोनों सिद्धान्त कट जाते हैं। ऊपर दिया हुआ दूसरा सिद्धान्त सम्मिलित परिवार प्रथा का आधार है। अपनी कमायी हुई सम्पत्ति को तो चाहे जिसे दे दिया जाय परन्तु पैतृक सम्पत्ति को हस्तान्तरित करना स्वेच्छा पर निर्भर नहीं है। उस पर कुछ लोगों का जन्मना स्वत्व होता है। किसी का लड़का पैतृक सम्पत्ति में जो भाग पाता है वह पिता की मर्जी पर अवलम्बित नहीं होता, घर में जन्म लेने से ही भाग पर अधिकार हो जाता है, यहां तक कि पिता से भी बँटवारा किया जा सकता है। बिल यदि कानून बन जाय तो यह बात न रहेगी। खेतीबारी के लिए तो प्रत्येक प्रान्त का पृथक् कानून होता है परन्तु शेष चल और अचल सम्पत्ति पर इसमें पुरुष को पूरा स्वत्व दिया गया है। यदि किसी ने पैतृक सम्पत्ति में भाग पाया है तो उसको अधिकार होगा कि मृत्युलेख लिख कर उसे चाहे जिसे दे जाय, उसके पुत्रों या दूसरे सगोत्रादि सम्बंधियों की ओर से कोई प्रतिबन्ध नहीं लग सकता। अपने जीवनकाल में उसने अपना भाग अलग न कराया हो तब भी मृत्युलेख द्वारा हस्तान्तरित करने का अधिकार उसको रहेगा।

दाय के वर्ग

यदि कोई मृत्युलेख न छोड़ जाय तब भी उसके भाग की सम्पत्ति पर आज कल के प्रचलित नियमों के अनुसार उत्तराधिकार न होगा। प्रस्तुत बिल में कई नये उत्तराधिकारी माने गये हैं, कई आजकल के उत्तराधिकारी पृथक् कर दिये गये हैं। दाय के कई वर्ग माने गये हैं जिनको उत्तरोत्तर अधिकार प्राप्त होता है, अर्थात् यदि प्रथम वर्ग का कोई उत्तराधिकारी जीवित न हो तब दूसरे वर्गवालों को अधिकार प्राप्त होता है। यही क्रम शेष पांच वर्गों के लिए है। मैं पूरे ब्योरे में नहीं जाना चाहता, उदाहरण के लिए प्रथम वर्ग को लेता हूं। इसमें जिन लोगों के नाम हैं वे एकत्र दायाद कहलाते हैं। इनमें भी दो उपवर्ग हैं। पहिले उपवर्ग को युगपत्-दायाद कहते हैं। इस सूची में जिन लोगों के नाम हैं उन सबको सम्पत्ति में थोड़ा-थोड़ा भाग मिलेगा। दूसरे उपवर्ग वालों को उत्तरोत्तर अधिकार मिलता है अर्थात् यदि पहिला न हो तो दूसरे की बारी आती है। एकत्र दायादों की पूरी सूची यह है—

पहिला उपवर्ग--युगपत् दायाद--विधवा पत्नी, पुत्र-पुत्री, पूर्वमृत पुत्र का पुत्र, पूर्वमृत पुत्र के पूर्व मृत पुत्र का पुत्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा उपवर्ग—पुत्री का पुत्र, माता-पिता, भाई, भाई का पुत्र।

युगपत् दायादों में बँटवारा इस प्रकार होगा:

पत्नी—एक भाग। यदि कई पत्नियाँ हों तो यह एक भाग सबको बराबर बँट जायगा।

प्रत्येक पुत्र—एक भाग।

प्रत्येक पुत्री—आधा भाग।

पूर्वमृत पुत्रों के पुत्रों और पूर्वमृत पुत्रों के पूर्वमृत पुत्रों के पुत्रों को वह भाग मिलेगा जो उन पुत्रों को उस दशा में मिलता जबकि वे बँटवारे के समय जीते होते।

एक उदाहरण लीजिए। एक व्यक्ति दो विधवाएँ, दो लड़के, तीन लड़कियां और एक पौत्र जिसका पिता पहले ही मर चुका है, छोड़ जाता है। उसका कोई मृत्युलेख नहीं है। तब उसकी सम्पत्ति के ५।। भाग होंगे। एक भाग के दो टुकड़े कर दोनों विधवाओं को दिये जायँगे, दो भाग दोनों लड़के लेंगे, एक भाग पौत्र लेगा क्योंकि यदि उसका पिता जीवित होता तो एक भाग पाता और आधा-आधा भाग तीनों लड़कियों को मिलेगा। यदि इनमें से कोई भी न हो तो क्रमात नाती, माता, पिता आदि की बारी आती है। यदि युगपत् दायादों में से किसी को सम्पत्ति मिलती है तो माता-पिता भूखों नहीं मरेंगे। उनकी गणना आश्रितों में है और जैसा कि हम पहिले दिखला चुके हैं आश्रितों को निश्चित रूप से निर्वाह-वृत्ति दिलाने का विधान है। आजकल यदि स्त्री को कोई सम्पत्ति मिलती भी है तो उसको यावज्जीवन भोगमात्र का ही अधिकार रहता है परन्तु इस बिल में पुरुषों की भांति पूरा स्वत्व दे दिया गया है।

स्त्रियों की उपेक्षा क्यों?

सनातन धर्म की दुहाई देना तो साधारण सी बात है। जो बात अपने को पसन्द न हो उससे धर्म नष्ट हो जाता है। यदि स्त्रियों को दायभाग मिल जायगा, यदि वे सम्पत्ति की स्वामिनी हो जायँगी, तो क्यों और कैसे देवों और पितरों का आसन हिल उठेगा यह समझ में नहीं आता। सरस्वती 'ब्रह्मच्युत शंकर प्रभृतिभिर्देवै सदा वन्दिता' हैं, पराशक्ति जिसको चाहे ब्रह्म   ऋषि, मेधावी बना सकती है, परन्तु पढ़ी-लिखी स्त्री जायदाद नहीं सँभाल सकती यह कैसे माना जाय। 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' कह देना तर्क नहीं है। कालिदास के शब्दों में, पुराणमित्येव न साधुसर्वम्'। स्त्री को सम्पत्ति से वंचित रखने के पक्ष में दो ही धारणाएं हो सकती हैं—स्त्रियां नासमझ होती हैं या स्वभावतः दुराचारिणी होती हैं। दोनों ही बातें निराधार हैं। सब स्त्रियां बुद्धिमती नहीं होतीं, सब स्त्रियां सदाचारिणी भी नहीं होतीं, यह ठीक परन्तु सब पुरुष भी बुद्धिमान और सदाचारी नहीं होते। सभ्य समाज में स्त्री भी पुरुषों के समान ही अपने स्वत्वों की रक्षा कर सकती है।

धर्म का नाम लेना तो झूठा प्रचार मात्र है परन्तु प्रस्तावित दायविधान के सम्बन्ध में दो मुख्य आशंकाएं हैं—एक तो यह कि इससे सम्मिलित परिवार प्रथा एकदम टूट जायगी, दूसरे सम्पत्ति छिन्न-छिन्न हो जायगी। जब लड़कियों को भाग मिलेगा तो उसके टुकड़े होकर ही रहेंगे, क्योंकि विवाहित लड़कियां पितृगृह में नहीं रह सकतीं। ये दोनों आक्षेप गम्भीर और साधार हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मिलित परिवार प्रथा वहीं चल सकती है जहाँ सम्पत्ति मुख्यतः भूसम्पत्ति के रूप में हो या उसका कोई दूसरा ऐसा ही रूप हो जिसमें उत्पादन में कई व्यक्तियों का श्रम लगता हो और इसका ठीक-ठीक विभाजन न हो सकता हो कि किसके श्रम का कितना मूल्य है। खेती करने के लिए कई व्यक्ति चाहिए। कोई हल पकड़ता है, कोई सिंचाई करता है, कोई घास खोदता है, कोई पशुओं के चर जाने से बचता है। यह कहना कठिन है कि इनमें से किस काम का सापेक्ष महत्त्व कितना है, उपजने पर अन्न किसको किस अनुपात से दिया जाय। इसलिए सबका मिल कर स्वाम्य होता है। इसके कई लाभ हैं जो प्रत्यक्ष हैं परन्तु यह हर प्रकार की सम्पत्ति के लिए उपयुक्त नहीं हैं। आजकल सम्मिलित परिवार टूटते जा रहे हैं। नौकरी, उद्योग-धन्धा, वकालत, डाक्टरी, अध्यापन, मजदूरी अकेले करने के काम हैं, सम्पत्ति एक मनुष्य की शक्ति से अर्जित होती है, अतः इसको दूसरों के साथ बांटने के पक्ष में कोई तर्क नहीं मिलता। एक भाई ग्रामीण पाठशाला में पढ़ाता है, बीस रुपये मासिक वेतन पाता है; दूसरा विश्वविद्यालय में अध्यापक है, एक हजार रुपया प्रतिमास घर लाता है। दोनों के कार्यक्षेत्र पृथक् हैं। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक है कि अधिक आय वाले की यह प्रवृत्ति हो कि मैं अपनी आय का पूरा लाभ अपनी सन्तान को पहुंचाऊं, दूसरों को क्यों दूँ। आजकल जीविका के लिए लोग पितृगृह से सैकड़ों कोस दूर जाते हैं और वर्षों तक घर नहीं आ पाते। यह बात स्नेह-बन्धन को और ढीला कर देती है। ये बातें अच्छी हों या बुरी परन्तु सम्मिलित परिवार-प्रथा का टूटना निर्विवाद है। जिन आर्थिक परिस्थितियों में वह चल सकती थी वे अब नहीं रहीं। समाज को इस सत्य को सामने रख कर ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि जिन व्यक्तियों का भरण-पोषण सम्मिलित परिवार की सदस्यता मात्र से ही हो जाता था वे निराश्रय न हो जायँ। यह व्यवस्था भी करनी होगी कि कृषि-सम्पत्ति का ऐसा विभाजन न होने पाये कि राष्ट्र की क्षति हो।

सम्पत्ति का छिन्न-छिन्न हो जाना अच्छा नहीं है। यदि एक छोटे से घर को चार-छः दायाद आपस में बांटने चलें तो वह किसी के भी काम का न रहेगा। यह बात हम अपनी आंखों देख रहे हैं। लड़कों और भाइयों के बँटवारे से जो हानि होती है वह हमारे सामने है। लड़कियों को दायभाग मिलने पर यह विपत्ति और बढ़ जायगी, इसमें सन्देह नहीं। इस कठिनाई से बचने के लिए मुस्लिम समाज में चचेरे भाई-बहिनों में विवाह चल पड़ा है ताकि सम्पत्ति घर में ही रह जाय। परन्तु हिन्दू-समाज में ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा विवाह हमारे संस्कार के विरुद्ध है। तब फिर लड़कियों को पिता की सम्पत्ति से वंचित रखने के स्थान पर दूसरा उपाय सोचना चाहिए। ऐसे प्रस्ताव देश के सामने उपस्थित है कि भू-सम्पत्ति का इतना बँटवारा न किया जाय कि बहतु छोटे टुकड़े हो जायं वरन् दायादों को अपने-अपने भाग का मूल्य मिल जाय। ऐसा ही शेष सम्पत्ति के लिए भी हो सकता है। विशेष अवस्थाओं को छोड़ कर लड़कियों को उनके भाग का मूल्य शेष दायादों से दिलाया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

पिछले पृष्ठों में मैंने उन सिद्धान्तों का समर्थन किया है जो इस बिल के मुख्य आधार हैं। ऐसी दशा में मुझसे पूछा जा सकता है कि फिर मैं बिल का विरोध क्यों करता हूं। मैं बिल का पूर्ण नहीं आंशिक विरोध करता हूं। सामाजिक नियमों में संशोधन तभी करना चाहिए जब लोक-बुद्धि में उसकी व्यापक माँग हो और उसके बिना बहुत से लोगों को कष्ट हो रहा हो। मुझको ऐसा प्रतीत होता है कि विवाह सम्बन्धी विधान में ऐसी स्थिति आ गयी है। कुछ अवस्थाओं में विवाह-बन्धन को शिथिल करने की, किसी-किसी अवस्था में उसे उत्पाटन करने की आवश्यकता पर्याप्त मात्र में प्रतीत होने लगी है। जो दिवान्ध लोग केवल शास्त्र-शास्त्र चीखना जानते हैं उनको तो किसी बात का भी पता नहीं है; वे समझते हैं कि उनकी भांति सारा जगत् सो रहा है, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का जनता के जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। परन्तु जो लोग आंख खोल कर समाज की अवस्था का निरीक्षण करते हैं वे जानते हैं कि हमारे कौटुम्बिक जीवन में देखते-देखते बहुत-कुछ परिवर्तन हो गया है। आज स्त्री को शिक्षा देनी होगी, उसको सम्पत्ति मान कर व्यवहार करने से काम नहीं चल सकता। स्त्री, पुरुष के लिए नैतिकता और सदाचार के दो मापदण्ड नहीं रह सकते। इन बातों को ध्यान में रख कर सामाजिक व्यवस्था को बदलना होगा, अन्यथा समाज उत्सन्न हो जायगा। प्रत्येक नयी चीज भी अच्छी नहीं होती। कोई प्रथा यूरोप में अन्यत्र चल रही है इसीलिए अच्छी नहीं होती। तलाक की प्रथा सर्वथा नयी चीज है, मैं भी उसको वैध बनाने की राय नहीं दे रहा हूं, कम से कम उस रूप में उसका समर्थन नहीं कर रहा हूँ जिस रूप में वह भारत के बाहर कहीं-कहीं प्रचलित है परन्तु जितनी दूर तक प्रस्तुत बिल जा रहा है वह सर्वथा उचित है। मैंने तो उसमें भी कुछ प्रतिबन्ध लगाने का सुझाव रखा है।

दाय-विधान में संशोधन असामयिक

सम्पत्ति के सम्बन्ध में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई है कि तत्काल कुछ कर ही दिया जाय। अभी लोकमत में इसकी उत्सुकता नहीं है। वैसा परिवर्तन और बहुत से परिवर्तनों के बाद आना चाहिए। विवाह-विषयक संशोधन हो जाय। स्त्रियों को स्त्री-धन पर पूरा अधिकार मिल जाय, कानून से भू-सम्पत्ति का विभाजन सीमित कर दिया जाय, स्त्री-शिक्षा का विस्तार और बढ़ जाय, तब समाज में दायविधान में संशोधन की मांग स्वतः उठ सकती है। आजकल बहुत-सी बिरादरियों में पिता को कन्या के लिए दहेज देना पड़ता है। इसकी सम्भावना नहीं है कि दायांश मिलने से दहेज बन्द हो जायगा। कानून से तथा लोकमत जगा कर इस बोझ को हटाना चाहिए। युद्ध के बाद उद्योगीकरण होने की बड़ी चर्चा है। इन सब बातों का कौटम्बिक जीवन पर प्रभाव पड़ेगा। जब परिस्थिति परिपक्व और स्थिर हो जाय तभी कानून में इतना गहरा और दीर्घ प्रभाववाला परिवर्तन हाथ में लेना चाहिए, अन्यथा, हानि अधिक होगी, लाभ कम। सम्मिलित परिवार टूट जायंगे, लोग अपने निर्धन और अशक्त बन्धुओं और भाई-भतीजों के प्रति दायित्व से अपने को मुक्त कर लेंगे परन्तु मृत्युलेख लिख कर या अन्य उपायों से लड़कियों को सम्पत्ति से वंचित कर देंगे। यह उथल-पुथल अनावश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही सामाजिक परिवर्तन कल्याणकारी होता है जो वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल हो परन्तु प्राचीन परम्परा को एकदम तोड़ न दे। यदि समय पर ऐसा परिवर्तन कर दिया जाय तो नूतनता के भीतर पुरातनता अनुस्यूत रहती है। ऐसा परिवर्तन जीवन के लिए यथार्थ मार्ग-निर्देश करता है परन्तु यदिनूतनताके नशे में आकर परिवर्तन कर दिया गया या परिवर्तन किया ही न गया तो सामाजिक और कौटुम्बिक जीवन विषाक्त हो जाता है। उभयतः सच्चे धर्म का ह्रास होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा सांस्कृतिक पतन

कैसा बड़ा पतन है! हम दरिद्र हैं, परतंत्र हैं, अपनी रक्षा में असमर्थ हैं। यह दुःख की बात है, पर हमारे पतन की गहराई इन बातों से नहीं नापी जा सकती। वह इनसे बहुत आगे जाती है। दरिद्र धनवान् हो सकता है, परतंत्र स्वतंत्र हो सकता है, दुर्बल बलवान् हो सकता है। ऐसा उलट-फेर तो होता ही रहता है। जब कोई व्यक्ति या राष्ट्र अपनी इन कमियों को दूर करने का संकल्प कर लेता है तो उसको सफलता मिल कर ही रहती है। कम से कम, राष्ट्रों के संबंध में तो यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है। प्रतिकूल परिस्थिति और बलवान् शत्रु कुछ विघ्न-बाधा डाल सकते हैं, थोड़ी-सी देर लगा सकते हैं परन्तु अन्तिम विजय को टाल नहीं सकते। जो आज नीचे गिरा है और दूसरों के पाँवों तले रौंदा जा रहा है वह मरते दम तक अपनी दुर्दशा को भूल नहीं सकता। हृदय में टीस उठती रहेगी, पुरानी स्मृतियाँ सताती रहेंगी, अनागत के स्वप्न सुख से सोने न देंगे। प्रत्यह अशांति बढ़ेगी; अशान्ति के गर्भ से अवस्था को सुधारने का संकल्प उत्पन्न होगा, और यह संकल्प एक न एक दिन विजय में परिणत होकर रहेगा।

इस दृष्टि से भारत का भविष्यत् भी उज्ज्वल है। उसकी राजनीतिक पराधीनता तो अब गयी-सी है। सोकर उठा है, अँगड़ाइयाँ ले रहा है। अपने को सँभालते ही अपने घर का स्वामी होगा। परतन्त्रता के साथ असमर्थता भी जायगी, दरिद्रता भी जायगी। इस संबंध में आशंका का कोई स्थल नहीं है। अभी बहुत-सी आपदाओं का सामना करना है; परन्तु भारत के विजयी होने में मुझे कोई सन्देह नहीं है। यह पतन तो नष्ट होगा; इसकी जगह अभ्युत्थान अवश्यम्भावी है।

सांस्कृतिक पतन के प्रति उपेक्षा

परन्तु निबन्ध के आरम्भ में मैंने इस पतन की ओर संकेत नहीं किया था। मेरा ध्यान सांस्कृतिक पतन की ओर था। डर यह है कि राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से अभ्युत्थित होकर भी हम सांस्कृतिक दृष्टि से पतित बने रहें। यह डर इसलिए होता है कि हमको अपनी पराधीनता दुबर्लता, और दरिद्रता का पता है परन्तु सांस्कृतिक पतन का पता नहीं है। हम अपनी आत्मा को, अपनेपन को, खो चुके हैं और खोते जा रहे हैं परन्तु इस बढ़ती हुई क्षति की ओर हमारा ध्यान नहीं गया है। एक दिन ऐसा आ सकता है कि शरीर हमारा रह जाय पर इसमें निवास किसी दूसरी ही आत्मा का हो जाय। भारत के निवासियों में सबसे बड़ी संख्या हिन्दुओं की है अतः भारतीय संस्कृति की रक्षा का मुख्य भार भी हिन्दुओं पर ही है। यह अक्षरशः ठीक है कि यह संस्कृति किसी एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जाति, वर्ण, एक सम्प्रदाय की सम्पत्ति नहीं है। इसके वर्तमान कलेवर को छोटी-बड़ी कई धाराओं ने पुष्ट किया है जिनमें से कुछ का उद्गम भारत के बाहर है। परन्तु हम देखते हैं कि समुद्र तक पहुंचते-पहुंचते गंगा में सैकड़ों बड़ी-छोटी नदियों का जल मिल जाता है और यह मेल ऐसा होता है कि एक नदी का पानी दूसरे पानी से अलग नहीं किया जा सकता, फिर भी भागीरथी की मुख्य धारा वही है जो हिमालय की गोद में पल कर हरिद्वार के पुण्यक्षेत्र में हमको दर्शन देती है। गंगा का गंगत्व इसी धार पर है। यदि यह स्रोत सूख गया तो सब नद-नदी भले ही बने रहें, खेती भी हो और नावें भी चलें, परन्तु गंगा से भेंट नहीं हो सकती। यही जलराशि और सब जलों को आत्मसात करके आपस में मिला कर उन सबको वह व्यक्तित्व देती है जिसके कारण करोड़ों नर-नारी उनको स्पर्श करने में भी अपने को धन्य मानते हैं। इसी प्रकार, भारतीय संस्कृति का प्रधान अंग वही है, जिसका विकास आज से सहस्रों वर्ष पूर्व सिन्धु और सरस्वती के किनारे भृगु, अथर्व, अंगिरा, वशिष्ठ और विश्वामित्र के तपोवनों में हुआ था। तब से उसमें बहुत-सी देशी-विदेशी संस्कृतियों का योग हुआ है। उसने उन सबको अपनाया है और एक नया रूप दिया है। परन्तु यह न भूलना चाहिए कि इस अंग, इस धारा से ही भारतीय संस्कृति का भारतीयपन, उसका व्यक्तित्व, है। यदि यह परम्परा लुप्त हो गयी तो हमारी सांस्कृतिक विशेषता भी लुप्त हो जायगी। भारतीय तब भी रहेंगे, भारत भी रहेगा, देश में चार पैसा भी होगा, अपना राज-पाट भी होगा परन्तु हमारी आत्मा मर चुकी होगी। हमारा सांस्कृतिक जीवन दूसरों की प्रतिकृति, नकल-मात्र होगा।

यह हमारे लिए ही नहीं, पृथ्वी भर के लिए दुर्दिन होगा। ऐसी भी संस्कृति हो सकती है जिसका लुप्त हो जाना ही श्रेयस्कर हो। अफ्रीका से जो लोग गुलाम के रूप में पकड़ कर अमेरिका लाये गये थे उनके वंशज आज शिक्षित हो रहे हैं और शिक्षा के साथ धीरे-धीरे सम्पत्ति और सम्मान भी प्राप्त कर रहे हैं। वे लोग पाश्चात्य संस्कृति में निष्णात हो रहे हैं। यह संस्कृति चाहे जैसी भी हो परन्तु उससे तो अच्छी ही है जो हबशियों में आज पायी जाती है। परन्तु हमारे लिए तो यह बात नहीं कही जा सकती। भारतीय संस्कृति तो मनुष्यमात्र की अनुत्तम सम्पत्ति है। मानव-समाज को पहले भी उसकी आवश्यकता थी, आज भी है और आगे भी रहेगी। जब तक मनुष्य के हृदय में सुख और शान्ति की खोज बनी है, जब तक सभ्यता में सार्वभौम कल्याण के लिए स्थान है, जब तक परार्थ-चिन्ता दुर्गुण नहीं माना जाता, जब तक ज्ञान और सहिष्णुता की श्रेयस्कारिता अस्वीकृत नहीं हो जाती, तब तक भारतीय संस्कृति के आलोक की आवश्यकता मनुष्य को बनी रहेगी।

यहाँ दो शब्द व्याख्यारूप से कह दूँ। संस्कृति से मेरा तात्पर्य गद्यपद्यात्मक वाङ्मय या वार्ता, चित्रकारी, मूर्तिकला या संगीत से नहीं है, प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक रीति-नीति या साम्प्रदायिक विश्वासों से भी नहीं है। ये सब बातें संस्कृति शब्द के वाच्यार्थ में अन्तर्भूत हैं; परन्तु सचमुच यह देह स्थानीय है; संस्कृति उस देह को जीवन देनेवाला प्राण है। यह एक प्रकार का आध्यात्मिक आकाश है, जो सभी विचारों में व्याप्त रहता है, एक प्रकार का बौद्धिक साँचा है जिनमें चित्त की सभी क्रियाएं, सभी वासनाएँ, सभी भावनाएँ ढल जाती हैं, एक विशेष दृष्टिकोण है जहाँ से भी भौतिक और मानस दृग्विषयों पर दृष्टिपात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता है। संस्कृति स्वयं कोई दार्शनिक मत, कोई वाद नहीं है परन्तु एक दार्शनिक पूर्वपीठिका है जिसके मंच पर ही चित्त के सब काम हो सकते हैं। संस्कृति की छाप कला, वाङ्मय राजनीतिक, सामजिक संगठन, कौटुम्बिक जीवन, सब पर ही पड़ती है। एक विशेष प्रकार की संस्कृति के आश्रय में एक विशेष प्रकार का ही वैयक्तिक और सामूहिक जीवन पनप सकता है। यह माना जा सकता है कि मनुष्य का कल्याण संस्कृतियों के समन्वय में है पर समन्वय भी तभी सम्भव है जब वह संस्कृतियाँ, जिनका योग होना है, सुरक्षित रहें। डर इस बात का है कि भारतीय संस्कृति भावी विश्व संस्कृति का श्रेष्ठ अवयव बनने के पहले कहीं लुप्त न हो जाय।

यह डर इसलिए नहीं होता कि संस्कृतियों के संघर्ष में वह ठहर नहीं सक्ती या वर्तमान काल के अनुकूल नहीं है। उसके नैसर्गिक गुणों को देख कर तो अपार श्रद्धा होती है और यह विश्वास होता है कि जिस प्रकार यह अपने अतीतकालीन सहयोगियों में अतिजीवित रही वैसे ही आगे भी रहेगी। ऐसा न मानना मानवता के भविष्य की ओर से निराश होना है, परन्तु आशंका अपने को देख कर होती है। तीव्र प्रदीप भी अपने वाहक की असावधानी से बुझ सकता है। और असावधानी हुई है और हो रही है, इसमें कोई संदेह नहीं है। असावधानी का कुछ कारण तो अज्ञान है और कुछ हमारी राजनीतिक और आर्थिक अधोदशा और तज्जनित चरित्र-दौर्बल्य और उत्साह की कमी। परन्तु कारण चाहे कुछ भी हो, प्रमाद क्षम्य नहीं हो सकता। जो लोग समाज के अग्रणी हैं और अग्रणी बने रहना चाहते हैं। वे किसी भी बहाने की आड़ में नहीं बैठ सकते।

ब्राह्मण वर्ग का दायित्व

मैं कह चुका हूँ कि भारतीय संस्कृति की प्रधान धारा वही है जो आज से कई सहस्र वर्ष पहले ऋषियों के तपोवनों से निकली थी। ब्रह्मर्षि देश से चल कर यह सुरसरी गंगा-यमुना के तटों पर पुष्ट हुई और आज भी यही एक सूत्र है जिसने करोड़ों भारतीयों को एक माला में गूँथ रखा है। इन करोड़ों में केवल हिन्दू ही नहीं वरन् बौद्ध, जैन और सिक्ख भी हैं; यही नहीं, इनमें वे बहुसंख्यक मुसलमान भी हैं जो ग्रामों में रहते हैं और अरबी शब्दों में ईश्वर को याद करते हुए भी अपने रहन-सहन में बाप-दादों की परिपाटी को नहीं छोड़ सके हैं। इस संस्कृति के लिए सबसे उपयुक्त नाम आर्य-संस्कृति होगा। आर्य नाम की कभी कोई पृथक् उपजाति थी या नहीं और यदि थी तो उसका आदिम निवासस्थान कहाँ था ये सब रोचक प्रश्न हैं पर इस स्थान पर अप्रासंगिक हैं। आर्य कोई भी रहे हों और कहीं के रहने वाले हों, पर यह निर्विवाद है कि सिन्धु, सरस्वती के अन्तर्वेद में एक विशेष संस्कृति का विकास हुआ था। यह संस्कृति किसी और भी प्राचीन संस्कृति की उत्तराधिकारिणी थी या नहीं, इसका उत्तर अभी तक तो इतिहास ने नहीं दिया है। हमारे लिए भी यह प्रश्न यहाँ अनावश्यक है।

इस संस्कृति की रक्षा का सबसे बड़ा दायित्व शिक्षितवर्ग के उस अंश पर है जिसको हमारे समाज का नेतृत्व जन्मना प्राप्त है। मेरा तात्पर्य ब्राह्मण समुदाय से है। ब्राह्मणों ने हमारे शास्त्रों की रक्षा करके भारत ही नहीं सारे सभ्य जगत् पर महान् उपकार किया है। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में रह कर इतना बचा लेना उनके तप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
और त्याग का उज्ज्वल प्रमाण है। यह उन्हीं का प्रसाद है कि इस संस्कृति के इतने नामलेवा देख पड़ते हैं। परन्तु पूर्वजों की कीर्ति का अनुस्मरण पर्याप्त नहीं होता। अतीत का अध्यवसाय वर्तमान के प्रमाणका मार्जन नहीं कर सकता। आज केवल पोथियों की रक्षा का प्रश्न नहीं है और न उन पर केवल टीका ही करनी है। इस काम में तो और लोग भी ब्राह्मण समुदाय का हाथ बँटा रहे हैं। परन्तु संस्कृति जीवित वस्तु होती है और पुस्तक निर्जीव। पुस्तकों की रक्षा होते हुए भी संस्कृति का विनाश हो सकता है। आज मिस्र, शैल्डिया, क्रीट, सुमेर और यूनान के शिलालेख और पुस्तकालय हमारे सामने हैं। उनका खूब पठन-पाठन होता है पर वे संस्कृतियाँ कहाँ हैं जिनकी ये चीजें प्रतीक थीं। वे तो न जाने कब की अतीत के गंभीर गर्त में विलीन हो चुकी हैं। यदि आर्य संस्कृति को इस परिणाम से बचाना है, यदि उसको जीवित रखना है, तो ब्राह्मणों को, जिनको शास्त्र और लोकाचार ने समाज का मुखरत्व सौंप रखा है, जागरुक होना होगा।

यह कहने से दायित्व से छुटकारा नहीं मिल सकता कि आज कल कलिकाल है, लोगों की धर्म में अभिरुचि नहीं है, हमारी बात कोई सुनता नहीं। जो धर्मोपदेष्टा और पुरोहित है उसको ऐसा मानना चाहिए कि उसकी नियुक्ति मनुष्य ने नहीं वरन् इस विश्व को परिचालित करने वाली सनातन शक्तियों ने की है। यदि वह अपने कर्त्तव्यों से विमुख होता है तो उनके सामने क्या मुँह दिखलायेगा? मनुष्य के क्रोध से बचना तो सुकर है परन्तु शाश्वत ऋत के शाप से बच कर कोई कहाँ जायगा? जो भृगु और अंगिरा के आसन पर बैठ कर यजमान को कर्मकाण्ड में दीक्षित करता है, जो व्यासपीठ पर बैठ कर धर्म का उपदेश करता है उसको तो अपने कर्त्तव्य का पालन करना है, अपनी बात कहनी है, अपने स्थान पर अटल रहना है। जो यजमान और श्रोताओं की रुचि देख कर शास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन करता है, प्रचलित हवा के साथ आप भी बह जाता है, धन के लिए धर्मस्खलन की ओर से आँख बन्द कर लेता है, वह पातकी है। वह यजमान तो दोषी है ही जो जान-बूझ कर पैसों का प्रलोभन देकर अधर्म कराता है। परन्तु गुरु शिष्य को पढ़ाता है, शिष्य से पढ़ता नहीं। पुरोहित और व्यास, धर्मशास्त्री और गुरुकुलों के अध्यापक अपने पापी शिष्यों और यजमानों की अँगुली पकड़ कर पार नहीं हो सकते। उनको अपने और दूसरों के दुष्कर्मों के लिए उत्तर देना है। चाहे छोटे से गाँव का ही पुरोहित क्यों न हो पर उसके कन्धों पर भी उतना ही गुरु भार है। यदि बड़े विद्वान् अपने छोटे भाइयों में यह भाव नहीं उत्पन्न कर सके हैं, और उत्पन्न करने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं तो उनका अपराध सहस्रगुण बढ़ जाता है। साधारण जनता तक तो इन छोटे लोगों की ही पहुंच होती है, ये ही छोटे लोग जनता के संस्कारों को बनाते-बिगाड़ते हैं। और यदि बड़े लोग जनता की नाड़ी पर अपना हाथ नहीं रखते तो वे भारी भूल कर रहे हैं। किसने किसके साथ बैठ कर क्या खा लिया, इसकी अपेक्षा इस बात पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है कि लोगों की बुद्धि किस सांचे में ढल रही है। परन्तु इस क्षेत्र में काम वही कर सकता है जो पौरोहित्य और ब्राह्मणत्व के गौरव को समझता हो और उस गौरव के उपयुक्त त्याग करने को कटिबद्ध हो।

आर्य से हिन्दू

हमारे पतन का प्रतीक हमारा हिन्दू नाम है। हम कभी आर्य थे, आज हिन्दू हैं। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम पर हमारे कुछ सम्मान्य भाइयों को इसलिए आपत्ति है कि यह विदेशियों का दिया हुआ है। यह आपत्ति भी हँस कर उड़ाने की बात नहीं है। इतने करोड़ मनुष्य अपने को एक ऐसे नाम से पुकारें जो उनको किसी समय विदेशियों ने दिया हो आश्चर्य की बात है। आश्चर्य की मात्रा इसलिए और बढ़ जाती है कि जिन विदेशियों का रखा हुआ यह नाम है वे आक्रमणकारी शत्रु थे और विधर्मी माने जाते थे। यह माना कि आज इस नाम का अर्थ चोर, डाकू या दास नहीं किया जाता; फिर भी यह उपेक्षणीय नहीं है कि यह नाम हमको इतना प्यारा हो गया है कि पुराने नाम को सुन कर हम चौंक पड़ते हैं और जो व्यक्ति उसके लिए आग्रह करता है उसको पागल समझते हैं।

पर यहाँ केवल शब्दों का प्रश्न नहीं है। यदि हमारे पूर्वज अपने को आर्य कहते थे तो हमको अपने को हिन्दू कहने का पूरा अधिकार है। परन्तु नाम का कहलाना अकेला नहीं है। हम आर्य से हिन्दू तो कहलाने ही लगे, हमारी मनोवृत्ति भी बदल गयी। हिन्दू-मनोवृत्ति, हिन्दू का बौद्धिक साँचा, आर्य-बुद्धि से भिन्न है, और निम्न कोटि की है। मैं इसी से घबराता हूँ। यदि रोका न गया तो यह आर्य-संस्कृति की जड़ काट डालेगी और फिर भारतीय संस्कृति अपनी विशेषता खो बैठेगी।

यह विष यकायक नहीं मारता, धीरे-धीरे बुद्धि की आकृति को परिवर्तित करता है परन्तु इस परिवर्तन की प्रगति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। मैं दो-चार उदाहरण देकर दिखलाऊँगा कि हम अपने मूल से कितनी दूर जा गिरे हैं। ये उदाहरण ऊपरी बातों के नहीं हैं। इनका संबंध हमारी संस्कृति के अन्तस्तल से, उसके हृदय से है। सम्भव है अब भी हमारी आँखें खुलें और हम अपने को, अपनी आत्मा को, बचा सकें।

धर्म का व्यावहारिक स्वरूप

यदि मुझसे पूछा जाय कि एक शब्द में आर्य-संस्कृति का सार बतलाओ तो मैं कहूँगा कि वह शब्द 'धर्म' है। धर्म एक अद्भुत शब्द है, जिसका पर्याय मेरी जानकारी में किसी दूसरी भाषा में नहीं हैं। ऐसे पद के अर्थ को दो-चार शब्दों में तो क्या दो-चार वाक्यों में भी व्यक्त करना कठिन होता है। 'यतो अभ्युदय निःश्रेयससिद्धः स धर्मः'* अच्छी व्याख्या है। जिस किसी उपाय से अभ्युदय और मोक्ष की प्राप्ति हो उसको धर्म कहते हैं। यह व्याख्या तो हुई पर इतनी व्यापक है कि थोड़े में इसका भाव समझ में नहीं आ सकता। जो दर्शन का पण्डित है वह तो शास्त्र और तर्क की सहायता से कुछ स्थिर कर सकता है परन्तु साधारण मनुष्य के लिए तो यह द्वार बन्द ही रहेगा। जब तक यह निश्चय न हो जाय कि निःश्रेयस, मोक्ष का स्वरूप क्या है और अभ्युदय किसे कहते हैं तब तक धर्म का तत्व तो समझ में नहीं आ सकता। परन्तु साधारण मनुष्यों की ही तो संख्या अधिक होती है। आर्य-संस्कृति की यह विशेषता थी कि जन-साधारण को शास्त्रार्थ के चक्कर में न डाल कर गूढ़ परन्तु व्यावहारिक बातों के भाव हृदयंगम करा दिये जाते थे। सभी लोग अभ्युदय चाहते हैं और बहुत-से लोग मरने के बाद किसी न किसी प्रकार

---

* वैशेषिक सूत्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
की सद्गति चाहते हैं। अतः धर्म परम व्यावहारिक वस्तु है। हमारा जीवनक्रम, सारा वातावरण ऐसा था कि अव्यक्त रूप से धर्म के स्वरूप का व्यावहारिक ज्ञान हो जाता था।

यह व्यावहारिक रूप क्या है, यह बात उन प्रयोगों से समझ में आती है जिनमें यह शब्द आता है। स्मृतियां वर्णाश्रम-धर्म का अनुशासन करती-हैं। वर्णों के धर्म ब्राह्मणादि भेद से पठन-पाठन, यजन-याजन, दानादान, रक्षा, गोपालन, वाणिज्य और सेवा हैं। इनके साथ-साथ कुछ ऐसे धर्म हैं जो सबके लिए एक से हैं। इन चातुर्वर्ण धर्मों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच और इन्द्रियनिग्रह हैं।यह बात विवादनीयहो सकती है कि अमुक धर्म का नाम ब्राह्मण के साथ ही क्यों लिखा गया या शूद्र के लिए केवल सेवा धर्म ही क्यों बतलाया गया। यदि यह बात समझ में आती हो कि धर्मों का यह विभाग समयानुकूल नहीं है तो हम भले ही इसमें सुधार कर लें।

यदि वर्ण विभाग गुणपरक है तो फिर यह कहा जा सकता है कि जो मनुष्य प्रकृत्या अमुक-अमुक धर्मों की ओर झुकता है वह अमुक वर्ण में माना जाय। जो कुछ भी हो, यह मेरा विषय नहीं है। मैं तो यह दिखलाना चाहता हूँ कि इन धर्मों में दो विशेषताएं हैं। कुछ धर्म तो ऐसे हैं जो शरीर और इन्द्रियों की विषयाभिमुख प्रवृत्ति को रोकने के नाम हैं या बुद्धि के संस्कृत करने के साधन हैं। दूसरे धर्म यह बतलाते हैं कि दूसरों के साथ क्या करना चाहिए। वाणिज्य, आदान और याजन भी अपवाद नहीं हैं। वाणिज्य के बिना समुदाय का भरण-पोषण नहीं हो सकता और जब वाणिज्य के साथ सत्य और अस्तेय का भी अभ्यास किया जायगा तो वह भी सेवा का एक रूप हो सकता है। यज्ञ कराने वाले और दान लेनेवाले को धनादि की प्राप्ति होती है पर शास्त्रों में याजक और आदाता के जो लक्षण बतलाये गये हैं उनसे तो यह विदित होता है कि यह काम अपने लाभ के लिए नहीं दाता और यजमान के हित के लिए किये जाते थे। जो तपोनिष्ठ और विद्वान् ब्राह्मण किसी का पुरोहित बनता है या किसी से दान लेता है वह उसके दुष्कर्म का बोझ हलका करके उस पर उपकार करता है और जो विद्वान् और तपोनिष्ठ नहीं है वह न यह बोझ उठा सकता है, न दान लेने या यज्ञ कराने का अधिकारी है। बचपन से इन धर्मों में दीक्षा पानेवाला दूसरों की अपेक्षा संयमी और कम लोभी होगा। उससे यह तो आशा की ही जा सकती है कि, श्री भगवानदास जी के शब्दों में, अपने स्वार्थ को पौने आठ से अधिक, और परार्थ का सवा आठ आने से कम, ध्यान न रखेगा।

आश्रम-धर्मों पर विचार करने से यह बात और भी साफ हो जाती है। कब सोना चाहिए, कब नहाना चाहिए, क्या और कैसे खाना चाहिए, कब, कैसे और किससे विवाह करना चाहिए, कब लड़कों को घर-बार का भार सौंप कर गृहस्थी से अलग हो जाना चाहिए। ये सभी बातें धर्म के अन्तर्गत हैं। आजकल के शब्दों में कहें तो कुशल नागरिक होना धर्म है। परन्तु नागरिक की व्याख्या बहुत दूर तक जाती है। वह जिस 'नगर' या समाज का अंग है वह किसी एक पुर, ग्राम, राष्ट्र या देश तक सीमित नहीं है। इस बात पर गृहस्थ के धर्मों से प्रकाश पड़ता है। वह देश-काल के अनुसार अपने भाई-बन्धुओं तथा राजसंस्था के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन तो करता ही था, इसके सिवाय उसको कई ऋण चुकाने थे, कई यज्ञ करने थे। वह यज्ञ नित्य-कर्मों में परिगणित थे, इनके करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में किसी फल-विशेष की आशा नहीं थी, परन्तु न करने में पातक था। प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों ने ज्ञान का संचय करके उसके लिए छोड़ा था। उसको भी नये ज्ञान का संग्रह और प्राचीन ज्ञान की रक्षा करके अपने पीछे आनेवाले के लिए यह निधि छोड़नी थी। उसके पूर्वजों ने उसको मनुष्य-शरीर देकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति करने का अवसर दिया था। उसको भी दूसरों को यह अवसर देना था। ये दोनों बातें विचारणीय हैं। पढ़ना-पढ़ाना तो सभी जगह होता है और सन्तानोत्पादन में तो मनुष्य और पशु एक ही कक्षा में रखे जा सकते हैं पर ऋणमोचन की धारणा इन कामों को एक नया ही स्वरूप दे देती है। सभ्यता और संस्कृति की रक्षा और उसके प्रकाश को आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाना सबका कर्त्तव्य हो जाता है। सन्तान माता-पिता के यौन-सम्बन्ध का आकस्मिक परिणाम नहीं है और न विवाह स्त्री-पुरुष के भोग का साधन है। विवाह इसलिए किया जाता है कि दूसरों को मनुष्य बनने का अवसर मिले। यह कर्म मनुष्य को पूर्ववर्ती और परवर्ती पीढ़ियों के साथ बड़े ही पवित्र बन्धन में जोड़ देते हैं। इस भाव की पुष्टि नित्य यज्ञों से भी होती है। तर्पण भी एक यज्ञ है। यह प्रश्न अलग है कि तर्पण से लाभ होता है या नहीं पर यहां तो मैं इस कर्म के साथ जो भावना उत्पन्न की जाती है उसकी ओर ध्यान दिलाता हूँ। तर्पण केवल अपने बाप-दादों का नहीं किया जाता। वे लोग भी स्मरण किये जाते हैं जिन्होंने मनुष्य को पहले-पहल वनचर से सभ्य बनाने का उपक्रम किया, जो आर्य-संस्कृति के मूल पुरुष थे। अपने पूर्वजों को तो सभी यदा-कदा याद कर लेते हैं परन्तु उन लोगों को — 'येषां पिता न च भ्राता, न पुत्रा नान्यगोत्रिण:' — जिनके पिता, भाई, पुत्र या अन्य कोई बान्धव नहीं है — कौन पूछता है। फिर तर्पण करनेवाला तो इससे भी आगे जाकर वन, सागर, पर्वत-निवासिनी आत्माओं तक को अञ्जलिदान करता है। गृहस्थ का काम अपना पेट भर लेना ही नहीं है, उसे पशु-पक्षी, कीट-पतंग, निर्धन और अभ्यागत को खिला कर ही खाना होगा।

मैं फिर कहना चाहता हूं कि यहाँ इन क्रियाओं की उपयुक्तता पर विचार नहीं करना है प्रत्युत उस भाव पर जो इनका प्रेरक था। क्रिया का स्वरूप बदल सकता है। ऐसी समाजवादी व्यवस्था हो सकती है और होनी चाहिए जिसमें बूढ़े, अपाहिज रोगी और सन्यासी के भरण-पोषण का भार समाज पर हो। ऐसा भी हो सकता है कि निजी सम्पत्ति रखने की प्रथा उठ जाय। पर यह सब व्यवस्था तब ही टिक सकती है जब लोगों में परार्थ-बुद्धि हो, प्रत्येक मनुष्य अपने को न केवल वर्तमान-काल वरन् भविष्यत्-काल के समाज के अभ्युदय के लिए भी दायी समझे। और इसके साथ ही यह भाव भी न हो कि मैं दूसरों पर उपकार कर रहा हूँ, वरन् यह कि ऋण चुका रहा हूँ मैं आज जैसा भी हूँ दूसरों की कृपा से हो सका हूँ। यदि आगे आनेवालों को अपने जैसा बनाने का प्रयत्न करूँ तब ही उपकार का यह बोझ हलका हो सकता है। मेरे ऊपर केवल मनुष्य का ही ऋण नहीं है। सारी जड़-चेतन प्रकृति ने मेरी सहायता की है। हम सब एक डोर में बँधे हैं। जो ऊँचे कोटि का दार्शनिक है वह तो 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' मानता है अपने और पराये में कोई भेद नहीं देखता, यह जगत् उसके लिए माया-मरीचिका है। परन्तु सबकी पहुंच यहाँ तक नहीं हो सकती। साधारण मनुष्य यदि इस भाव से प्रेरित हो सके कि वह प्राणीमात्र का संबंधी और ऋणी है और परार्थ-साधन में ही उसका हित है, यदि वह अपने कामों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
निष्काम भाव से करने का अभ्यास डाल सके तो उसका जीवन सार्थक है। यह अभ्यास हँसी-खेल नहीं है पर जितनी भी सफलता मिले श्रेयस्कर है।

यह धर्म के व्यावहारिक रूप का एक छोटा-सा चित्र है। आर्य-संस्कृति की यह सर्वोपरि विभूति थी। वेद में एक आदेश है 'कृणुध्वं विश्वमार्य्यम्'——विश्व को आर्य बनाओ। वहाँ यह उद्देश्य नहीं है कि सब लोग संस्कृत-भाषा को उलटा-सीधा बोल कर इन्द्र, वृहस्पति, विष्णु या रुद्र का नाम लेना सीख जायँ प्रत्युत यह कि सारा जगत् उन उदार आदर्शों को स्वीकार कर ले जो आर्य-संस्कृति की देन हैं।

धर्म और अधिकार

आज वेद-मंत्रों का उच्चारण करते हुए भी हम आर्य नहीं रह गये हैं। हिन्दू धर्म को नहीं, अधिकारों को जानता है। किसी भी प्राचीन शास्त्रकार ने अधिकारों की चर्चा नहीं की। ब्राह्मण, सन्यासी, क्षत्रिय, शूद्र, गृहस्थ, ब्रह्मचारी इनको क्या करना चाहिए यह बतलाया गया, दूसरों से क्या माँगना चाहिए इसका कहीं उपदेश नहीं है। हाँ, एक के धर्म में दूसरे का अधिकार भी अन्तर्भूत है। यदि सब अपने-अपने धर्म का पालन करें तो सबको अपने अधिकार आप से आप प्राप्त हो जायँ। अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए लोग किसी व्यक्ति-विशेष के साथ जैसा आचरण करेंगे वही उसका अधिकार समझना चाहिए। इसीलिए अधिकारों को पृथक् गिनाना अनावश्यक है। सबके अलग-अलग अधिकारों की अलग-अलग लंबी सूची देकर भी क्या होगा, यदि लोगों के आचरण उपयुक्त नहीं हैं तो अधिकार मिलेंगें कैसे? कर्त्तव्य-पथ पर चलना कठिन होता है, अधिकारों की रट लगाना सुकर। इसीलिए सभी अपने लिए बड़े-बड़े अधिकार छाँट-छाँट कर रख लेते हैं और फिर दूसरों से झगड़ते हैं कि इन्हें हमारे हवाले करो। सब एक दूसरे को सिखाते हैं कि तुम्हें यों आचरण करना चाहिए, अपने आचरण की बात कोई नहीं सोचता। इसी से सर्वत्र संघर्ष है।

बिना धर्म-बुद्धि के जागे शान्ति नहीं हो सकती। अधिकार-विनिमय व्यापार की वस्तु हो सकता है। तुम हमारा यह अधिकार स्वीकार करो तो हम तुम्हारा वह अधिकार स्वीकार करें, इसीलिए लड़ाई रहती है। एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखता है, एक दूसरे के आचरण को सतर्क दृष्टि से देखता रहता है, बात-बात पर टोकता है 'सावधान! देखो, तुमने हमारे अमुक अधिकार में हस्तक्षेप किया; सँभल जाओ, नहीं गर्दन नाप लूँगा।' धर्म में यह द्वन्द्व नहीं होता। चाहे संसार भर कर्त्तव्य से विमुख हो जाय पर मुझे तो अपना धर्म निबाहना ही है। औरों का धर्मपराङ्मुख होना मेरे लिए भी कष्टकारी हो सकता है पर इसीलिए मैं स्वयं अपना धर्म छोड़ कर उनका आलोचक बन कर नहीं बैठ सकता, उनके ऊपर धरना नहीं दे सकता। फिर सब तो अपने अधिकारों की रक्षा कर भी नहीं सकते। सुख और स्वास्थ्य का अधिकार किसको नहीं है पर करोड़ों ऐसे दरिद्र और निर्धन हैं जो अपने लिए हाथ-पाँव नहीं हिला सकते। वे तो बेमौत मारे जायँगे। ऐसा हो भी रहा है। ऐसा विश्वास और व्यवहार हो रहा है कि जो अपने अधिकारों के लिए लड़ने को तैयार नहीं है वह सम्मान और सहानुभूति का पात्र नहीं है। यह अनर्थकारी धारणा अमेय दुःख, दौर्मनस्य और अशान्ति का कारण हो रही है। फिर, जीवन का अधिकार तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणी-मात्र को है; कम से कम वह तो जीवन का अधिकारी है ही जो दूसरों को नहीं सताता। पर भेड़-बकरियाँ, चीटियाँ और चिड़ियाँ अपने इस अधिकार की रक्षा के लिए कौन-सा आन्दोलन करेंगी? यदि आन्दोलन, परालोचन और सतत संघर्ष पर ही अधिकारों को निर्भर होना है तो करोड़ों नर-नारियों और असंख्य मूक पशु-पक्षियों के लिए कोई आशा नहीं रह जाती। इन छोटे जीवों की कथा छोड़ दीजिए। यह कहा जा सकता है और कहा जाता है कि जहाँ तक मनुष्यों की बात है, अपने अधिकारों की रक्षा सतर्क रह कर उनके लिए लड़ते रहने से ही होती है। इसमें जो कुछ सचाई है वह इसीलिए है कि कोई अपने कर्त्तव्य का ख़याल नहीं करता। मुझे दूसरों के साथ कैसे बरतना चाहिए इसे भुला कर सबको इसी की चिन्ता है कि दूसरे मेरे साथ ठीक बर्ताव करें। ऐसी दशा में तो लड़ना अनिवार्य हो जाता है। परन्तु इस अवस्था में कहीं शान्ति मिलना कठिन है क्योंकि अपने कल्पित अधिकार की सीमा बाँधना कठिन है। सब ही अपने लिए ऊँची से ऊँची स्थिति चाहते हैं परन्तु कर्तव्य-पालन में लड़ाई की कोई जगह होती ही नहीं। इस पद या धन का उपभोग मैं करूँ या आप, इस बात में विरोध की जगह है पर अमुक अच्छा काम मैं और आप दोनों करें इसमें कोई झगड़े की बात नहीं है। इसमें जिसका जो उचित अधिकार होगा उसे वह आप ही मिल कर रहेगा।

धर्म के सम्बन्ध में एक और खराबी हुई है जो इससे कम नहीं है। मुसलमानों और फिर ईसाइयों के आने पर हमको मज़हब और रेलिजन के लिए शब्द ढूँढ़ने पड़े। सच बात यह है कि हमारे पास इनका कोई ठीक पर्याय नहीं था। सम्प्रदाय शब्द कुछ-कुछ मिलता-जुलता है पर ठीक-ठीक अर्थबोध उससे भी नहीं होता। फिर भी अच्छा होता कि हम उसका ही मज़हब के अर्थ में प्रयोग करते और वैष्णव, शैव, शिया-सुन्नी, कैथोलिक, प्रोटेस्टेण्ट जैसे अवान्तर भेदों को उपसम्प्रदाय कहते। सीधे मज़हब शब्द को ले लेना भी बुरा न होता। पर यह सब न करके हमने धर्म शब्द की ही दुर्गति कर डाली और उसका अर्थ मज़हब मान लिया। यह बड़ा अनर्थ हुआ। मज़हब का सार होता है किसी एक उपास्य और उपासना-पद्धति पर अटल श्रद्धा। मज़हबी मनुष्य यह मान ही नहीं सकता कि उसके उपास्य के सिवाय कोई और उपास्य हो सकता है और उसके मज़हब में बतलायी हुई पद्धति के बराबर फलवती कोई और पद्धति हो सकती है। प्रत्येक मज़हब आचार-विचार भी बतलाता है परन्तु आचार गौण और उपासना मुख्य है। आर्य-संस्कृति में यह बात न थी। आर्य-धर्म का दूसरा नाम वर्णाश्रम धर्म था। इसमें न कोई पैगम्बर या मतप्रवर्तक था न किसी उपास्य के लिए विशेष स्थान है। 'विशेष-स्थान' इसलिए कहता हूँ कि यद्यपि धर्मों में यजन का उल्लेख है और यजन में इन्द्रादि के नाम लिए जाते हैं पर यजन से ऊँचा पद अहिंसादि सार्वभौम धर्मों को दिया गया है और जो मनुष्य देव-यजन के ऊपर नहीं उठ सकता उसे 'देवानांपशुः*' बतलाया गया है। मज़हब-वाले के लिए यह सम्भव नहीं है।

हिन्दुओं के वर्तमान ईश्वर का विकास

---

* बृहदारण्यक उपनिषद्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब आर्य-धर्म की जगह हिन्दू-मजहब ने ली तो फिर एक उपास्य की भी खोज हुई, क्योंकि उपास्य ही मज़हब का केन्द्र होता है। कुरान या बाइबिल या ग्रंथ साहब का पद बड़ा ऊँचा है पर यह पद स्वतंत्र नहीं है। यह ऊँचाई इनको इसलिए मिली है कि इनको ईश्वर का वाक्य या ऐसे ईश्वरतुल्य महात्माओं की वाणी माना जाता है जिनके शब्द ईश्वर के ही अभिप्राय के अभिव्यञ्जक होते हैं। इन सब के पीछे ईश्वर की सत्ता है। जब हिन्दू मज़हवी हुआ तो उसे भी इस जोड़ की एक सत्ता चाहिए थी। उसके पास वेद था, वह वेद को श्रुति, अपौरुषेय मानता था पर पोथी अकेले अपने बल पर खड़ी नहीं रह सकती थी। गऊ से भी कुछ काम निकला। सिर फोड़ने-फुड़ाने के लिए गऊ एक अच्छा दृश्य साधन है पर मनुष्य किसी पशु को अपने मजहब का शिरःस्थानीय कहाँ तक बना सकता है। आखिर, दूसरे मज़हब वालों की बराबरी की ही वस्तु तो होनी चाहिए थी, नहीं तो अपना सिर नीचा होता। फिर, पशु या कोई भी दूसरी वस्तु जो खाती-पीती, बनती-बिगड़ती या जीती-मरती रहती हो वह मनुष्यों को बराबर अपने वश में नहीं रख सकती। ऐसी अवस्था में हिन्दुओं के वर्तमान ईश्वर का विकास हुआ। जी तो चाहता है कि यों कहा जाय कि आजकल के ईश्वर का निर्माण किया गया।

यह विचारणीय बात है कि आर्यों के प्राचीन और पवित्रतम ग्रंथ ऋग्वेद में ईश्वर शब्द कहीं नहीं आया। यजुर्वेद में जहाँ तक मुझे स्मरण है ईशान प्रयोग तो आया है परन्तु ईश्वर नहीं। कई वर्ष हुए बनारस संस्कृत कालिज के आचार्य मंगलदेव शास्त्री का एक एतद्विषयक रोचक निबन्ध देखने में आया था। परन्तु शब्द आया हो या न आया हो, ईश्वर की सत्ता वे लोग नहीं मानते थे ऐसी बात नहीं है। उपनिषदों में ऐसे सैकड़ों वाक्य भरे पड़े हैं जिनमें ईश्वर का प्रतिपादन है। संहिताभाग में भी ऐसे बहुत से स्थल हैं। यह स्पष्ट कहा गया है कि यद्यपि पुकारने के इन्द्र, वायु आदि अनेक नाम हैं पर वह एक ही है; एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। जगत् के विकास के पहले वही था; आनीदवातं स्वधया तदेकं, तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास––वह एक अपनी शक्ति के साथ बिना वायु के साँस ले रहा था, उसके सिवाय और कुछ न था (ऋग्वेद, १० म मण्डल, १२९वाँ सूक्त, २रा मंत्र)। उसकी महत्ता की सूचना ऐसे मंत्रों से मिलती है––

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः।
पदोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि।।

(ऋग्वेद–१०,९०,३)

यह सब जगत् उसकी महिमा है, वह पुरुष इससे बड़ा है। समस्त विश्व उसका एक पाद (चतुर्थांश) है, उसके तीन पाद तो अमृत दिव्य (लोक) में हैं।

उसकी शक्तिमत्ता इस प्रकार बतलायी गयी है––

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः, कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(ऋक्-१०, १२१, २)

यं कामये तन्तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्मणं तमृषिं तं सुमेधाम्।

(ऋक्-१०, १२५, ५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो प्राण देने वाला है, बल देने वाला है, सारे देव जिसकी आज्ञा मानते हैं, अमृत जिसकी छाया है और मृत्यु (जिसकी छाया है या वश में है), वह कौन-सा देव है जिसकी हम हवि से पूजा करें।

मैं जिस पर प्रसन्न होती हूँ, उसको उग्र बना देती हूँ ब्रह्मा बना देती हूँ, ऋषि बना देती हूँ, सुमेधा बना देती हूँ।

यह सब कुछ था परन्तु यह ईश्वर सबके काम का न था। दार्शनिक इसको विचार-सामग्री और योगी अपना ध्येय बना सकता था परन्तु, जिसके विषय में कर्मकाण्ड-प्रधान मंत्रभाग भी इस प्रकार कहता जाता है--

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते
(यजुर्वेद, नरमेधाध्याय)

प्रजापति गर्भ में आता है; अज होते हुए भी बहुत प्रकार से जन्म लेता है—साधारण अदार्शनिक मनुष्य केवल उसके चिन्तन से तुष्ट नहीं हो सकता। उसको तो कोई ऐसा चाहिए जो उसके दुख-सुख को सुने और सुन कर सहायता करने में समर्थ हो, जिससे वह कह सके कि भगवन्, तुम उसका बुरा करो, वेद के शब्दों में, 'योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः'—जो हमसे द्वेष करता है, तथा जिससे हम द्वेष करते हैं। बुद्धदेव ने जिस गद्दी पर से ईश्वर को उतारा था उस पर उनके अनुयायियों ने उनको ही ला बिठाया। प्राचीन आर्य इस बात के लिए इन्द्र, वरुण, कुबेर, विष्णु, रुद्र, अश्विद्वय को पुकारा करते थे। पीछे से इस सूची में राम, कृष्ण आदि के नाम मिला लिये गये। पर जब हिन्दू-मज़हब का जन्म हुआ तो यह सब भी पर्याप्त न निकला, एक ओर एक अल्लाह और एक पैग़म्बर के झण्डे तले खड़ी सेना, दूसरी ओर यह अराजकता। अराजक सेना को हारना ही था, यों तो हार के बहुत-से कारण थे। हार के बाद राष्ट्रबुद्धि में एक नयी भावना ने घर किया। एक नये ईश्वर की रचना हुई। यह ईश्वर बाहर तो बहुत दिनों से रह रहा था; अरब और पठान इसको अपने साथ लाये थे पर आर्य-सन्तान के लिए निःसन्देह नया था।

आर्य एकेश्वरवादी था, हिन्दू एकोपास्यवादी, अँगरेज़ी शब्दों में 'मानोयीस्ट' बनने के प्रयत्न में लगा। हो न सका क्योंकि पुराना संस्कार बहुत दृढ़ था पर प्रयास हुआ और होता जा रहा है। पश्चिम के संसर्ग का ऐसा प्रभाव पड़ा है कि जो लोग पौराणिक पद्धतियों को हटा कर वैदिक काल पुनः स्थापित करना चाहते हैं वे भी एकोपास्यवाद को ही मानते हैं।

एकेश्वरवादी ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है और यह भी मानता है कि ईश्वर एक ही है। परन्तु वह उपासना के क्षेत्र में उदारबुद्धि रखता है। उपासना को व्यक्तिगत विषय मानता है। तर्क करना दूसरी बात है पर वह ईश्वर के नाम पर किसी से लड़ नहीं सकता। यदि कोई व्यक्ति ईश्वर की सत्ता नहीं मानता या कई स्वतंत्र ईश्वरों की सत्ता मानता है तो उससे द्वेष नहीं करता। कोई एकेश्वरवादी उस एक ईश्वर को एक ही रूप से उपास्य मानता है, कोई ऐसा मानता है कि वह कई रूपों से व्यक्त हो रहा है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इन रूपों की पृथक्-पृथक् उपासना करता है, कोई ईश्वर से छोटे पर उससे भिन्न देव-देवियों को उपास्य ठहराता है। एकोपास्यवादी ऐसा नहीं कर सकता। वह तो उस एक ईश्वर के सिवाय किसी को उपास्य मान ही नहीं सकता और उपासना का भी एक ही बँधा ढंग श्रेयस्कर मान सकता है। उसका ईश्वर चरित्र को गौण और अपनी पूजा को प्रमुख स्थान देता है। वह एक ऐसा पिता है जो इतने ही से सन्तुष्ट नहीं होता कि सन्तान सच्चरित्र और सन्मार्गगामी हो प्रत्युत यह भी चाहता है कि लड़के दिन-रात मेरा और केवल मेरा यशोगान किया करें, अन्यथा वह निर्मम होकर उनका गला घोंट सकता है। सब अपराध क्षमा हो सकते हैं परन्तु मुनकिर (जो ईश्वर की सत्ता नहीं मानता) और मुशरिक * (जो ईश्वर के सिवाय किसी और को उपास्य मानता है) अक्षम्य है। जैसा कि बाइबिल के अनुसार, ईश्वर ने मूसा से कहा था "मैं ईर्ष्यालु ईश्वर हूँ"—यदि उसके सिवाय किसी और की पूजा होती है तो ईश्वर को असह्य ईर्ष्या होती है।

आर्यों का पुराना ईश्वर यथासम्भव इस नये ईश्वर के रूप में विकसित हुआ। वह अपने पुराने रूप का पूरा-पूरा परित्याग तो नहीं कर सका। अब भी वह विश्वेश्वर रहा, हिन्दू उसे केवल अपना ईश्वर नहीं बना सके। अब भी उसका और दूसरे सब प्राणियों का अंशी और अंश, आग और चिंगारी, जल और बूँद का सम्बन्ध रहा, अब भी सब देव-देवी उसी के भेद रहे। जब सब जगहों में वही था तो फिर हिन्दू उसका नाम लेकर उसी के नाम पर बने हुए दूसरे उपासना-गृह जैसे मसजिद या गिरजा को न तोड़ सके और न अहिन्दुओं को बलात् हिन्दू बनाने में प्रवृत्त हो सके। फिर भी इस पुराने ईश्वर ने अपने वास्तविक कलेवर के ऊपर नया लबादा पहन कर नया वेष बना ही लिया। एक तो उसकी शक्ति बढ़ गयी। अब 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् समर्थः'— करने, न करने और अन्यथा करने में समर्थ हो गया। अपना यशोगान करने वालों को कर्मफल भोग से छुट्टी दे देने की क्षमता उसमें हो आयी। उसके तत्व और महत्त्व से परिचित महात्मागण निःसंकोच भाव से यह कह सकते हैं—

होइहि सोइ जो रामरचि राखा । को करि तर्क बढ़ावै साखा।

पहले यदि वह जगत् का कर्त्ता था भी तो निमित्तमात्र, जगत् की रचना तो जीवों का अदृष्ट स्वतः करता था। अब वह अपनी इच्छा से सृष्टि और प्रलय कर सकता है। आज का हिन्दू उसको जगत् की बुराइयों के लिए वैसे ही उलाहना देता है जैसे मुसलमान अपने खुदा को दे सकता है।

शक्ति के साथ-साथ उसके स्वभाव का ईर्ष्यालुपन भी बढ़ गया है। अब उसकी सत्ता को मानने वाला हिन्दू पुराने ईश्वर को मानने वाले आर्य की भाँति उदार नहीं रह गया। वह चाहता है कि लोग भलेमानस तो हों ही परन्तु ईश्वर को भी मानें। जो ईश्वर को नहीं मानता वह बुरा समझा जाता है। ईश्वर को न मानने वाले को अनीश्वरवादी

---

* अरबी भाषा का शब्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा जाना चाहिए पर यह शब्द कुछ लंबा पड़ता है, दार्शनिक शास्त्रार्थ के लिए तो ठीक है परन्तु गाली के लिए हलका-फुलका शब्द ही ठीक बैठता है। नया शब्द कौन गढ़े, एक पुराने शब्द की मिट्टी खराब कर दी गयी जो मनुष्य वेद को प्रमाण नहीं मानता था अर्थात् वेदोपदिष्ट धर्म, व्यक्ति और समाज के लिए वेदों में बतलायी गयी जीवन-विधि पर नहीं चलता था वह नास्तिक कहलाता था। इस व्याख्या के अनुसार ईश्वर को मानने वाला मुसलमान नास्तिक और ईश्वर न मानने वाला सांख्यमतावलम्बी आस्तिक कहलायेगा। पर हिन्दुओं में यह चल पड़ा है कि जो मनुष्य ईश्वर की सत्ता को नहीं स्वीकार करता वह नास्तिक कहलाता है और यह प्रयोग केवल वर्णनात्मक नहीं प्रत्युत् निन्दात्मक है। अमुक मनुष्य नास्तिक है कहना उसकी परम नीचता और सापराधिता का परिचय देना है। अपने इस नये ईश्वर से हिन्दू और भी कई बातें सीख रहा है। अब उसको यह मनोरथ होता है कि दूसरे मज़हबों के उपासनागृहों को नष्ट-भ्रष्ट करके उनकी जगह अपने ईश्वर के स्मारक बनवाये और यदि अवसर मिले तो दूसरों को हिन्दू भी बनाया जाय। अभी बल-प्रयोग की बात नहीं कही जाती। साधन भी नहीं है। परन्तु जिस प्रकार वैद्य रोगी को कड़वी औषध देता है वैसे ही यदि किसी के कल्याण की दृष्टि से थोड़ा-सा बल-प्रयोग भी किया जाय तो क्या हानि है? आखिर, और मज़हबों ने भी तो ऐसा किया है।

ईश्वर का विकास अभी समाप्त नहीं हुआ है। पर मुझे तो उसके लिए दो ही भविष्यत् देख पड़ते हैं। या तो वह इस कृत्रिम स्वांग को उतार कर फिर आर्यों का ईश्वर, सूक्ष्म आध्यात्मि परमात्म तत्त्व, हो जाय नहीं तो अपने भाई ईश्वरों के साथ मज़हब के जहाज में बैठा-बैठा भावी जगत् की विचार-तरंगों की गोद में जा छिपेगा। आर्य-संस्कृति का ईश्वर एक शाश्वत पदार्थ है जिसका अनुचिंतन जिज्ञासु मात्र को करना होगा। हिन्दू मज़हब का ईश्वर विचार-विकास की एक अस्थायी और पतनोन्मुखी अवस्था की सृष्टि है जिसका चिराय न होना ही श्रेयस्कर है।

आर्य धर्म और संस्कृति का मूल कर्म सिद्धान्त था, प्रत्येक प्राणी अपने सुख-दुख के लिए आप दायी है। आयु और भोग अपने कर्मों के संस्कारों का फल है। न इन बातों का कारण किसी अलक्ष्य व्यक्ति की कृपा–अकृपा है, न घटनाओं का अहैतुक संयोग। आत्मा अमर, पूर्णप्रज्ञ और स्वतंत्र है पर उसके साथ अज्ञान और अज्ञानजनित अशक्ति का कृत्रिम बन्धन लगा है। जहाँ तक अज्ञान है वहाँ तक बन्धन है परन्तु आत्मा की शक्ति कभी नष्ट तो होती नहीं, वह अपनी खोयी स्वाधीनता पाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहती है। बस, हमारे सारे काम इसी प्रकार बन्धन और स्वातंत्र्य के संघर्ष से उत्पन्न होते हैं। किसी में बन्धन की मात्रा अधिक होती है, किसी में कम पूर्णप्रज्ञ व्यक्ति पूर्णतया स्वतंत्र होगा। कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो भोग में एक रत्ती भर सुख की मात्रा बढ़ा सके या उसमें से एक रत्ती भर कम कर सके।

यावन्न क्षीयते कर्म्म, अशुभं शुभमेव वा।
तावन्न जायते मोक्षो, नृणां जन्म शतैरपि।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जब तक शुभाशुभ कर्मों का क्षय नहीं हो जाता, तब तक सैकड़ों जन्मों में भी मोक्ष नहीं हो सकता।

किसी भी एक जन्म में पिछले सब जन्मों के सब कर्मों के फल नहीं भोगे जा सकते क्योंकि भोग तभी हो सकता है जब दूसरे लोग भी, जिनको भोग में किसी न किसी रूप में भाग लेना है, तैयार हों। इसलिए, किसी एक जन्म में पहले के संचित भण्डार में से थोड़ा-सा ही अंश भोग के लिए परिपक्व होता है। इस अंश को प्रारब्ध (आरम्भ हो चुका) कहते हैं। प्राणी प्रारब्ध के साथ जन्म लेता है और उसका जीवन उसी के अनुसार होता है इस संबंध में दो बातें सदा स्मरणीय हैं। एक तो यह कि अपने प्रारब्ध का पूरा दायित्व अपना है। हमारे पिछले कर्मों ने उसे उत्पन्न किया है और इस समय के कर्म आगे के जन्मों के प्रारब्ध के स्वरूप को निश्चित करेंगे। दूसरी बात यह है कि मनुष्य प्रारब्ध का दास नहीं है। उसकी आत्मा स्वतंत्र है और, जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ, प्रतिक्षण अपने स्वरूप का अनुभव करने का यत्न करती रहती है। अनुकूल परिस्थिति में, बहुत गम्भीर भावावेश में, ऊँचे कोटि की कला के सम्पर्क में वह थोड़ी-बहुत देर के लिए बन्धनों को न्यूनाधिक शिथिल कर देती है। स्वातंत्र्य के इस अनुभव को अभ्यास से बढ़ाना सम्भव है। इसलिए कर्म-संस्कार का अतिक्रमण भी हो सकता है। यदि ऐसा न हो तो कोई कभी मोक्ष पा ही नहीं सकता क्योंकि कर्म से भोग, भोग के लिए शरीर, शरीर से पुनः कर्म, यह चक्र तो घूमता ही जायगा, कभी रुक ही नहीं सकता। परन्तु कर्म-सिद्धान्त यह बतलाता है कि विशेष अवस्थाओं में विशेष व्यक्ति के लिए शरीर रहते हुए भी यह सम्भव है कि ऐसे कर्म न किये जायँ जो भोगजनक और शरीरोत्पादक हों समाधि में पूर्णज्ञान और आत्मसाक्षात्कार कर लेने पर फिर तो कर्म और फल का कोई बन्धन रह ही नहीं जाता। थोड़े में कर्म-सिद्धान्त का यह रूप है और यह विश्वास आर्य-संस्कृति का प्रधान स्तम्भ है। इसके गिर जाने पर सारा धर्म-विधान गिर जाता है।

जिन मज़हबों से हमारा सामना पड़ा वे ऐसा नहीं मानते। उनके मत में ईश्वर ने अपनी इच्छा से जगत् की रचना की और एक दिन संहार करेगा। यह ठीक है कि उसकी कुछ आज्ञाएँ हैं जिनको मानने वाला सुखी रहता है—यदि यहाँ सुख न मिला तो मरने पर मिलेगा— और उनका उल्लघंन करने वाला दुःख पाता है-यदि यहाँ दण्ड न मिला तो मरने पर मिलेगा। परन्तु ईश्वर किसी के सत्कर्म, दुष्कर्म से बँधा नहीं है। वह सदाचारी से भी रुष्ट हो सकता है और दुराचारी पर भी प्रसन्न हो सकता है। उस पर ईमान लाने वाला दुराचारी ईमान न लाने वाले सदाचारी से अच्छा और ईश्वर को अधिक प्यारा है। हमारे इस जन्म के सुख-दुख ईश्वर के दिये हुए हैं। उसने ऐसा क्यों किया यह तो वही जान सकता है। क्यों कोई जन्म ही से अन्धा, कोढ़ी, रोगी, मूर्ख और दरिद्र है और कोई स्वस्थ, सम्पन्न और बुद्धिमान् है, यह बात तर्क से समझ में नहीं आ सकती। शरण जाने से वह दुख को सुख में बदल सकता है, अकारण ही सुख को दुःख में परिणत कर सकता है। मनुष्य को चुपचाप सहन करने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। जैसा कि एक सूफ़ी महात्मा ने उपदेश दिया है। यह समझ कर सन्तोष करो कि 'तीरे दोस्त बर पहलूए दोस्त मी आयद'— यदि तुमको तीर भी लगा, तो उसका चलाने वाला तुम्हारा मित्र,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चा हित है, कुछ समझ कर ही चलाया होगा। जो कुछ भी हो, ईश्वर की इच्छा अटल है। ईश्वर ने हमारे हिस्से में जो कुछ डाल दिया वह हमारी 'किस्मत' है।

इस संक्षिप्त वर्णन से प्रारब्ध और किस्मत का सादृश्य और भेद दोनों बातें प्रकट हो जाती हैं। किस्मत और प्रारब्ध दोनों ही जन्म से साँच हैं और दोनों ही जीवन को अपने साँचे में ढालते हैं। दोनों को ही धैर्य और सन्तोष से सहना होगा परन्तु प्रारब्ध अपना कमाया हुआ है और क़िस्मत ईश्वर की देन है। हम प्रारब्ध के दास नहीं हैं, उसको बदल भी सकते हैं परन्तु क़िस्मत अमिट है। प्रारब्धवादी अपने कामों को देखता है पर किस्मतवादी को ईश्वर का मुँह ताकते रहना पड़ता है। दुःखपूर्ण होते हुए भी प्रारब्ध व्यक्ति की स्वतन्त्रता का द्योतक है——सुखमय होते हुए भी क़िस्मत उसकी परतन्त्रता का चिन्ह है। प्रारब्ध आत्मविश्वास सिखलाता है और क़िस्मत दीनता सिखलाती है। प्रारब्ध निश्चयात्मक है, क़िस्मत संशयात्मक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्यता, दायित्व और पुरस्कार

स्वाधीन भारत के सामने जो बहुत से प्रश्न उपस्थित हुए उनमें कर्मचारियों के वेतन या पुरस्कार के प्रश्न भी बड़े महत्वपूर्ण हैं। किसी न किसी कोने से कम वेतन पानेवालों द्वारा हड़ताल की धमकी सुनायी देती रहती थी। भारत सरकार ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया। प्रान्तीय सरकारों को भी अपने-अपने ढंग पर समस्या से उलझना पड़ा।

लड़ाई के दिनों में महँगी बहुत बढ़ गयी, खाने की सामग्री का मूल्य प्रायः साढ़े तीन गुना बढ़ गया। इस अनुपात से वेतन बढ़ाना कठिन था। सरकार को यह आशंका थी—और आशंका निराधार नहीं थी—कि यदि वेतन बढ़ा दिया गया तो युद्ध के समाप्त होने पर जब सस्ती हो जायगी तब भी उसको घटाना सम्भव न होगा। इसलिए वेतन बढ़ाने के स्थान में महँगी का भत्ता दिया गया।

भत्ते का यह विधान न्याय्य नहीं है। महँगी का प्रभाव मुख्यतया भोजन वस्त्र और घर के किराये पर पड़ता है। जो थोड़ी आमदनी वाला होता है उसकी आय का बहुत बड़ा भाग भोजन, किराया और वस्त्र में लगता है। ज्यों-ज्यों आय बढ़ती है त्यों-त्यों इसका अनुपात घटता है। १५) कमाने वाला खाने, कपड़े और कराये में १२) व्यय करता होगा परन्तु १५००) पाने वाले के इन बातों में १२००) व्यय नहीं होते। इसलिए युद्ध का कष्ट बड़ी आमदनी वालों पर अपेक्षाकृत कम पड़ता है। पैट्रोल मिलना कठिन हो गया, नौकरों के वेतन बढ़ गये, लड़कियों के दहेज में अधिक देना पड़ गया, यह सब ठीक है पर इन चीजों के बिना जीना सम्भव था, जबकि अन्न न मिलने का एक मात्र परिणाम मृत्यु था। किराये पर कंट्रोल था, कपड़ा अलभ्य—सा हो रहा था। इसलिए पैसा और इच्छा रहते हुए भी कोई धनवान इस मद में बहुत रुपया नहीं लगा सकता था। परन्तु अन्न की समस्या कठिन थी। मूल्य पर नियंत्रण था, बड़े—बड़े नगरों में राशन की व्यवस्था थी, इसलिए गरीब-अमीर एक समान हो गये थे। कोई व्यक्ति चोरबाजार से कुछ मोल ले लेता होगा, किसी के घर फल, दूध-घी की कुछ अधिक खपत होगी परन्तु मुख्य रूप से कम और अधिक वेतन पाने वालों को परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर प्रायः एक-सा व्यय करना पड़ता था और अब तक है। इसलिए कम वेतन वालों को अनुपाततः अधिक भत्ता मिलना चाहिए। यदि १५) पाने वाले चपरासी को १४) मिलें तो उसको बहुत सुविधा हो गयी परन्तु ३०, ४०, या ५० रुपया पाने वाले क्लर्क के लिए यह भत्ता बहुत कम है।

अस्तु, यह तो अस्थायी परिस्थिति है। एक ओर तो धीरे-धीरे कुछ न कुछ सस्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
होगी, दूसरी ओर वेतन-वृद्धि होगी, इस जगह मैं इन बातों की ओर केवल संकेत करना चाहता था। मेरा उद्देश्य यह है कि हम वेतन के प्रश्न पर गम्भीर विचार करें और इसके लिए कोई सिद्धान्त निश्चित करें। आजकल या तो कोई सिद्धान्त है ही नहीं या यदि है तो वह भ्रान्त और संदिग्ध है।

कदाचित कुछ लोग यह समझते हों कि मनुष्य को उसकी योग्यता के अनुसार पुरस्कार दिया जाता है। यह भ्रम है। साधारणतः समाज योग्यता का नहीं प्रत्युत काम का पुरस्कार देता है। नाम कुछ भी हो परन्तु जो दिया जाता है वह एक प्रकार से पारिश्रमिक होता है। विश्वविद्यालय का अध्यापक इसलिए रुपया नहीं पाता कि वह विद्वान् है वरन् इसलिए कि समाज ऐसा मानता है कि वह अध्यापन या शोध के द्वारा समाज की सेवा कर रहा है और इस सेवा का मूल्य दिया जाना चाहिए, अन्यथा उससे वंचित होना पड़ेगा। परन्तु सबको बराबर पुरस्कृत नहीं किया जाता। इससे स्पष्ट है कि समाज की दृष्टि में सबकी सेवाओं का महत्व बराबर नहीं है। पुरस्कारों के न्यूनाधिक्य की कसौटी सेवा का तारतम्य है पर इस तारतम्य की नाप-तौल कैसे की जाय?

दायित्व का प्रश्न

ऐसा कहा जाता है कि जिस काम में अधिक दायित्व हो उसका पुरस्कार अधिक होना चाहिए। दायित्वों की कल्पित सीढ़ी बना ली गयी है उसके जोड़ की सीढ़ी पुरस्कारों के लिए खड़ी कर दी गयी है। पहली सीढ़ी कल्पित इसलिए है कि दायित्वों की ठीक-ठीक तुलना नहीं की जा सकती। बहुधा जब एक अधिकारी को दूसरा काम सौंपा जाता है तो वह यह कहता है कि मेरा दायित्व अधिक है, मुझे अधिक वेतन मिलना चाहिए। इस कहने का क्या अर्थ है? क्या उसका पहले वाला काम कम दायित्व का, अर्थात् समाज के लिए कम उपयोगी था? यदि क्लर्क डिप्टी कलक्टर बना दिया जाय तो वह अधिक वेतन माँगेगा, परन्तु क्या समाज का काम क्लर्कों के बिना चल सकता है? दफ्तर का बाबू अधिक वेतन पाता है परन्तु क्या उसका दायित्व उस व्यक्ति से अधिक है जो लाइन के किनारे खड़ा होकर रेल को रंगीन झंडी दिखलाता है? कुछ प्रकार के लोग अधिक मिलते हैं और कुछ कम, पर कम मिलने से ही किसी के दायित्व को कैसे बड़ा मान लिया जाय? इंजीनियर कम मिलते हैं पर क्या सड़क बनवाने वाले इंजीनियर का दायित्व उस एंजिन चलाने वाले से अधिक है जो पुल पर से रोज सैकड़ों मनुष्यों से भरी गाड़ी को ले जाता है, थानेदार के दायित्व का अंकन किस प्रकार ग्रामीण अध्यापक से ऊपर किया जाय?

इस सब कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि समाज के प्रति सबका दायित्व बराबर है। राजपुरुष, सेनापति, इंजीनियर की जरा सी भूल से समाज की धन-जन की अपार क्षति हो सकती है ऐसे लोगों का दायित्व बहुत बड़ा है। परन्तु दायित्वों को तोला नहीं जा सकता। अमुक का दायित्व अमुक से इतना गुना अधिक है कहना मूर्खता है, और इस निराधार कथन के आधार पर पुरस्कारों का बिछाना और भी मूर्खता है। समाज को चाहिए कि असंभव को संभव बनाने के प्रयत्न को छोड़ कर पुरस्कारों को दूसरी ही नींव पर स्थित करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे पहले तो यह मान लेना चाहिए कि सभी मनुष्यों की कुछ मौलिक आवश्यकताएँ होती हैं। सबको ही निश्चित मात्रा में भोजन और वस्त्र जैसी चीजें चाहिए। समाज को देश, काल और अपनी आय देख कर इन आवश्यकताओं की पूर्ति का मूल्य निर्धारित करना चाहिए। गर्म देश में और ठंडे देश में भोजन और वस्त्र का व्यय एक-सा नहीं होता; धनिक समाज में बारीक कपड़ा पहिना जा सकता है और पक्के मकान बन सकते हैं, निर्धन समाज में मोटे कपड़े और कच्चे घर से काम चलाना होगा। इन बातों को ध्यान में रखते हुए कुशल वैद्य, अर्थशास्त्री, मनोविज्ञानवेत्ता और राजपुरुष मौलिक पुरस्कार का निर्णय करेंगे जो सबको मिलना चाहिए।

इन मौलिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त कुछ व्यक्तिगत आवश्यकताएँ भी होती हैं। यदि उनकी पूर्ति न हो तो जीवन कुछ सूना-सूना सा लगता है। काम में मन नहीं लगता, किसी को गाने-बजाने का शौक है, किसी को थियेटर सिनेमा का, किसी को सैर करने का किसी को पुस्तक संग्रह का, किसी को अधिक स्वादु खाना जँचता है, कोई स्त्री आभूषण पसन्द करती है, कोई साड़ी। इन बातों का लिहाज करके वेतनों में थोड़ा-बहुत अन्तर रखना होगा। यह मान लेना होगा कि जिन देशों में शिक्षा की अधिक आवश्यकता होती है उनमें लोगों के शौक अपेक्षाकृत अधिक संस्कृत और महँगे होंगे। पर इस प्रकार का अन्तर बहुत बड़ा नहीं हो सकता। अधिकतम वेतन न्यूनतम वेतन से दस-बीस गुना से अधिक नहीं हो सकता। चपरासी का १५) रुपया और वाइसराय का २५,०००) अवैज्ञानिक और अक्षम्य है। जहाँ तक मैंने सुना है अपने को समाजवादी न कहते हुए भी स्वीडेन ने कुछ ऐसी ही व्यवस्था की है।

यदि बच्चों के भरण-पोषण और शिक्षा तथा बेकारी और बुढ़ापे में भरण का भार राज अपने ऊपर ले ले, जैसा कि होना चाहिए, तो फिर रुपया जमा करने का प्रलोभन भी नहीं रह जाता।

मितव्ययिता नहीं आत्महत्या

इस प्रकार कर्मचारी दस-पाँच वर्गों में बाँटे जा सकते हैं परन्तु कुछ ऐसे लोग होंगे जिनके कामों का प्रभाव लाखों समसामयिक मनुष्यों पर ही नहीं वरन् आनेवाली पीढ़ियों पर भी पड़ेगा। उदाहरण के लिए वैज्ञानिक शोधकर्ताओं या राजमंत्रियों को लीजिए। समाज को ऐसी सुविधाएं देनी होंगी जिसमें यह निर्विघ्न रूप से लोकहित की बात सोच सकें और अपना काम कर सकें। इनके लिए अच्छे घर, नौकर, सवारी आदि का प्रबन्ध करना समाज का कर्तव्य है। ऐसे व्यक्ति को अपने घर में झाड़ू लगाने या भीड़ से भरे डिब्बे में यात्रा करने लिए विवश करना मूर्खता है। इसका नाम मितव्ययिता नहीं आत्महत्या है।

लोकतन्त्र में यह दोष बतलाया जाता है कि उसमें विशिष्ट व्यक्तियों को स्थान नहीं मिलता। सब बराबर हैं, कहना एक सीमा तक तो ठीक है परन्तु वस्तुतः व्यक्ति व्यक्ति में भेद है ही। यह भेद इतना नहीं है जितना आजकल मान लिया गया है परन्तु उसके अस्तित्व से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। जब लोकतन्त्र के नाम पर अतिमात्र व्यवहार होने लगता है तभी हिटलर जैसे अतिपुरुषों को ऊपर उठने का अवकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है। ऐसे अवसरों पर जो लोकतन्त्र देश अपनी रक्षा कर पाते हैं उनकी विजय का एकमात्र रहस्य यह होता है कि वह लोकतन्त्र को हटा कर अपने विशिष्ट पुरुषों को पूरा अधिकार दे देते हैं। पिछले महायुद्ध का इतिहास इसके अनेक प्रमाण देगा। जो समाज उन्नत रहना चाहता है उसको अपने विशिष्ट व्यक्तियों से काम लेना सीखना होगा।

कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो पुरस्कार के इस प्रबन्ध के भीतर नहीं लाये जा सकते। यदि लोग धर्मोपदेष्टा के उपदेश या किसी महा कलाकार की कला का रसास्वाद करना चाहते हैं तो उसका मुँहमाँगा पुरस्कार देना ही होगा। यदि कोई कुशल चिकित्सक मनुष्य की पीड़ा का लाभ उठाना चाहता है तो उसको फीस देनी ही होगी। परन्तु एक तो ऐसे लोग थोड़े ही होंगे, दूसरे हमको यह आशा करनी चाहिए कि चारों ओर के लोकसंग्रहात्मक वातावरण का इस पर भी प्रभाव पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में पुरस्कारों का विभाजन

ब्रिटेन के आजकल के दार्शनिकों में प्रोफेसर जोड का बहुत ही आदरणीय स्थान है। उनके विचारों में मौलिकता तो है ही, साथ में उनकी व्यंजनशैली भी बहुत रोचक है। अभी हाल में उनका एक लेख भारतीय पत्रों में उद्धृत हुआ है उसका विषय यह था कि यू० एन० ओ० (संयुक्त राष्ट्रों के संगठन) का महामंत्री सेक्रेटरी-जनरल, कैसा व्यक्ति होना चाहिए।

यह तो प्रासंगिक राजनीतिक विवाद है जिसका निर्णय विभिन्न सरकारों के दाव-पेंच के आधार पर ही होना संभव था। ऐसा ही हुआ भी। नारवे के श्री ट्राइवर ली सेक्रेटरी-जनरल नियुक्त हुए हैं। नियुक्ति इसलिए नहीं हुई कि उनसे योग्य कोई दूसरा व्यक्ति मिल नहीं सकता था, वरन् इसलिए कि महाशक्तियां किसी और नाम पर सहमत नहीं हो सकीं।

जोड का कहना है कि ऐसे महत्वपूर्ण चुनाव को बहुत सोच-विचार कर करना चाहिए। सोच-विचार का आधार मनोविज्ञान होना चाहिए। इस संबंध में वह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। उनका कहना है कि निम्न कोटि के मनुष्य धन के भूखे होते हैं। धन से वस्तुओं पर, भोग्य पदार्थों पर, अधिकार प्राप्त होता है। परन्तु ऊँची कोटि के मनुष्यों की तृप्ति इससे नहीं होती। उनकी योग्यता धनोपार्जन को निकृष्ट समझती है। वह वस्तुओं पर नहीं बल्कि मनुष्यों पर अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं।

यू० एन० ओ० के महामंत्री का चुनाव तो अच्छा-बुरा जैसा होना था हो गया पर प्रसंगवश जोड ने हमारे ध्यान को बड़ी महत्वपूर्ण दिशा में खींचा है। उनका यह विभाजन व्यर्थ नहीं है। जहां कुछ लोग धन कमाने में अपना सारा जीवन लगा देते हैं। वहां ऐसे भी लोग हैं जो इस 'बनिया' प्रवृत्ति पर हँसते हैं।

वर्तमान समाज में धन का काम सब को पड़ता है, फिर भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो सम्मान, ऊँचे पद और शासनाधिकार के सामने धन को तुच्छ समझते हैं। ऐसे लोगों को ऊँचा इसलिए कहा गया है कि प्रायः बौद्धिक शक्ति इनमें अधिक होती है और इसके अतिरिक्त उदारता और परार्थ-चिन्तन भी अधिक होता है। ऐसे लोग आन के धनी होते हैं; अपनी बात के ऊपर सब कुछ निछावर कर सकते हैं, और यदि मन में बैठ जाय तो सार्वजनिक हित, देश, धर्म या किसी सिद्धान्त के नाम पर उफ किये बिना प्राण तक दे सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके हाथों लोगों की हानि भी होती है और यदि किसी कारण हठ पर आ जायं, तो यह जानबूझ कर हानि करते भी हैं। परन्तु बहुधा इनका दूसरों के प्रति एक प्रकार का रक्षाभाव रहता है। जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसको इनकी गतिविधि भले ही पसन्द न हो, पर यह सोचते हैं उसके भले की। लोगों का लाभ इस बात में ही है, ऐसे दृढ़ विश्वास से ही, चाहे वह विश्वास निराधार ही हो, हिटलर जैसा अधिनायक भी काम करता है, परन्तु वणिक्बुद्धि प्रायः स्वार्थ पर केन्द्रित रहती है। धनोपार्जक यदि करोड़ रुपया लगा कर चिकित्सालय खोलता है, तो अपनी दृष्टि में परलोक के लिए पूंजी लगाता है।

अधिकार का पात्र

परन्तु अधिकार चाहने से ही किसी को अधिकार देना तो ठीक न होगा, क्योंकि जहां एक ओर ऐसा व्यक्ति समाज का बहुत हित कर सकता है, वहां बहुत अहित भी कर सकता है। इस संबंध में जोड ने प्लेटो से एक अवतरण दिया है।

इस यवन दार्शनिक का कहना है: अधिकार के योग्य वही मनुष्य है जो अधिकार नहीं चाहता। जो मनुष्य, अधिकार का भूखा है वह उसको प्राप्त करने के लिए भांति-भांति के उपाय करेगा और प्राप्त कर लेने पर अपना शौक पूरा करने के लिए उससे काम लेगा। वह अपने मित्रों, संबंधियों और दलवालों को आगे बढ़ाने में भी उसका उपयोग करेगा।

प्लेटो की चेतावनी सर्वथा ठीक है। पर किया क्या जाय? समाज को इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार करना चाहिए।

वर्णव्यवस्था में मनोवैज्ञानिक तथ्य

वर्णव्यवस्था का वर्तमान रूप भला हो या बुरा, परन्तु उसके प्रवर्तकों को उस मनोवैज्ञानिक तथ्य का ज्ञान था जिसका जिक्र जोड ने किया है, और वह उस भयस्थान से भी परिचित थे जिसकी ओर प्लेटो ने संकेत किया है। वर्तमान समाज इन बातों को भूल गया है और अपनी भूल का फल भोग रहा है। उसने एक ओर तो अधिकार की लिप्सावालों पर कोई लगाम नहीं लगायी, दूसरी ओर इससे बढ़कर भयानक भूल यह की कि धन के भूखों को अधिकार पर कब्जा करने दिया।

अनियंत्रित अधिकार और धन के पुजारी की शुद्ध स्वार्थबुद्धि—इस योग ने सत्यानाश कर दिया है। धनवान रुपये देकर वस्तुओं को मोल लेता है। मंहगी से मंहगी वस्तु को किसी न किसी दाम पर ले सकता है। ऐसा करते-करते उसकी वृत्ति यह हो जाती है कि सब कुछ क्रय्य है, सब कुछ खरीदा जा सकता है। वह धर्म, ईमानदारी—सबका मूल्य आंकता है, सबको अपनी ही भांति स्वार्थी और लोभी समझता है।

ऐसे समाज में 'सर्वेगुणाः कांचनमाश्रयन्ति' (सब गुण सोने का आश्रय लेते हैं) सर्वथा सच जँचता है, विद्या, बुद्धि, आध्यात्मिकता—सब की परख रुपये से होती है।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनिक के इशारे पर राज का शासन होता है, विद्यालयों में शिक्षा दी जाती है, शास्त्र की रचना होती है। अपना स्वार्थ और अपना अभ्युदय जीवन का मूलमंत्र बन जाता है और संघर्ष तथा युद्ध वैयक्तिक और सामूहिक जीवन के अनिवार्य उपकरण हो जाते हैं।

यदि इस दुरवस्था से बचना है तो हम को एक ओर तो कार्ल मार्क्स की बातों पर ध्यान देना होगा। धन-संग्रह पर रोक-थाम लगानी होगी और पूंजी को समाज के अधिकार में रख धनवानों को परकैंच बनाना होगा। परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है; हमको पुराने भारतीय आचार्यों से समाज के वर्गीकरण का सिद्धान्त लेना होगा और आजकल की परिस्थिति में उसको कार्यान्वित करना होगा। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम 'जन्मनावर्णः' (जन्म से वर्ण) के सिद्धान्त को मान लें या ब्राह्मणादि पुराने शब्दों का पुनः व्यवहार करने लगें।

भारतीय वर्ण-व्यवस्था ने समाज में निम्नतम स्थान उन लोगों को दिया था जिनकी बुद्धि विकसित नहीं है। शूद्र कहलाना आज किसी को अच्छा नहीं लगता, परन्तु आज भी ऐसे करोड़ों व्यक्ति हैं जिनकी बुद्धि विशेष उठती नहीं। उनकी इतनी ही इच्छा होती है कि सुख से खाने-पहिनने को मिल जाय, बाल-बच्चों को कष्ट न हो, काम करें, पड़ कर सो रहें। न हम किसी के काम में दखल दें, न हमारे काम में कोई दखल दें। इनमें पढ़े-लिखे भी हैं, अनपढ़ भी। आगे भी ऐसे लोग रहेंगे। अच्छे-बुरे शासन की परख इनको है, परन्तु स्वयं कोई दायित्व नहीं उठा सकते।

इनसे ऊपर वह लोग आते हैं जो वस्तुओं पर अधिकार चाहते हैं, धन-संग्रह में जिनकी बुद्धि लगती है। यह लोग जोखिम उठा सकते हैं, दायित्व उठाने को तैयार और तत्पर रहते हैं। समाजवादी व्यवस्था में इनकी प्रवृत्तियों की दिशा बदल जायगी, फिर भी इन पर अंकुश रखना ही होगा। अनियंत्रित वैश्य समाज के शरीर को विषाक्त कर देता है।

ऊपर वाले वर्ग में दो भेद करने होंगे। पहिले तो वह लोग आते हैं जो शासन अधिकार के उपयोग में रस लेते हैं। क्षात्रभाव की आवश्यकता समाज को सदा रहेगी, पर उस पर नियंत्रण करना होगा। प्राचीन काल में दो प्रकार से नियंत्रण था।

एक तो ऐसे लोगों को धन-संग्रह का अवसर नहीं दिया जाता था। शासक को भरण-पोषण भर के लिए धन मिलता था, पर वह इतना नहीं होता था कि उसकी पूंजी बन सके।

धनवानों का स्थान

धनवालों को जो नीचा स्थान दिया जाता था उसके कारण भी धन-संग्रह प्रवृत्ति रुकी रहती थी। एक ही व्यक्ति दो प्रकार से लोगों को नहीं सता सकता था। रुपये वाला शासन-सूत्र से वंचित था। अधिकारी के पास पैसा नहीं था। समाज में पैसे वालों का स्थान नीचा माना जाता इसलिए शासक वर्ग पैसे वालों के साथ मिल कर गुट बनाने में लज्जा का अनुभव करता था।

दूसरे, विद्वान और शिक्षक सबसे अलग कर दिये गये थे। उनका स्थान शासकों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी ऊँचा था। ब्राह्मण के सामने यह आदर्श रखा गया था कि उसको धन और शासनाधिकार से दूर रहना चाहिए। यह बातें छोटी हैं और आपत्काल में ही ब्राह्मण के लिए ग्राह्य हो सकती हैं। परन्तु उसका सम्मान सर्वोपरि था। बड़े से बड़ा सम्राट सद्यःस्नात ब्रह्मचारी के सामने नत-मस्तक होता था।

इसका परिणाम यह होता था कि ब्राह्मण हर कदम पर दायित्व का अनुभव करता था। जो जितनी ही ऊँचाई पर बैठता है उसको गिरने पर चकनाचूर होने का उतनी ही डर रहता है। धन और शक्ति के प्रलोभन से दूर रहने तथा अनन्य सम्मान और श्रद्धा का भाजन होने के कारण ब्राह्मण का लक्ष्य समाज का हित ही हो सकता था और वह अपनी प्रतिभा का उपयोग परार्थ में ही कर सकता था। उसकी सम्मति, उसकी दी हुई व्यवस्था, निःस्वार्थ और पक्षपातहीन बुद्धि से ही प्रेरित होती थी।

ब्राह्मण का पतन

हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि प्रत्येक ब्राह्मण आदर्श पुरुष, मर्यादा पुरुषोत्तम होता था। बुरे ब्राह्मण भी होते थे। प्राचीन ग्रंथ इन व्यक्तियों की खूब आलोचना और निंदा करते हैं। परन्तु अपवाद थोड़े ही रहे होंगे, नहीं तो अपवाद ही नियम बन जाता। सब चरित्र के ऊंचे शिखर तक कदापि नहीं पहुंच सकते, परन्तु चारों ओर के वातावरण के प्रभाव से छोटा भी ऊपर उठने के लिए सतत यत्नशील रहता है। वह तो जब परिस्थितियों ने ब्राह्मण को क्षत्रिय और वैश्य का आश्रित बना दिया, तो वह अपनी व्यवस्था को बेचने लगा और आज 'वानरीमिव वाग्देवीं नर्तयति गृहे गृहे' (घर-घर में बंदरी जैसा अपनी वाणी को नचाता फिरता है।)

जैसा मैंने पहिले कहा है, 'जन्मना वर्ण' की व्यवस्था को फिर से जीवित करने का प्रश्न नहीं है, प्रश्न यह है कि समाज में रहने वाले सभी प्रकार के मनुष्यों को मन की शान्ति कैसे दी जाय, और सब की बौद्धिक शक्ति का उपयोग किस प्रकार किया जाय? लोगों की प्रवृत्तियों की तृप्ति का कौन-सा उपाय निकाला जाय, जिससे दूसरों को कम से कम कष्ट पहुंचे, समाज में उत्पीड़न और शोषण को कम से कम छिद्र मिले? पुरस्कारों का विभाजन किस प्रकार किया जाय कि एकाधिकार और एकाधिपत्य को प्रोत्साहन न मिले।

एक और बात की ओर भी संकेत करना आवश्यक है। पुरस्कार सेवा के अनुपात से ही होना चाहिए।यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो विचारक व्यवस्थापक और शिक्षक सबसे अधिक पुरस्कार के पात्र हैं, और धनग्राहक, मूल्य लेकर भोज्य सामग्री प्रस्तुत करने वाला, सब से कम पुरस्कार का। इसीलिए आचार्यों ने धन लेकर शिक्षण करने वालों को वैश्य गिना था। फिर पुरस्कार देते समय पाने वाले की इच्छा को भी ध्यान में रखना चाहिए। सबके लिए रुपया ही अभीप्सित वस्तु नहीं होता। पुरस्कार-वितरण के जिन सिद्धान्तों का मैंने उल्लेख किया उनमें इन बातों का भी पर्याप्त लिहाज रखा गया है।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता की सुरक्षा

मनुष्य जिन अधिकारों का उपभोग करता है उनमें से अधिकतर समाज की देन हैं। अध्यापक, मिल-मालिक, पिता, राजा, जेलर को छात्र, मजदूर, पुत्र, प्रजा और बन्दी पर अधिकार होते हैं परन्तु न तो इन अधिकारों का अस्तित्व चिरस्थायी है, न स्वरूप। समाजवादी व्यवस्था में मिल-मालिक ही न होगा, निःसन्तान मनुष्य के लिए पिता शब्द का व्यवहार नहीं हो सकता, प्रजातंत्र में न राजा होता है न राजा के अधिकार ही हो सकते हैं। बहुत से अधिकार कानून द्वारा प्राप्त होते हैं, कानून उन्हें छीन भी सकता है। परन्तु कुछ अधिकार ऐसे हैं जो मनुष्य को मनुष्य होने, वरन् प्राणी होने के नाते प्राप्त हैं। न वह किसी समाज या राज या विधान से मिले हैं, न उन्हें कोई छीन सकता है। वह सहज हैं, जन्म के साथ ही प्राप्त होते हैं और अन्तिम सांस टूटने तक रहते हैं।

इन मौलिक अधिकारों में सबसे पहिला स्थान आत्मरक्षा का है। लघुतम कीड़ा भी अपनी जीवन-डोर को कटने से बचाना चाहता है। आत्मरक्षा के लिए दूसरे के प्राण तक लेना बुरा नहीं समझा जाता। कानून भी इसकी अनुमति देता है।

अकेला मनुष्य प्रयत्न करने पर भी आत्मरक्षा में पूर्णतया सफल नहीं हो पाता। जब वह समाज का अंग होता है तो उसके साथ बहुत से अधिकार और कर्त्तव्य जुड़ जाते हैं। परन्तु उसको एक अनुभव होता है——यदि वह अपनी रक्षा करना चाहता है तो उसको दूसरों की रक्षा का भी ध्यान रखना होगा। साधारण कहावत है, एक और एक मिल कर ग्यारह होते हैं। सम्मिलित प्रयत्न से सबकी रक्षा अधिक व्यवस्थित हो जाती है। इस प्रकार आत्मरक्षा पारस्परिक रक्षा और सुरक्षा का रूप धारण कर लेती है।

राज की जिम्मेदारी

राज समाज का प्रतीक है, इसलिए जनता की सुरक्षा राज की जिम्मेदारी होती है। आर्थिक या अन्य कारणों से राज चाहे अन्य बातों में जनता की सेवा न कर सके परन्तु जो राज सुरक्षा का कर्तव्य पालन नहीं कर सकता उसे जनता क्षमा नहीं कर सकती। बर्बर जातियों तक में राज का, राज के अग्रणी के रूप में राजा या सरकार का, यह अनन्य कर्तव्य रहा है। इस कर्तव्य का पालन तभी हो सकता है जब राज को प्रत्येक नागरिक का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो। रक्षा सब की होती है अतः सबको इस काम में योग देने के लिए तैयार रहना चाहिए। साधारणतः, सब लोगों को न तो इतना अवकाश होता है न इतनी योग्यता कि यह काम सुचारु रूप से कर सकें, अतः कुछ लोगों के कंधों पर यह बोझ विशेष रूप से डाला जाता है। इन लोगों के समुच्चयों को सेना और पुलिस कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि सेना और पुलिस नागरिकों से भिन्न नहीं हैं। वह भी नागरिक हैं जिन्होंने अपने जिम्मे सुरक्षा के काम को उसी प्रकार ले लिया है जिस प्रकार कुछ लोगों ने अन्न उपजाने का या बच्चों को पढ़ाने का। उनको वेतन इसलिए मिलता है कि सुरक्षा के काम में निरन्तर लगे रहने के कारण वह अपनी जीविका के लिए दूसरा काम नहीं कर सकते। सेना और पुलिस को अपनी चीज समझना, राष्ट्रीय सेना और पुलिस पर गर्व करना, उनको हर प्रकार से सहायता देना और उन लोगों को जो सुरक्षा में बाधा डालना चाहते हैं समाज का, अपना, शत्रु, समझना, जनता की सुरक्षा के लिए यह परम आवश्यक है। सुरक्षा के लिए जो व्यय हो उसका बोझ भी जनता को सहर्ष उठाना होगा। सुरक्षा की व्यवस्था यदि हिल गयी तो सामाजिक जीवन डावांडोल हो जायगा।

एक और बात न भूलनी चाहिए। कभी-कभी ऐसा भी समय आ सकता है जब थोड़ी सी सेना और पुलिस सुरक्षा के लिए पर्याप्त न हो। ऐसी अवस्था के लिए प्रत्येक नागरिक को अपने मौलिक कर्तव्य के पालन करने के लिए तैयार रहना होगा। राज को यह भरोसा होना चाहिए कि प्रत्येक स्वस्थ नागरिक सब की सुरक्षा के लिए अपने शरीर से योग देगा और लोकहित के लिए अपने प्राणों को भी न्योछावर करने के लिए तैयार होगा।

पुलिस और जनता में सहयोग आवश्यक

सेना और पुलिस को भी यह न भूलना चाहिए कि वह नागरिकों से, समाज से, अभिन्न है और समाज के नाम पर समाज की सेवा करना, कण्टकों का शोधन करना, भीतरी और बाहरी शत्रुओं से समाज की रक्षा करना, उनका व्रत है। इसके लिए उनको समाज के विश्वास और स्नेह का भाजन बनना होगा।

आज इन बातों का हमारे देश के लिए बहुत व्यावहारिक महत्व है। मैं सेना की बात छोड़े देता हूँ। पुलिस से लोगों का पदे-पदे सम्पर्क होता है। ब्रिटिश शासन काल में पुलिस का कर्तव्य केवल जनता की सुरक्षा नहीं था। शासन विदेशी था, वह स्वभावतः अपने को दृढ़ रखना चाहता था यदि जनता का सहयोग मिल जाय तो ठीक ही था परन्तु यदि सहयोग की जगह लोग असहयोग करें तब भी साम्राज्य तो रखना ही था। इसलिए पुलिस को जनता के दमन का साधन बनना ही था। वह विदेशी सरकार की कृपापात्र थी, उसको उस सरकार का ही सहारा था। इसलिए कभी-कभी उसको ऐसी बातें भी करनी पड़ती थीं जो लोगों को पसन्द न होती थीं। जनता और सरकार के बीच की खाई जनता और पुलिस के बीच की खाई बन गयी थी। फिर पुलिस में बहुत से अफसर अंग्रेज थे जिनका स्वार्थ अपने देश से बँधा था।

आज वह जमाना चला गया है। पुलिस के बड़े अफसर से लेकर छोटे कांस्टेबिल तक भारतीय हैं। सरकार राष्ट्रीय है, जनता का दमन करना उसका उद्देश्य हो नहीं सकता, परन्तु अभी वह अविश्वास दूर नहीं हुआ है। अभी जनता पुलिस को अपनी पुलिस, पुलिसजन को अपना हितू और सेवक नहीं समझती। पुलिस के कुछ कर्मचारियों का भी व्यवहार ऐसा है जो सेवाभाव से प्रेरित नहीं कहा जा सकता। इस परिस्थिति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त होना चाहिए। पुलिस और जनता के बीच में पूर्ण सहयोग और विश्वास के अभाव के कारण सुरक्षा के काम में बाधा पड़ती है। समाज के विरोधी इन बातों से लाभ उठाते हैं।

सुरक्षा की समस्याएं जटिल होती जा रही हैं। राज्यों के विलयन के कारण बहुत बड़ी संख्या में हथियार देहातों में फैल गये हैं। बनने भी लगे हैं। युद्ध से हजारों ऐसे व्यक्ति लौटे जो हथियार चलाना जानते हैं। इनमें ऐसे लोग भी हैं जिनका चित्त अब खेती-बारी में नहीं लगता। उस काम में परिश्रम बहुत और आय कम है। सिनेमा और जासूसी उपन्यास तथा वैज्ञानिक शिक्षा से नये ढंग के अपराधों की सीख मिलती है। आर्थिक दशा अभी सुधरी नहीं हैं, बेरोजगारी बढ़ी हुई है। इन सब कारणों से अपराधों की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है। इस कठिन स्थिति का सामना दृढ़ता, सहानुभूति और बुद्धिमत्ता से करना होगा। कुछ ऐसे राजनीतिक दल हैं जिनके कार्यक्रम का आधार ही व्यापक अशान्ति है। उनका बराबर यह प्रयत्न रहता है कि जनता का विश्वास पुलिस पर से उठ जाय। समझदारी और दूरदर्शिता से हम विषम स्थिति पर काबू पा सकते हैं। जनता और पुलिस का सहयोग और विश्वास सुरक्षा की कुंजी है। यदि शान्ति की व्यवस्था बिगड़ी तो वह सारे आयोजन निष्फल हो जायंगे जो आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के लिए किये जा रहे हैं।

उत्तर प्रदेश में नया प्रयोग

उत्तर प्रदेश में हम एक नया प्रयोग कर रहे हैं। प्रायः हर बड़े गांव में ग्राम रक्षा समिति स्थापित हुई है। इस प्रकार इन समितियों की संख्या लगभग एक लाख है। इनका सदस्य बनना वैकल्पिक है। सदस्यों को डाकुओं और दूसरे उपद्रवियों का सामना करना सिखाया जाता है। यह कोशिश है कि प्रत्येक समिति में एकाध बन्दूक भी हो। अभी तो इनको स्थापित हुए बहुत थोड़े दिन हुए हैं, परन्तु इस काम में लोगों का बहुत उत्साह है। कई जगह डाकुओं से मुठभेड़ हुई है और सदस्यों ने बड़ी वीरता का परिचय दिया है। मैं आशा करता हूँ कि यह पौधा पनपेगा। देहात में हर जगह पुलिस नियुक्त नहीं की जा सकती। यदि गांवों के नागरिक अपनी रक्षा का भार अपने ऊपर ले लें तो बहुत बड़ा काम हो जाय और नये अपराधियों के छोटे-छोटे दल, जो समय पाकर डाकुओं के बड़े दल बन जाते हैं जन्म लेते ही खत्म हो जायँ।

हम सब को सुरक्षा के सम्बन्ध में अपने दायित्व का अनुभव करना चाहिए। आन्तरिक सुरक्षा के बिना न तो देश का विकास हो सकता है, न उसकी स्वतंत्रता टिक सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्दी सुधार प्रशासन

बन्दी-सुधार के प्रबन्ध की समस्या केवल, या मुख्यत: प्रशिक्षित कर्मचारियों और आवश्यक अर्थ की व्यवस्था तक ही सीमित नहीं है। निस्संदेह यह भी आवश्यक बातें हैं। भारत के प्राय: सभी प्रदेश यह अनुभव करते हैं कि समाज-सुधार की योजनाएं जिनका एक आवश्यक अंग प्रस्तुत विषय भी है, यही नहीं कि केवल कर्मचारियों और अर्थाभाव के कारण वह पूरी नहीं कर सकते बल्कि प्रत्यक्षत: इन भौतिक साधनों की व्यवस्था से भी, जो सभी योजनाओं के लागू करने के लिए आवश्यक हैं, अधिक महत्वपूर्ण बात है योजना के उद्देश्य पर दृष्टि रखना। वस्तुत: यह उद्देश्य ही कर्मचारियों को दी जाने वाली प्रशिक्षा की रूपरेखा निश्चित करता है। प्रस्तुत विषय का नया नामकरण ही इस बात का परिचायक है कि हम पहले के युग से कहीं आगे बढ़ आये हैं। इसके पहले जेल शासन में सुधार की बात करना अधिक सही और असंदिग्ध बात होती। बन्दी शब्द का अर्थ इतना व्यापक बनाया जा सकता था जिसके अंतर्गत बच्चों से प्रौढ़ों तक सभी प्रकार के अपराधी आ जाते।

समाज का कर्त्तव्य

आज हम बन्दी-सुधार के प्रबन्ध की बात करते हैं क्योंकि हमारी मान्यता है कि राज्य अपने नियमों को तोड़ने वालों से बर्ताव करते समय उनके सुधार पर दृष्टि रखता है अर्थात् उन्हें अपराध के पहले की स्थिति में ले आना चाहता है, समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण इस प्रकार बदल देना चाहता है कि उनकी कानून तोड़ने की प्रवृत्ति मिट जाय। ऐसा माना जाता है कि मानसिक और नैतिक पुनर्गठन स्वयं अपने में पर्याप्त नहीं है। अपराधी के पास ऐसा कुछ होना चाहिए ताकि वह अधिक दृढ़ता से समुचित जीवन निर्वाह कर सके और अपनी उन सब आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके जिनकी अनुमति समाज अपने सदस्यों को देता है तथा नागरिक-जीवन की स्थापना और प्रगति में योग दे सके। संक्षेप में, व्यक्ति के पास उस नियमित आत्माभिव्यक्ति के सभी साधन होने चाहिए जिनके बिना जीवन एक अविच्छिन्न निराशा और विद्रोह बन कर रह जाता है। उद्देश्य की इस सफलता में यह स्वीकारोक्ति भी अंतर्निहित है कि कुछ अंशों तक समाज भी

भारतीय सामाजिक सेवा कार्य लखनऊ सम्मेलन, में विभागीय प्रधान की हैसियत से किया गया भाषण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने नियमों की अवहेलना के लिए उत्तरदायी है। अधिकांशतः तो यही पाया जाता है कि अपराधी को वह उचित पोषण देने में समाज असमर्थ रहा है तो उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। यह व्यवस्था समाज नहीं कर सका कि आरम्भ के दिनों में बच्चे को घर और बाहर दोनों जगह उचित वातावरण मिल सके। यह प्रत्यक्ष है कि समाज ने अपने उन भावी स्वस्थ पुरुषों और स्त्रियों को लाभप्रद जीवन-निर्वाह के साधन प्रस्तुत करने के कर्त्तव्य की उपेक्षा की जो अन्य मनुष्यों की भांति आहार और वस्त्र, रहने के लिए स्थान और स्नेह तथा अपने सहवर्गियों के श्रद्धा-विश्वास की स्वाभाविक भूख रखते थे। यदि किसी मनुष्य को ऐसे समाज में विद्रोही बन कर रहने को बाध्य किया जाय जिसमें वह देखता है कि कुछ गिनती के भाग्यशाली व्यक्ति ऐसे हैं जो शक्ति और साधनों के बल पर उसको अपनी उचित सुविधाओं से वंचित करने को प्रस्तुत हैं तो यह निश्चित रूप से उस मनुष्य को उन कानूनों को तोड़ने के लिए उत्साहित करता है जिन्हें वह अत्यन्त अविवेक से भरा समझेगा। इस प्रकार सुधार की बात करने तथा अपराधी के साथ व्यवहार में इस सिद्धान्त को मानने में समाज अप्रत्यक्ष रूप से अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा की बात पहिले ही स्वीकार कर लेता है। इस कर्त्तव्य का पालन वस्तुतः सामाजिक सुरक्षा का ही दूसरा रूप है। भले ही देर में सही, इस प्रकार समाज की जो हानि अब तक हो चुकी है उसको वह अंशतः दूर करना चाहता है। यह भी उचित बात है किन्तु यदि समस्या के इस पहलू को स्पष्ट रूप से समझ लिया जाय और उन परिस्थितियों को लाने की ओर अधिक ध्यान दिया जाय जिनमें कानून तोड़ने की प्रवृत्ति ही न हो तो बहुत समय, शक्ति और प्रयास बचाये जा सकते हैं। यदि तब भी कुछ जन्मजात अपराधी रह जाते हैं तो शायद उस व्यवहार की वैधता को स्वीकार किया जा सके जिसका प्रतीक अब तक जेल शब्द रहा है। उन्हें निस्संदेह एक असाध्य रोग का रोगी समझ लिया जा सकता है किन्तु अब मैं इस विषय पर अधिक नहीं कहूंगा। मुझे यहां साधारण अपराधों की बात करनी है, असाधारण अपराधों की नहीं।

यह दुर्भाग्य की बात है कि कुछ लोग इन विचारों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। इन विचारों के पीछे की भावनाएँ ऐसे लोगों की राय में गलत हैं। इनकी समझ में सुधारकों की दृष्टि में कानून तोड़ना उन कार्यों में परिगणित है जिनके लिए राज्य को पुरस्कार देना चाहिए और कानून तोड़ने वाला ऐसा व्यक्ति है जिसे कानून मान कर चलने वाले नागरिक की अपेक्षा अधिक आदर दिया जाना चाहिए। जेल-सुधार की बहुत सी चेष्टाएं इसी चट्टान पर टकरा कर समाप्त हो जाती हैं। वस्तुतः सुधारक की बातों का यह अर्थ लगाना ठीक नहीं है। बन्दी का दुलार कोई नहीं करना चाहता किन्तु हाथ-पाँव बँधे व्यक्ति को बहुत-सी रुकावटों के कारण दौड़ में असफल रहने पर दंडित करने के अविवेक के समान ही बंदी के साथ किया जाने वाला व्यवहार अन्यायमूलक है। जेल-सम्बन्धी कानूनों का सम्पूर्ण इतिहास इस बात का प्रमाण है कि अंधाधुंध भारी-भारी सजाएं अपराध को कम करने में असमर्थ रही हैं। इसीलिए हर दिशा में कानून की कठोरताएं उत्तरोत्तर कम हुई हैं। ऐसी दशा में ऐसा मानना चाहिए कि हमें उस युग की ओर लौटना नहीं है जिसमें प्रत्येक अपराध का दंड आजीवन कारावास, वध या अंगभंग होता था। इसका अर्थ यह हुआ कि अधिकांश बन्दी एक-न-एक दिन जेल के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर आयेंगे। हमें यह विचार करना होगा कि फिर से समाज में वापस आने के बाद क्या हम उन्हें पहले की अपेक्षा सामाजिक नियमों के प्रति अधिक विद्रोही, समाज से बदला लेने के लिए अधिक तत्पर और अपराध के मामलों में अधिक अनुभवी देखना चाहेंगे? समझदारी की बात तो यही है कि बन्दी के साथ ऐसा व्यवहार हो जिससे वह अपने लिए समाज में समुचित संतोषजनक स्थान प्राप्त कर सके। हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि दंड पाने वालों की—और यहां मैं केवल भारत की ही बात नहीं कर रहा हूँ—संख्या उस संख्या से कहीं कम है जो वस्तुतः अपराध करती है। एक बहुत बड़ी संख्या अपराधियों की ऐसी है जिन पर संदेह भी नहीं किया जा सकता। समाज में कुछ अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति ऐसे भी हो सकते हैं, जो यदि वह कानून की पकड़ में आ सकें तो, अपने प्रतिष्ठा के स्थान पर नहीं टिक सकेंगे। यह बड़ा भारी अन्याय होगा कि बहुत के अपराध के लिए कुछ थोड़े लोगों को दंड दिया जाय।

सामाजिक पुनर्निर्माण की शिक्षा

हमारा देश आसानी से परिवर्तन स्वीकार करने वाला देश नहीं है किन्तु आज हम युग-परिवर्तन की स्थिति में हैं। अतः किसी समाज सुधारक के लिए, यदि वह इस दिशा की ओर वस्तुतः प्रयत्नशील है, अपनी बात की महत्ता जनता को समझाना अधिक कठिन नहीं होगा। यह स्पष्ट है कि सामाजिक पुनर्निर्माण की इस योजना को लागू करने का काम जो व्यक्ति करेगा उसे इस विषय की विशेष शिक्षा देनी होगी। यों तो दृढ़ता और कार्यक्षमता की आवश्यकता सभी जगह है किन्तु इस प्रकार के काम में सहानुभूति, अपने को दूसरे की स्थिति में रख कर देखने की, वैसा ही अनुभव करने की योग्यता, अन्य व्यक्तियों के उद्देश्यों को और उन उद्देश्यों को उद्बोधन देनेवाले कारणों को, समझने की योग्यता—इन सब बातों की विशेष आवश्यकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस काम के लिए व्यक्तियों का चुनाव बहुत सावधानी से करना होगा तथा उनकी सहानुभूति की प्रवृत्ति को मनोविज्ञान और समाज-शास्त्र के ज्ञान से बढ़ाना होगा और इन विषयों की व्यावहारिक शिक्षा देनी होगी। अपराधों की संख्या देखते हुए यह माना जा सकता है कि बन्दी-सुधार के लिए नियुक्त व्यक्ति केवल मनोविज्ञान-शास्त्री की भांति काम नहीं कर सकता। भले ही प्रत्येक बन्दी पर उतना व्यक्तिगत ध्यान देना सम्भव न हो जितना प्रयोगशाला में दिया जाता है परन्तु यह तो स्वीकार करना ही होगा कि कानून तोड़ने वाला अपने अधिकारों की दृष्टि से वैसा ही मनुष्य, वैसा ही व्यक्ति है जैसा कोई और हो सकता है। इस दृष्टि से भारत में कोई भी ऐसा प्रशिक्षण केन्द्र नहीं है जो वैसी शिक्षा दे सके जो हमारा लक्ष्य है किन्तु ऐसी शिक्षा के महत्त्व को सब स्वीकार करते हैं और हमने लखनऊ में जेल ट्रेनिंग स्कूल में इस दिशा की ओर कदम उठाया है। हमें अपनी कमियों का ज्ञान है। यदि हम अधिक धन की व्यवस्था कर सकें जिसकी ओर हम प्रयत्नशील हैं, तो हम और भी प्रगति कर सकते हैं। भारत जैसे विशाल देश में इस प्रकार की एक से अधिक संस्थाओं की आवश्यकता है। इस समय तो हमें ऐसी एक भी संस्था बना सकने पर संतोष करना होगा। इस प्रकार की एक अथवा अधिक से अधिक दो संस्थाएं—एक उत्तर भारत और दूसरी दक्षिण भारत में—रखने में कुछ सुविधाएं भी हैं। देश के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विभिन्न भागों के प्रशिक्षक और शिक्षा पानेवालों का सम्मिलित अनुभव ऐसा समुच्चय तैयार करेगा जो हमारे लिए अमूल्य होगा।

वास्तविक जेल-प्रबन्ध का एक आवश्यक अंग दृढ़ और सुव्यवस्थित प्रोबेशन सर्विस है। इस सर्विस के कर्मचारियों को भी बन्दी-सुधार के काम में लगे कर्मचारियों की भांति ही प्रशिक्षा देनी होगी और सामाजिक परिस्थितियों का ज्ञान और तज्जनित सहानुभूति भी उनकी व्यापक करनी होगी। उनसे अधिक कौशल और दृढ़ता की भी अपेक्षा रखी जायगी। यह सम्भव है कि विभिन्न प्रकार के अपराधियों के लिए विभिन्न प्रकार के प्रोबेशन अफसर हों। प्रौढ. अपराधियों की—विशेषतया ऐसे प्रौढ़ अपराधियों जो एकाधिक बार जेल हो आये हैं——देखभाल करने वालों से भिन्न काम उनका होगा जो बाल-अपराधियों का प्रबन्ध करेंगे। प्रोबेशन सर्विस की कार्यकुशलता की परीक्षा इसी बात से होगी कि वह किस हद तक जेल का स्थान ग्रहण कर सकती है। हमने यही देखने के लिए कानपुर में अभी एक प्रयोग आरम्भ किया है। यदि यह सफल हुआ, जैसी कि हमें आशा है, तो प्रोबेशन-कार्य की संभावनाएं बहुत बढ़ जायंगी। इस सर्विस को काफी बढ़ाना होगा और इसमें जो कुछ व्यय होगा उसका पूरा-पूरा मूल्य हमें मिल सकता है, यदि पहले-पहल अपराध करनेवाला, अपराधों की संख्या में बढ़ती को बचाते हुए, जेल जाने से बचाया जा सके। किसी व्यक्ति को उसके सहज, साधारण वातावरण से खींच कर एक ऐसे स्थान में उन लोगों के साथ बन्द कर देना जो केवल 'अपराधी' के नाम से पुकारे जाते हैं, उस व्यक्ति का नैतिक पतन कर देना है और जहां तक हो सके इसे रोका जाना चाहिए। इसके लिए प्रोबेशन कर्मचारियों को अधिक अधिकार देने होंगे। कोई प्रोबेशन अफसर तब तक किसी आदमी को अच्छे रास्ते पर चलते रहने के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता जब तक कि उसे प्रोबेशन की अवधि में अपने निरीक्षण में रहने वाले व्यक्ति की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों के निरीक्षण और अध्ययन का अधिकार न दिया जाय। मैं चाहता हूं कि कानपुर के प्रयोग की तरह अन्य स्थलों पर भी ऐसे प्रयोग किये जायं और देखा जाय कि कहां तक सफलता मिल सकती है?

शर्त पर छूटने वाले बन्दियों की समस्या

पैरोल पर छूटनेवाले या सजा पूरी होने के पहले ही शर्त पर छूटनेवाले बन्दी की समस्या भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। मैं देखता हूं कि ऐसे लोगों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है। यह संख्या सहज ही बढ़ सकती है किन्तु अधिकांश मैजिस्ट्रेट इस विषय में कुछ कठोर हैं। हम उन्हें पूरी तरह दोष भी नहीं दे सकते। उनके पास बहुत काम हैं और यदि वह अपने जिलों में ऐसे मुक्त अपराधियों की संख्या बढ़ते हुए नहीं देखना चाहते, जो गम्भीर अपराधों के लिए बड़ी कठिनाइयों से एक बार पकड़े गये थे, तो वह क्षम्य हैं। मैं देखता हूं कि कुछ लोग दंड की तीन-चौथाई अवधि पूरी कर चुकने वाले और कुछ ही महीनों में साधारण रूप से जेल के बाहर आने वाले बन्दियों के छूटने की बात पर भी आपत्ति करते हैं। हमारी इस विषय में यूनाइटेट नेशंस के डाक्टर लोपेज रे से बातचीत हुई थी और उस समय कुछ सुझाव सामने आये थे जिनका प्रयोग किया जा सकता है। वर्तमान स्थिति में हमारे लिए, सीमित साधनों के कारण, यह सम्भव न होगा कि हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण-क्षेत्रों के लिए बड़ी संख्या में प्रोबेशन अफसरों की नियुक्ति करें किन्तु हम ऐसे क्षेत्रीय अवैतनिक प्रोबेशन अफसर ले सकते हैं जो उपर्युक्त स्थितियों में छोड़े जानेवाले बन्दियों की अपने क्षेत्रों में देखभाल कर सकें। उन लोगों को सरकारी प्रोबेशन अफसर की सहायता टेक्निकल सलाहकार के रूप से मिलेगी और एक सीनियर मैजिस्ट्रेट आसानी से कोआर्डिनेटिग अथारटी की भांति रखा जा सकता है। मैं जानता हूं कि इसमें कठिनाइयां हैं किन्तु कठिनाइयों के डर से समाज-सुधार की कोई बड़ी योजना छोड़ी नहीं जा सकती।

हमारे साधन भले ही आज की अपेक्षा बहुत बढ़ जायं फिर भी केवल वेतन भोगी कर्मचारियों के द्वारा ही सब काम पूरा कर लेना हमारे लिए सम्भव नहीं होगा। समाज-सुधार में लगे हुए सार्वजनिक भावनाओं वाले व्यक्तियों और संस्थाओं की सहायता की अपेक्षा सदा रहेगी। उत्तर प्रदेश में राज्य अपराध निरोधक समिति के अन्तर्गत काम करनेवाली अपराध-निरोधक समितियां फैली हुई हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ जिलों की समितियां बहुत अच्छा काम कर रही हैं और जहां स्थानीय समिति जिले के अधिकारियों, पुलिस और प्रोबेशन अफसरों में पूरा-पूरा सहयोग है वहां बहुत सुन्दर काम हुआ है। मुझे इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं है कि ऐसे संघटनों का भविष्य उज्ज्वल है। इन सब के ऊपर अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति है। उत्तर प्रदेश में हमारे लिए यह बहुत ही उपयोगी रही है और मैं जानता हूं कि इसके कामों की प्रशंसा अन्य प्रदेशों में भी हुई है। इसी तरह के कामों में लगी हुई कुछ अन्य संस्थाएं भी हैं। अच्छा होगा कि यह सब संस्थाएं आपस में एक अखिल भारतीय संघटन के रूप में मिल जायं और विभिन्न प्रदेशों के कामों का पथ-प्रदर्शन और देखभाल करें। ऐसी संस्था भारत के बाहर भी भारत का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ होगी और उसके अनुभव और कार्य-केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों के लिए बहुत महत्वपूर्ण होंगे। सरकारी सूत्रों द्वारा किया जाने वाला कार्य बहुधा संकीर्ण रूप धारण कर लेता है। किसी ऐसी गैर-सरकारी संस्था से स्वस्थ और निकट सम्बन्धों का हमें स्वागत करना चाहिए जो इसी तरह के काम में लगी हुई है और जो जनमत तथा जनता की भावनाओं को अधिक अच्छी तरह जानने में समर्थ है।

पाश्चात्य देशों की नकल करना अनुचित

मैं यहां यह भी कह देना चाहता हूं कि हम अन्य देशों में उत्तरोत्तर होती हुई एतद्सम्बन्धी ज्ञान की प्रगति से परिचित भले ही रहें, हमारे लिए आंख मूंद कर पाश्चात्य देशों की नकल करना अच्छा न होगा। इतना ही नहीं कि हमारे आर्थिक साधन अन्य देशों, जैसे अमेरिका की भांति समुचित नहीं हैं किन्तु हमारी समस्याएं भी भिन्न प्रकार की है क्योंकि हमारा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक वातावरण बिल्कुल भिन्न है। हमें समाज की उस रूपरेखा का ध्यान रखना होगा जिसमें अपराधी को पुनः स्थान पाना है और इसीलिए प्रयोग की विधि भी भिन्न रखनी होगी। उदाहरण के लिए यदि मेक्सिको, ब्राजील अथवा बोलेविया जैसे लैटिन अमेरिकन देश अपने बंदियों के पुनर्वास की बात सोचते हैं तो उन्हें अपनी उस विशाल भूमि का ध्यान रहता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जिस पर बंदियों को काम पर लगाया जा सकता है। वह इन्हीं भूमिखंडों पर अपने बंदियों को बसाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु हमारी समस्या बिलकुल भिन्न है। हमारे पास भूमिखंडो पर निर्भर करने वाले व्यक्तियों का अनुपात इतना अधिक है कि गांवों में बेरोजगारी काफी बढ़ रही है। हमारी पुनर्वास की व्यवस्था को कुछ दूसरा ही रूप लेना होगा। यह भी स्मरण रखना होगा कि जहां यूरोप और अमेरिका में शहरों का अपराधी साधारणतया सर्वहारा वर्ग का होता है वहां भारतीय अपराधी अधिकांश स्थितियों में गांव से एकदम विच्छिन्न नहीं रहता। इन स्थितियों के कारण स्पष्टतया हमारी दिशा कुछ भिन्न होगी।

इसके साथ ही सजाओं के विषय में, विशेषतया अल्प अवधि की सजाओं के विषय में भी मैं कुछ कहना चाहता हूँ। अपराध और दंड में कोई समता लाना कठिन है। ऐसा लगता है कि दुनिया भर में कुछ जुडिशियल अफसर अपराध की गुरुता नापने का कोई सफल प्रयोग कर चुके हैं। क्योंकि कभी-कभी दो दिन अथवा उससे भी कम अवधि के दंड दिये जाते हैं। समझ में बात नहीं आती कि इतनी कम अवधि के दंड किसी अपराधी पर कैसे कुछ प्रभाव डाल सकते हैं। और यह भी सही है कि ऐसी स्थितियों में बन्दी सुधार का कोई प्रयत्न नहीं किया जा सकता। यह अच्छा होगा कि ऐसी दशाओं में——वस्तुतः कुछ विशेषज्ञ ऐसा मानते हैं कि यह सिद्धान्त उन सभी जुर्माना के दंडों में (चाहे उनके साथ कैद की सजा हो या न हो), लागू किया जाय——कोई ऐसी प्रणाली निकाली जाय जिसमें जुर्माने का स्थान काम के घंटे ले सकें। आदमी को जुर्माना अदा न कर सकने के लिए अल्प अवधि के लिए जेल भेजने से कहीं अच्छा है कि अदालतों द्वारा उसे कुछ घंटे काम करने की सजा दी जाय और इस प्रकार बन्दी से यह अपेक्षा रखी जाय कि वह किसी सामाजिक उपयोग के काम में कुछ घंटे श्रम करके समाज को अपना ऋण चुकाये। मेरा विश्वास है कि यह प्रयोग उन क्षेत्रों में किया जा सकता है जहाँ सुव्यवस्थित ग्राम पंचायतें हैं। श्रमदान के महत्त्व के इस युग में इस योजना का हमें स्वागत करना चाहिए क्योंकि इसमें सुधार के लिए आवश्यक अनिवार्यता तो है ही, साथ ही बन्दी के आत्मविश्वास की जाग्रति भी निश्चित है और वह समझ सकता है कि वह राष्ट्रीय महत्व के किसी कार्य में भरसक योगदान कर रहा है।

अब हम उन अपराधियों की बात लेते हैं जिन्हें किसी न किसी प्रकार के बन्दीगृह में रखना आवश्यक हो जाता है। यह स्पष्ट है कि इनके सफल प्रबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि इनका वैज्ञानिक वर्गीकरण हो। वर्तमान व्यवस्था बहुत कच्ची और कठोर है। वह मुख्यतया इंडियन पेनल कोड और कोड आव क्रिमिनल प्रोसीजर की धाराओं पर आधारित है। कुछ अपराधों के कारण व्यक्ति को "कैजुअल" अपराधी समझा जाता है, भले ही वह कितनी ही बार कानून तोड़े, कुछ ऐसे अपराध हैं जो सहज ही बन्दी को "हैबिचुअल" की श्रेणी में रख देते हैं चाहे यह अपराध पहली ही बार किया गया हो। साधारणतया दूसरी श्रेणी उन अपराधों की है जिन्हें "नैतिक पतन" का नाम दिया जाता है और इनके लिए दंड देने में केवल वय और स्त्री, पुरुष का ही थोड़ा-सा विचार रखा जाता है। इस प्रणाली में बंदियों में कोई भेद भाव नहीं समझा जाता। आवश्यकता इस बात की है कि कोई ऐसी प्रणाली हो जिसमें मनोविज्ञान और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
समाज-शास्त्र की वस्तुस्थितियों का ध्यान रखा जाय जिसके कारण कैदी को ऐसा मानव समझा जाय जो समूह का अंग ही नहीं प्रत्युत स्वतंत्र व्यक्तित्व रखनेवाला एक व्यक्ति है। सम्भव है कि हमें कुछ ऐसे व्यक्ति भी मिलें जिनमें पैदाइशी अपराधी प्रवृत्ति है और जिन्हें जन्मजात अपराधी कहा जा सकता है। मुझे ऐसा लगता है कि ऐसे जन्मजात अपराधी मानवोचित व्यवहारों से एक दम उदासीन नहीं रह सकते किन्तु किसी भी दशा में हमें इन जन्मजात अपराधियों को उन बंदियों से अलग करना होगा, जिनसे आज जेल भरे हुए हैं।

बन्दी सुधार का उद्देश्य

यह सदा ध्यान में रखना होगा कि बन्दी को एक-न-एक दिन समाज में फिर से वापस भेजना है। बन्दी-सुधार में प्रयत्नशील प्रत्येक संस्था का यह उद्देश्य होना चाहिए कि वह ऐसी शिक्षा दे जिससे बन्दी को अपने लिए उचित स्थान पाने में सुविधा हो। किसी भी दशा में बन्दी के आत्मसम्मान पर आंच नहीं आने देनी चाहिए बल्कि उसे बढ़ावा देने की समुचित चेष्टा होनी चाहिए। मैंने लगभग बीस वर्ष पहले "लाइफ इन लन्डण्स ग्रेट प्रिजन्स" नाम की पुस्तक पढ़ी थी। इसके लेखक ने, जो स्वयं ही वहां की जेल में कुछ दिन रहा था, लिखा है कि किसी कैदी को उसके मुंह पर कभी कैदी नहीं कहा जाता। उसे 'मनुष्य' शब्द से सम्बोधित किया जाता है। देखने में तो यह बहुत साधारण सी बात लगती है किन्तु इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव बहुत बड़ा है। बन्दी अनुभव करता है कि उसे जिन्दा रहने के लिए 'कुछ' है और उसकी यह भावना उसके नैतिक स्तर को ऊँचा उठाती है। उत्तर प्रदेश सरकार ने चकिया और नौगढ़ में खोले हुए अपने शिविरों में भी ऐसी ही नीति अपनायी है। वहां बंदियों को 'मजदूर' शब्द से संबोधित किया जाता है। अभी हम भारत में ऐसा प्रबन्ध नहीं कर पाये हैं कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाये जाने वाले कैदी अपने साधारण नागरिक वस्त्रों में ही जायं और अदालतों के कमरे से जेल तक ले जाये जाने वाले कैदियों को पैदल सड़कों पर न ले जाया जाय। यह कुछ ऐसी बातें हैं जिनसे आदमी नैतिक दृष्टि से नीचे गिरता है और उसके आत्मसम्मान पर बहुत बड़ी चोट लगती है। मैं जानता हूं कि इन आवश्यक सुधारों के रास्ते में आर्थिक अड़चने हैं। जेलों को विरोधियों के शब्दों में "लग्जूरियस सेनोटोरियम"— स्वास्थ्य-सुधार के शानदार भवन—नहीं बनाना है परन्तु बन्दी का समाज से सम्बन्ध भी बना रहना चाहिए। उत्तर प्रदेश में हमने कुछ अंशों तक मुलाकात के नियम भी सरल कर दिये हैं। किन्तु अभी इस विषय में बन्दी-बन्दी में भेद नहीं किया जाता। इस पर भी ध्यान देना है। जेल में अच्छे आचरण का परिणाम केवल सजा में छूट देना ही नहीं होना चाहिए बल्कि मुलाकात और चिट्ठी-पत्री के मामलों में भी छूट देनी चाहिए। इसका उद्देश्य यही होना चाहिए कि बन्दी को समाज में वापस लौटने में अधिक से अधिक सुविधा हो और उन लोगों को भी आसानी हो जिनके बीच में जाकर उसे फिर से रहना है। पैरोल के कायदे तो हमारे यहां हैं किन्तु 'लीव टिकट' प्रणाली को भी और बढ़ाना चाहिए जिससे बंदियों को अपने गांव की साधारण सामाजिक और आर्थिक कार्यवाहियों में भाग लेने में सुविधा हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा चलाये गये चकिया और नौगढ़ के कैम्प बन्दी-सुधार के प्रबन्ध की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयोग हैं। उनके परिणाम बहुत आशाप्रद हैं किन्तु भारत जैसे विशाल देश की विभिन्न परिस्थितियों में लगभग इन्ही आधारों पर कई प्रयोग करने की आवश्यकता है। ऐसे खुले शिविरों अथवा बिना दीवार के जेलखानों से, जैसा कि कुछ लोग इन्हें कहते हैं, बन्दी के मन के गहरे और व्यापक अध्ययन में भी बहुत सुविधा होगी जिससे उसके साथ कुशल और उपयोगी व्यवहार करने में आसानी होगी।

एक ऐसी महत्वपूर्ण समस्या है जिसका समाधान हम अब तक इन दोनों खुले कैम्पों से भी नहीं कर पाये हैं। बन्दी से किस प्रकार का काम लिया जाय? जेलों को अपनी आवश्यकताएं अपने ही उत्पादन से पूरी कर लेने में समर्थ करने के अतिरिक्त हमें जेलों में और कौन-से उद्योग रखने चाहिए? जेल से छूटने पर बंदियों के जेल में सीखा कौशल कहां तक काम दे सकता है इस विषय में मैं निश्चित नहीं हूं। जेल उद्योग की योजना जेल के बाहर की स्थितियों के साथ मेल नहीं खाती। उसमें इस तथ्य के लिए स्थान नहीं दिया जा सका है कि बन्दी, अधिकतर दशाओं में जेल से वापस लौटने पर, अपना पुश्तैनी पेशा करेगा। इस आधार पर जेल उद्योगों की नयी रूपरेखा बनानी होगी। विभिन्न जेल यदि एक अथवा दो ऐसे उद्योगों में विशेषता प्राप्त करने की चेष्टा करें जिनकी संभावना अपने क्षेत्र में स्थित बाहरी उद्योगोंसे मुकाबले में आने की नहीं है और अपने उद्योगों को छूटे हुए कैदियों द्वारा चलाये गये ग्राम उद्योगों से मिला दें तो अच्छा होगा। मैं केवल एक प्रस्ताव भर रख रहा हूं और इसकी विस्तृत सम्भावनाएं विशेषज्ञों के जांचने की बात है।

स्त्री बन्दियों का सुधार

इस छोटे से लेख में मेरे लिए इस समस्या के सब महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालना संभव नहीं है। उदाहरण के लिए स्त्री बन्दियों के सुधार के प्रबन्ध की बात पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। सौभाग्य से स्त्री बन्दियों की संख्या बहुत कम है। उत्तर प्रदेश में जहां कुल कैदियों की संख्या १८ हजार है वहां स्त्री कैदियों की संख्या केवल २०० है। हमने उनके सुधार की ओर पहला कदम लखनऊ में स्त्रियों के "मोडेल जेल" के रूप में उठाया है। इस जेल में हमें उन सामाजिक परित्यक्ताओं की देखभाल करने और उन्हें ऐसी शिक्षा देने में सुविधा होगी जिसके आधार पर बाहर निकल कर वह सभ्य नागरिक की भांति जीवन-यापन के साधन पा सकें। किन्तु स्त्री कैदी की समस्या पुरुष कैदी की अपेक्षा बड़ी है। वह उद्देश्य जो एक स्त्री को कानून तोड़ने के लिए बाध्य करते हैं बहुधा बहुत सरल होते हैं किन्तु उसका मनोविज्ञान पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक उलझा हुआ होता है और वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में उसके साथ वह प्रयोग नहीं किये जा सकते जो पुरुषों के साथ सफल हो चुके हैं। इस समय पेरोल और लीव टिकट की व्यवस्था, कुछ असाधारण परिस्थितियों को छोड़ कर, स्त्रियों के लिए मैं समझता हूं, लागू करना कठिन है। उनके पुनर्वास और बाद की देखभाल की समस्या कठिनाइयों से भरी पड़ी है। जिस आचार के लिए पुरुष को समाज क्षमा कर देने को प्रस्तुत रहता है उसी आचार के लिए स्त्री को दोषी ठहराने में, पीड़ा पहुंचाने में, समाज का व्यवहार निर्दयतापूर्ण होता है। व्यभिचार संबंधी प्रचलित नियमों और बंधनों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरुद्ध जाना, जो पुरुष में एक साधारण कमजोरी समझ ली जाती है, स्त्रियों के लिए भंयकर अपराध समझा जाता है और ऐसी स्त्री के जेल से वापस लौटने पर उसके परिवारवालों को उसे फिर से ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत करने में बहुत कठिनाई होती है। इसका परिणाम यह होता है कि अधिकांश स्थितियों में उस स्त्री के पास इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता कि वह नियम तोड़ने के पथ पर ही अग्रसर हो। दुर्भाग्य से अभी हम स्त्री प्रोबेशन अफसर रखने में समर्थ नहीं हुए हैं। उत्तर प्रदेश में तो यही स्थिति है। मैं समझता हूं कि सोशल वेलफेयर कमेटी ने, जिसकी अध्यक्षा श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख हैं, स्त्री कैदियों के पुनर्वास की ओर ध्यान देने का निश्चय किया है। इन लोगों ने एक उप-समिति बनायी है जिसमें उत्तर प्रदेश का भी एक प्रतिनिधि है। ऐसी आशा करनी चाहिए कि यह संस्था हमारी सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हमें कुछ निश्चित सुझाव देने में समर्थ होगी।

मैं नहीं जानता कि प्रस्तुत विषय पर प्राप्त ज्ञान में मैं अपने इस लेख द्वारा कुछ वृद्धि कर सका हूं या नहीं। अधिक से अधिक मैंने केवल इस समस्या की उलझनों और इसकी व्यापकता की ओर संकेत भर किया है। सार्वजनिक भावनाओं वाले पुरुष और स्त्रियों की तथा सामाजिक कार्यों में रुचि रखनेवाली संस्थाओं की इस कार्य में बहुत आवश्यकता है। जनमत को जगाने और उचित राह पर लगाने की आवश्यकता है। जनता की चेतना को इस समस्या की महत्ता समझाने के लिए उद्बोधित करना होगा और उसे एक ऐसी स्थिति लाने में सहायता देनी होगी जिसमें बड़ी संख्या में पुरुष और स्त्री, अपनी मूलभूत मानवीय मांगों को पूरी करने और आत्माभिव्यक्ति कर पाने में असमर्थ रहने के कारण समाज के अन्य नागरिकों की भांति रह पाने से वंचित न हो जाये। आज हम जिस व्यक्ति को जेल के सींखचों के पीछे बंद कर देने को बाध्य होते हैं उस व्यक्ति के साथ भी मनुष्य की भांति व्यवहार करना होगा और उसके व्यक्तित्व को बढ़ने का अवसर देना होगा और यह मानना होगा कि उसके कुछ ऐसे मूलभूत अधिकार हैं जो कानून तोड़ने पर भी उससे सहसा छीने नहीं जा सकते। सामाजिक जीवन की ओर लौटने का उसका मार्ग अधिक से अधिक सुगम और सरल करना होगा और उसके जेल से छूटने के बाद भी कुछ दिनों तक हमें यह प्रबन्ध करना होगा कि उसे समाज में उचित स्थान प्राप्त हो सके जहां उसे अपने साथियों का विश्वास प्राप्त हो और वह यह संतोष पा सके कि वह सामाजिक कल्याण में अपना भी योगदान कर रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावी समाज में स्त्रियों का स्थान

यह प्रश्न, कि भावी समाज में, जिसमें मेरे जैसे बहुत से लोगों की इच्छा है कि समाजवादी व्यवस्था कार्यान्वित हो, स्त्रियों की क्या स्थिति होगी, इसलिए उठा कि बहुत से प्रगतिशील लेखक इस ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं। अभी उन्होंने कोई रचनात्मक बात सामने नहीं रखी है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे लोग विवाह-प्रथा के विरुद्ध हैं। विवाह संस्कार है ऐसा वे नहीं मानते। उनकी सम्मति में स्त्री-पुरुष का एक साथ रहना या रहने की इच्छा करना ही विवाह है। जिस दिन किसी भी कारण से दोनों या दो में से एक की इच्छा ऐसी न रही उस दिन विवाह टूट गया। प्रचलित विवाह-प्रथा स्त्रियों की गुलामी का प्रतीक है। आज स्त्रियां कमाती नहीं, इसी से पुरुष उनको दास बनाये फिरता है। यदि स्त्रियां आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हो जायँ तो विवाह का कोई अर्थ न रह जाय। एक साथ रहते हुए भी स्त्री-पुरुष इच्छानुसार दूसरों से यौन संबंध करने में स्वतंत्र होने चाहिए। स्त्री को प्रकृति ने प्रेयसी बनाया है। उसको पत्नी बनाना उसकी आत्मा का हनन करना है। समाज में स्त्रियों पर घोर अत्याचार होता है परन्तु पुरुषों के जूँ नहीं रेंगती। सन्तान उत्पन्न करना न करना स्त्री की इच्छा पर निर्भर रहना चाहिए। थोड़े में, मैं प्रगतिशील मत का यही निष्कर्ष निकाल सका। इस संबंध में मैंने यहां कुछ विचार किया है और इसका खण्डन भी किया है। अब ऐसा सोचता हूं कि अपनी सम्मति को एक छोटे से निबन्ध के रूप में लिख डालूं। पर मतदूषण की अपेक्षा यह अधिक अच्छा होता है। इसके साथ ही यदि मैं प्रगतिवाद को समझने में भूल कर रहा हूं तो आशा करता हूं कि इसके पुजारी अपनी स्वाभाविक उदारता से मुझे क्षमा करेंगे।

प्राचीन काल में स्त्रियाँ

आज भारत में स्त्रियों के साथ कई बातों में अन्याय होता है इसमें कोई सन्देह नहीं है। अन्याय उतना और वैसा नहीं है जितना और जैसा भारत को बदनाम करने के इच्छुक कुछ पादरी और दूसरे अँग्रेज या बिना सोचे-समझे अँग्रेजी चश्मों से सब चीज़ों को देखनेवाले भारतीय कहा करते हैं। महिला-सम्मेलनों में भाषण देने वाली देवियां भी, जो अपनी साधारण बहनों के गार्हस्थ्य और सांस्कृतिक जीवन से दूर रहती हैं, प्रमाण नहीं मानी जा सकतीं। परन्तु अतिशयोक्तियों से प्रभावित हुए बिना भी यह मानना होगा कि आज स्त्रियों का पहले जैसे स्थान नहीं है। जिस देश में कभी यह कहा गया था :—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः,
स्त्रियः समस्तास्सकला जगत्सु।
(सप्तशती)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हे देवि, इस जगत में सब विद्याएँ और सब स्त्रियाँ तुम्हारा ही रूपान्तर हैं)
और लोगों को यह समझाया गया था:--

'यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता:'

(मनु)

(जहां स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देव-शक्तियाँ निवास करती हैं), जहाँ स्त्री पति की सहधर्मिणी मानी जाती थी, वहाँ वह आज पाँव की धूलि समझी जाती है। पति उसका उसी प्रकार मालिक होता है जिस प्रकार अपने गाय-बैल का होता है।

ऋग्वेद (१०-८५, ४६) नवविवाहिता बधू से कहता है:--

सामाज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु।

(तुम ससुर, सास, ननद और देवरों पर सम्राज्ञी हो) तथा पति-पत्नी मिल कर कहते हैं (१०- ८५, ४७) :--

समज्जन्तु विश्वे देवा: समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सन्धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ।।

(सारे देव हम दोनों के हृदयों को मिलायें। जल, वायु, धाता और सरस्वती हम दोनों को मिलायें), वहाँ आज पत्नी का पद बहुत से घरों में दासीवत् है। जहाँ कभी स्त्रियां वेदमंत्रों की ऋषि हुई हैं वहाँ स्त्रिया शूद्रों के साथ परिगणित होकर धर्म की ऊँची भूमिकाओं के लिए अपात्र मानी जाती हैं। स्त्रियों से पातिव्रत की आशा की जाती है पर पुरुषों से पत्निव्रत होने के लिए आग्रह नहीं किया जाता। पुरुष का व्यभिचारी होना उपेक्षणीय माना जाता है परन्तु स्वैरिणी के लिए समाज में कोई स्थान नहीं है।

दूसरे देशों में भी स्त्रियों की दशा हेय रही है और अब भी है परन्तु भारत में तो ऊपर से नीचे गिरी है। इसके कई कारण हैं। इनमें एक कारण तो यह है कि जब आर्यों का अनार्यों से व्यापक सम्पर्क हुआ तो उनके ऊपर कुछ-न-कुछ तो प्रभाव पड़ना ही था। जैसे उन्होंने भूत, मसान, शीतला को पूजना सीखा वैसे ही स्त्रियों को नीची दृष्टि से देखना भी सीखा। मुस्लिम काल में पर्दे की प्रथा आयी । उसका एक परिणाम यह हुआ कि स्त्रियां कई ऐसे क्षेत्रों से हटायी गयीं जिनमें पहले उनका स्थान था। अब उनको पहले जैसी योग्यता की आवश्यकता न रही और धीरे-धीरे वे पुरुषों से नीची मानी जाने लगीं। परन्तु कारण चाहे कुछ भी हो, जो अवस्था इस समय है वह न तो समयानुकूल है न न्याय्य है। उसको तो बदलना ही होगा। यदि भारत को जीवित राष्ट्र बनाना है तो उसे फिर अपने पुराने आदर्शों पर आना होगा। जब तक स्त्री फिर सहधर्मिणी नहीं होती तब तक पुरुष किसी उत्तम धर्म का पालन नहीं कर सकता। और जो बात भारत के लिए कही गयी है वही सारी पृथ्वी के लिए कही जा सकती है। जब तक स्त्री-पुरुष समकक्ष, समहृदय और सहधर्म न होंगे तब तक मनुष्य अपने नैसर्गिक गुणों का पूरा उपयोग नहीं कर सकता।

पर यह तो कोई प्रगतिशील बात नहीं हुई। आर्य आदर्श आज से हजारों वर्ष पुराने हो चुके। उनकी निकृष्टता इसी बात से स्पष्ट है कि वे विवाह को पवित्र संस्कार मानते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री से सतीत्व की प्रतीक्षा करते हैं और तलाक को अच्छा नहीं समझते। ये सब बातें प्रकृति के, अथच मानव-स्वभाव के, विरुद्ध हैं। बलात् इन धर्मों का पालन कराने से हृदय की कलियाँ या तो खिल ही नहीं पातीं या खिलते ही फूल मुरझा जाता है। मधुकर यदि एक ही फूल का रस लेने के लिए विवश कर दिया जाय तो उसकी क्या दशा होगी? ऐसी कृत्रिम परिस्थिति में भला कहीं कला का विकास हो सकता है? आज का कवि और लेखक इसी के प्रति विद्रोही हो रहा है। स्वतंत्रता और समता का वह उपासक भला आर्य-संस्कृति जैसी भौंडी चीज से कहीं तृप्त हो सकता है?

इस प्रकार के आक्षेप की तह में कुछ तो सच्ची बातें हैं पर अधिकतर गलत धारणाएँ हैं। यह बिलकुल ठीक है कि यदि दो प्राणी, जिनके हृदय नहीं मिलते, बरबस एक साथ रहने के लिए बाध्य कर दिये जायँ तो उनको अपार दुःख होगा। ऐसी दशा में एक घर में रहना कष्टदायक होता है, दिन-रात पति-पत्नी की भाँति रहना, निरन्तर यह जानते हुए रहने के लिए विवश होना कि यह साथ मरते दम तक नहीं छूटने वाला है, पागल करनेवाली बात है। यह भी ठीक है कि जो सतीत्व जबर्दस्ती निभाया जाता है उसका कोई मूल्य नहीं है। और इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि यद्यपि इस प्रकार का सन्ताप स्त्री-पुरुष दोनों को सहना पड़ता है, अनिच्छा से ही सही, बहुत से पुरुष उतने ही सदाचारी होते हैं जितनी की अधिकांश स्त्रियाँ, फिर भी सब मिला कर, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों पर यह बोझ अधिक पड़ता है। यह बात भी निर्विवाद है कि स्त्रियों के दबाये जाने का एक बड़ा कारण यह है कि कमाने का दायित्व मुख्यतः पुरुष पर है। स्त्री के लिए विवाह एक पेशा, जीविका का साधन है। जो स्त्रियां कमाती हैं वे इस प्रकार नहीं दबायी जा सकतीं।

परन्तु बारबार मनुष्य की प्रकृति की दुहाई देना भूल है। यह वैसी ही भूल है जैसी कि डारविन के विकासवाद के प्रतिपादन के पीछे स्पेंसर, और हैकेल जैसे दार्शनिकों और वैज्ञानिकों की बातों को अनुचित सीमा तक खींच ले जाने-वाले कुछ कच्चे लेखकों ने की थी। विकासवाद के अनुसार प्राणियों का विकास संघर्ष का परिणाम है। भोज्य-सामग्री के लिए आपस में निरन्तर संघर्ष मचा रहता है। इस संघर्ष में जो बलवान् होता है उसकी विजय होती है। जो उस परिस्थिति के अनुकूल है वही बलवान है। प्रकृति को निर्बलों के लिए कोई ममता नहीं है। वह सैकड़ों हज़ारों कभी-कभी लाखों बच्चे उत्पन्न करती है जिनमें से दस-पाँच बच जाते हैं। जो बच पाते हैं वे अपनी सन्तान छोड़ जाते हैं। प्रकृति में जो होता है उसका यह रूप है। इससे कुछ लोगों ने यह अर्थ निकाला कि यही होना चाहिए। जो प्रकृति करती है, जिस उपाय से उसने एक कोष्टवाले 'अमीबा' से करोड़ों वर्षों में मनुष्य उत्पन्न किया, वही प्राकृतिक है। उन्नति का वही पथ है। इसका यह अर्थ हुआ —और यह बात मेरी कल्पना नहीं है, अच्छे-अच्छे समझदारों ने इस प्रकार की पुस्तकें लिखी और कई राजनीतिक सिद्धान्तों में यह मत अंशतः स्वीकृत किया गया—कि इस प्रकार का संघर्ष रोका न जाय वरन् होने दिया जाय। राष्ट्र राष्ट्र से लड़ता रहे। जो योग्यतम होगा वह विजयी होगा। राष्ट्र के भीतर अस्पताल, अनाथालय, दरिद्रालय तोड़ दिये जायँ, बूढ़ों रोगियों और अपाहिजों को निराश्रय छोड़ दिया जाय क्योंकि ये अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं और उस भोज्य सामग्री का उपभोग करते हैं जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वस्थ युवकों के काम में आ सकती है, कवि, लेखक , धर्मोपदेष्टा भूखों मरने दिये जायँ क्योंकि ये लोग संघर्ष में औरों से लड़ कर पार नहीं पा सकते। यदि ऐसी व्यवस्था या अव्यवस्था चलायी जाय तो उत्तम मनुष्य पैदा होंगे क्योंकि जो बलवान् और चतुर होंगे वही अपने समकालीनों से लड़ कर बच सकेंगे और सन्तति छोड़ सकेंगे।

यह बात प्रकृति के अनुकूल तो प्रतीत होती है पर क्या कोई भी समझदार इस बात के लिए तैयार है कि इसके अनुसार काम किया जाय? क्या ऐसे वातावरण में सभ्यता और संस्कृति की छाया का भी कहीं पता चलेगा? कला का नाम भी अवशिष्ट रह सकेगा? 'अमीबा' से मनुष्य तो चाहे जैसे बना हो पर जंगली मनुष्य से सभ्य मनुष्य बनने में भी क्या प्रकृति का अनुसरण हुआ है? रोगियों और दुर्बलों की सेवा सुश्रूषा, असमर्थों की रक्षा, अपना पेट काट कर दूसरों को खिलाना, यह सब बातें प्रकृति में नहीं देख पड़तीं, पर सभ्य मनुष्य में हैं। यदि सब अपनी-अपनी प्रवृत्तियों के अनुसार काम करें तो भेड़ियों या गीदड़ों या भेड़ों के समान झुंड बन सकते हैं परन्तु समाज नहीं बन सकता। समाज तभी रह सकता है जब सब अपनी सहज प्रवृत्तियों को दबायें और अपने साथ-साथ समूह का बराबर ध्यान रखें। समूह समाज के लिए व्यक्ति को अपनी बलि करनी होगी। भले ही इसमें कष्ट हो पर यह कष्ट सहना पड़ेगा। जो स्वेच्छा से ऐसा न करेगा समाज उस पर दबाव भी डालेगा।

व्यक्ति और समाज

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि व्यक्ति का कोई महत्व नहीं है। व्यक्ति का महत्व सर्वोपरि है पर व्यक्ति के गुणों का विकास समाज में रह कर ही हो सकता है। रसायन-शास्त्र की दृष्टि से बूंद भी जल है और समुद्र भी जल है पर यह तो अनुभव की बात है कि बूँद में जहाज नहीं डूबा करते, लहर उठना देखना हो तो समुद्र का अध्ययन करना होगा। मनुष्य के जितने भी उदात्त गुण हैं उनका विकास समाज में रह कर, अपने को दबा कर, हुआ है। समाज का रूप बदला करता है, प्रत्येक मनुष्य को यह अधिकार है कि समाज की व्यवस्था बदलने का प्रयत्न करे। इस प्रयत्न में कितनों को अपनी आहुति देनी पड़ती है। फिर भी यदि किसी की दृष्टि को कोई नया आदर्श आता है तो उसे सामने रखना ही चाहिए। पर यह समझ लेना चाहिए कि चाहे जब भी समाज का जो भी रूप होगा उसमें स्वेच्छाचारिता को जगह नहीं मिल सकती। यदि कहीं ऐसा प्रयोग हुआ तो वह समाज चार दिन में नष्ट हो जायगा।

वासना की कहीं परिधि नहीं होती और भोगाग्नि कभी भोग से शान्त नहीं होती। किस-किस प्रवृत्ति को स्वाधीनता दी जायगी? वासना द्वैतबुद्धि पर निर्भर होती है। यह मेरा है, यह मेरा नहीं है परन्तु होना चाहिए। यही उसका स्वरूप है। परन्तु एक ही वस्तु को उपादेय मानने का अधिकार सबको है। इसलिए प्रवृत्ति को निरंकुश छोड़ देने में संघर्ष और समाज-विनष्टि का भय है। संघर्ष कर्त्तव्यों के क्षेत्र में नहीं, अधिकारों के ही क्षेत्र में होता है। आप भी सच बोलें या मैं, भी सच बोलूँ, इसमें कोई झगड़ा नहीं हो सकता पर आप इस वस्तु को लें या मैं यह झगड़े की बात है। इसलिए प्रत्येक समाज में प्रवृत्तियों पर कहीं न कहीं अंकुश लगाना पड़ेगा और व्यक्ति को समाज के वश में रहना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अन्यथा, मनुष्य को मनुष्यत्व से हाथ धोना होगा। यह नहीं हो सकता कि लोग मिल कर रहें, मिल कर रहने के लाभ उठायें और एक साथ रहने की जो आवश्यकता है, अर्थात् अपने जीवन के नियत्रण का अधिकार समाज को देना, उससे जान बचायें। समाज हर बात में हस्तक्षेप नहीं करता। जो बातें निजी हैं, जैसे पूजा-पाठ, उनमें व्यक्ति स्वतंत्र होगा पर जहाँ दो व्यक्तियों के संबंध की बात आयी वहाँ समाज का अधिकार-क्षेत्र आरम्भ हो जाता है। व्यापार, शासन, शिक्षण की ही भाँति यौन संबंध भी, उसका नाम विवाह हो या न हो, ऐसा विषय है जिसमें दो ही नहीं, दो से अधिक व्यक्तियों के हितों और प्रवृत्तियों के टकराने का स्थल है, अतः समाज उस पर अपना नियंत्रण अवश्य रखेगा। मनुष्य को मनुष्य बनने के लिए यह मूल्य देना पड़ता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि समाज सहज प्रवृत्तियों के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता या उनकी सत्ता को जान कर भी उधर से आंख बंद कर लेता है। यदि ऐसा होता तो फिर नियंत्रण का प्रश्न ही न उठता। जो समाज ऐसी भूल करेगा वह धोखा खायेगा। पानी को बांध से रोकना आवश्यक होता है। परन्तु बांध बना देने से ही तो काम नहीं चलता। पानी के बलाबल को देख कर बांध बनाना चाहिए। यह भी सोच लेना चाहिए कि यदि पानी बराबर जमा होता रहा और उसको निकालने का कोई मार्ग न मिला तो वह बांध को तोड़ देगा। बंधे पानी से समाज के हित का काम लिया जा सकता है पर यदि ऐसा न किया गया तो वह घोर अनिष्ट भी कर सकता है। यही अवस्था सहज-प्रवृत्तियों की भी है। चारों ओर से सामाजिक बन्धन लगा देने से ही काम नहीं चल सकता। परिग्रह की प्रवृत्ति को लीजिए। यह अनुमति तो नहीं दी जा सकती कि जब जिसके जी में आये जो चीज चाहे ले ले। इसमें तो अन्धेर मच जायगा। जो अपनी इस सहज प्रवृत्ति के अनुसार यथेच्छ काम करना चाहेगा उसको तो चोरी-डकैती का दण्ड देना ही होगा। परन्तु समाज को यह भी प्रबन्ध करना होगा कि सब लोगों को आवश्यक और यथासम्भव उनकी तुष्टि और क्षमता के अनुसार भोग सामग्री मिले। जो समाज ऐसा नहीं करता वह बलात दण्ड भले ही दे दे पर चोरी को आप बढ़ाता है और अपनी जड़ खोदता है। समाजवादी व्यवस्था की यही अच्छाई है कि उसमें किसी को चोरी करने की आवश्यकता न रहेगी पर जो कोई अपनी सहज प्रवृत्ति को लगाम न दे सकेगा, जो समाज की व्यवस्था के विरुद्ध संग्रह करने का प्रयास करेगा, वह निःसन्देह दण्ड पायेगा।

यही बात काम-प्रवृत्ति के विषय में भी है। यह बड़ी ही बलवती प्रवृत्ति है, इसे मानना होगा। समाज को यह व्यवस्था करनी होगी कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को इसकी तुष्टि का यथारुचि अवसर मिले। इसमें व्यक्ति का सुख तो है ही, समाज का भी हित है क्योंकि यदि समाज को जीवित रहना है, यदि उसके संस्कृति संचय को विलीन नहीं होना है, तो मानव-सन्तति का उच्छेद नहीं होना चाहिए। समाज के बनाये हुए नियमों के अनुसार ही लोगों की इस वासना की भी तुष्टि हो सकेगी। सबके ऊपर खुफिया पुलिस बैठाने की आवश्यकता नहीं है और न सबके धन का नित्य लेखा लेने की बात है परन्तु समाज को यह देखना है कि सन्तानोत्पादन बन्द तो नहीं किया जा रहा है, जो बच्चे होते हैं उनके पालन-पोषण का दायित्व किस पर होगा, कौन लोग भावी माता-पिता बनने जा रहे हैं, इत्यादि। इन नियमों की अवहेलना करनेवाला दण्डनीय होगा। जिस प्रकार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियंत्रित यौन-सम्बन्ध विवाह ही हुआ। समाज विवाह-विच्छेद की भी अनुमति दे सकता है पर यह बात भी उसके बनाये नियमों के अनुसार ही हो सकेगी।

सतीत्व का प्रश्न

प्रसंगत: दो-एक अन्य प्रश्नों पर भी विचार कर लेना ठीक होगा। पहला प्रश्न सतीत्व का है। कहा जाता है कि अपने आर्थिक आधिपत्य का लाभ उठा कर पुरुष ने स्त्री के सिर यह चीज लाद दी। स्वयं तो स्वच्छन्द बना रहा परन्तु स्त्री को सती बना कर रखना चाहता है और इस दासता की बेड़ी को पवित्रता का मुलम्मा देकर चाहता है कि स्त्री इसे आभूषण समझ ले। जो स्त्री अपनी जीविका, आप उपार्जन करती है वह कभी इस प्रकार बलात् नहीं बांधी जा सकती। नारीत्व सतीत्व से बड़ी चीज़ है और नारी का दूसरा नाम है प्रेयसी। इस तर्क में जहाँ तक पुरुष के स्वच्छन्द होने की बात है उसमें तो मुझे कुछ विशेष कहना नहीं है। पुरुष के लिए भी वैसा ही बन्धन होना चाहिए जैसा स्त्री के लिए। स्वभावत: पुरुष की कामप्रवृत्ति कई स्त्रियों की ओर दौड़ती है और स्त्री की कई पुरुषों की ओर। यदि अंकुश लगाना श्रेयस्कर है तो दोनों के ऊपर। यदि पुरुषों को कुछ विशेष स्वाधीनता है तो इसके दो-तीन कारण मुख्य हैं। एक तो पुरुष अपनी आर्थिक स्वाधीनता से लाभ उठाता है, दूसरे उसके शरीर को कोई वैसा प्राकृतिक बन्धन नहीं है जैसा कि स्त्री को गर्भकाल और उसके कुछ दिन पीछे तक रहता है और तीसरे पुरुष व्यापारादि के सम्बन्ध में लम्बी यात्राएँ किया करता है जिनमें वह समाज से छिपा कर बहुत से काम कर लेता है। इसकी सुविधा स्त्री को प्राय: नहीं है। इनमें कोई भी कारण इतना पुष्ट नहीं है कि पुरुष को पत्नीव्रत से मुक्त किया जाय।

किसी प्रथा का कारण जानना ऐतिहासिक दृष्टि से अच्छा है। इससे हमें तुलनात्मक अध्ययन में सहायता मिलती है। पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम आज उस मूल तक लौट जायँ। मनुष्य की बहुत-सी प्रवृत्तियां बीजरूप से पशु-पक्षियों में पायी जाती हैं। मनोविज्ञान और समाज-शास्त्र के विद्यार्थी इस विषय की खोज बराबर करते रहते हैं परन्तु न तो यह सम्भव है और न श्रेयस्कर है कि मनुष्य इन प्रवृत्तियों के आदिम रूप का अभ्यास करने लगे। हमारे बानर पूर्वजों को अपने चारों ओर रहने वाले भीमकाय पशुओं से तथा एक दूसरे से लड़-झगड़-कर बचे रहने में कुछ बातों से सहायता मिली ज़ो उनके वंशजों में स्वाभाविक सी हो गयीं। सदाचार इन्हीं व्यावहारिक नियमों से विकसित हुआ है परन्तु आज हम को सदाचार छोड़ कर बानराचार का अभ्यास नहीं कर सकते। बड़े से बड़े योगी, दार्शनिक, राजपुरुष, कवि या योद्धा के सारे गुण बीजरूपेण 'अमीबा' में रहें होंगे, परन्तु हम आज 'अमीबा' को अपना आदर्श नहीं बना सकते। प्रत्येक प्राणी अनन्त शक्तियों का भण्डार है परन्तु उनका पता और पता होने पर भी काम लेने की क्षमता सब में नहीं होती। प्राकृत अवस्था में प्राणी पर बाहरी परिस्थितियों का जब आघात होता है तब ही वह कुछ काम करता है। बाहरी परिस्थितियों में मैं भूख-प्यास जैसी शारीरिक आवश्यकताओं को भी गिन रहा हूँ। परन्तु ज्यों-ज्यों मनुष्य उन्नत होता है वह परिस्थितियों के ऊपर उठता है। वह आदर्श बनाता है, कोई बहुत दूर का लक्ष्य अपनी आँखों के सामने रखता है और तदनुकूल काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
करता है। अब उसके काम उस आदर्श और लक्ष्य के, न कि प्रकृति के, वश के होते हैं। लक्ष्य के लिए सहज प्रवृत्तियों को भी होम कर देना होता है। जितनी ही किसी को इस बात में सफलता मिलती है उतना ही वह अपने ध्येय के निकट पहुँचता है।

सतीत्व के प्रश्न पर इसी दृष्टि से विचार करना होगा। उसकी उत्पत्ति किसी भी प्रकार हुई हो पर अब वह अपनी सहजावस्था का अतिक्रमण कर गयी है। यदि मनुष्य के जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है, यदि मनुष्य को भी पशु-पक्षियों की भांति प्रकृति के हाथ का खिलौना बन कर रहना है, यदि उसकी शक्तियों का सबसे बड़ा उपयोग यही है कि वह रात-दिन हँस-खेल ले और बस, तो सतीत्व अनावश्यक है। परन्तु बहुत से विचारशील मनुष्य ऐसे भी हैं जो इससे सन्तुष्ट नहीं होते। उनका ऐसा विश्वास है कि इस शरीर का मूल्य इससे कहीं अधिक है। यह अपने विस्मृत स्वरूप को साक्षात्कार का द्वार, अपने खोये हुए ईश्वरत्व की प्राप्ति का साधन है। जो इतना ऊँचा नहीं पहुँच सकता वह भी अपनी बहुत-सी प्रसुप्त शक्तियों को जगा कर आगे के लिए अधिकारी बन सकता है। पर यह सब परिश्रम-साध्य हैं। गणित और विज्ञान में कुशल होने के लिए बड़ी तल्लीनता चाहिए, फिर जब जीवन को सर्वांगीण उत्थान देना है तब तो बड़ी तत्परता दिखलानी होगी। फिर तो शरीर, इन्द्रिय और चित्त सब पर ही अंकुश लगाना होगा। सुख ही चेष्टा का प्रेरक न रह सकेगा। यह नहीं कि आत्मोन्नति का प्रयास दुःखमय है। पहलवान को व्यायाम करने और कुश्ती मारने में बड़ा सुख मिलता है। गणित के विद्यार्थी को सवाल हल करने में बड़ा सुख मिलता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक उन्नति में भी सुख है पर वह उन सुखों से भिन्न प्रकार का है जिनसे हम साधारणतया परिचित हैं। बस, इसी जगह सतीत्व की बात आती है। प्रेयसी होना स्त्री के लिए आदर्श नहीं हो सकता। प्रेयसी का अर्थ है प्रेमपात्र। बहुतों का प्रेमपात्र होना वेश्यापन है। प्रेपपात्र लेता है, देता नहीं और जीवन का सार है उत्सर्ग। जब स्त्री प्रकृति की दासता से ऊपर उठेगी तब वह सती होगी। तब उसमें जगद्धात्री, जगदम्बिका की झलक देख पड़ेगी। इसी बात को ध्यान में रख कर यह कहा गया था कि, हे देवि, सब स्त्रियां तुम्हारी ही भेद हैं। यहीं यह बात भी निकलती है कि यदि स्त्रियों को अन्नपूर्णा स्वरूपा होना है तो पुरुषों को तपस्वी, महेश्वर बनना होगा। शंकर समर्थ होते हुए भी, विश्वम्भर होते हुए भी, आप भिक्षु बने रहते हैं, लोक-कल्याण के लिए आप गरलपान करते हैं।

दोनों आदर्शों में कौन-सा ठीक है यह प्रत्येक मनुष्य की और विशेषतः प्रत्येक राजपुरुष, दार्शनिक, कवि, कलाकार को, प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को जो दूसरों के जीवन को प्रभावित कर सकता है, सोचना चाहिए। ऐसे लोगों पर बहुत बड़ा दायित्व है। यदि वह अपने क्षणिक आवेगों, अपनी तृप्त या अतृप्त इच्छाओं से ऊपर उठ कर गम्भीर विचार नहीं करते तो घोर अपराधी होते हैं। मैंने यहाँ कोई तर्क उपस्थित नहीं किया है—केवल दोनों पक्ष सामने रख दिये हैं। जिज्ञासु को विचार सामग्री की कमी न होगी। यह कह देना अलम् है कि मुझे वही आदर्श रुचता है जिसका उल्लेख पीछे किया गया है।

यह पूछा जा सकता है कि तपस्वी ही बन कर रहना है तो फिर विवाह किया ही क्यों जाय? मैं इस प्रश्न के तीन मुख्य उत्तर मानता हूँ। एक तो यह कि विशेष व्यक्तियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ कर साधारण स्त्री-पुरुषों के विकास के लिए वह अनुभूतियां भी परम आवश्यक हैं जो इस सम्बन्ध से ही प्राप्त होती हैं। इसके बिना स्त्री-पुरुष दोनों अपूर्ण रहते हैं, शंकर-पार्वती जैसे चिरतपस्वी और चिर-प्रणयी दम्पति का जीवन एक विशेष अर्थ और महत्व रखता है। दूसरा कारण यह है कि केवल कह देने से या नियम बना लेने से लोग तपस्वी नहीं हो जाया करते। समाज के सुव्यवस्थापक इस बात को खूब समझते हैं। इसलिए वे वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करते हैं। बिजली मनुष्य और पशु के प्राण ले लेती है, पेड़ों को जला देती है, घरों को फोड़ देती है परन्तु उसको तारों से इस प्रकार ले जाया जाता है कि मनुष्य का अपार हित करती है। जो जल नगर के नगर बहा सकता है वही चक्की चलाता है, घर-घर प्यास बुझाता है, बिजली उत्पन्न करता है। इसी प्रकार जो कामादि प्रवृत्तियां स्वच्छन्द रह कर व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अनिष्टकर हो सकती हैं वही सुप्रयुक्त होकर दोनों के लिए कल्याणकारी बनायी जा सकती हैं। कम से कम, उतनी क्षति तो नहीं ही होगी जितनी उनको खुली छोड़ देने में या हठात् रोकने में होती। तीसरा कारण यह है कि सन्तानोत्पादन और नयी पीढ़ी की रक्षा का यह बड़ा अच्छा उपाय है सन्तानोत्पादन एक पवित्र कर्त्तव्य है। हमारे पूर्वजों ने हमको मनुष्य शरीर देकर उन्नत होने का अवसर दिया। हम इस ऋण से इसी प्रकार मुक्त हो सकते हैं कि दूसरे जीवों को ऐसा ही अवसर दें। सन्तान काम-तृप्ति का आकस्मिक परिणाम न होकर विवाह का अभिलषित फल होना चाहिए। इसीलिए एक ओर पुत्र का होना और दूसरी ओर कन्यादान, दोनों का बड़ा माहात्म्य बतलाया गया है। सन्तान की रक्षा, शिक्षा संस्कृति के प्रवाह के अनुच्छेद का श्रेष्ठ साधन है। बच्चों की देखभाल तो सार्वजनिक संस्थाओं में भी हो सकती है परन्तु शैशव में माता-पिता के साथ रहने से बहुत से लाभ होते हैं। सन्तान से वंचित या पृथक् रहनेवाले स्त्री-पुरुषों के कई गुण भी प्रसुप्त रह जाते हैं।

अच्छे से अच्छे आदर्श सामने रखने पर और तदनुकूल शिक्षा देने पर भी मनुष्य से भूलें होती हैं। धर्म का पथ कृपाण की धार है, इस पर से गिर पड़ना कोई असम्भव बात नहीं है। उस अवस्था में क्या होना चाहिए? प्रत्येक ऐसे मामले के लिए पृथक् व्यवस्था होगी। समाज अपने नियमों को हँसी-खेल की चीज नहीं बनने दे सकता है। परन्तु मेरा निजी मत यह है कि जहाँ पति-पत्नी एक-दूसरे को क्षमा कर दें वहाँ किसी दूसरे को कुछ कहने का अधिकार नहीं है। एक बात और है। व्यभिचारी स्त्री-पुरुष दण्डनीय हैं पर सन्तान निर्दोष है। विवाहातिरिक्त सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तति के लालन-पालन का दायित्व माँ पर और भरण-पोषण का पिता पर दूसरी औरस सन्तति के समान होना चाहिए। अपने माँ-बाप के अपराध के लिए बच्चे प्रायश्चित्ती नहीं बनाये जा सकते।

स्त्रियों की स्वतंत्रता

प्रसगवशात् स्त्रियों की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में भी दो शब्द कहना चाहता हूँ। ऐसा कहा जाता है—और यह कहना बिलकुल गलत नहीं है—कि स्त्री की हीनता का कारण उसका आर्थिक अधीनत्व है। स्त्रियां पुरुषों से किसी बात में कम नहीं हैं, जो काम पुरुष कर सकता है वह स्त्री भी कर सकती है। अब पुरुषों के समान स्त्रियों को भी सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पेशों में घुसना चाहिए और अपनी जीविका आप उपार्जन करनी चाहिए। जब यह बात जाती रहेगी कि कमाना पुरुषों का काम है और बच्चों की देख-रेख तथा चूल्हा-चक्की सँभालना स्त्रियों का, तब स्त्री पुरुष के बराबर होगी और विवाहादि के सम्बन्ध में उस पर जो असुविधाएँ लाद दी गयी हैं, उन्हें तोड़ सकेंगी। जहाँ तक योग्यता की बात है मुझे कुछ अधिक नहीं कहना है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है वैज्ञानिक खोज से यह बात तो नहीं निकलती कि दोनों की योग्यता हर बात में बराबर है। शरीर की बनावट भिन्न प्रकार की है। इसका प्रभाव बुद्धि पर पड़ना युक्त ही है। दोनों के स्वभाव में बड़ा अन्तर है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह हर बात जिसे पुरुष कर सकता है उसे स्त्री भी कर सकती है या स्त्री के हर काम को पुरुष कर सकता है। जिन कामों को दोनों कर सकते हैं उनमें भी दृष्टिकोण-भेद रहेगा। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि एक ऊँचा है और दूसरा नीचा, केवल भेद की ओर ध्यान आकृष्ट कर रहा हूँ। इसके साथ ही यह भी ठीक है कि बहुत से ऐसे काम हैं जिनको दोनों ही प्राय: एक जैसा कर लेंगे। आज दशा यह है कि स्त्री को भूखों मरने का अधिकार तो है पर रुपया कमाने का अधिकार नहीं है। वह इस योग्य बनायी ही नहीं जाती कि चार पैसा कमा सके। यह बात तो दूर होनी ही चाहिए। प्रत्येक स्त्री को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि आवश्कता पड़ने पर वह अपना और अपने आश्रितों का पेट पाल सके और ऐसी व्यवस्था भी होनी चाहिए कि जो स्त्री उपार्जन करना ही चाहे उसको योग्यतानुसार इसका पूरा अवसर मिले। पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मैं आर्थिक स्वतंत्रता वाले मत का इस रूप में समर्थन कर रहा हूँ कि प्रत्येक स्त्री को रुपया कमाना ही चाहिए और कोई न कोई व्यवसाय करना ही चाहिए।

समाज की उन्नति कार्य-विभाग के द्वारा हुई है। एक समय था जब प्रत्येक परिवार अन्न पैदा करता था, कपड़े तैयार करता था, जूते बना लेता था, कृषि के औजार और लड़ने के हथियार तैयार कर लेता था। पर आज सब कामों के करने वाले पृथक् हैं, इसी से सब काम अच्छे होते हैं। जहां पहले एक वैद्य सारे शरीर का भैषज्य करता था वहाँ अब अंग-प्रत्यंग के अलग चिकित्सक होते हैं। प्रत्येक शास्त्र का अध्यापक विशेषज्ञ होता है। यही बात गृहस्थी के विषय में भी है। कुत्ते बिल्लियों में नर-मादा अपना-अपना अलग पेट भरते हैं। मादा अपना पेट भी पालती है, बच्चों का भी लालन-पालन करती है, आवश्यकता पड़ने पर युद्ध भी करती है। किसी समय स्त्रियां भी ऐसा करती रही होंगी। पर आज तो हम कुत्ता-बिल्ली युग के कुछ आगे बढ़ गये हैं। फिर भी कुछ स्त्रियाँ और उनके समर्थक कुछ पुरुष उसको ही आदर्श मानते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि बाहर निकल कर कमाना तो ऊँचा काम समझा जाता है और घर के भीतर का प्रबन्ध छोटा काम माना जाता है। पुरुष इसी धारणा के बल पर अपने को श्रेष्ठ समझते हैं, स्त्रियां इसी के कारण लज्जित रहती हैं। उनकी यह इच्छा स्वाभाविक सी है कि हम सदा नीचा काम ही क्यों करें, पुरुषों के बराबर क्यों न हों। पर यह धारणा तो निःसार है। जिसने अभी नर-देह पाया है उसके कोमल शरीर और अन्तःकरण को ऐसी पात्रता देना कि वह इस शरीर से अधिक से अधिक लाभ उठा सके और दूसरों को पहुँचा सके, यह तो छोटा काम हुआ और रुपया बटोर लाना बड़ा काम हुआ।

विशेष पदों के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गृहस्वामिनी और माता होना सबका काम नहीं है। इसके लिए तैयारी की आवश्यकता होती है। यदि मैं विद्यालय में दर्शनशास्त्र के अध्यापन के साथ-साथ अपनी रसोई भी बनाने लगूँ, जूतों की मरम्मत भी आप ही करूँ और रात में लाठी लेकर धन की रखवाली भी करने का भार अपने ऊपर ले लूँ, तो होने को तो सभी काम कुछ-न-कुछ हो जायँगे, पर ठीक से एक भी न होगा और अध्यापन जो मेरा मुख्य काम है, चौपट हो जायगा। इसी प्रकार यदि स्त्री दस कामों में लगेगी तो जो उसका मुख्य काम है, जिस काम को वही ठीक-ठीक कर सकती है, वह नष्ट हो जायगा। सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप बदल सकता है और ऐसे कई काम जो आज घर पर होते हैं वह सार्वजनिक ढंग से किये जा सकते हैं। परन्तु गृहस्थी की प्रथा तो स्यात् न टूटेगी। मेरी राय में टूटना भी न चाहिए और जब तक गृहस्थी रहेगी तब तक घर पर इतना काम रहेगा कि वह स्त्री का अधिकांश समय और मनोयोग ले ले। जो स्त्री घर-गृहस्थी के काम को छोटा समझ कर उसकी जगह कोई ऐसा काम करना चाहती है जिसे प्रायः पुरुष किया करते हैं वह मूर्ख है और उससे भी बड़ा मूर्ख वह पुरुष है जो रुपया कमाने से अपने को बड़ा और घर का काम-धंधा देखने से स्त्री को छोटा समझता है। उसे यह जानना चाहिए कि धनोपार्जन का काम तो स्त्री भी कर सकती है--आज भी करोड़ों स्त्रियाँ ऐसा कर रही हैं--परन्तु गृहस्थी को सुचारु रूप से चलाना पुरुष के मान का नहीं है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि स्त्री के लिए घर के बाहर कोई काम नहीं है। न तो स्त्री को पुरुष से होड़ करने की आवश्यकता है, न पुरुष को स्त्री से। अपने घर का काम देखते हुए भी पुरुष सैकड़ों प्रकार के सार्वजनिक काम करते हैं इसी प्रकार स्त्रियाँ भी अपने घर में काम को प्रधानता देते हुए सैकड़ों प्रकार से समाज को अच्छा बनाने में सहायता दे सकती हैं। न तो वह पुरुष आदरणीय है जो अपने जीवन को शारीरिक सुखों की खोज या केवल अपने बाल बच्चों की देखभाल में लगा देता है, न वह स्त्री आदरणीय है जो सामाजिक तितली बनी फिरती है या अपने घर-गृहस्थी के बाहर आँख उठा कर देखती ही नहीं। साधारण मनुष्यों के लिए परिवार जीवन का केन्द्र है; इसके चारों ओर उनकी सहानुभूति और सेवा-त्याग और तप के क्षेत्र का विकास उत्तरोत्तर बढ़ना चाहिए। एक दिन ऐसा भी आ सकता है जबकि इस छोटे से बिन्दु की आवश्यकता न रहे। जिस दिन हृदय में सार्वभौमता घर कर लेगी उस दिन गृहस्थाश्रम बन्धन रूप हो जायगा। बानप्रस्थाश्रम का यही तत्व था।

मेरे चित्त में तो भावी-समाज का और उसमें स्त्री के स्थान का ऐसा ही चित्र है। यह चित्र प्रचलित समाजवाद की तूलिका से नहीं खींचा गया है परन्तु समाजवाद के मूल सिद्धान्तों के सर्वथा अनुकूल है। यदि इसमें कुछ ऐसे आदर्श हैं जिनको समाजवादी अभी नहीं मानते तो मैं आशा करता हूं कि एक दिन ऐसा आयेगा जब वह ऐसा करेंगे। यह आदर्श आर्य संस्कृति के आदर्श हैं——मेरा विश्वास है कि इन आदर्शों को मानने में ही कल्याण है। पर इसका यह कदापि तात्पर्य नहीं है कि भारत या किसी अन्य देश में इस समय इन आदर्शों का पालन हो रहा है। आज तो मनुष्य इनसे बहुत दूर जा पड़ा है। गम्भीर विचार, दीर्घकालीन शिक्षा और अथक सतर्कता ही फिर हमको उस पथ पर ले जा सकती है। तब तक वर्तमान परिस्थितियों में बहुत परिवर्तन की आवश्यकता है। इतना जरूर ध्यान में रखना होगा। केवल आलोचना, केवल दोषदर्शन, या केवल परिवर्तन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुकार से काम नहीं चलता। इसका परिणाम यह हो सकता है कि वर्तमान अवस्था तो चली जाय परन्तु उसकी जगह उससे भी बढ़कर कुव्यवस्था ले ले। करोड़ों मनुष्यों के जीवन की समस्याओं को सुलझाने वाले में असाधारण धैर्य और गाम्भीर्य होना चाहिए। तभी वह निष्पक्ष भाव से विचार कर सकता है और अपने अध्ययन और स्वतंत्र चिन्तन से समाज को लाभ पहुंचा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ऊपर अविश्वास

हमारी बहुत-सी सामाजिक कठिनाइयों का कारण यह है कि हमको मनुष्य के स्वभाव पर विश्वास नहीं है। हम ऐसा मानते हैं कि उसकी प्रकृति पानी से मिलती है : बहुत यत्न करके उसे ऊपर उठाया तो जा सकता है परन्तु जहाँ अवसर मिला वह नीचे की ओर ही बहता है। हमको ऐसा प्रतीत होता है कि नरक का भय, शिक्षा, सामाजिक बन्धन, ईश्वर की प्रसन्नता का प्रलोभन और राजदण्ड मिल-जुल कर मनुष्य से बहुत से अच्छे काम करा सकते हैं। किसी पर इनमें से एक का अधिक प्रभाव पड़ता है, किसी पर दूसरे का परन्तु यदि यह सब रोकथाम हटा दी जाय तो उसकी रुचि बुरी बातों की ओर ही होगी। सम्भव है दस पांच महापुरुष इस नियम के अपवाद भी हों परन्तु अधिकांश मनुष्यों की यही अवस्था है।

मनुष्य को पापात्मा समझने का प्रभाव

ऐसी धारणा इस समय सार्वभौम हो रही है। दूसरे देशों में तो पहिले से चली आ रही है—बाइबिल और कुरान के अनुसार जब आदम स्वर्गकल्प अदनोद्यान से पातकी होकर निकाले गये तभी से उनकी सन्तति पतित हो गयी है—परन्तु भारत के लिए नयी चीज़ है। नयी कहने का यह अर्थ नहीं है कि दस-पांच वर्षों से आयीहै। मेरा ऐसा अनुमान है कि जिस दिन से भारतवासी अपने को आर्य की जगह हिन्दू समझने लगे तब से ही उनका मनुष्य की प्रकृति की नैसर्गिक नीचता पर विश्वास जम गया। वेद मनुष्य को अमृतस्या पुत्राः—अमृत की सन्तति—कह कर सम्बोधित करता है परन्तु हमको आजकल यह कहना सिखाया जाता है:—

पापोऽहं पापकर्माऽहं, पापात्मा पापसम्भवः
(मैं पापी हूँ, पापकर्मी हूँ, पापात्मा हूँ, पाप से उत्पन्न हुआ हूँ।)

ब्राह्म-विवाह वैदिक संस्कार है, ईश्वरस्वरूप वेदमंत्रों के द्वारा सम्पन्न होता है, शाश्वत देवता उसकी साक्षी होते हैं। मनुष्य शरीर सब योनियों में श्रेष्ठ है। देवगण उन लोगों के भाग्य को सराहते हैं जो 'भारत भूमि भागे, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्'—(देव शरीर छूटने पर भारत में फिर मनुष्य शरीर पाते हैं), और फिर भी पापसम्भव—पाप से उत्पन्न हुआ—शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह या तो नम्रता के नाम से भारी झूठ, महापाप है या भयंकर व्यामोह। ब्रह्म-विवाह से उत्पन्न कोई भारतीय तो पापसम्भव नहीं कहला सकता। कोई भी अमृत पुत्र, चाहे वह कैसा भी पापकर्मी हो, पापात्मा नहीं कहा जा सकता। यह श्लोकार्ध अधर्म-भावना से ओतप्रोत है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर इसके साथ ही साधारण विश्वास का द्योतक भी है। जिन धर्माचार्यों का यह कर्तव्य था कि मनुष्य को उसके अमरत्व की स्मृति दिलाते रहते उन्होंने ही उसको पापात्मा कहते-कहते नीचे धकेलने का बीड़ा उठा लिया। प्रोत्साहन देने से भेड़ में भी कुछ उदात्त गुण जाग सकते हैं परन्तु तू नीच है, पतित है, कायर है, दुर्बल है, सुनते-सुनते सिंह का बच्चा भी गीदड़ हो जायगा। उसका अपने ऊपर से विश्वास उठ जायगा और जो एक बार आत्मविश्वास खो चुका वह दूसरों के विश्वास का पात्र भी नहीं बन सकता।

मैं कह चुका हूँ कि यह विश्वास, या यों कहिए कि अविश्वास की यह धारणा, सार्वभौम है परन्तु भारत में इसका घर करना आश्चर्य और दुःख की बात है। यहाँ के संस्कार इसके विरुद्ध थे परन्तु राजनीतिक पराधीनता के कलुषित वातावरण में पिछली दुःखमयी शताब्दियों में इसको यहाँ भी फैलने का अवसर मिल गया।

यों तो वैयक्तिक और सामूहिक जीवन के सभी अंगों पर इसका प्रभाव पड़ता है परन्तु मैं यहाँ उदाहरण के लिए दो क्षेत्रों को लेता हूँ।

शिक्षा को लीजिए। यहाँ मेरा तात्पर्य चरित्र-शिक्षा से है क्योंकि बौद्धिक शिक्षा का विषय अप्रासंगिक है। चरित्र की शिक्षा विद्यालय का अध्यापक भी देता है, घर के गुरुजन भी देते हैं और यदाकदा धर्माचार्यों के मुँह से भी मिला करती है। सब शिक्षकों की पद्धति एक सी नहीं होती परन्तु एक बात में साम्य रहता है। सब ऐसा मान कर चलते प्रतीत होते हैं कि यह व्यक्ति जन्मना दुष्प्रवृत्तियों का भण्डार है। यह प्रयत्न रहता है कि किसी प्रकार इसके चित्त में अच्छे संस्कार बैठाये जायँ, जिससे कि इसके सहज कुभाव यथासम्भव दब जायँ। यदि मनुष्य के स्वभाव पर विश्वास होता तो शिक्षक दूसरे प्रकार से चलता। वह यह मानता कि यह वस्तुतः शुद्ध और निर्मल प्रकृति का है। इसमें अच्छे संस्कार बाहर से लाकर भरना नहीं है। इतना ही करना है कि ऊपर कुसंस्कारों की जो एक तह जम गयी है उसे साफ कर देना है। इन दोनों दृग्बिन्दुओं में और इनसे उत्पन्न होनेवाली चेष्टाओं में बड़ा अन्तर है। एक मनुष्य पत्थर को घिस कर दर्पण बनाने की बात सोचता है, दूसरा दर्पण पर जमे मैल को धोने का विचार कर रहा है।

आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में यह अविश्वास और जोरों से देख पड़ता है। समाजवादी व्यवस्था के ऊपर बहुत बड़ा आक्षेप यह किया जाता है कि वह अव्यावहारिक है। जब निजी लाभ की आशा न रहेगी तो कोई काम में प्रवृत्त न होगा, क्योंकि मनुष्य स्वार्थ की प्रेरणा से ही काम किया करता है। इस आक्षेप का यह उत्तर है कि जितने बड़े धर्मोपदेष्टा, कवि, वैज्ञानिक, हो गये हैं और हैं उनको स्वार्थ बुद्धि से प्रेरणा नहीं मिली। जो लोग धर्म या देश के नाम पर अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि प्राण भी दे देते हैं उनको क्या निजी लाभ होता है? जो लोग संकट के समय राजशासन का सूत्र अपने हाथ में लेते हैं उनको इसमें क्या लाभ हो सकता है? प्रचलित लोकमत के विरुद्ध किसी प्रकार के सामाजिक सुधार के लिए आन्दोलन करनेवाले को किस पुरस्कार की आशा हो सकती है? सच तो यह है कि पृथिवी पर जितना भी उत्कृष्ट और चिरस्थायी काम हुआ है वह अपने लाभ का हनन करके निर्लोभ और निःस्वार्थ भाव से ही किया गया है। यदि यह कहा जाय—जैसा कि कहा जाता है—कि ऐसे लोगों को यह आशा रहती है कि ईश्वर या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्यत् लोकमत या जनता या कम से कम वह लोग जिनका हमारे काम से उपकार होगा हमसे प्रसन्न होंगे तो यह आशा तो समाजवादी व्यवस्था में सबको प्राप्त होनी चाहिए। यदि देश के नाम पर बलिदान होने वाला अपने स्वार्थ को राष्ट्र के हित में मिला सकता है तो समाजवादी व्यवस्था में प्रत्येक नागरिक समाज के व्यापक हित में अपना हित क्यों नहीं देख सकता?

मानव ऊपर उठ सकता है

सारी बात यह है कि लोग समझते हैं कि थोड़े से विशेष प्रकार के मनुष्य चाहे जो कर लें परन्तु साधारण मनुष्य स्वार्थ का पुतला है, उससे निःस्वार्थ भाव से केवल सार्वजनिक हित के लिए काम हो ही नहीं सकता। यह धारणा मनुष्य स्वभाव के अविश्वास पर खड़ी है। जिन लोगों को मानव-प्रकृति का गम्भीर ज्ञान है, जिन्होंने इसका समवेदना के साथ अनुशीलन किया है वह इसको ऐसा बुरा नहीं मानते। वह समझते हैं कि इस समय इसमें चाहे जो बुराइयां देख पड़ती हों परन्तु यह इनके ऊपर उठ सकती है। यदि ऐसा न होता तो सन्त-महात्मा क्यों और किसको उपदेश देते? उनकी वाणियों में लोभ और स्वार्थ की निन्दा और लोकसंग्रह तथा निःस्वार्थ भाव की प्रशंसा भरी पड़ी है। यह सब सीख मुट्ठी भर उच्च कोटि के अधिकारियों के लिए तो है नहीं, नहीं तो योग और मंत्र की दीक्षा की भांति छिपा कर रखी जाती। जब यह लोग बीच बाजार में खड़े होकर पुकार-पुकार कर ऐसा सन्देश सुनाते हैं तो इनको निःसन्देह यह आशा होगी कि जन-साधारण उसको ग्रहण करने के अधिकारी हैं और उसके अनुसार काम कर सकते हैं। बुद्ध और ईसा ने विद्वद्गोष्ठी में बैठ कर नहीं हजारों सामान्य नर-नारियों के बीच में अपने प्रवचन सुनाये थे। व्यासदेव ने पुराणों की, उन पुराणों की जिनका सार उनके ही शब्दों में 'परोपकारः पुण्याय, धर्म्मादर्शश्च कामश्च, आत्मनः प्रतिकूलानि परेषु न समाचरेत्' (परोकार पुण्य है; धर्म से ही अर्थ और काम की प्राप्ति होती है, जो अपने को पसन्द न हो वह दूसरों के साथ मत करो), वेदार्थविद ब्राह्मणों के लिए नहीं वरन् अपठित छोटे लोगों के लिए ही रचना की थी; 'कबिरा खड़ा बजार में लिये लुआठी हाथ' गरीब निरक्षर प्रजा को ही तो साँच, सन्तोख और जूआ, चोरी, व्याज, घूस, परवार को 'निवारने' की सीख दे रहा था। यदि इन लोगों को सफलता की आशा नहीं थी, यदि यह समझते थे कि साधारण मनुष्य पापात्मा है, वह क्षुद्र सुखों के ऊपर नहीं उठ सकता, तो क्यों अपना समय नष्ट करते थे? दो-चार धर्मध्वज शिष्यों के हाथ में चुपके से मुक्ति का बीजक पकड़ा देते।

अविश्वासी समुदाय इस बात से सन्तुष्ट नहीं होता। उसके पक्ष में बड़ा प्रमाण यह है कि इस प्रकार की सीख निरन्तर सुनते रह कर भी मनुष्य वैसा ही नहीं रहा। लोभ का बाजार पूर्ववत् गर्म है। स्वार्थ का बोलबाला है। यह बात ठीक है। पर इसका एक बड़ा कारण है, जिसकी ओर मेरी समझ में इन सन्त-महात्माओं का ध्यान नहीं गया। या गया भी तो यह इस संबंध में कुछ कर न सके। कम से कम विदित तो ऐसा ही होता है कि उसके महत्व को सबसे पहिले समाजवाद के आचार्यों ने ही समझा। उस कारण का नाम है बाह्य परिस्थिति। बीज को पल्लवित होने के लिए अनुकूल वातावरण चाहिए। मनुष्य में सभी उदात्त गुण बीजरूप से वर्तमान हैं। उसमें शौर्य, धैर्य, दया, क्षमा, औदार्य, त्याग,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तप सब कुछ है परन्तु बहुत से लोगों में यह गुण खिल नहीं पाते। कोई बिरला मनुष्य ऐसे प्रबल व्यक्तित्व का होता है जो परिस्थिति को कुचल कर ऊपर उठता है, अधिकतर लोगों को परिस्थिति दबा लेती है। उनको सहायता की आवश्यकता है। उनकी अवस्था कोमल पौधों जैसी है। कुछ दिन में जाकर अपने बल पर खड़े होने योग्य हो जायेंगे। पानी में नहा कर अपने कपड़े सूखे रखना सब का काम नहीं है। जिसके बच्चे दाने-दाने को तरस रहे हों, स्त्री को तन ढकने को टुकड़ा न हो, माघ-पूस की कड़कड़ाती शीत में खुले आकाश के सिवाय सिर पर छप्पर न हो, उससे स्वार्थ-त्याग की आशा करना पागलपन है। मनुष्य को पशुओं की भांति रहने के लिए विवश करना और फिर देवों जैसा आचरण न करने पर उनको उलाहना देना अपनी जड़ता घोषित करना है। जो बच्चा मद्यपान और अश्लीलता में पला, न पढ़ाया गया, न कोई व्यवसाय सिखाया गया वह यदि झूठ और जुए से अपना पेट पालता है तो उसका क्या दोष है? चोर को दण्ड तो देना ही चाहिए पर उसको जेल भेजने के पहिले समाज कभी यह भी सोचता है कि उसके और उसके कुटुम्बियों के भूखे रहने का दायित्व किस पर है और अब इसके जेल चले जाने पर वह लोग क्या खायेंगे जिनके लिए इसने चोरी की?

समाजवादी दृष्टिकोण

चोर जेल भेजा जा सकता है, वह तो अपने किये का दण्ड यहीं पा लेता है पर वस्तुतः अपराधी समाज है और अपनी करनी का, लाखों मनुष्यों को नंगा, भूखा, अशिक्षित रखने के पाप का दण्ड पीढ़ी दर-पीढ़ी भुगतता रहता है। समाजवादी इसी बात की ओर ध्यान दिलाता है। वह कहता है कि पहिले ऐसी व्यवस्था कर दो जिसमें मनुष्य का मनुष्य की भांति रहना सम्भव हो जाय। जो नीरोग है उसको काम मिलना चाहिए। समाज का कर्तव्य है कि उसको उसके योग्य काम दे और जब तक काम नहीं मिलता तब तक भोजन दे, भिक्षु की भांति नहीं, नागरिक की भांति। समाज का यह भी कर्तव्य है कि ऐसा प्रबन्ध करे कि एक के श्रम का शोषण करके दूसरा लाभ न उठाये। उसको यह देखना होगा कि सबको उचित पारिश्रमिक मिलता है और अपनी योग्यता के अनुसार शिक्षा पाने और काम करने का अवसर मिलता है। सबके लिए वासस्थान का और विश्राम का प्रबन्ध करना होगा। इसके लिए शोषकों और परोपजीवियों का वर्ग मिटा देना होगा। रुपया, अधिकार और सम्मान का मापदण्ड न रहने पा सकेगा।

ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करके समाज को लोगों के उत्तमत्व को पुकारने का अधिकार होगा। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मनुष्य का 'स्व' उत्तम है, सद्‌गुणों का आकर है, विषमता ने सन्त-महात्माओं की पुकार का पूरा प्रभाव न पड़ने दिया। इसी से व्यास ने घबरा कर कहा 'ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष, न च कश्चिच्छृणोति मे' (मैं हाथ उठा कर चिल्लाता हूं, कोई मेरी बात नहीं सुनता) आज तो विषमता और भी बढ़ गयी है, उसके मारे आत्मा तक धर्म की पुकार पहुंच नहीं पाती। वह एक बात दूर कर दी जाय, फिर तप और त्याग, अलोभ और स्वार्थ-त्याग आपसे आप प्रकट होंगे। फिर लोग समाजसेवा की भावना से काम करेंगे। मेरे काम से सब का कल्याण हो रहा है, यह भावना उनके स्वान्तःसुखाय के लिए पर्याप्त पुरस्कार होगी। समाजवादी को मनुष्य के हृदय में भरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई परार्थ बुद्धि का पूरा भरोसा है। दुःख की बात यह है कि जो लोग समाजवादी पर भौतिकता का दोष लगाते हैं वह भी आत्मा पर विश्वास नहीं रखते।

आज कल तो पालने से ही स्वार्थ का पाठ मिलने लगता है। चारों ओर स्वार्थ का वातावरण है। हिन्दुओं में अब धर्मबुद्धि नहीं रही। अब यह प्रश्न नहीं है कि कौन अपने वर्ण या आश्रम धर्म का पालन करता है, वर्ण वर्ण में, आश्रम आश्रम में, व्यक्ति व्यक्ति में अधिकारों के लिए संघर्ष है। सम्प्रदाय सम्प्रदाय से, राष्ट्र राष्ट्र से लड़ता है। जीविका सबके सहयोग का फल नहीं है वरन् सबके संघर्ष में कुछ की विजय का। सम्मान विद्या का समाजसेवा का नहीं प्रत्युत रुपये का होता है और रुपया झूठ और परमर्माघात के बिना मिलना कठिन है। बचपन से ही हृदय पर यह बात बैठ जाती है कि यदि मुझे अपना जीवन सफल और सुखी बनाना है तो सतर्क रहना होगा और दुनिया से लड़ाई मोल लेनी होगी। इस लड़ाई में कोई किसी का साथी नहीं है जो एक साथ देख पड़ते हैं वह भी अपने स्वार्थ के साथी हैं। इस प्रकार के अनुभव का परिणाम यह होता है कि बुद्धि पूर्णतया स्वार्थमयी हो जाती है और निःस्वार्थता की बात दिल्लगी सी जँचती है। अलोभ स्वार्थ का रेशमी चादर मात्र रह जाता है।

समाजवाद पुकार-पुकार कर कहता है कि मनुष्य को पतित मत समझो, जिन आचार्यों ने पहिले यह आवाज उठायी थी वह अनीश्वरवादी थे, आत्मा के भी अस्तित्व को नहीं मानते थे। जो लोग आत्मा को नित्य और ईश्वर का अंश मानते हैं वह तो मनुष्य को पतित कह ही नहीं सकते। उस पर कितने भी बुरे संस्कारों का पर्दा पड़ा हो पर यह पर्दा हटाया जा सकता है। स्वार्थ के वातावरण में आत्मा संकुचित हो जाती है। अवसर मिलते ही उसका झुकाव लोकसंग्रह और परार्थ की ओर होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यायाम का महत्व

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"। मनुष्य जो कुछ भी काम करता है उसका उद्देश्य ऐहिक हो या आयुष्मिक, स्वार्थमूलक हो या परार्थमूलक, उसका आधार और आश्रय शरीर ही है। शरीर के अस्वस्थ रहने पर सभी कामों में अड़चन पड़ती है। दार्शनिक, विचारक, कवि, कलाकार और योगी भी शरीर की अवहेलना नहीं कर सकते क्योंकि चित्त की निर्बाध प्रवृत्ति तब ही हो सकती है जब नाड़ि संस्थान (नर्वस सिस्टम) यथार्थ रूप से काम करे; भारतीय शब्दों में, प्राण का संचार अप्रतिहत रूप से हो सके। परन्तु नाड़ि-संस्थान को शरीर के अन्य अंशों से पृथक् नहीं किया जा सकता। अतः शरीर का स्वास्थ्य उन लोगों के लिए भी अपेक्षित है जो प्रायः दैहिक आयास नहीं करते।

व्यायाम समाजहित के लिए आवश्यक

शुद्ध प्राकृतिक जीवन से बिना परिश्रम के अर्थात् बिना विशेष प्रयत्न के ही स्वास्थ्य बना रहता है। पशु-पक्षी स्वास्थ्य के लिए कोई पृथक् उपाय नहीं करते। परन्तु मनुष्य के लिए ऐसा जीवन दुर्लभप्राय है। सभ्यता ने उसको प्रकृति से दूर कर दिया है। इसलिए उसको स्वास्थ्य के लिए विशेष साधनों से काम लेना पड़ता है। इन्हीं साधनों को व्यायाम कहते हैं और साधनों को सिखाने वाली शिक्षा शारीरिक शिक्षा है। अतः मनुष्य के लिए व्यायाम और शारीरिक शिक्षा नितान्त आवश्यक है। इसका प्रचार होना चाहिए। इस पर जो व्यय हो वह सार्थक होगा क्योंकि उससे समाज का व्यापक कल्याण होगा।

बात तो इतनी ही है परन्तु व्यवहार के स्तर पर इस संबंध में कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। स्पर्धा मनुष्य का सहज गुण है। जी चाहता है कि हम दूसरों से ऊंचे, उत्कृष्ट, बड़े हों; इतना ही नहीं, लोग हमारे इस उत्कर्ष को जानें और मानें। प्रत्येक बात में यदि उत्कर्ष प्राप्त हो सके तो बहुत ही अच्छा है पर यह सम्भव नहीं प्रतीत होता। ऐसी दशा में लोग अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार किसी एक दिशा में ही आगे बढ़ने और उस दिशा में चलनेवाले दूसरे व्यक्तियों से बाजी मार ले जाने का प्रयत्न करते हैं। किसी को शास्त्रीय विषयों में पांडित्य प्राप्त करने में, किसी को धन संग्रह करने में, किसी को शारीरिक बल संचय करने में, रस आता है। इसलिए व्यायाम भी केवल स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए नहीं, प्रत्युत असाधारण बलसंग्रह के लिए किया जाता है। बल के साथ-साथ ऐसे उपाय, ऐसे दाव-पेंच, निकाले जाते हैं जिनसे दूसरों पर विजय पाने में सुविधा हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुश्ती का उद्देश्य

पहलवानी मनुष्यों में ही देखी जाती है, बलवान् पशुओं के समूह में पहलवान नहीं होते। कृत्रिम होते हुए भी, पहलवानी बुरी चीज नहीं है। पहलवान थोड़े ही होंगे परन्तु उनको देखकर दूसरे लोगों में भी शरीर बनाये रखने का शौक बढ़ता है। स्पर्धा की भावना भी इस ओर प्रवृत्त करती है। हमारे देश में पहलवान प्राचीन काल से होते आये हैं। यह दुःख की बात है कि आज कल हमारा ध्यान इधर से हट गया है। यदि कहीं यह समाचार पढ़ने को मिल जाय कि किसी भारतीय पहलवान ने किसी विदेशी पहलवान को पराजित कर दिया तो हम प्रसन्न हो उठते हैं परन्तु पहलवान तैयार करने का प्रयत्न नहीं करते। अब राजा-रईसों के दिन गये, यह काम सार्वजनिक संस्थाओं को अपने ऊपर लेना होगा।

प्रसंगवशात् एक और बात की चर्चा करता हूँ। भारतीय मल्लविद्या के अपने नियम हैं, वह ऐसी कला है जिस पर हम गर्व कर सकते हैं। परन्तु आज हम इस बात को भूलते जा रहे हैं। पश्चिम की कुश्ती कला नहीं है, उसमें बल का क्रूर पाशव प्रदर्शन होता है। चाहिए तो यह था कि हम इस बात पर आग्रह करते कि यदि कोई विदेशी हमारे यहाँ आता है तो वह हमारे नियमों से कुश्ती लड़े, उलटे हम विदेशी नियमों को अपना रहे हैं। दिल्ली में कुछ दिन पहिले कुश्ती का जो प्रदर्शन हुआ था उसी से यह बुरी हवा बही है। इसको रोकना होगा। कुश्ती का उद्देश्य सुरुचिपूर्ण स्पर्धा ही होना चाहिए, निर्दयता का प्रसार नहीं। जिसके शरीर में बल है और पास में मल्लशास्त्र का ज्ञान है वह आवश्यकता पड़ने पर शत्रु को परास्त कर सकता है और दुष्ट को दण्ड दे सकता है परन्तु अखाड़े में प्रतिस्पर्धी के हाथ-पाँव तोड़ना कदापि श्लाघ्य नहीं है।

व्यायाम काले को गोरा नहीं बना सकता, संभवतः शरीर के कुब्जादि सहज दोषों को भी दूर नहीं कर सकता, फिर भी यह सत्य है कि स्वस्थ शरीर सुन्दर होता है। सौन्दर्य में सममातृता होती है, सुन्दर शरीर सुडौल होता है, उसके प्रत्येक अवयव में अपने काम करने की क्षमता होती है। आज कल सुन्दर शरीर, The body beautiful या Handsome कह लीजिए, शास्त्रार्थ का विषय बन गया है। सुन्दर शरीर पर पुरस्कार दिये जाते हैं। पर सुन्दर शरीर किसको कहें इस विषय में मतभेद है। उत्तर प्रदेश की कौंसिल आफ फिजिकल कल्चर में भी यह प्रश्न उठा था पर निर्णय न हो पाया। एक मत तो पाश्चात्य शैली पर जाता है। मांसपेशियां उभरी हुई हों, पुट्ठे तने देख पड़ें। भारतीय परम्परा इससे भिन्न है। उस पर हमारी संस्कृति की छाप है। शक्ति अच्छी वस्तु है परन्तु शक्ति का विज्ञापन अच्छा नहीं होता, पेशियों में बल हो पर वह ढकी हों। मुझे स्वयं तो यह भारतीय विचार ही अच्छा लगता है परन्तु विशेषज्ञों को इस ओर ध्यान देना चाहिए। हम कैसा शरीर चाहते हैं, इसके निश्चय होने पर यह भी निर्भर करेगा कि हमारी व्यायाम-शैली कैसी होगी।

व्यायाम-शैली पर विचार करते समय हमको न तो रूढ़ियों से बँधना चाहिए, न भौगोलिक तर्कों को स्थान देना चाहिए। कोई पद्धति प्राचीन हो या अर्वाचीन, भारतीय हो या विदेशी, देखना यह है कि वह अपने काम के लिए उपयुक्त है या नहीं। यदि उससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर सुन्दर और दृढ़ बनता है, प्रत्येक अंग में फुर्ती आती है और चित्त में उमंग और उत्साह जागता है, तो वह अच्छी है। जो शैली तमोगुण को जगाती है अर्थात निद्रा और आलस्य को बढ़ाती है वह बुरी है। व्यायाम ठोस मांसपिंड तैयार करने के लिए ही नहीं वरन् मनुष्य को अच्छा मनुष्य और सुयोग्य नागरिक बनाने के लिए किया जाता है उससे पुट्ठों के साथ-साथ नाड़ी-तन्तुओं को भी लाभ पहुंचना चाहिए। इसका प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ना चाहिए और बुद्धि में प्रखरता तथा चित्त में ओज की अनुभूति होनी चाहिए। हमको आग्रह छोड़ कर इन बातों का वैज्ञानिक दृष्टि से निश्चय करना चाहिए। 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि सर्वे नवमित्यवद्यम्' भी सही है और यह भी सत्य है कि 'नवीनमित्येव न साधु सर्वं पुराणमित्येव न वाह्यवद्यम्'।

मैं उत्तर भारत में यह देखता हूँ कि स्पोर्ट्स की ओर तो प्रवृत्ति है परन्तु व्यक्तिगत रूप से शरीर बनाने की ओर कम रुझान है। जो लोग इस ओर झुकते हैं वह किसी प्रकार की पाश्चात्य प्रक्रिया को अपनाते हैं। मैं यह नहीं कह सकता कि पाश्चात्य कसरत त्याज्य है परन्तु मुझे ऐसा लगता है देशी कसरत भी उपादेय है। मैंने इस विषय का वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया है। फिर भी मेरे अपने जीवन का इतिहास है। लड़कपन में ही व्यायाम का शौक हुआ, जवानी के दिनों में जब कालिज में पढ़ता था लगभग ४०० डंड लगाता था, इसी अनपात से बैठक और मुगदर भी करता था। जिस बात के पीछे पचास वर्षों का संस्कार हो उसके प्रति पक्षपात होना स्वाभाविक है।

मुझे ऐसा लगता है कि देशी कसरत में शरीर को स्थायी पुष्टि देने की अद्भुत क्षमता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि डंड, बैठक, मुगदर ही सब कुछ है। उसमे दौड़ना या ऐसा कुछ और जोड़ना होगा ताकि समूचे शरीर का यथोचित विकास हो। कुछ विशेष अंगों का ही विकास अभीप्सित नहीं हो सकता। यह भी विचारणीय है कि डंड बैठक आदि का रूप क्या हो। मेरी राय में इन बातों पर दृष्टि रखते हुए देशी कसरत का शिक्षितवर्ग, विशेषत: विद्यार्थी समुदाय में पुन: प्रचार होना चाहिए। यह भ्रान्त धारणा दूर होनी चाहिए कि यह अखाड़ों वाली कसरत केवल अशिक्षित लोगों और पेशावरों के लिए है।

मैं देखता हूँ कि आजकल कसरत के साथ कहीं-कहीं आसनों का अभ्यास कराया जाता है। सूर्य-नमस्कार तो ठीक है परन्तु यह विचारणीय है कि आसनों को कहां तक व्यायाम का रूप दिया जा सकता है। आसनों से रोग दूर होते हैं, कुछ आसन रोगों से रक्षा करते हैं परन्तु आसन को कहां तक व्यायाम का सक्रिय अंग बनाया जा सकता है यह प्रयोग का विषय है। कहीं ऐसा न हो कि डंड-बैठक या जिम्नेस्टिक के साथ शीर्षासन का योग हानिकर हो जाय। आसन को व्यायाम का रूप दिया जाय या न दिया जाय, प्राणायाम का अभ्यास जरूर होना चाहिए। इसका सम्बन्ध धर्म से नहीं है, जो लोग संध्यावन्दन न करते हों उनको भी प्राणायाम का अधिकार है।

देशी व्यायाम पद्धति का भी आदर हो

भारत के बाहर इस देश के व्यायाम विशेषज्ञों को जाने का अवसर मिला है परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब जब वह गये हैं उनकी प्रतिष्ठा हुई है। इस नगर के* हनुमान व्यायाम प्रसारक मण्डल ने स्टॉकहोम में जो ख्याति प्राप्त की वह हम सबके लिए गौरव का विषय है परन्तु दुःख की बात है कि स्वयं अपने देश में अपनी व्यायाम-पद्धति का आदर नहीं है। हमारे नेतृ-वृन्द को जैसे इस बात का पता भी नहीं है कि मारुती और भीम के देश में भी व्यायाम की परम्परा है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताएं होती हैं, बाहर के खिलाड़ी यहाँ आते हैं, यहाँ के बाहर जाते हैं परन्तु इस बात की खोज नहीं होती कि पुराने ढंग के जानकार आगे लाये जायँ और भारतीय शैली के अनुरूप प्रदर्शन हों। मेरे नगर, वाराणसी में अब भी ऐसे लोग हैं, जो मुगदर फेरते हैं; मुगदर में कांटे जुड़े हुए हैं, जरा सा हाथ बहक जाय तो शरीर छिल जाय। इसी प्रकार भारी गदाएं घुमायी जाती हैं। कई-कई मन की नाल उठायी जाती है। जो लोग ओलंपिक आदि का प्रबन्ध करते हैं उनका इन लोगों से और इनके अखाड़ों से, जिनमें से कुछ सौ वर्ष भी पुराने हैं, विशेष सम्पर्क नहीं है। आज बाक्सिंग का प्रचार हो रहा है। मुझे इसमें आपत्ति नहीं है परन्तु इस विद्या की एक भारतीय पद्धति भी थी। मैंने स्वयं अपने लड़कपन में उसका कुछ निदर्शन बनारस में कार्तिक के महीने में पंचगंगा घाट पर देखा है। अब वह लुप्तप्राय हो गयी।

आज युद्धक्षेत्र में तीर धनुष से काम नहीं लिया जा सकता परन्तु धनुर्विद्या का अभ्यास विदेश में भी होता है। उससे हाथ और आँख की जो शिक्षा होती है वह तो सदैव उपादेय है। राइफल क्लबों का विस्तार भी सर्वथा वांछनीय है।

इतने दिनों की राजनीतिक पराधीनता ने हमारे चरित्र में कई दुर्बलताएं उत्पन्न कर दी हैं। देश भक्ति भले ही हो पर अभी हम अंग्रेजी शब्दों में 'डिफेंस माइन्डेड' नहीं है इसके लिए सैनिक शिक्षा परम आवश्यक है। भारत सरकार ने एन० सी० सी० का आयोजन किया है पर वह पर्याप्त नहीं है। उसकी परिधि में थोड़े ही व्यक्ति आते हैं। हमने उत्तर प्रदेश में एक प्रयोग किया है। २० जिलों में सेकेन्ड्री स्कूलों के ऊपर की दोनों कक्षाओं में ११वीं और १२वीं कक्षाओं में जिनको इन्टरमीडिएट कक्षा भी कहते हैं, सैनिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी है। केवल कवायद नहीं होती वरन् बन्दूक चलाना भी सिखाया जाता है। इस समय इस प्रकार की शिक्षा ३२,००० लड़कों को मिल रही है और इस पर प्रतिवर्ष ८५ लाख रुपया व्यय होता है। इन लड़कों के काम को भूतपूर्व रक्षामंत्री सादर बलदेवसिंह और प्रधान सेनापति, जनरल करियप्पा ने देखा। उन्होंने उसकी सराहनी की। हमको दुःख यह है कि भारत सरकार ने इस काम में हमारी जरा भी सहायता नहीं की। यह बात नहीं समझी गयी कि हम जिन लड़कों को इस प्रकार शिक्षा देते हैं वह तत्काल सेना में अफसर बनने योग्य भले ही न हों पर उनमें जो संस्कार पड़ रहा है वह उनके साथ रहेगा और यदि देश को कभी आवश्यकता पड़ गयी तो यह हजारों नवयुवक देश की सेवा के लिए प्रस्तुत होंगे। दिल्ली से प्रोत्साहन न मिलने के अभाव से इस काम की प्रगति यथेष्ट नहीं है। उत्तर प्रदेश सरकार की तो यही इच्छा है

---

*विदर्भ (मध्यप्रदेश) के अमरावती नगर से अभिप्राय है, जहां के व्यायाम सम्मेलन में यह भाषण किया गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कि यह शीघ्र से शीघ्र सारे राज्य में लागू कर दी जाय। मैं आशा करता हूँ कि मध्यप्रदेश और दूसरे राज्य भी अपने यहां ऐसी योजना चालू करेंगे। हमने प्रत्यक्ष देखा कि इसका प्रभाव चरित्र पर पड़ता है? विनय, शिस्त, दायित्व और अपनी बुद्धि से काम करने की प्रवृत्ति बढ़ती है।

हमें अच्छे नागरिक चाहिए

अनुशासन, संयम, डिसिप्लिन की कमी हमारे राष्ट्रीय जीवन का अभिशाप हो रही है। शिक्षा-संस्थाओं और उनके बाहर उद्दंडता की बाढ़ सी आ गयी है। इतने दिनों तक जो विदेशी दबाव था उसके हटते ही मनमानापन छा गया; स्वाधीनता का अर्थ उच्छृंखलता बन गया। इस प्रकार स्वतंत्र राष्ट्र का काम नही चल सकता। सरकारी नियंत्रण या अन्य प्रकार से बाहरी दबाव से तो शिस्त लायी ही जा सकती है परन्तु सच्चा और स्थायी संयम तो भीतर से आता है। वह व्यायाम, व्यायाम नहीं है जो शरीर को पुष्ट कर दे परन्त बुद्धि को संस्कृत न करे।

शक्तिमान् तो यंत्र भी होता है परन्तु हमको मनुष्य चाहिए, अच्छे नागरिक चाहिए, ऐसे व्यक्ति चाहिए जो समाज को उन्नत करने और संसार के कुरूढ़ियों को, दैन्य को, शोषण को, कृत्रिम विषमता को, उठा देने के लिए दृढ़संकल्प हों।एक ओर यह सत्य है कि शक्ति का उपयोग 'परेषां परिपीडनाय' करना बुरा है, दूसरी ओर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि श्रुति ने कहा है 'मन्युरसि मन्युं महि धेहि'' भगवन तुम मन्यु स्वरूप हो। मुझ में मन्यु धारण करो, व्यक्ति के प्रति क्रोध नहीं, अज्ञान, अन्याय, परपीड़न के प्रति क्रोध। पुष्ट और सुन्दर शरीर युवावस्था का भूषण है और संयम तथा परोपकार, बुद्धि-सौन्दर्य और शरीर-पुष्टि की सार्थकता है। जिस युवक के सान्निध्य में प्रत्येक महिला अपने को सुरक्षित न समझे, जिसके हाथ दुर्बल के त्राण के लिए सदा उठे न रहें, जिसके हृदय में देश और समाज के लिए निरन्तर तड़पन न हो वह युवक नहीं, मांस का पिंडमात्र है।

जिस प्रकार उन लोगों के लिए जो शिक्षणालयों में नहीं पढ़ते प्रौढ़ शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है, उसी प्रकार शारीरिक शिक्षा का प्रबंध केवल विद्यार्थियों के लिए नहीं वरन् प्रौढ़ नागरिकों के लिए भी होना चाहिए और स्त्रियों की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उनके लिए इस प्रकार का आयोजन होना चाहिए। जब सरकार और स्थानीय शासन संस्थाओं के साथ-साथ सम्पन्न वर्ग इस ओर ध्यान देगा तभी यह काम होगा। हमारे बड़े-बड़े नगरों में भी बड़े पार्कों और सार्वजनिक उद्यानों की कमी है। सुसज्जित व्यायामशाला और जिम्नेज़ियम आकाश-कुसुम हो रहे हैं। यह हमारे लिए लांच्छन है।

आज जैसा भोजन मिलता है वह शरीर को पुष्ट बनाना तो दूर रहा उसकी जड़को काट देता है। जो शरीर लड़कपन और शुरू जवानी में न बना उसका निखार आगे भी कम ही हो पाता है। इस ओर सरकारें दत्तावधान हैं पर प्रगति धीमी है। समाज में सबको स्वास्थ्यकर और निर्दोष भोजन सुलभ होना चाहिए। विशेषतः छोटे बच्चों को ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाना मिलना ही चाहिए जो उनकी देहों को उभरने में सहायता दे। इस संबंध में अभी पर्याप्त खोज नहीं हुई है कि हमारी सामाजिक और आर्थिक दशा को देखते हुए कौन सी चीजें इस काम में लायी जा सकती हैं।

इस नगर ने शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में अपने लिए विशेष स्थान बना लिया है। मैं यहाँ जो काम होता जो है उसका कुछ परिचय रखता हूँ। मुझे आशा है कि इस सम्मेलन से यहाँ के काम में और उन्नति होगी तथा यहां का प्रकाश मध्य प्रदेश तक ही सीमित न रहेगा। शारीरिक उन्नति राष्ट्रीय अभ्युदय का महत्वपूर्ण अंग और उपकरण है। इस उद्योग में सभी राजनीतिक दलों और अन्य प्रकार के वर्गों का सहयोग मिलना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तरिक्ष यात्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी मानसिक दुर्बलता के क्षणों में, जिसमें निश्चय ही मेरे अन्तर का दम्भ भी समाविष्ट था, मैंने इस एसोसिएशन में अन्तरिक्ष यात्रा जैसे विषय पर व्याख्यान देने के लिए डाक्टर मुकर्जी का आमंत्रण स्वीकार कर लिया। तभी से स्वयं अपने इस निर्णय पर खेद करता रहा। मेरे लिए यह सोचना सचमुच उपहास की बात होगी कि इस महत् विषय के किसी भी पहलू पर मैं आप लोगों की ज्ञानवृद्धि में कुछ योगदान कर सकूंगा। आपकी यह संस्था विशेषज्ञों की संस्था है, जिसके संबंध में मेरे जैसे आदमी की एक यही शिकायत हो सकती है कि आपके ज्ञान से मुझ जैसे साधारणजन वंचित रह जाते हैं। आप लोग जब कभी बोलते भी हैं तो आमतौर पर ऐसी भाषा में जो हमारे मस्तिष्क को रंचमात्र भी प्रभावित नहीं करती। मेरी एक और शिकायत भी है। भारतीय वैज्ञानिकों ने सामान्यतः इस विषय की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है। गतवर्ष 'नेशनल एकेडमी आफ साइंसेज' की एक बैठक में मैंने इस विषय के किसी भी पक्ष पर प्रकाश डालने वाले किसी भी भारतीय के लिए एक पुरस्कार की घोषणा की थी, परन्तु इस ओर अभी तक किसी ने ध्यान नहीं दिया। यद्यपि यह पुरस्कार बहुत साधारण था, किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि इस ओर ध्यान न दिये जाने का केवल यही एक कारण न था। यह जानते हुए कि विज्ञान की कितनी उन्नति हुई है, मैं यह कदापि नहीं मान सकता कि सुविधाओं के अभाव के कारण भारतीय वैज्ञानिक इस विषय में दिलचस्पी नहीं ले पाये हैं। फिर इस विषय पर बोलने के लिए डाक्टर मुकर्जी के आग्रह का क्या कारण हो सकता है? इस संबंध में मैं तो समझता हूं कि उन्होंने शायद निम्नलिखित उक्ति को चरितार्थ करने के उद्देश्य से ऐसा किया—

"विद्वान लोग यदा-कदा अनर्गल बातों में मजा लेते हैं।"

निश्चय ही इस प्रश्न का एक दूसरा भी पहलू है। हो सकता है आप यह जानना चाहते हों कि एक साधारण व्यक्ति किस सीमा तक ऐसे मामलों में दिलचस्पी रखता है और इनके संबंध में उसकी जानकारी या मैं यह कहूं कि उसका अज्ञान कहां तक है, ताकि आप साधारणजन को भी इस प्रकार के विषयों की जानकारी कराने के उपाय के संबंध में अपना विचार बना सकें। आप जैसे विशेषज्ञों द्वारा ज्ञान को इस प्रकार सर्वसाधारण तक पहुंचाना आवश्यक है। साधारण नागरिक ऐसे विषय की बारीकियों को समझ सकने की स्थिति में तो नहीं होता, किन्तु उसे इस आकर्षक विषय से संबंधित मूलभूत समस्याओं की रूपरेखा से अवगत होने का हक तो है ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो भी हो अन्तरिक्ष यात्रा, अब केवल अध्ययन का ही विषय नहीं रह गयी है। जब से अमेरिका ने यह घोषणा की कि अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष में किसी समय वह एक कृत्रिम उपग्रह छोड़ेगा, तभी से इस संबंध में एक अस्पष्ट विचारधारा सक्रिय हो उठी। रूसी स्पुतनिकों से इस प्रकार की विचारधारा संदेह और कल्पना के स्तर से उठकर वास्तविकता का रूप ग्रहण करने लगी। इन स्पुटनिकों द्वारा दिये जाने वाले संकेत का पूरा-पूरा महत्व भले ही अभी हर किसी के लिए स्पष्ट न हो, किन्तु इतना तो सभी को स्पष्ट हो चुका है कि इन कृत्रिम उपग्रहों की उड़ान में मानव जाति के लिए भयंकर संभावनाएं छिपी हुई हैं। कल तक जिसका अस्तित्व वैज्ञानिक गल्पकारों की कल्पना में ही था, वह आज एक गम्भीर तथ्य बन गयी है। पहले स्पुटनिक का वजन १८२ पौंड था और दूसरे का लगभग आधा टन। ऐसी स्थिति में विचारहीन विश्वास का दोषी हुए बिना कोई भी सहज में यह विश्वास कर सकता है कि समान साधनों के सहारे इससे भी बड़ी बस्तुएं अन्तरिक्ष में भेजी जा सकती हैं और वह दिन अब अधिक दूर नहीं है, जब उनमें जीवधारी भी सही-सलामत यात्रा कर सकते हैं। अठारह हजार मील प्रति घंटे की गति इस आशा का औचित्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि सात मील प्रति सेकंड या पचीस हजार मील प्रति घंटे के निर्बन्ध वेग (स्केप वेलासिटी) तक पहुंचना कठिन न होगा। इस प्रकार की सिद्धि अन्तरिक्ष-यात्रा की दिशा में कदाचित् प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य होगा।

इधर कुछ दिनों से हम आकाश मंडल में वायुमंडल से इतर पिण्डों के अस्तित्व तथा भ्रमण की बात सुनते और पढ़ते आ रहे हैं। कहा जाता है कि कुछ सरकारों मुख्यत: अमेरिका के पास ऐसी सामग्री है जिससे ऐसे पिण्डों के अस्तित्व की पुष्टि होती है जिन्हें अन्य किसी नाम के अभाव में हम वाह्य आकाश से आनेवाले अन्तरिक्ष-यानों की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। दुनिया में आदमस्की जैसे लोग भी हैं, जिनका दावा है कि वे वास्तव में शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि ग्रहों से आनेवाले लोगों से सम्पर्क कर चुके हैं। मैं इस सबके बारे में कोई राय नहीं दे सकता। जो कुछ भी इन विज्ञ-पर्यवेक्षकों ने देखने का दावा दिया है, उसे कोरी कल्पना की उड़ान कह देना अविचारपूर्ण होगा। फोर्ट नाक्स में मैण्टल और उनके यान के विनष्ट होने जैसी दुर्घटनाओं, जिनके अधिकृत रूप से रेकार्ड मौजूद हैं, को यूं ही कुछ कह कर टाल देना कठिन है। हर आदमी के लिए यह संभव नहीं है कि अपने ही पर्यवेक्षण से किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचे, किन्तु इन मामलों में आलम्बित निर्णय के अलावा कोई और दृष्टिकोण अपनाना निश्चय ही अवैज्ञानिक होगा। प्रसंगवश मैं यह कह देना चाहता हूं कि भले ही हमारी भावनाओं की इससे कितनी ही तृप्ति क्यों न होती हो, पर मैं इस अतिरंजित धारणा का कायल नहीं कि प्राचीन भारत में ऐसे यानों का अस्तित्व था। कम से कम मुझे तो ऐसे यानों के संबंध में कोई प्रमाण नहीं मिल सका है। अन्तरिक्ष यानों की बात तो दूर रही, केवल एक ही विमान यात्रा का उल्लेख मिलता है, जो राम ने लंका से अयोध्या तक की थी। किन्तु यह स्मरण रखने की बात है कि वह विमान जिससे यात्रा की गयी बतायी जाती है, भारत में नहीं बनाया गया था। वह तो लंका से आया था और उसे रावण ने हिमालय के किसी क्षेत्र में रहने वाले यक्षों पर विजय प्राप्त कर ले गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल विषय पर आने से पहले उससे संबंधित कतिपय अन्य बातों पर प्रकाश डाल देना मैं आवश्यक समझता हूं। दूसरे शब्दों में मैं संक्षेप में उन विषयों की चर्चा कर देना चाहता हूं जो अन्तरिक्ष-यात्रा संबंधी विचार-विमर्श के प्रसंग में उपस्थित हो जाया करते हैं। इनमें से कुछ प्रश्न वैज्ञानिक महत्व के और उससे अधिक मानवीय महत्व के हैं। उदाहरण के लिए यह पूछना युक्तिसंगत ही होगा कि अन्तरिक्ष-यात्रा का परिणाम क्या होगा? इस संबंध में कोई भविष्यवाणी करना धृष्टता होगी, किन्तु मानव जाति के हजारों वर्ष के इतिहास के अनुभव से यह माना जा सकता है कि इस प्रकार की सफलता का प्रथम प्रयोग युद्ध में होगा। 'अणु के शांतिपूर्ण' प्रयोग का नारा आज दुनिया के कोने-कोने से सुनायी पड़ रहा है। फिर भी हम जानते हैं कि यूरेनियम अणु का विघटन तथा संघटन और हाइड्रोजन का हीलियम गैस में परिवर्तन विनाश के साधनों के रूप में हुआ है। मानव ने इस प्रकार का आचरण कुछ पहिली बार नहीं किया है। जैसा कि सुप्रसिद्ध ग्रह विज्ञानवेत्ता ए० सी० क्लार्क, एफ० आर० ए० एस० ने शून्य की छानबीन दी एक्सप्लोरेशन आफ स्पेस' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि राकेट की रचना चीनियों ने लगभग एक हजार साल पूर्व की थी और उसका पहिला प्रयोग उन्होंने १२३२ में मंगडों के विरुद्ध काइजेंग के आक्रमण में किया था। उसके बाद लोग इसे करीब-करीब भूल गये और इसका प्रयोग बच्चों के मनोरंजन के लिए छोटी-मोटी आतिशबाजी तक ही सीमित रह गया। कालान्तर में भारत के किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति ने इसके महत्व को पहचाना और हैदरअली ने प्रथम मैसूर युद्ध में १८०५ के आस-पास ईस्ट इंडिया कम्पनी की फौजों के विरुद्ध बड़ी सफलता के साथ इसका प्रयोग किया। राकेट के प्रयोग का इतना जोरदार प्रभाव पड़ा कि यूरोपीय सेनाएं स्वयं तत्कालीन शस्त्रास्त्रों के बजाय इसे काम में लाने का विचार करने लगी थीं। लेकिन बारूद से भी अधिक विस्फोटक पदार्थों की खोज के फलस्वरूप तोपों का प्रयोग बना रह गया और राकेट एक बार फिर विस्मृति के गर्त में विलीन हो गया। अब पुनः इसका उचित स्थान इसे मिल रहा है। अन्तरिक्ष-यान गुप्तचर कार्य और बम बरसाने के बेजोड़ साधन सिद्ध होंगे और यदि मानव ऐसा ही बर्बर बना रहा जैसा कि सभ्यता की झीनी परत के नीचे वह आज है, तो इस नये हथियार का प्रयोग भविष्य की लड़ाइयों में किये बिना वह हरगिज नहीं रह सकता।

अन्तरिक्ष-यान का उपयोग सचल वेधशाला के रूप में भी किया जा सकता है। यह टेलिस्कोप, स्पेक्ट्रास्कोप और केमरा आदि की पृथ्वी के वायुमंडल के कारण जो सीमाएं हैं, उनसे मुक्त रहेगा। उसमें विलय विसंकल और अवरोध की प्रक्रिया नहीं होगी। नक्षत्र घोर काले गगन में चमकते हुए दिखायी देंगे। अनेक पिण्ड जैसे चन्द्रमा के धरातल का वह अर्द्धांश जो स्थायी रूप से पृथ्वी से विमुख रहता है, का निरीक्षण हो सकेगा। इससे रेडियेशन जैसे सौर रश्मियां, जिनका अधिकांश वायुमंडल के कारण पृथ्वी तक नहीं पहुंच पाता, का अध्ययन करना भी सरल हो जायगा। लेकिन इस बात में संदेह है कि मनुष्य केवल ब्रह्मांड संबंधी अपने ज्ञान में वृद्धि करके ही संतुष्ट रह जायगा। जिन ग्रहों का उपनिवेशीकरण हो सकता है, उनको बसाने के प्रयत्न किये जायंगे। सम्प्रति इस संबंध में जो भी ज्ञान उपलब्ध है उसके अनुसार संभावनाएं कुछ अधिक उत्साहवर्धक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो नहीं हैं, किन्तु ज्ञान तो बढ़ता जाता है और 'फेनीमेना' की छानबीन के दौरान में हो सकता है हमें ऐसे रहस्यों का पता चल जाय जिनसे हमें प्रोत्साहन मिल सके अथवा यह भी हो सकता है कि हमारा उत्साह शिथिल पड़ जाय। उदाहरणार्थ चन्द्रमा के संबंध में यहां तक पता लगाया जा चुका है कि दो सौ गज लम्बी चीज भी नजर से चूक नहीं सकती। अभी तक वहां किसी जीवनशील प्राणी के होने का प्रमाण तो नहीं मिल सका है किन्तु चन्द्रमा एक मृत ग्रह नहीं रह गया है जैसा कि चन्द साल पहले तक माना जाता रहा है। वहां यदि बादल नहीं तो कुहरे का अस्तित्व अवश्य है और कुहरे के होने से यह सिद्ध हो जाता है कि वहां किसी न किसी प्रकार की नमी भी जरूर है। कुहरों की गतिविधि से यह संकेत मिलता है कि वहां किसी प्रकार का वायुमंडल भी है। यह विश्वास करने का कारण है कि वहां किसी प्रकार का जीवन मौजूद है संभवत: काई (फंगी) से मिलता-जुलता। शून्य का सागर (सी आफ पीस) में स्थित लिने, जिसका अध्ययन विश्व के ज्योतिर्विद प्राय: एक शताब्दि से कर रहे हैं, के स्वरूप में परिवर्तन हुए हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि हमारे पड़ोसी ग्रह के धरातल पर भी परिवर्तन हुआ करते हैं। वहां इससे किसी बड़ी या अधिक उच्च स्तर की चीज का अस्तित्व है या नहीं, यह अभी अनुमान का ही विषय है। मंगल ग्रह तो निश्चय ही सौर-मंडल का एक ऐसा ग्रह है जिसके संबंध में अनेकानेक अधिकारी पर्यवेक्षकों का मत है कि वहां कम से कम वनस्पति जीवन के अस्तित्व का जोरदार संकेत मिलता है। कुछ ग्रहों जैसे शुक्र, वृहस्पति और यूरेनस में वायुमंडल है जिसमें मीथेन और अमोनिया जैसी गैसें पायी जाती हैं। वे हमारे सांस लेने के लिए उपयुक्त नहीं है, किन्तु इस बात पर जोर देने का कोई कारण नहीं है कि सभी जगहों की जीवन प्रणाली हमारी ही जीवन प्रणाली के अनुरूप हो। एक जीवधारी, जिसका शरीर नेत्रजन केंद्रित सेंद्रिय तत्वों का बना है और जो ऐसे वायुमंडल में पला है जिसमें अमोनिया का प्रतिशत काफी अधिक है, यह जानकर आश्चर्यचकित हो जायगा कि हमारे जैसे ऐसे भी जीव हैं जिनके शरीर की बनावट मुख्यत: कार्बन केंद्रित तत्व से हुई है और जो ऐसी मिश्रित गैसों की सांस लेते हैं जिनमें ओषजन या आक्सीजन सर्वाधिक मात्रा में रहता है। यदि मानव जाति किसी दूसरे ग्रह में कभी पहुंचे, जहां उसे ऐसे सबुध जीवन के संपर्क में आना पड़े जिनका टेक्निकल ज्ञान न्यूनाधिक उसके ही समान हो तो ऐसी स्थिति में दिलचस्प घटनाएं घट सकती हैं। एक दूसरे ग्रह के बीच लड़ाई छिड़ सकती है और उनमें शांतिपूर्ण वाणिज्य व्यवसाय भी पनप सकता है। इसके विपरीत यदि मनुष्य किसी ऐसे ग्रह में पहुंच जाता है जहां जीवन के लिए आवश्यक उन मूल-तत्वों का अभाव हो, जिन्हें हम जानते हैं, उदाहरणार्थ वहां वायुमंडल न हो या हमारे वायुमंडल से भिन्न हो, तो वहां कृत्रिम दशाओं में रहकर उपनिवेश बसाने का प्रयत्न कर सकता है। उदाहरणार्थ वह ऐसें आश्रय बनाकर समुदाय में रहने की चेष्टा कर सकता है, जिनकी छतें काफी ऊंची हों और जिनमें रासायनिक विधि से निर्मित ओषजन का संचार होता रहे। यह भी हो सकता है कि चट्टानों को तोड़ कर उन्हें अंशत: पानी के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय। ये सारी बातें मुझे वैज्ञानिक गल्प की सीमाओं के निकट पहुंचाती जा रही हैं। मैं यहां इस विषय पर और अधिक कुछ न कह कर केवल इतना ही कहूंगा कि यदि मनुष्य दूरस्थ लोकों न सिर्फ हमारे सौरमंडल के ग्रहों बल्कि अन्य नक्षत्रों से संबद्ध ग्रहों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जाता है और अपने साथ यहां के चरित्रगत् लोभ और कलह वृत्ति, असहिष्णुता और अहंभाव लेकर जाता है तो वह अपने चरित्रगत उन दोषों को वहां फैला देगा, जिन्होंने इस संसार में मानव सत्ता को उथल-पुथल में डाल रखा है।

यहां उन खतरों का जिक्र कर देना अनुचित न होगा, जिनका सामना अन्तरिक्ष-यानों को अपनी यात्रा में करना पड़ेगा। यह सोचना बेकार होगा कि अन्तरिक्ष-यान की यात्रा सर्वथा निर्विघ्न होगी। सच तो यह है कि शून्य जैसी कोई चीज है ही नहीं। तत्व सर्वत्र विद्यमान हैं, यद्यपि यह बहुप्रचलित विश्वास है कि अन्तरिक्ष एक शून्य या आकाश है। अन्तरिक्ष में गैस का घनत्व एक पाइंट में मुश्किल से एक अणु आंका गया है और धूल संभवतः इसके १/३०० से भी कम है। लेकिन अन्तरिक्ष इतना विस्तृत है कि गैस और धूल का वजन तारों, ग्रहों और नीहारिकाओं (नेबुली) के सम्मिलित वजन से कहीं अधिक है। यह संख्या देखने में तो बहुत छोटी मालूम होती है, लेकिन पदार्थ तो विद्यमान है ही। यह वही पदार्थ है जिसमें नीहारिकाओं और बाद में सूर्यों और ग्रहों की रचना होती है; यह सोचा जा सकता है कि अन्तरिक्ष के कतिपय क्षेत्रों में रेडियोधर्मिता पायी जाती है जिन्हें चुम्बकीय तूफान कहा जा सकता है। कोई यान यदि ऐसे क्षेत्र में पहुंच जाय तो निश्चय ही उसे बड़ी कठिनाइयां झेलनी होगीं। उसके समस्त विद्युत उपकरण निष्क्रिय हो सकते हैं और इसका क्या परिणाम होगा, आसानी से नहीं कहा जा सकता। यद्यपि अन्तरिक्ष में पदार्थ का घनत्व बहुत कम है फिर भी यह अनुमान से परे नहीं है कि उससे थोड़ा घर्षण पैदा हो जिसके कारण यान की गति थोड़ी मन्द हो जाय। स्वभावतः इन सबका प्रभाव उतना ही अधिक अनुभव किया जायगा जितनी यात्रा लम्बी होगी। इसके अतिरिक्त वहां पदार्थ के बड़े-बड़े टुकड़े भी हैं जिन्हें हम उल्काएं कहते हैं। यान के लिए शायद यह संभव हो कि वह प्रसिद्ध उल्काओं के घेरे में आने से अपने को बचा सकें। किन्तु ब्रह्मांड की समस्त दिशाओं में निरन्तर तिरते हुए प्रस्तर खंडों के मार्गों का नक्शा कोई भी कभी नहीं बना सकता। इसमें कोई संदेह नहीं कि अन्तरिक्ष-यान को काफी मजबूत बनाने की दिशा में सभी संभव उपाय किये जायंगे जिससे कि वह इन धक्कों को बरदाश्त कर सके, किन्तु इस बात की कोई गारण्टी नहीं कि अन्तरिक्ष में भ्रमणशील पदार्थ के उन छोटे-छोटे छर्रों की बौछार से यान नष्ट न हो जायगा। अन्तरिक्ष-यान चाहे कितनी ही मजबूत धातु से क्यों न बना हो, भीषण गति से चलने वाली एक छोटी सी उल्का भी उसमें आर-पार छेद कर सकती है। यान की एक भी दीवार के पंक्चर होते ही अन्दर जमा किया गया आक्सीजन मिनटों में उड़ जायगा और यान में बैठे लोग दम घुटने की वजह से मर जायंगे। साथ ही वहां रेडियेशन या विकीरण भी होता है जिसे कास्मिकरेज या विश्व किरण कहते हैं। कोई यह निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि ये किरणें कहां से आती हैं? यह भलीभांति कोई नहीं जानता कि उसकी प्रकृति क्या है? शक्ति की इस धारा के गुणों की पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करना तभी संभव है जब हम अपने वायुमंडल के उच्चतम स्तर को पार कर लें। तभी जाकर हम निकट से यह अध्ययन करने की स्थिति में हो सकते हैं कि जिस पदार्थ से यान तथा उसके भीतरी उपकरणों की रचना हुई है उस पर तथा मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है? ऐसे खतरों की भी आशंका हो सकती है जिनके बारे में हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान स्थिति में आसानी से कल्पना भी नहीं कर सकते। लेकिन एक खतरा ऐसा है जिसकी ओर से हमें आरम्भ से ही सावधान रहना होगा। वायुमंडल पार करते ही यान सूर्य के प्रचंड ताप और उसके पूर्ण प्रकाश के प्रभाव में आ जायगा। तापमान उस सीमा तक बढ़ जायगा, जो साधारणतया पृथ्वी पर असंभव है, अतएव अन्तरिक्ष-यान छोड़ने से पहले यह आवश्यक है कि उसके निर्माण में ऐसे सामान लगाये जायं जो उस ताप में ठहर सकें। अन्तरिक्ष में सूर्य जब तक दिखायी देता रहेगा तब तक न उसका अस्त होगा और न उदय। इसलिए उसके ताप का प्रभाव निरन्तर बना रहेगा। एक बार अन्तरिक्ष-यान ने यदि मंगल ग्रह की कक्षा को पार कर लिया तो वह कदाचित खतरे से बाहर हो जायगा और यदि सौरमंडल से भी आगे चला गया और दूसरे सूर्य के निकट से होकर उसे न गुजरना पड़ा तब तो निश्चय ही उसके लिए कोई खतरा नहीं रह जायगा। क्षण भर के लिए अगर हम वैज्ञानिक गल्प के क्षेत्र में जाकर यह कल्पना करें कि संयोगवश अन्तरिक्ष में कहीं हमारे यान का सामना हमारे परिवार के किसी अन्य ग्रह या किसी दूसरे सौर परिवार के ग्रह से निकल कर यात्रा करने वाले दूसरे यान से हो गया तो ऐसी स्थिति का निराकरण स्वभावतः दोनों यानों के कप्तानों की सुबुद्धि तथा वे जिन जातियों का प्रतिनिधित्व करते हैं उनके इरादों पर निर्भर होगा। ऐसी स्थिति में एक अत्यन्त रोचक संभावना का परीक्षण 'प्रथम सम्पर्क' शीर्षक उस कहानी में किया गया है जिसके लेखक मरेरी लेनिस्टन हैं।

वास्तव में ये संयोग की बातें हैं, किन्तु इनका व्यावहारिक महत्व है। फिर भी उनके संबंध में फिलहाल मैं कुछ अधिक नहीं कहना चाहता और इसका एक मुख्य कारण है समय का अभाव। यही कारण है कि आरम्भ में ही मैंने इनका जिक्र कर दिया था।

अब मैं अन्तरिक्ष-यात्रा से संबंधित कतिपय महत्वपूर्ण समस्याओं पर आता हूं। हम यह मान कर आगे बढ़ रहे हैं कि अन्तरिक्ष यान की रूपरेखा पहले ही तैयार की जा चुकी है। स्पष्ट है कि इस प्रकार की कोई रूपरेखा तब तक नहीं तैयार की जा सकती जब तक यह निश्चय न कर लिया जाय कि इसमें किस प्रकार का ईंधन प्रयोग में लाया जायगा। अगर यान को पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण परिधि से बाहर पहुंचना है तो यह जरूरी हो जाता है कि पृथ्वी की पकड़ से बाहर होने के लिए इतनी शक्ति उत्पन्न की जाय जिससे यान का वेग सात मील प्रति सेकंड या पचीस हजार मील प्रति घंटा हो सके।

सिद्धांत रूप में इतनी गति प्राप्त करने के लिए आवश्यक शक्ति उत्पन्न करना असंभव नहीं है। किन्तु यात्रियों पर पड़ने वाले शारीरिक एवं मानसिक प्रभाव के अतिरिक्त कदाचित इस प्रबल वेग को सहन करना स्वयं यान के लिए भी संभव न होगा। प्रायः ऐसी ही कठिनाई का अनुभव वापसी यात्रा में भी हो सकता है। कुछ ग्रहों में पृथ्वी की अपेक्षा संहति कम हैं, किन्तु सौरमंडल में और कदाचित उसके बाहर भी ऐसे ग्रह हैं जिनमें संहति पृथ्वी से कई गुनी अधिक होंगी। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि विभिन्न ग्रहों के गुरुत्वाकर्षण और उससे यान के निकलने की गति में अन्तर हो, किन्तु इस संबंध में जो व्यवस्था करनी होगी वह अनिवार्यतः समान होगी। यान को अन्तरिक्ष की यात्रा करने, वहां से वापस आने और अप्रत्याशित घटनाओं का सामना करने के लिए अपने साथ पर्याप्त मात्रा में ईंधन ले जाना पड़ेगा। इसलिए किस प्रकार के ईंधन की व्यवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जाय यह प्रश्न सबसे अधिक महत्व का है। हमें ऐसे ईंधन की व्यवस्था करनी होगी कि कम से कम मात्रा में अधिक से अधिक क्षमता प्राप्त की जा सके। ऐसा प्रबन्ध करना होगा कि ईंधन कम से कम स्थान ले और उससे यान के भार में अधिक वृद्धि भी न हो। निश्चय ही इस दृष्टि से अणुशक्ति का उपयोग एक आदर्श व्यवस्था होगी और इसमें संदेह नहीं कि समस्त संसार के वैज्ञानिक विशेषतः उन देशों के वैज्ञानिक जिन्होंने अन्तरिक्ष यात्रा की दिशा में पर्याप्त प्रगति कर ली है, इस संभावना को मूर्त रूप देने के प्रयोग कर रहे हैं। लेकिन, जहां तक हमें मालूम है अभी इस समस्या का संतोषजनक हल नहीं निकाला जा सका है। यह भी हो सकता है कि सौरमंडल तक की सीमित यात्रा में स्वयं सौरशक्ति या 'सोलर एनर्जी' का प्रयोग किया जाय। ऐसी स्थिति में जरूरत इस बात की होगी कि किसी प्रकार के विशाल दर्पणों के सहारे इस सौरशक्ति को केंद्रित या 'फोकस' करके इसको संचित करके ऐसे रूप में परिणत किया जाय जो यान को चलाने में प्रयुक्त किया जा सके और जिससे इसके यात्रियों को वांछित परिणाम में गरमी और रोशनी मिल सके। यह भी एक समस्या है जिस पर गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया जा रहा है। प्राविधिक रूप से यह संभव है, लेकिन इस ढंग से जो शक्ति अर्जित की जा सकती है वह संभवतः लम्बी यात्रा के लिए पर्याप्त न होगी। इसलिए फिलहाल हम विभिन्न प्रकार के रासायनिक ईंधनों की छानबीन करने के लिए बाध्य हैं, ऐसे ईंधन जो अपने तत्वों के सम्पर्क में आने पर होने वाली रासायनिक प्रक्रिया के फलस्वरूप अपेक्षित शक्ति को उत्पन्न करते हैं। आज की स्थिति में किसी न किसी प्रकार का राकेट इंजन ही ऐसी वस्तु है जिसके बारे में विज्ञान सोच सकता है। राकेट में रिक्वायल या झटके के सिद्धांत का प्रयोग होता है जिसका सीधा-सादा अर्थ है कि अगर रासायनिक प्रक्रिया से गैस इस प्रकार के यान में छूटती है जिसकी दीवारें सभी ओर से ठोस और मजबूत हैं तो सभी दिशाओं में गैस का दबाव समान होगा और अन्दर से गैस का चाहे कितना ही भारी दबाव क्यों न हो, यान का ढांचा ज्यों का त्यों बना रहेगा। लेकिन अगर एक तरफ नलिका की व्यवस्था की गयी है तो गैस उससे होकर निकलने लगेगी और सारी चीज उस नलिका की विरोधी दिशा में जायगी। यदि अन्तरिक्ष यान में राकेट इंजन की व्यवस्था की गयी है तो इसके अन्दर पैदा की जाने वाली गैसें ज्योंही निष्कासन नलिका से बाहर आयेंगी, त्योंही राकेट ऊपर उठना शुरू कर देगा। इस प्रकार के यान में एक सबसे अधिक सुविधा होगी। अन्य सभी प्रकार के यान अपनी गति के लिए कुछ सीमा तक किसी न किसी भौतिक साधन पर निर्भर होंगे। शुष्क स्थल पर वाष्पचालित पोत नहीं चल सकते और शून्य में वायुयानों के चलने की कल्पना नहीं की जा सकती। लेकिन राकेट को किसी भी वाह्य साधन के सहयोग की अपेक्षा नहीं होती। रिक्वायल अथवा झटके का सिद्धांत तो समान रूप से सर्वत्र काम करेगा।

मैं राकेट इंजीनियरिंग के विवरणों में जाकर आपका समय नष्ट नहीं करना चाहता। हमारे लिए यहाँ इतना ही जान लेना काफी होगा कि गैसों को तैयार करने का काम एक ऐसे कक्ष में होता है जिसे 'कम्बश्चन चैम्बर' कहते हैं। मैं यह संकेत भी कर देना चाहता हूं कि सुविधा के लिए यद्यपि मैंने ईंधन शब्द का प्रयोग किया है जिसे सभी लोग आसानी से समझ सकते हैं, लेकिन इस प्रसंग में उपयुक्त शब्द 'प्रापेलेंट' है जिसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्यत: दो पदार्थ होते हैं, एक को ईंधन कहते हैं और दूसरे को 'आक्सीडेंट'। ठोस प्रोपेलेंट का प्रयोग करना भी संभव है किन्तु उनकी उपयोगिता छोटी-छोटी यात्राओं तक ही सीमित है। जहां तक द्रव प्रापेलेंट का प्रश्न है, दोनों प्रणालियों में से एक न एक सर्वथा संभव है। ईंधन और आक्सीडेंट का सम्मिश्रण करके उसे एक ही कक्ष या चैम्बर में संग्रहीत किया जा सकता है। यह उदाहरण के लिए मोनोप्रोपेलेंट अमोनिया और नाइट्रस आक्साइट का मिश्रण भी हो सकता है और अकेले नाइट्रोमिथेन जैसा एक कंपाउण्ड भी। मोनोप्रापेलेंट का प्रभाव इतना कम होता है कि हमेशा एक डाईप्रोपेलेट का प्रयोग करना पड़ता है। यह ऐसे द्रवों से मिलकर बना होता है जो अलग-अलग मार्गों से होकर एक साथ 'कम्बश्चन चैम्बर' में डाले जाते हैं। उनका सबसे अच्छा मिश्रण परस्पर टकराने वाले जेटों द्वारा अथवा दोनों उपकरणों को अनेकानेक प्रकीर्ण छिद्रों से अन्दर पहुंचाकर तैयार किया जा सकता है। कोई भी प्रतिक्रियायुक्त रासायनिक पदार्थ, जो आक्सीजन से मिलाया जायगा और जिसके द्वारा रासायनिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप गैसें पैदा होकर ऊपर को उठेंगी, ईंधन का काम करेगी। भूल मद्यसार (इथेल अल्कोहल) और द्रव आक्सीजन शक्ति के अच्छे साधन हैं। जर्मनी के वी २ एरु में युद्ध के समय इनका प्रयोग किया गया था। एक बहुत ही अच्छा सम्मिश्रण द्रव हाईड्रोजन युक्त और द्रव आक्सीजन का है जिसके दूर की उड़ानों में प्रयुक्त किये जाने की संभावना है। फ्लोरीन और हाईड्रोजन इसके लिए दूसरे उपयुक्त मिश्रण सिद्ध हो सकते हैं। द्रव फ्लोरीन और हाईड्रोजन का दूसरा मिश्रण भी इस काम के लिए चुना जा सकता है। द्रव आक्सीजन के स्थान पर द्रव फ्लोरीन का प्रयोग किया जा सकता है। किस प्रकार के प्रोपेलेंट काम में लाये जायं इसका निर्धारण कई बातों पर निर्भर करता है। राकेट इंजीनियरिंग की दृष्टि से ये सभी बातें महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए द्रव फ्लोरीन अनेक प्रकार से उपयोगी है। लेकिन ईंधन के साथ इसके जलने पर जिस तापमान का सृजन होता है वह लगभग १,००० डिग्री सेंटीग्रेट है जो द्रव आक्सीजन द्वारा उत्पन्न होने वाले तापमान से अधिक है। द्रव आक्सीजन और फ्लोरीन दोनों का प्रभाव मानव पर विषैला होता है। साथ ही इनमें से अधिकांश गैसों के खोलने का तापमान बहुत कम होता है। इसलिए जिनमें वे गैसें रखी जायंगी उन्हें अलग और सुरक्षित रखने की विशेष व्यवस्था करनी होगी। निम्नलिखित सिद्धांतों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है, क्योंकि राकेट की क्रिया में इन्हीं से सहायता ली जाती है--

१—यदि रिक्वायल एकसां है तो प्रोपेलेंट के प्रयोग के साथ ही गति में भी वृद्धि होती जायगी।

२—अंतिम गति प्रत्यक्ष रूप से शक्ति के समाप्त होने के समय की गति पर निर्भर करेगी। यह बहुत कुछ अन्दर डाले गये ईंधन के वजन पर भी निर्भर है। यदि यह वजन राकेट के कुल वजन का १.७२ गुना है तो राकेट के बराबर की गति प्राप्त की जा सकती है। आधुनिक शुष्क प्रोपेलेंट राकेट की शक्ति समाप्त होने के समय की गति (एग्जास्ट स्पीड) लगभग ५,००० मील प्रति घंटा होती है। इसलिए ऐसे राकेट के लिए जो १.७२

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टन वजन ले जा सकता है ५,००० मील प्रति घंटे की गति प्राप्त करना संभव है। इन व्यावहारिक कठिनाइयों को हमेशा ध्यान में रखना होगा। राकेट के हमारे वायुमण्डल से होकर गुजरने के साथ ही संघर्षण या 'फ्रिक्शन' के फलस्वरूप उसकी गति धीमी पड़ने लगेगी। निश्चय ही एक बार यदि यह बाह्य आकाश में पहुंच जाता है तो उक्त कठिनाई दूर हो जायेगी। किन्तु गुरुत्वाकर्षण बना रहेगा। यह राकेट को निरन्तर नीचे धरती की ओर खींचता रहेगा और यह क्रम तब तक चलेगा जब तक राकेट गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में रहेगा। इस कमी का प्रभाव लगभग १,२०० मील प्रति मिनट तक हो सकता है।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं ऐसे समुदाय में यह संभव नहीं और आवश्यक भी नहीं कि मैं राकेट के निर्माण का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करूं, फिर भी यहां उस तीन चरण वाले राकेट का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय दे देना अप्रासंगिक न होगा जिसके बारे में विश्वास किया जाता है कि वह मानव को २५,००० मील प्रति घंटे की गति देने में सहायक होगा अर्थात् उसे वह वेग प्रदान कर सकेगा जो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की परिधि से बाहर होने के लिए आवश्यक है।

इस राकेट को केवल तीन चरणों वाला मान लेने का कोई विशेष कारण नहीं दीखता। इसे 'स्टेप राकेट' भी कहा जाता है। लोगों के इस राकेट के बारे में सोचने का कारण है। जैसा कि मैंने पहले कहा आज जो प्रोपेलेंट हमारे पास हैं उनसे ५,००० मील प्रतिघंटे की गति प्राप्त करना संभव है। लेकिन ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि कोई भी रासायनिक प्रोपेलेंट हमें १०,००० मील प्रतिघंटे की गति नहीं दे सकता। साथ ही यह गति अंतरिक्ष यात्रा के लिए पर्याप्त नहीं है। राकेट यान एक निश्चित समय के बाद धरती पर आ गिरेगा। यदि यह उचित दिशा में १८,००० मील प्रति घंटे की गति से रवाना होगा तो इसे वह गति प्राप्त हो जायगी, जिसे वृत्ताकार वेग या 'सर्कुलर वेलासिटी' कहते हैं और सदा के लिए उपग्रह के रूप में पृथ्वी के चारों ओर चक्कर काटता रहेगा। ऐसी स्थिति में आवश्यक हो जाता है कि ऐसी कोई व्यवस्था सोची जाय जिसके द्वारा उपलब्ध प्रोपेलेंट के सहारे आवश्यक निष्क्रमण वेग या 'एस्केप वेलासिटी' प्राप्त की जा सके और इसीलिए 'स्टेप राकेट' की आवश्यकता प्रतीत हुई। बात यों है कि राकेट के कुल तीन भाग होते होंगे, एक के ऊपर दूसरा और फिर तीसरा। पहला चरण या पहला राकेट, जो भी नाम हम दें, राकेट को एक निश्चित ऊंचाई पर ले जायगा जहां इसकी गति, उदाहरणार्थ ५,००० मील प्रति घंटे की बन जायगी। उस समय तक पहले राकेट का सारा ईंधन जल चुका होगा और वह जमीन पर आ गिरेगा। उसके बाद दूसरा राकेट स्वतः संचालित हो उठेगा। जमीन से इतनी ऊंचाई पर होने के कारण ऊपर उठने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत अधिक सरल होगी। लगभग ५०० मील की ऊंचाई से रवाना होकर यह १८,००० मील की गति प्राप्त कर लेगा। कुछ समय बाद यह दूसरा राकेट भी गिर जायगा और तीसरा राकेट चालू हो जायगा। यह २५,००० मील प्रति घंटे की गति प्राप्त करेगा। यदि तीनों राकेट का ईंधन आरम्भ में ही एक साथ जमा कर दिया जाता तो उसे गति प्राप्त न होती। यह भी संभव है कि रूस पहले १८२ पौंड और फिर लगभग आधे टन का स्पुटनिक छोड़ने के बाद इन सभी गणनाओं को नये सिरे से करना पड़े। कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है कि इसने १८,००० मील प्रति घंटे की गति प्राप्त कर ली है। यह स्पष्ट नहीं हो सका है कि यह 'स्टेप राकेट' था या और कुछ। जो भी हो, इतना तो भली-भाँति समझ में आता ही है कि ये प्रोपेलेंट उनसे सर्वथा भिन्न थे जिनके प्रयोग और परीक्षण अन्य स्थानों में लोगों के किये हैं।

यहां पहुंच कर एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि ईंधन और आक्सीडैंट को कम्वश्चन चैम्बर में कैसे डाला जाय। इसके लिए कई तरीके काम में लाये जा सकते हैं। नवीनतम सुझाव यह है कि 'एग्जास्ट' को 'टरबाइन' में लगा दिया जाय जो दोनों 'कण्टेनरों' को शक्ति प्रदान करेगा। इन मामलों में सिद्धान्त की बातें करना तो आसान है, किन्तु प्रयोगशालाओं के परीक्षण कभी-कभी व्यावहारिक जीवन में प्रयुक्त होने पर असफल सिद्ध होते हैं। प्रमाण-स्वरूप हम अमेरिकन राकेट की विफलता को ले सकते हैं। जाहिर है कि इस राकेट के प्रोपेलेंट ने काम करना शुरू कर दिया था। क्योंकि एग्जास्ट गैसों का विस्फोट तत्काल देखा गया था। राकेट कुछ दूर तक ऊपर उठा और उसके बाद उसमें कुछ खराबी आ गयी। वह नीचे गिरने लगा और एक भीषण विस्फोट के साथ उसकी समाप्ति हुई। इस दुर्घटना की जांच हुई है। उसके परिणामों को देखने का मौका मुझे नहीं मिल सका है।

राकेट का अंतरिक्ष यान आज की अथवा भविष्य की मोटरकारों और विमानों की भांति चमचमाता हुआ नजर नहीं आयेगा। यह कुछ-कुछ ट्यूब या नली की शक्ल का होगा, जिसके ऊपर का सिरा नुकीला भी होगा। यह तीन मजबूत स्तम्भों या पैरों के सहारे जमीन पर टिका रहेगा। राकेट के जमीन से छूटने के बाद ये स्तम्भ भी कुछ दूर तक ऊपर खिच जायंगे। राकेट की दूरी संभावित डिजाइन डम्बेल के आकार की होगी, जिसके दोनों गोले एक राड या छड़ से सम्वद्ध होंगे, ठीक उसी प्रकार जैसे ऊन के दो गोले सलाई के दोनों सिरों पर लगे हों।

एक बार यान पृथ्वी अथवा अन्य किसी ऐसे ही छोटे-बड़े ग्रह के गुरुत्वाकर्षण की परिधि से बाहर हुआ नहीं कि उसके लिए किसी ओर से कोई आकर्षण नहीं रह जायगा। सुविधा के लिए धीरे-धीरे केन्द्रावर्तन द्वारा यान में गुरुत्वाकर्षण जैसी स्थिति लायी जाय। गुरुत्वाकर्षण के अभाव में विचित्र स्थिति पैदा हो जायगी। उदारहण के लिए यान ऊपर-नीचे नहीं जा सकेगा। यान की भीतरी छत और किनारों पर आदमी आसानी से चल सकेगा। अंतरिक्ष का यात्री अपनी जगह से एक झटके में उठ जायेगा। और अपने केबिन के भीतरी वायुमण्डल में तैरने लगेगा। एक बर्तन से दूसरे बर्तन में पानी या कोई अन्य द्रव उड़ेलना सम्भव न होगा। ऐसी हालत में हमारे यात्रियों को स्यात मुंह में बर्फ के टुकड़े रखकर चूसने पड़ेंगे जो सचमुच यह एक बड़ी दिलचस्प बात होगी। ऐसी सूरत पैदा करने के लिए यान के चालक तैरने के बजाय इच्छानुसार चल-फिर सकें, उन्हें चुम्बकीय जूते पहनने पड़ेंगे और यान की फर्श भी वैसी ही वस्तु की बनानी पड़ेगी। इस प्रकार की लम्बी यात्राओं में डिब्बों में बन्द भोजन पर ही निर्भर रहना होगा, प्रारम्भिक प्रयासों की सफलता के बाद जब यान काफी बड़ा बनने लगे, जैसी कि आशा की जाती है तब शायद कुछ तरह के ताजे फल और तरकारियां भी हाइड्रोपोनिक प्रणाली द्वारा या बिना मिट्टी की खेती से उगायी जा सकें। साथ ही, इससे एक दूसरी समस्या भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतः हल हो जायगी। यह पौधे यात्रियों के सांस लेने से उत्पन्न कारबोनिक एसिड गैस को ग्रहण कर लेंगे और जो आक्सीजन गैस छोड़ेंगे उसे यान के यात्री सांस द्वारा प्राप्त कर लेंगे। लेकिन विकास की इस स्थिति तक पहुंचने से पूर्व प्रत्येक यान में बहुत से आक्सीजन सिलिंडर रखने होंगे, जो दोनों ओर की यात्रा और अप्रत्याशित विलम्ब के लिए पर्याप्त हों।

अब यहां कृत्रिम उपग्रहों के सम्बन्ध में कुछ कह देना असंगत न होगा। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं यदि किसी पदार्थ को अंतरिक्ष में इस प्रकार ठीक-ठाक छोड़ा जा सके कि वह १८,००० मील प्रति घंटे की रफ्तार प्राप्त कर ले तो वह पृथ्वी का एक उपग्रह बन जायगा। इसके परिक्रमण की अवधि अनेक बातों पर निर्भर होगी, जिनमें से एक उसकी मूल यात्रा भी है। निश्चय ही किसी दिन वह भी धरती पर आ गिरेगी उसी प्रकार जैसे चन्द्रमा भी कभी धरती पर गिर सकता है। यदि इसमें टेलीविजन यंत्रों की व्यवस्था भी है और वह राडार द्वारा पृथ्वी से संबद्ध है तो पृथ्वी की वेधशालाओं में अंतरिक्ष की स्थितियों को रेकार्ड करना भी संभव होगा। यदि शून्य संतरण विज्ञान या एंस्ट्रोगेशन में की गयी प्रगति के फलस्वरूप कृत्रिम उपग्रह में विज्ञानवेत्ता भी जाने लगेंगे तो वे निश्चय ही पृथ्वी पर सामान्य भाषा में या कोड में संदेश भेजने में समर्थ होंगे। इस प्रकार कृत्रिम उपग्रह एक अत्यन्त उपयोगी वेधशाला सिद्ध हो सकता है। कुछ लोगों का मत है कि ऐसे उपग्रहों का उपयोग कतिपय रोगों के उपचार के लिए सेनिटोरियम के रूप में भी किया जा सकता है। उपग्रह से एक और काम भी निकाला जा सकता है। अगर पृथ्वी और सौरमंडल के कुछ ग्रहों के बीच नियमित अतंरिक्ष यात्रा की व्यवस्था की जा सकी तो कृत्रिम उपग्रह यानों के लिए ईंधन लेने और मरम्मत आदि के लिए उपयुक्त स्थान होगा। चन्द्रमा, मंगल या शुक्र ग्रह से आने वाले यानों को कृत्रिम उपग्रह की स्थिति के संबंध में इस आशय की ठीक-ठीक गणना करनी होगी कि ऐसे कामों के लिए अपनी कक्षा में कब वह उपयुक्त स्थान पर होगा। दूरवर्ती ग्रहों में बसने वालों के पास या पृथ्वी पर उनके संबंधियों तक चिट्ठी-पत्री या पार्सल आदि भी आसानी से भेजे जा सकेंगे। मैं यह अनुभव करता हूं कि इन सारे विवरणों के साथ मैं वैज्ञानिक गल्प के खतरनाक कगार पर पहुंचा जा रहा हूं किन्तु यह दृष्टिगत रखते हुए कि वर्तमान टेक्नीक में निरन्तर तीव्र प्रगति हो रही है, कल्पना करना सर्वथा उचित ही है।

निकट भविष्य की सम्भावनाओं को देखते हुए यदि अंतरिक्ष में यान किसी कारणवश संकट में पड़ जाय तो उसके बचाने के लिए किसी उपाय के सम्बन्ध में सोचना कठिन है। उसके अन्दर के सभी लोग चन्द मिनटों में ही मर जायंगे और यान अतंरिक्ष में एक प्रस्तर खंड की भांति लटकता रह जायगा। यदि वह संयोगवश किसी नक्षत्र या किसी अन्य आकाशी पिण्ड के गुरुत्वाकर्षण परिधि में नहीं आ जाता तो लाखों वर्ष तक इसी दशा में बना रह सकता है। अंतरिक्ष में इसी अवस्था में पड़े मानव शरीर की भी यही दशा होगी। उसमें कोई रासायनिक प्रतिक्रिया नहीं होगी, न वह नष्ट होगा। वायुमंडल का अभाव और साथ ही अंतरिक्ष की कड़ाके की सर्दी उसे अक्षुण्ण बनाये रखने वाली होगी, जिसकी समता शव को सुरक्षित रखने वाली कला भी कभी नहीं कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकेगी। यदि जीवात्मा जैसी कोई वस्तु है, तो वह भले ही शरीर छोड़ दे, पर शरीर तो प्रत्येक दृष्टि से अंतरिक्ष में अमर रहेगा।

अंतरिक्ष यान के भीतर वायु को कृत्रिमं विधि से सामान्य दबाव पर रखा जायगा और वातचीत करना भी संभव रहेगा। लेकिन अगर अंतरिक्ष यान को किसी ऐसे ग्रह पर उतरना है जहां किसी प्रकार का वायुमंडल नहीं है अथवा है भी तो हमारे वायुमंडल से सर्वथा भिन्न है, तो ऐसी हालत में साधारण् वस्त्रों को पहनकर यान से बाहर निकलना घातक सिद्ध होगा। इसलिए मनुष्य को अंतरिक्ष की वेश भूषा में रहना होगा। इसके लिए अनेक डिजाइनें तैयार की गयी हैं और इस क्षेत्र में तेजी से प्रयोग और परीक्षण किये जा रहे हैं। उपयोगिता को दृष्टि में रखकर डिजाइनें बनायी जा रही हैं और यही उनका एकमात्र उद्देश्य है। यदि इस दिशा में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं होता तो इस प्रकार की वेश-भूषा में आदमी भूत जैसा ही दिखायी देगा। यह पोशाक या स्पेस सूट की बनावट मानव शरीर के अनुकूल होगी तथा हाथ-पैर हिलाने-डुलाने के लिए पूरी व्यवस्था करनी होगी। इसमें आक्सीजन के बड़े-बड़े सिलिंडर रखने के साथ ही कारबोनिक एसिड गैस जैसे पदार्थों के लिए भी व्यवस्था करनी पड़ेगी। स्पेस सूट पहने हुए आदमी को टेली-कम्युनिकेशन यंत्र भी रखना होगा, जिसके बोलने वाले सिरे पर शब्दों को विद्युत लहरियों में परिणत करने और फिर उन्हें सुने जाने वाले सिरे पर ध्वनि में परिवर्तित करने की व्यवस्था रहेगी। यह भी अनुमान है कि आरम्भ में स्त्रियों और पुरुषों दोनों को ही एक ही तरह की पोशाक धारण करनी होगी। यह हो सकता है कि बाद में जब अंतरिक्ष यात्रा नियमित हो जाय तब स्त्रियों की पोशाक में कोई परिवर्तन करना संभव हो और उनकी डिजाइन में कुछ कला का भी समावेश कर लिया जाय। यदि यात्रा के बीच में कहीं यान के बाहरी भाग की मरम्मत जरूरी हुई तो भी स्पेस-सूट का पहनना अनिवार्य हो जायगा। मनुष्य के लिए अंतरिक्ष में स्वच्छंदतापूर्वक चलना-फिरना भी आसान चीज न होगा, क्योंकि चलने-फिरने की क्रिया के निमित्त अपेक्षित शारीरिक शक्ति तो जरूरी है ही साथ ही पर्यावरण के माध्यम से, चाहे वह स्थल हो या जल, घर्षण और आधार भी मिलना चाहिए। अंतरिक्ष में न कोई घर्षण होगा और न आधार। इसलिए जिस व्यक्ति को यान से बाहर निकल कर निरीक्षण या मरम्मत के लिए जाना होगा उसे किसी न किसी प्रकार की रस्सी के सहारे यान से संबद्ध रहना होगा जिससे काम समाप्त होने पर वह अंदर खींच कर लाया जा सके। स्पेस-सूट तैयार करने में जो सामग्री लगायी जायगी उसके चुनाव पर विशेष ध्यान देना होगा। इसकी सामग्री में ऐसी क्षमता होनी चाहिए कि सूट पहनने वाले व्यक्ति को जिस सीमा तक के तापमान में रहना हो उस सीमा तक के तापमान को वह मजे में सहन कर सके। ऐसी स्थिति में यात्री के शरीर से अनिवार्य रूप से जो पसीना छूटेगा उससे स्पेस सूट न चिपके और न चिपचिपा होने पावे, ऐसी व्यवस्था करनी होगी। किसी भी स्थिति में उससे दुर्गन्ध नहीं निकलनी चाहिये। यह प्लास्टिक हो और साथ ही इतना मजबूत हो कि सतह पर उठे हुए प्रस्तर-खंडों और झाड़-झंखाड़ के नुकीले भागों के मुकाबले ठहर सके। यह सदैव स्मरण रखना होगा कि सूट की सिलाई में अगर कहीं जरा सा भी छेद रह गया तो सारा आक्सीजन निकल जायगा और यात्री की तत्काल मृत्यु हो जायगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां पर प्रसंगवश मैं ऐसी एक और बात का जिक्र कर देना चाहता हूं जो यदि अंतरिक्ष यात्रा के द्वारा सौरमंडल या उसके बाहर के ग्रहों के उपनिवेशन का प्रयत्न किया गया तो अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। संभव है कि दूसरे ग्रहों में बुद्धिशील प्राणी हों। दूसरे ग्रहों में बुद्धिशील जीवन किस प्रकार का होगा, यह विशुद्ध अनुमान का विषय है। विकास क्रम, जैसा कि हम जानते हैं, क्रमबद्ध नहीं रहा और ऐसा कोई कारण नहीं है कि परिवर्तित परिस्थितियों में सतर्कता का सुसुप्त बीज मानवेतर प्राणियों की बुद्धि में परिणत क्यों न हो जाय? न ग्रहों में हो सकता है हमें ऐसे कीड़े-मकोड़े, सर्पादि और पक्षी मिलें जिनमें ऐसी सभ्यता का विकास हुआ हो जो हमारी सभ्यता से कहीं अधिक उच्चतर हो। सम्भव है कि किसी अन्य जगत के सबुध जीवन में मानव से इतर अन्य स्तनपायी जीवों का प्राधान्य हो। इस क्षेत्र में कल्पना की उड़ान की अत्यधिक गुंजाइश है। वैज्ञानिक गल्पकारों ने इसका भरपूर प्रयोग किया है। मानवेतर सबुध प्राणियों के व्यवहार से धरती के निवासियों को नित्य नये अनुभव होंगे। यह निश्चित जानना चाहिए कि अंतरिक्ष में मानव से मिलती-जुलती ऐसी जातियां भी बिखरी हुई हैं जिनकी विचार पद्धति और कार्यकलाप प्रायः मानव जैसे ही है। यहां इस विषय पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। मान लीजिए, मनुष्य ऐसे किसी ग्रह को उपनिवेश बनाना चाहता है जिसमें या तो वायुमण्डल है नहीं और अगर है भी तो उसके लिए सर्वथा अनुपयुक्त, तो ऐसी स्थिति में पहले से ही उसे अपने लिए किसी ऐसे आवास की व्यवस्था कर लेनी होगी जिसमें मनुष्य सांस ले सके। यह व्यवस्था इसलिए आवश्यक है कि स्पेस-सूट में शारीरिक क्रियाएं, जैसे खाना-पीना संभव न होंगी। यह कल्पना की जाती है कि इस प्रकार के आवास वास्तव में झोंपड़ी जैसे होंगे और इनका निर्माण प्लास्टिक जैसे पदार्थ से होगा। यह भी कल्पना की जाती है कि उपनिवेशवासियों की संख्या में वृद्धि के साथ इन आवासों का भी विकास और विस्तार होता जायगा। वास्तव में ये एक दूसरे से जुड़े हुए होंगे जिनमें भोजनालय, मनोरंजन कक्ष, शयन कक्ष, शौचालय आदि की व्यवस्था होगी। लोगों ने इस प्रकार बनाये जाने वाले नगर तक का नक्शा बना डाला है। इस समय चन्द्र लोक में प्रस्तावित ल्यूना नामक नगर सर्वाधिक लोकप्रिय होता जा रहा है। आरम्भ में पृथ्वी से ही आक्सीजन और नाइट्रोजन बड़े-बड़े सिलिंडरों में भर कर यहां पहुंचाया जायगा किन्तु यह आशा की जाती है कि बाद में ग्रहों में पायी जाने वाली चट्टानों से ही ये गैसें तैयार कर ली जायंगी। अनेक साहसी व्यक्तियों का कहना है कि कालान्तर में मंगल जैसे ग्रहों का समूचा वायुमंडल ही बदल देना संभव है। ऐसे व्यक्तियों में एक सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद ओ०सी० मूर हैं, जो ब्रिटेन के अंतर्ग्रहीयसंघ के सदस्य भी हैं। उदाहरणार्थ मूर का मत है कि मंगल ग्रह के हल्के वायुमंडल में अनेक प्रकार के पौधे उगाये जा सकते हैं जो मिट्टी से आक्सीजन खींच कर वायुमंडल में बिखेर देंगे। फलस्वरूप यह वायुमंडल कई शताब्दियों में आक्सीजन से इतना परिपूर्ण हो जायगा कि उसमें पार्थिव जीवन संभव होगा।

अब मैं अंतरिक्ष यात्रा से शरीर पर पड़ने वाले संभावित प्रभावों की चर्चा करूंगा। सैद्धान्तिक विचार-विमर्श के अतिरिक्त खरगोश और बन्दर जैसे जानवरों पर कुछ प्रयोग भी किये गये हैं लेकिन जिन यंत्रों में ये अंतरिक्ष में भेजे गये थे वे इतनी ऊंचाई तक नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गये कि पर्याप्त तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती। वह कुत्ता जो अभी हाल में रूस के दूसरे स्पुतनिक में भेजा गया था काफ़ी समय तक यात्रा करता रहा और अब तक जितनी ऊंचाई तक जानवर भेजे गये हैं, उससे कहीं अधिक ऊंचाई पर वह गया। इस यात्रा में उसकी मृत्यु हो गयी, लेकिन अगर रूस में लगाये गये यंत्रों से उसकी प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया गया है तो निश्चय ही इस संबंध में बड़ी उपयोगी सामग्री संग्रह कर ली गयी होगी। अंतरिक्ष के यात्री को निश्चित रूप से सबसे बड़ी जिस कठिनाई का सामना करना होगा—वह है विभिन्न गुरुत्वाकर्षणों से उत्पन्न कठिनाई। कुछ वैज्ञानिकों ने स्वयं अपने ऊपर परीक्षण करके यह पता लगाने की चेष्टा की है कि कई गुरुत्वाकर्षणों का मानव शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है। उन लोगों ने अपने को एक ऐसे पहिये से बांधा जिसे बड़ी ही तीव्र गति से चलाया जा रहा था। पहिये के चक्कर काटने से जो केन्द्रपरांमुख शक्ति पैदा होती है उसका प्रभाव गुरुत्वाकर्षण जैसा ही होता है। ऐसी हालत में शरीर के रक्तसंचार और स्नायविक प्रणाली पर जो भारी दबाव पड़ेगा उसकी सहज ही में कल्पना की जा सकती है। मुखाकृति देखते ही देखते विकृत हो जाती है, चमड़ा तन जाता है, आंखे जैसे बाहर निकली पड़ती हैं और हृदय की गति किसी भी क्षण बन्द हो सकती है, जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य की तत्काल मृत्यु हो सकती है। इसका यही एक सम्भावित परिणाम नहीं हैं। इस परिस्थिति में स्नायुविक एवं मानसिक अनेक प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है। आज जो मेधावी है, कल वह महामूर्ख बन सकता है। इन वैज्ञानिकों के साथ इनके अनेक सहायक भी होते हैं पर वे कठिन प्रयोग अपने पर ही करते हैं। लोगों ने उन विमान चालकों के अनुभव पढ़े ही होंगे जिन्होंने ध्वनि का अवरोध पार किया था अर्थात् अपना विमान ७५० मील प्रति घंटा की रफतार से उड़ाया था। उनके यह अनुभव अंतरिक्ष यात्रियों को कठिनाइयों और यातनाओं की तुलना में कुछ भी नहीं है। निश्चय ही इस क्षेत्र में साहसी पथ-दर्शक हर प्रकार के सम्मान के अधिकारी हैं। अंतरिक्ष यान को ग्रह के धरातल से निकलकर बाहर शून्य में आने के लिए बहुत अधिक समय की अपेक्षा नहीं होगी। लेकिन यह संक्षिप्त अवधि अत्यधिक शारीरिक पीड़ाओं और यातनाओं की अवधि होगी। यह देखना है कि पूर्णतः विभिन्न दशाओं में विकसित मानव किस सीमा तक अंतरिक्ष यात्राओं की इन पीड़ाओं को सहन कर सकता है। गुरुत्वाकर्षण के सहसा अंत से उत्पन्न भार विहीनता की स्थिति से एक और नया अनुभव होगा जिसका मानव शरीर पर कल्पनातीत प्रभाव पड़ सकता है। इस बात का पता लगाना है कि विशुद्ध लौरविकीरण (रेडिएशन) तथा विश्वकिरण के विस्फोट का ऐसी स्थिति में क्या प्रभाव पड़ता है। स्पष्ट है कि इनसे बचाव की समुचित व्यवस्था करने के लिए प्रत्येक संभव प्रयत्न करने पड़ेंगे। लेकिन कोई नहीं कह सकता कि कहां तक इन प्रयत्नों में सफलता मिल सकेगी। 'फिशन' और 'फ्यूजन' बमों के विस्फोट से होने वाले विकीरण का विवरण हम जानते हैं, आशंका यह है कि इस विकिरण से न सिर्फ फुंसी फोड़े, नासूर जैसे वाह्य प्रभाव शरीर पर पड़ेंगे बल्कि वर्तमान प्रजनन और भावी पीढ़ियों पर भी इसका भंयकर प्रभाव पड़ेगा। फलस्वरूप ऐसे बच्चे पैदा होंगे जिनकी शक्ल राक्षसों से मिलती जुलती होगी। वे देखने में तो मानव जैसे ही होंगे किन्तु किसी के सींग या पूंछ होगी तो किसी के दो से अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हाथ-पांव होंगे या कोई किसी अंग से बिल्कुल ही वंचित अर्थात् विकलांग भी हो सकता है। अंतरिक्ष यात्रा से भी इस तरह के प्रभावों की आशंका की जा सकती है।

यह भी हो सकता है कि अंतरिक्ष में काफी समय तक रहने के फलस्वरूप आदमी की प्रजनन शक्ति नष्ट हो जाय। जो लोग वहां जाकर बस्तियां बसाने की सोच रहे हैं उनके के लिए यह एक बहुत बड़ी समस्या होगी। ऐसे प्रभावों से बचने के लिए अनेकानेक उपायों पर विचार किया गया है, जिनमें एक यह भी है कि अंतरिक्ष के भावी यात्रियों को रासायनिक ढंग से बन्द कक्ष में उस समय तक के लिए सुला दिया जाय या अचेतन अवस्था में पहुंचा दिया जाय जब तक कि संकट की घड़ियां समाप्त न हो जायं। और तब वे आप से आप जग जायं। साथ ही हमें यह समझ लेना चाहिए कि उपनिवेशवासियों और उनकी सन्तानों को पृथ्वी का वायुमंडल असह्य हो जायेगा और उनका यहां सांस ले सकना भी कठिन हो जायेगा। इस प्रकार ये उपनिवेशवासी पृथ्वी से पिछड़ जायंगे।

एक संभावना यह भी है कि अंतरिक्ष के यात्री पर इन सभी यातनाओं और कठिनाइयों का एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव यह हो सकता है कि वह विक्षिप्त या पागल हो जाय। किन्तु मानव मस्तिष्क को वहां और किन-किन प्रतिक्रियाओं का अनुभव करना पड़ेगा इसकी कल्पना सहज में ही की जा सकती है। पृथ्वी पर भी जब मनुष्य को अधिक समय तक घर से दूर रहना पड़ता है तो स्वभावतः उसे घर की सुधि आने लगती है और वह वापस लौटने के लिए व्याकुल होने लगता है। उसकी इस मनोदशा को गृहातुरता की संज्ञा प्रदान की गयी है। अंतरिक्ष की उस यात्रा में जहां से न केवल वापस लौटने की संभावना ही संदिग्ध है बल्कि जहां नयी शक्लों और नये दृश्यों के अभाव में एक अजीब उदासी भी रहेगी, मानव की मनःस्थिति की कल्पना की जा सकती है। उसकी यह उदासी और अकेलेपन की अनुभूति उसके मानस पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगी और वह हमेशा खोया-खोया सा रहेगा, नित्यप्रति का परिचित नीलाकाश उसे दिखायी नहीं पड़ेगा और कितने ही प्रसिद्ध तथा चिरपरिचित नक्षत्र भी इस प्रकार एक दूसरे से मिले-जुले दिखायी देने लगेंगे कि उन्हें पहचानना तक कठिन हो जायगा। आदमी अपने को शेष सृष्टि से बिल्कुल अलग, कटा हुआ पायेगा। अंतरिक्ष की असीमता, जिसका हम अतिशयोक्ति के रूप में प्रयोग करते हैं वास्तविकता बन जायगी। और कोरा अनुमान शक्तिशाली भावनाओं का अनुभव बन जायगा। दूर-दूर तक विस्तृत आकाश, पर्वत शिखर या विशाल सागर को देखकर मानव हृदय में एक प्रकार के विचित्र भय और आदर की भावना का उद्रेक होता है। किन्तु अंतरिक्ष में, जहां शून्य के सिवा और कुछ दृष्टिगोचर ही न होगा, मनुष्य के मन पर क्या प्रतिक्रिया होगी कहा नहीं जा सकता। उन अनेक मानसिक अवस्थाओं में से वह किसी एक अवस्था को अपना ले सकता है, जिसका परिचय हमें मनोविज्ञान के अध्ययन से मिलता है।

मानव की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया, जिसका जिक्र मैंने ऊपर की पंक्तियों में किया है, स्वभावतः यात्रा की लंबाई पर निर्भर होगी। जैसा कि सभी जानते हैं कि खगोल की दूरी की माप 'प्रकाश वर्ष' में की जाती है। प्रकाश वर्ष वह दूरी है जिसको प्रकाश एक वर्ष की अवधि में तय करता है। मोटे तौर पर यह दूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५८,६५,६९,६०,००,००० मील मानी गयी है। प्रकाश को सूर्य से पृथ्वी तक आने में ८ मिनट लगता है। अंतरिक्ष यान अगर २५,००० मील प्रति घंटे की रफ्तार से चले, तो उसे चन्द्रमा तक पहुंचने में कुल नौ घंटे लग जायंगे, सौरमंडल के दूरातिदूर स्थान तक की यात्रा करने में केवल कुछ ही दिन लगेंगे और मनुष्य इस यात्रा को बिना किसी भयानक संकट का सामना किये ही पूरा कर सकेगा। लेकिन अगर मनुष्य सौरमंडल से भी बाहर की यात्रा करने का प्रयत्न करेगा तो स्थिति निश्चय ही भिन्न होगी। सबसे नजदीक के नक्षत्र अल्फा सेंटुअरी की दूरी ४।। प्रकाश वर्ष है। यदि अंतरिक्ष यान मार्ग में ईंधन आदि लेने के लिए बिना रुके ही पच्चीस हजार मील प्रति घंटे की रफ्तार से अविराम चलता रहे तो उक्त नक्षत्र से संबद्ध किसी ग्रह तक, यदि ऐसा कोई ग्रह हो, पहुंचने में उसे ३५ वर्ष लग जायंगे। वापसी की यात्रा में ३५ वर्ष और लगेंगे जिसका अर्थ यह होगा कि जो आदमी इस यात्रा पर २० वर्ष की अवस्था में निकलेगा वह ९० वर्ष का बूढ़ा बनकर वापस आयेगा। अंतरिक्ष यात्री के लिए यह कोई उत्साहवर्धक बात न होगी। आइन्सटीन के सापेक्षवाद के सिद्धान्त के अनुसार अंतरिक्ष में काल प्रवाह नहीं होगा जो पृथ्वी पर है और वापस आने पर हमारा यात्री हो सकता है अपने को अपने से उन समवयस्कों से अधिक युवक या कम उम्र का अनुभव करे जिन्हें पृथ्वी पर छोड़ कर वह अंतरिक्ष यात्रा के लिए गया था। यह भी कुछ संतोषजनक स्थिति न होगी। इस संबंध में संप्रति जो ज्ञान उपलब्ध है उसके अनुसार इस पहेली की दोनों संभावनाओं से बच रहना कठिन ही प्रतीत होता है। कम से कम आंशिक रूप से इन कठिनाइयों से बचने का एक यही उपाय रह जाता है कि यान की रफ्तार बढ़ायी जाय। जहां हमें अत्यधिक दूरियों को तय करना है वहां अगर यह रफ्तार चालिस या पचास हजार मील प्रति घंटा भी कर ली जाय तो उससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता। जैसा कि हमें मालूम है, प्रकाश की गति सबसे अधिक है। वर्तमान वैज्ञानिक तथा यांत्रिक प्रगति को देखते हुए कुछ कहा नहीं जा सकता कि प्रकाश की गति प्राप्त करना कैसे संभव हो सकेगा। दूसरी बात यह है कि मनुष्य की महत्वाकांक्षा इन दूरियों अर्थात् अल्फा सेंटुअरी या लुब्धक की यात्रा तक ही सीमित नहीं रहेगी। स्वभावतः वह और दूर तक के नक्षत्रों की यात्रा करने की इच्छा करेगा। इस स्थल पर पहुंच कर विज्ञान लाचार हो जाता है किन्तु कल्पना नहीं, जहां विज्ञान निराश होकर साथ छोड़ देता है वहां से कल्पना हमारी कहानी को आगे बढ़ाती है। ऐसे लोग भी हैं जिनका विचार है कि प्रकाश की गति संबंधी सूत्र में कहीं कोई त्रुटि है। यदि ऐसी किसी त्रुटि का पता लग जाय तो आगे चल कर हम प्रकाश से भी अधिक वेग से यात्रा करने की आशा कर सकते हैं। किन्तु ऐसी स्थिति में भी अंतरिक्ष इतना अनंत है और दूरी इतनी अधिक की सृष्टि के एक छोर से दूसरे तक पहुंचने में फिर भी काफी समय लग जायेगा। लेकिन वैज्ञानिक गल्पकार इसके लिए बैठा रह भी नहीं सकता। वह तो नक्षत्रों के साम्राज्यों की कल्पना करता है और इस अंतानक्षत्रीय साम्राज्यों में संधि तथा युद्ध की उद्भावना करता है। इसलिए उसने अन्य उपायों के बारे में सोचना शुरू कर दिया है। इसके लिए वह मिकेवास्की के अंतरिक्ष समय' संबंधी सिद्धान्त का सहारा लेता है। वह अंतरिक्ष के एक विशेष स्थान से अपना यान छोड़ेगा, फिर उसे समय की रेखा पर लायेगा, भविष्य में उसे चलने देगा और तब फिर एकाएक अंतरिक्ष में ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाकर छोड़ देगा। इस प्रकार वह अंतरिक्ष में की जाने वाली यात्रा की दूरी कम कर देगा। वह ऐसे अन्वेषण पर भी अपना ध्यान केन्द्रित कर रहा है, जिन्हें अंतरिक्षेतर (हाइपर स्पेस) अभियान की संज्ञा दी जाती है। अंतरिक्ष अनिर्वायतः तीन आयामों वाला नहीं है। युकलिड की रेखागणित प्रणाली से इतरप्रणाली का भी विकास किया जा चुका है, जिसमें तीसरे आयाम के आगे भी विचार किया गया है। यदि कोई व्यक्ति तीन आयामों में बंधे हुए विश्व को पार करके चौथे या उससे अगले आयाम पर पहुंच जाय और इच्छानुसार इस जगत के किसी उपयुक्त बिन्दु पर पुनः प्रकट हो जाय तो समस्या स्वतः हल हो जायगी। यह सब कुछ गणित का विषय मालूम होता है, वह गणित नहीं जिसे हम जानते हैं, वरन् वह जो किसी दिन मानवीय ज्ञान का एक अभिन्न अंग होगा। यह कहने से कोई लाभ नहीं कि इस प्रकार की बातें कल्पना की उड़ान मात्र हैं। पिछली शताब्दी के प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों के लिए भी अंतरिक्ष की उड़ान की कल्पना केवल कल्पना ही थी। राइटब्रदर्स ने जब अपना पहला वायुयान बनाकर तैयार किया उस समय क्राम्पटन जैसे ज्योतिर्विद ने यह सिद्ध करके बताया था कि हवाई यात्रा सर्वथा असंभव है। विज्ञान कदाचित् एक दिन यह भी सिद्ध कर दे कि वैज्ञानिक गल्पकार ठीक ही कहता है। जो भी हो, मानव की जिज्ञासा को किसी और तरीके से संतोष नहीं मिल सकता।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में और भी कितने ही रोचक और महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनका उत्तर देना अभी तक संभव नहीं हो सका है; यथा हमारी संस्कृति का--संस्कृति शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग करते हुए , बाह्य आवरण कितना झीना या घना है, शिष्टता तथा नैतिक आदर्श कितना अधिक दबाव सहन कर सकता है. आदि प्रश्न। इस पृथ्वी पर ही हम देखते हैं कि मनुष्य परम स्वार्थ के वशीभूत होकर सद्भावनाओं को त्याग देता है। अंतरिक्ष यान में, जहां सहयात्रियों के सिवा मनुष्य समाज का दर्शन नहीं, जहां कोई नई बात नहीं, नये दृश्य नहीं, और जहां कामवासना की तृप्ति नहीं, आदमी अधिक दिनों तक वन्द रहने से सनकी और निर्दयी हो जाता है। मान लीजिए एक यान में स्त्री-पुरुष दोनों यात्री हैं और यात्रा के बीच में ही आक्सीजन की कमी पड़ने लगती है और दो ही विकल्प रह जाते हैं या तो आक्सीजन के अभाव में एक दिन सभी लोग मर जायं या कुछ लोग अपना बलिदान कर दें, जिससे कुछ बचे हुए लोग अथवा एक ही व्यक्ति यात्रा के अन्त तक जीवित रह कर पूरी रिपोर्ट दे सके, क्या ऐसी स्थिति में लोग यान की स्त्रियों और बच्चों के लिए कुछ त्याग और बलिदान कर सकते हैं? क्या कोई व्यक्ति दूसरों की प्राण रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा सकता है? जैसा कि मैं कह चुका हूं, इन सवालों का जवाब देना कठिन है। वैज्ञानिक गल्पकारों ने ऐसे प्रश्न उठाये हैं और कुछ पुस्तकों में जिन्हें मैंने पढ़ा है, लेखकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मनुष्य को स्वार्थी और दुष्ट बनने में देर नहीं लगती। जहां अपने अस्तित्व को खतरा पैदा हो जाता है वहां मनुष्य बुरे से बुरे काम यहां तक कि हत्या भी कर सकता है। यह बात भी सोची जा सकती है कि ऐसी परिस्थितियों में मानव की सभी सद्वृत्तियां जागरित हो जायंगी और वह आत्म-त्याग के उच्चतम शिखर तक पहुंच जायगा।

अपना कथन समाप्त करने से पूर्व मैं बीच-बीच में वैज्ञानिक गल्प का प्रसंग छेड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने के लिए आप से क्षमा चाहूंगा। प्रतिवर्ष इस विषय पर अगणित पुस्तकें लिखी जा रही हैं। मैं यह स्वीकार करता हूं कि इन ग्रंथों को मैं बड़े चाव से पढ़ता रहा हूं। यह जानकर कि मस्तिष्क जब थका हुआ रहता है और कोई गम्भीर काम करने की इच्छा नहीं होती तो ऐसी रचनाओं को पढ़ने से गुदगुदी होती है। किन्तु साथ ही मैं यह भी कहूंगा कि वैज्ञानिक गल्प की कोटि में कुछ कहानियां ऐसी भी हैं जो अपने ढंग की एक ही हैं। इनके लेखकपहले वैज्ञानिक हैं फिर गल्पकार। उनमें से कितने ही प्रसिद्ध शिक्षा संस्थाओं में विज्ञान के अध्यापक और प्रोफेसर हैं। कुछ ऐसे हैं जो उच्चकोटि के विद्वान माने जाते हैं और जिन्होंने अनेक महत्वपूर्ण अनुसंधान कार्य भी किये हैं, वे अपनी कल्पना को बेलगाम नहीं होने देते। जो कुछ वे कहते हैं वह विज्ञान की उस विशिष्ट शाखा में की जाने वाली प्रगति की प्रशंसा मात्र है और वे भविष्य में होने वाली संभावित प्रगति से आगे नहीं जाते। आखिर यह तो मानना ही पड़ेगा कि विज्ञान के इतिहास में कल्पना और अंतर्ज्ञान का महत्वपूर्ण योग रहा है और यह भी कहा जा सकता है कि आज जो कल्पना है कल वही विज्ञान बन सकता है। जो भी हो इस प्रकार की रचनाएं मानव मस्तिष्क के कार्य व्यापार की सूचिकाएं हैं और इनसे भविष्य में होने वाले अनुसंधानों का भी संकेत मिलता है।

सज्जनो! अब मैं समाप्त करता हूं। मैं यह मानता हूं कि इस विषय पर आपकी ज्ञान वृद्धि करना मेरे लिए संभव नहीं हो सका है। मैं तो केवल यही आशा करता था कि एक सामान्यजन की हैसियत से इस दिलचस्प सवाल के सभी पहलुओं का एक नक्शा आपके सामने रख सकूं। मैंने बहुत सी चीजों को जरूरत से ज्यादा आसान बनाने की कोशिश की है। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि किसी विशेषज्ञ की भांति इस विषय पर प्रकाश डालना मेरी योग्यता से बाहर की चीज थी। एक साधारणजन, विषय के किसी पहलू की विस्तृत जानकारी प्राप्त किये बिना ही उसमें सामान्य दिलचस्पी लेता है। मेरा विश्वास है कि अपनी सभी कमियों के होते हुए भी मेरे इस निबंध से एक लाभ अवश्य होगा। मेरे ज्ञान की कमी से आप यह ठीक-ठीक समझ सकेंगे कि इस दिलचस्प विषय पर औसतन शिक्षित भारतीय का ज्ञान कितना अधूरा है। फलस्वरूप मैं तो यह आशा करूंगा कि आप लोगों की कोटि के वैज्ञानिक तत्संबंधी ज्ञान को सीधी-सादी भाषा में प्रचार करने में कुछ और अधिक समय लगायेंगे, जिसे साधारण पढ़ा लिखा आदमी भी आसानी से समझ सके। मेरा मत है कि आज दिन अंतरिक्ष के प्रति लोगों में रुचि उत्पन्न करने की आवश्यकता है। मेरी समझ में धर्म और दर्शन के अतिरिक्त कोई विषय ऐसा नहीं है जो मनुष्य की बुद्धि और संवेदनशीलता का विस्तार करता हो और उसे अपनी बौद्धिक तथा भावात्मक दुर्बलताओं से ऊपर उठने की प्रेरणा प्रदान करता हो। संभवत: कोई अन्य विषय ऐसा नहीं है, जिसमें मानव को इसके अपनेपन से ऊपर उठाने तथा उससे उस शाश्वत सत्य का समन्वय कराने की क्षमता हो, जो सर्वव्यापी है और जिससे सम्पूर्ण दृश्य जगत् प्रकाशित है।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय समाजवाद आर्थिक संयोजन और विकेन्द्रीकरण

(पंत व्याख्यानमाला के अंतर्गत
दिया गया भाषण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय समाजवाद का दार्शनिक आधार

यह मेरे लिए बड़े गौरव की बात है कि हमारे आदरणीय और स्नेहास्पद मित्र और नेता, पंडित गोविन्द बल्लभ पंत के नाम से जिस व्याख्यान-माला का आयोजन हुआ है, उसमें पहला फूल पिरोने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। जिस विषय पर मैं आपके सामने कुछ कहना चाहता हूँ, वह निश्चय ही, बड़े महत्व का है और जहां तक विषय की बात है इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह सर्वथा उचित था कि इस विषय को पहला स्थान मिले। मैं उसका ठीक-ठीक प्रतिपादन कर सकूंगा, इसमें आपको संदेह होगा और मुझको भी संदेह है। दूसरी दिक्कत यह है कि जहां तक दर्शन का सम्बन्ध है बहुत कम लोगों को इसमें रस मिलता है, लोग इसको बड़ा सूखा विषय समझते हैं। लेकिन हमें इतना याद रखना चाहिए कि कोई मनुष्य जो समाजवाद के दार्शनिक आधारों पर ध्यान नहीं देता वह अपने को समाजवादी कहने का अधिकारी नहीं है।

समाजवाद के कई भेद हैं, कई प्रकार का समाजवाद होता है। अंग्रेजी शब्दों में, समाजवाद के कई 'स्कूल' हैं। लेकिन जितने भी स्कूल हैं समाजवाद के, जितने भी प्रकार हैं समाजवाद के, सब की तह में अपनी-अपनी अलग दार्शनिक दृष्टि है। बिना उस दार्शनिक दृष्टि को समझे समाजवाद किसी तरह से टिक नहीं सकता। लेकिन यह अफसोस की बात है कि हममें से बहुत कम लोग समाजवाद में दिलचस्पी रखते हैं। मैं भले ही कोशिश करूं कि दार्शनिक बातों को बहुत ही सरल भाषा में आपके सामने रखूँ, फिर भी विषय ऐसा है कि शायद मुझको पूरी सफलता न मिल सके। यदि न मिली तो सिवाय इसके कि मैं आपसे क्षमा मांगूँ और मेरे पास चारा क्या हैं? दूसरी वजह यह है कि ६ के बदले ६। हो गये हैं। अधिकांश लोग थके मांदे होंगे। बहरहाल, यह आशा करता हूँ कि जैसे आपने दिन भर तकलीफ बरदाश्त की, वैसे ही थोड़ी देर तक और बरदाश्त करेंगे।

यदि मैं आप लोगों का ध्यान इस ओर ला सका कि यह विषय सचमुच अध्ययन करने लायक है, यह विषय सचमुच विचार करने लायक है, यदि मैं इतना भाव आप लोगों के दिलों में पैदा कर सका, तो मैं अपने को कृतकृत्य मानूंगा।

इस समय देश में सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' है सबसे अधिक सदस्य उसके हैं और इस समय देश में सर्वत्र उसके नाम पर शासन हो रहा है। कांग्रेस ने अपना लक्ष्य यह कहा है कि हम समाज का समाजवादी ढंग से संगठन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा संव्यूहन स्थापित करना चाहते हैं। अकेले कांग्रेस का ऐसा ध्येय नहीं है, सोशलिस्ट पार्टी भी समाजवाद का नाम लेती है, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी भी समाजवाद का नाम लेती है और कम्यूनिस्ट पार्टी भी समाजवाद का ही नाम लेती है। भले ही कम्यूनिस्ट दोस्तों के मुंह से आप कम्यूनिज्म का शब्द सुनें, लेकिन आप जानते हैं कि कम्युनिज्म के आचार्यों ने ऐसा कहा है कि समाजवाद, सोशलिज्म का जो अन्तिम और परिपक्व रूप है वही कम्यूनिज्म है, अर्थात् जो आदमी कम्यूनिज्म की बात करता है, निश्चय ही, वह सोशलिज्म की, समाजवाद की बात करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि देश में जो कई बड़ी-बड़ी राजनीतिक पार्टियां हैं, राजनीतिक दल हैं, जो शासन चला रहे हैं या शासन चलाने की आशा करते हैं, जो ऐसे प्रश्नों पर विचार कर सकते हैं, उन सबने समाजवाद का नाम लिया है, किसी न किसी रूप में समाजवाद को अपना ध्येय बताया है, फिर एक बड़ी संख्या देश में ऐसे लोगों की भी है जिनका किसी राजीतिक दल से सम्बन्ध नहीं है लेकिन कुछ अपने मन में उन्होंने ऐसा समझ रखा है कि समाजवादी ढंग की व्यवस्था यदि चलायी जाय तो देश का कल्याण होगा।

इस बात को देख कर तो बड़ी खुशी होती है। लेकिन यदि हम थोड़ी सी गहराई में जायं, तो हम देखेंगे कि इनमें केवल शब्दमात्र की समता है, इसके आगे और कुछ नहीं। जहां तक कम्यूनिस्ट पार्टी की बात है, उसके सामने एक तस्वीर है, एक निश्चित तस्वीर है। भले ही किसी को वह तस्वीर अच्छी लगे, किसी को वह तस्वीर बुरी लगे, लेकिन उनके सामने एक ढांचा है। वह आपको बता सकते हैं कि जब वे समाजवाद की बात करते हैं, सोशलिस्ट सोसाइटी की बात करते हैं तो उनके मन में क्या चीज है? हो सकता है, हममें से कुछ लोगों का ख्याल हो कि वह तस्वीर बहुत अच्छी नहीं है, लेकिन एक है तस्वीर और उस तस्वीर के पीछे बहुत बड़े-बड़े लोगों का नाम है, मार्क्स का, ऐंगिल्स का, लेनिन का, स्टेलिन का, ऐसे लोगों का नाम है जो दुनिया में अपना निशान छोड़ गये हैं, दुनिया में अपनी कीर्ति छोड़ गये हैं और चाहे उनसे कोई सहमत हो, चाहे उनसे कोई असहमत हो, लेकिन दुनिया उनको हमेशा याद रखेगी। अब दूसरे लोगों को यदि हम देखें तो जहां तक सोशलिस्ट पार्टी की बात है, डाक्टर लोहिया साहब ने कुछ जरूर विचार की सामग्री दी है, लेकिन मेरे ख्याल में वह पर्याप्त नहीं है। जो सबसे बड़ी संख्या है, कांग्रेस जन की, उनके सामने करीब-करीब कोई तस्वीर नहीं है। भले ही, बहुत से कांग्रेस जनों के मन में यह विचार हो कि हम कम्यूनिज्म पसन्द नहीं करते या उनके मन में ख्याल हो कि डा० लोहिया के जो विचार हैं, सोशलिस्ट पार्टी के जो विचार हैं, वह उनको पसन्द नहीं हैं। लेकिन यदि उनसे ब्योरे की बात पूछी जाय कि वे उनको क्यों पसन्द नहीं हैं, क्या उनमें खराबी देख पड़ती है आपको, तो उनके लिए ठीक-ठीक बताना बड़ा कठिन होगा। उन्होंने तात्विक दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार नहीं किया है और मुझको ऐसा लगता है कि जो लोग प्रजा समाजवादी पार्टी में हैं उनके सामने भी कोई स्पष्ट तस्वीर नहीं है। करीब-करीब उनकी हालत भी वैसी ही है जैसी कि कांग्रेस जन की। जो देश में और लोग हैं, जिनका किसी पार्टी से सम्बन्ध नहीं है, उनमें ऐसे व्यक्तियों की बात तो मैं नहीं कह सकता, जिन्होंने कोई बड़ा गहरा अध्ययन किया हो, साधारण लोगों की बात ऐसी है कि

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उनके सामने भी किसी प्रकार की कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं है कि जब वे भी समाजवाद का जिक्र करते हैं, देश में समाजवादी शासन या समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने की बात सोचते हैं, तो वे क्या स्थापित करना चाहते हैं। एक बात जरूर है, कि कोई समाजवादी हो, किसी प्रकार का समाजवादीहो, दो चार बातों का जिक्र वे जरूर करेंगे जैसे कि, जमींदारी प्रथा नहीं होनी चाहिए, जो उत्पादन के बड़े-बड़े साधन हैं, कल-कारखाने हैं, बड़ी-बड़ी मशीनें हैं इस तरह की चीजें हैं समाज के हाथ में होनी चाहिए, व्यक्तियों के हाथ में नहीं होनी चाहिए। पूंजीशाही नहीं होनी चाहिए, शोषण नहीं होना चाहिए, ऐसी बातों को कह देंगे, सभी लोग कह देंगे, लेकिन इससे कुछ काम चलता नहीं क्योंकि जितने प्रकार के लोग अपने को समाजवादी कहते हैं, वे सभी इन बातों को कहते हैं। अगर इतने ही में समाजवाद होता, तो मतभेद की कोई बात ही नहीं, सभी लोग एक ही बात कहते हैं। यदि हम यह कहें कि जो लोग कांग्रेस की विचारधारा की बात मानते हैं, और कहते हैं । कि साहब, हमको एक चीज से बड़ा भारी मतभेद है, कम से कम कम्यूनिस्ट लोगों से; हम अहिंसा की बात करते हैं और वह हिंसा की। यह ख्याल काफी नहीं है। आज कांग्रेस की इतनी सरकारें हैं, आखिर, हमने पुलिस रख छोड़ी है, कभी न कभी तो पुलिस बल का प्रयोग करती ही है। हमने आज फौज रख छोड़ी है। फौज को अगर किसी का मुकाबला करना ही पड़े तो वह अहिंसा के जरिये तो मुकाबला करेगी नहीं। इसलिए जिन लोगों ने समाजवादियों के ढंग की बात की है, समाजवादी व्यवस्था कायम करने की बात की है और अपने को कांग्रेस जन कहते हैं वह भी हर अवस्था में, उनमें से प्रत्येक व्यक्ति हर अवस्था में, अहिंसा की ही बात करता हो, ऐसी बात नहीं है।

दूसरी तरफ यह कहना भी गलत है कि कम्यूनिज़्म के साथ हिंसा का कोई नित्य का गठबंधन है, कम्यूनिस्ट खासतौर से हिंसक हैं, ऐसी बात नहीं है। जरूर, वह हिंसा को बुरा नहीं कहता। आवश्यकता पड़ने पर, यदि आवश्यकता समझ में आये, और कोई दूसरा साधन न देख पड़े, तो वह हिंसा से काम लेगा। लेकिन कोई कम्यूनिस्ट ऐसा नहीं होगा जो कि यह कहे कि नहीं, अहिंसा से काम चल सकता है तो भी हम जबरदस्ती हिंसा से काम लेंगे।इसमें भी कोई फर्क की बात नहीं होती।हमको इन बातों के पीछे और गहराई में जाना होगा तभी हमारी समझ में आयगा कि भिन्न-भिन्न प्रकार के समाजवाद के स्कूलों में क्या फर्क है और कम से कम हमको अपने यहां कैसा समाजवाद चाहिए, हम क्या चाहते हैं? केवल श्ब्दों से, दो-चार शब्दों से, दो-चार नारों से, स्लोगन से काम नहीं चला करता। आप देखें, आज अपने देश में पंचवर्षीय योजना चलायी जा रही है। एक खत्म हुई, दूसरी चल रही है, तीसरी इसके बाद आयगी । इसमें कुछ संदेह नहीं कि पंचवर्षीय योजनाओं से फायदा हुआ है। यह पक्षपात की बात होगी, अगर कोई शख्स यह कहे कि इससे कोई फायदा नहीं हुआ है। लेकिन कुछ बातें ऐसी हैं जिनकी तरफ हमको ध्यान देना चाहिए। थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि यदि ऐसा हो जाय कि हमारी पंचवर्षीय योजना पूरी तरह से सफल हों, तो क्या होगा। आज हम जनता के सामने यही बात कहते हैं कि हम एक कल्याणकारी राज्य, वेलफेयर स्टेट, कायम करना चाहते हैं। पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा लोगों का कल्याण होगा, लोगों का वेलफेयर होगा, यही बात हम कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेलफेयर के क्या माने हैं? आज जो साहित्य निकलता है, आमतौर से उसमें वेलफेयर के माने होते हैं कि लोगों को अच्छा खाना मिलेगा, भरपेट खाने को मिलेगा, कपड़े की कोई दिक्कत न होगी, आराम से रहने को मकान मिलेगा, लड़कों-बच्चों की पढ़ाई का इन्तजाम होगा, तन्दुरुस्ती अच्छी रहेगी। मोटे तौर से जब कल्याण शब्द का व्यवहार किया जाता है तो इन्हीं बातों का जिक्र किया जाता है, वेलफेयर शब्द का जब व्यवहार होता है तो साधारण तौर से मनुष्य के सामने यही चीजें होती हैं। लेकिन आप जरा ध्यान करें, हिटलर के जमाने में भी यही था। हिटलर के जमाने में जर्मनों को खाने-पीने की तकलीफ नहीं थी, रहने-सहने की कोई तकलीफ नहीं थी, बेरोजगारी नहीं थी, उनके लड़के-बच्चों के लिए शिक्षा का भी प्रबन्ध था और बहुत से ऐसे देशों से काफी अच्छा प्रबन्ध था जो अपने को समाजवादी कहते होंगे। लेकिन क्या हिटलर के जमाने को आप समाजवादी शासन कह सकते हैं? सच्चे अर्थों में उसे क्या कल्याणकारी राज्य कह सकते हैं? इस बात को सोचना होगा कि जब मनुष्य के सामने हम वेलफेयर की बात करते हैं, एक आदर्श चीज रखते हैं तो इसमें इन चीजों के अलावा कई और चीजें भी होती हैं। आपको मालूम होगा कि अभी ऊटी में, मद्रास में जिसे उटकमंड कहते हैं, एक सेमीनार हुआ था। वहां बहुत से विद्वान लोग इसलिए जमा हुए थे कि जो देश की तृतीय पंचवर्षीय योजना होगी, उसके लिए रूप-रेखा तैयार की जाय। जो लोग उसमें शरीक हुए थे, उनमें प्रमुख स्थान दिल्ली यूनीवर्सिटी के डा० राव का था। उन्होंने उस मौके पर वहां विचार के लिए एक लेख लिखा था, जो वहां पढ़ा गया। उसमें उन्होंने कहा था कि आज हम देखते हैं कि पंचवर्षीय योजनाएं चल रही हैं लेकिन कोई न कोई बात जरूर है कि जनता के मन में जितना उत्साह देख पड़ना चाहिए उतना नहीं है। प्रत्यक्ष है कि लोगों को फायदा होता है, लेकिन न जाने क्यों उत्साह नहीं देख पड़ता। उन्होंने मिसाल दी थी कि जब कांग्रेस के आन्दोलन चलते थे, हजारों की संख्या में स्वयंसेवक आते थे, वे हर तरह की तकलीफ सहने को तैयार रहते थे, एक अजीब उत्साह था। वह उत्साह इस समय क्यों नहीं आता। उन्होंने एक चीज को सामने रखा था। उसी सिलसिले में डा० राव के लेख के ऊपर एक मेरा भी लेख था। उसमें से थोड़ा सा आपके सामने सुनाता हूँ। वह अंग्रेजी में था:

Dr. Rao's reference to Congress Volunteers is apposite. Those men expected no reward. The immediate prospect before them was imprisonment, fine, ill-treatment in prison, humiliation, **Lathis** and some time bullets and yet they came in hundreds and thousands ignoring all hazards, prepared to sacrifice everything. The reason was that they had been touched by a message which lifted them above themselves. That is lacking in the present case. We speak about the good things of life but forget the simple psychological fact that one can't raise a man above himself by lifting him by his shoe-lace.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा था कि यह बिल्कुल ठीक बात है, हजारों की संख्या में स्वयंसेवक आता था, वह जानता था कि जेलखाने जाना होगा, जायदाद जब्त हो जायगी, जुर्माना होगा; वह जानता था कि शायद सड़क पर गोली चल जाय, सब कुछ सहता था। बेइज्जती होगी, सब कुछ होगा, जब वह सामने आता था तो तैयार होकर आता था। आज लोग नहीं आते, क्यों नहीं आते? एक बात हमको हमेशा याद रखना चाहिए कि त्याग किस चीज के लिए होता है, इसका हमेशा ख्याल रखें। आप हजारों वर्ष का पृथ्वी का इतिहास पढ़ जाइए। आप देखेंगे कि संसारी, भौतिक चीजों के लिए आज तक मनुष्य ने कभी त्याग नहीं किया। रोटी के लिए त्याग नहीं होता। रोटी के लिए बलवा हो सकता है; लोग भूखे हों दूकानों को लूट सकते हैं, पुलिस गोली चला दे, फौज गोली चला दे, उसका सामना मजबूर होकर कर लेंगे; लेकिन दुनिया के इतिहास में आज तक कभी यह हुआ ही नहीं कि रोटी के लिए, कपड़े के लिए, मकान के लिए इस तरह की संसारी चीजों के लिए कभी मनुष्य ने त्याग किया हो। त्याग तभी होता है जब मनुष्य के सामने अपने से कोई ऊंची चीज आदर्श के रूप में आती है। आज पंचवर्षीय योजना चाहे चले चाहे न चले, आज किसी प्रकार के कल्याणकारी राज्य की बात हो अथवा न हो, लेकिन हर राज्य में, हर जगह रोटी-कपड़े के लिए लोग अपने से भी कोशिश करते ही हैं। हमेशा रोटी-कपड़े के लिए कोशिश करते हैं। आप रोटी-कपड़ा अच्छा दिला देंगे, खाने-पीने का अच्छा प्रबंध कर देंगे, लेकिन ऐसी चीजों के लिए कभी त्याग नहीं होता। महात्मा जी के जमाने में इसलिए लोगों ने त्याग किया कि देश एक बहुत बड़ी चीज है, अपने से ऊंची चीज है। उस चीज के साथ तादात्म्य कायम हो गया, उसके लिए सब कुछ बलिदान हो सकता है। हम आज लोगों से कैसे त्याग करा सकते हैं? अपनी पंचवर्षीय योजना के लिए त्याग हो सकता है और हुआ भी। लेकिन जितना हम चाहते हैं, जितनी हम आशा करते हैं, उतना नहीं हो सकता और वह इसलिए नहीं हो सकता कि लोगों के सामने कुछ ऊंचा आदर्श नहीं है। एक अंग्रेजी कहावत जिसको मैंने उद्धृत किया है कि यदि किसी आदमी को आप ऊपर उठाना चाहें तो उसके जूते में जो फीता होता है उस फीते को पकड़ कर कितना ही ऊपर उठाया करिए, वह शरीर से ऊंचा थोड़े ही जायगा, सिर से ऊपर नहीं उठेगा। सीधी बात है कि भौतिक बातें, संसारी बातें, जिन बातों को आदमी, बिना किसी प्रेरणा के, बगैर किसी स्फूर्ति के रोज करता है उन चीजों के बल पर कभी त्याग नहीं हो सकता। लोगों के सामने, कोई आदर्श रखना होगा, जो भौतिक न होकर रोज के जीवन से ऊपर उठाने वाला हो। ऐसा आदर्श हम लोगों के सामने कोई नहीं है। अतएव अगर हमको पंचवर्षीय योजनाओं को सफल करना है, अगर हमारे लिए कल्याणकारी राज्य, समाजवादी शब्दों का कोई अर्थ होता है, उसके अंदर कहीं न कहीं से कोई आदर्श निकलना चाहिए, कोई न कोई आदर्श सामने होना चाहिए। यह भी एक ऐसी बात है जिसके लिए हमको समाजवाद का अर्थ, उसके तात्विक आधार को समझने की जरूरत है। आज हम शिक्षा के ऊपर करोड़ों रुपया खर्च करते हैं। ठीक है, शिक्षा में अच्छा स्कूल भी होना चाहिए, फर्नीचर होना चाहिए, साइंस का सामान होना चाहिए, यह कि दुनिया भर की चीजें होना चाहिए। पाठकगण अच्छे होने चाहिए। यह सब बात सही है, लेकिन शिक्षा में एक बहुत बड़ी चीज है और वह यह कि जिस व्यक्ति को शिक्षा देना है उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबत हमारे क्या विचार हैं; किस तरह का आदमी हम पैदा करना चाहते हैं। शिक्षा इसलिए दी जाती है कि समाज के लिए अच्छे नागरिक पैदा हों। यह कहा जाता है। अच्छा नागरिक कौन है? अगर वह आदमी जिसको हम शिक्षा देते हैं शिक्षा पाने के बाद स्कूल के बाहर, कालेज के बाहर, यूनीवर्सिटी के बाहर निकला और उसके अन्दर वही राग-द्वेष जो मामूली आदमी के अन्दर होता है, बना रहा, तो वह जिस समाज का अंग होगा वह समाज कैसा होगा? वह समाज उसी प्रकार का होगा। अगर मैं स्कूल-कालेज में शिक्षा पाने के बाद यह भाव लेकर निकला कि किसी तरह भी हो मुझको तो आगे बढ़ना है, अपनी तरक्की की बात करनी है, तो जिस समाज का मैं अंग हूँ वह समाज भी वैसा ही होगा, जिसमें दूसरों के अधिकारों का अपहरण होगा। अगर मैं दूसरों के अधिकारों का किसी प्रकार अपहरण कर सकता हूँ तो जिस समाज में मैं हूँ वह समाज भी दूसरों के अधिकारों का अपहरण करेगा। कहां शांति रह सकती है? शिक्षा का आदर्श कोई न कोई दूसरा होना चाहिए। कोई ठिकाने का आदर्श होना चाहिए। किस प्रकार का मनुष्य हम पैदा करना चाहते हैं, यह चीज अच्छी तरह से साफ और स्पष्ट होनी चाहिए। जब तक यह चीज स्पष्ट नहीं होती है तब तक हम ठीक-ठीक नागरिक भी तैयार नहीं कर सकते। यह भी जानने की जरूरत है कि जो समाजवादी व्यवस्था हम सोचते हैं, उस समाजवादी व्यवस्था में हम कैसा मनुष्य चाहते हैं, किस प्रकार के नागरिक चाहते हैं। जो आज के नागरिक से किसी मानी में भिन्न हो, वह नागरिक कैसा होगा? यह भी हमको आपके सामने स्पष्ट करना होगा। शिक्षा की कोई न कोई तस्वीर रखनी होगी।

समाजवाद के इतिहास को थोड़ा सा सामने रखना है। पश्चिम में समाजवाद जब कायम हुआ या उसे कायम करने की जो कोशिश हुई, उसकी एक विशेष आवश्यकता थी। आप जानते हैं कि आज से चार-पांच सौ वर्ष पहले यूरोप के आदमी बहुत गरीब थे, और अगर ग्रीस और रोम को छोड़ दें तो सभ्यता में उन्होंने कोई बहुत ऊंचा दर्जा हासिल नहीं किया था।आज से चार-पांच सौ वर्ष हुए कई नयी बातें पैदा हुईं। एक तरफ भारतवर्ष का रास्ता खुल गया, दूसरी तरफ अमरीका का रास्ता खुल गया। सम्पत्ति, धन उनके पास आया, साम्राज्य कायम हुए। इन सब बातों के ज्यादा विस्तार में मैं नहीं जाता। नये-नये रोजगार, नये-नये उद्योग सामने आये। बहुत तरह की मशीनें निकलीं। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि एक तरफ तो धन-सम्पत्ति बहुत बढ़ी और दूसरी तरफ वह धन-सम्पत्ति कुछ थोड़े से लोगों के हाथों में केन्द्रीभूत हुई। इस तरीके से पूंजीशाही, पूंजीवाद का जन्म हुआ। इससे लोगों को तकलीफ हुई। पिछले दो-तीन सौ वर्षों के भीतर समय-समय पर बहुत से विद्वान ऐसे पैदा हुए जिन्होंने इस सम्बन्ध में विचार किया, पुस्तकें लिखीं कि कैसे क्या किया जाए। यह भी एक अवस्था है कि कुछ थोड़े से लोगों के हाथ में बहुत सा रुपया-पैसा जमा हो गया है। इस अवस्था को दूर किया जाय। अन्त में मार्क्स और ऐंगिल्स ने इस चीज में सबसे आगे सबसे बड़ा कदम उठाया। उन्होंने कम्यूनिज्म को जन्म दिया। सच बात तो यह है कि आज दुनिया में यों तो कई प्रकार के सोशलिज्म हैं; लेकिन जब समाजवाद का लफ्ज इस्तेमाल किया जाता है तो अधिकांश लोग उससे वह समाजवाद समझते हैं जिसका प्रतिपादन मार्क्स और ऐंगिल्स ने किया था। साधारण तौर से जब तक कि कोई दूसरा विशेषण न लगाया जाय उसी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों का मतलब होता है। हमारे देश में जो समाजवाद आ रहा है वह दूसरी तरह से आ रहा है। हमारे यहां यह बात नहीं है कि पूंजीशाही बड़े जोर से फैल गयी है, उसके विरुद्ध कोई एक विद्रोह की भावना पैदा हो गयी है, बल्कि जिस वक्त हमारे यहाँ अंग्रेजी राज्य कायम था उस वक्त से देश में विचार करने वाले जो लोग थे, दुनिया की हालत देख कर, रूस की तरक्की देख कर, और बातों को देख कर उनकी समझ में यह बात आयी कि जब कभी अपने हाथ में अधिकार आये तो हमें अपने देश में भी किसी न किसी प्रकार की समाजवादी व्यवस्था कायम करनी चाहिए। जब शासन की व्यवस्था अपने हाथ में आयी, तब से जो सबसे बड़ी संस्था कांग्रेस है, उसमें लोगों ने सोचना शुरू किया कि हमको भी अपने देश को समाजवाद की तरफ ले जाना है। यह किसी विद्रोह के फलस्वरूप नहीं था। नीचे से पूंजीशाही के विद्रोह के रूप में यह भावना नहीं पैदा हुई बल्कि ऊपर से यह चीज आयी। जो विचारक लोग थे, जो शासक लोग थे, उन्होंने इस चीज को फैलाया कि हमको अपने यहां समाजवादी ढंग की व्यवस्था कायम करनी है अब हमको थोड़ा सा सोचना चाहिए कि हम किस तरह की समाजवादी व्यवस्था करना चाहते हैं और क्या चाहते हैं?

समाजवाद, खासतौर से मार्क्सी समाजवाद को समझने के लिए थोड़ा सा हीगल के दार्शनिक विचारों को समझना जरूरी है। बिना उसके काम चल नहीं सकता। मैं पहले ही माफी मांग चुका हूं कि दर्शन का विषय टेढ़ा होता है। फिर भी मैं जितने थोड़े में निवेदन कर सकूंगा आपके सामने करूँगा। हीगल यूरोप के बहुत बड़े विचारक एवं दार्शनिक हुए हैं। उनका जो दार्शनिक सिद्धान्त है उसको कहते हैं, 'आइडियलिज्म'। आइडियलिज़्म का कोई अच्छा अनुवाद तो क्या करें, अक्सर उसका अध्यात्मवाद ऐसा कुछ अनुवाद कर दिया जाता है। लेकिन जब हम लोग अध्यात्म शब्द का व्यवहार करते हैं तो उसमें कुछ पूजा-पाठ की तरह जैसी बात रहती है। दार्शनिक विचार में पूजा-पाठ जैसी कोई बात नहीं होती। कोई अच्छा शब्द न मिलने से उसे अध्यात्मवाद कह दिया जाता है। उसका सारांश यह है कि यह जो ब्रह्माण्ड देख पड़ता है, जीव-जगत देख पड़ता है, यह जो संसार देख पड़ता है इसके मूल में जो चीज़ है वह चेतन है, एक चेतन तत्व है, एक चेतन पदार्थ है। उस चेतन पदार्थ का विस्तार का सारा का सारा जगत है और वह चेतन पदार्थ अनेक रूप बदलते-बदलते आज इस रूप में आया है। यह बात तो बिल्कुल नयी नहीं है, इसे और लोगों ने भी कहा है। उदाहरण के लिए हमारे देश में एक सिद्धान्त है, जिसको बल्लभाचार्य का 'शुद्धाद्वैत' सिद्धान्त कहते हैं। बल्लाभाचार्य का सिद्धान्त यही है कि जीव-जगत के मूल में एक चेतन पदार्थ है। उसे परमात्मा कहिए, ईश्वर कहिए, ब्रह्म कहिए, जो चाहे सो कहिए। उसी पदार्थ का विस्तार सारे ब्रह्माण्ड में देख पड़ता है। लेकिन हीगल के सिद्धान्त में और बल्लभाचार्य के सिद्धान्त में एक बड़ा भारी फर्क है। बल्लभाचार्य का कहना यह है कि उस चेतन पदार्थ ने, जिसको परमात्मा कह लीजिए, उसने अपनी इच्छा से अपनी लीला करने के लिए अपने को इस सारे जगत के रूप में बदल दिया है। अपनी मर्जी से उसने अपने को बदला और सारे जगत का निर्माण किया है। हीगल ऐसा नहीं मानते। हीगल का कहना है कि कुछ नियम हैं। उन नियमों के अनुसार उस पदार्थ का आप से आप परिवर्तन हुआ है, अपनी इच्छा से नहीं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाओ हम संसार के रूप में अपने को बदल लें। ऐसा नहीं है। बल्कि नियम हैं, अटल नियम हैं, अकाट्य नियम हैं, जिन नियमों के अनुसार वह जो चेतन पदार्थ है उसका परिवर्तन होत-होते यह सारा का सारा जगत् बन गया।

अब इसके एक कदम आगे, एक बात और याद रखने की है। हीगल उस समय में थे जब कि जर्मनी के ऊपर नैपोलियन की फौजों का हमला हो रहा था और केवल इतना ही नहीं था कि नैपोलियन की फौज जर्मनी पर राज्य कायम कर लेती बल्कि फ्रांस की जो संस्कृति थी, फ्रांस की जो सभ्यता थी फ्रांस की जो विशेष विचारधारा थी, वह जर्मनी के ऊपर बुरी तरह से हावी होती जा रही थी, जिसके मानी यह हुए कि यदि वह चीज बराबर रहती तो एक तरह से जिसे जर्मनी का व्यक्तित्व कहना चाहिए वह खत्म हो जाता। जर्मनी में छोटे-बड़े कई राज्य थे, लेकिन उनमें यदि सबसे बलबान कोई राज्य था तो प्रशा का राज्य था। इसलिए प्रशा ने थोड़ा बहुत मुकाबला किया लेकिन अकेले उसमें इतनी शक्ति तो थी नहीं कि नैपोलियन का मुकाबला कर सके। हीगल प्रशा के रहने वाले थे। हीगल ने सोचा कि अगर हमको किसी तरह से फ्रांस वालों का मुकाबला करना है, अगर फ्रांस के आक्रमण को हटाना है तो एक ही तरीका है, कि प्रत्येक जर्मन, कम से कम प्रशा का रहने वाला प्रत्येक नागरिक, अपनी सारी शक्ति, तन-मन-धन जो उसके पास है, वह सब का सब प्रशा राज्य को समर्पित कर दे, प्रशा के राज्य को प्रत्येक आदमी सब कुछ अर्पित कर दे तभी किसी तरह से फ्रांस का मुकाबला हो सकता है। इसलिए जो उनका दार्शनिक सिद्धान्त था उसको उन्होंने एक कदम आगे बढ़ाया। उन्होंने यह कहा कि वह जो चेतन पदार्थ है, जो इस जगत का मूल है, उसका सबसे बड़ा प्रतीक, सबसे बड़ी मूर्ति कह लीजिए, अगर इस जगत में कोई है तो वह राज्य (स्टेट) है। यह उनका सिद्धान्त राजनीतिक सिद्धान्त हुआ। हममें से प्रत्येक व्यक्ति उसी चेतन पदार्थ से बना है। लेकिन हम अपूर्ण हैं, पूर्ण नहीं हैं। अज्ञान हमारे अंदर है, जिसकी वजह से अपने को पूरा नहीं समझ सकते, जगत को पूरा नहीं समझ सकते। हमारा हित इसी बात में हैं कि हम अपने को पूरे तौर से राज्य को अर्पित कर दें। जो राज्य की इच्छा वह हमारी इच्छा। वह कहते हैं कि अगर आदमी समझदार होता, पूर्ण रूप से ज्ञानी होता तो उसकी समझ में यह बात आ जाती कि राज्य की जो इच्छा, आज्ञा के रूप में उसको दी जाती है वही उसकी असली इच्छा है। मिसाल के लिए किसी आदमी को राज्य ने यह हुक्म दे दिया है कि उसे फांसी दे दो। तो कहिए, उस आदमी को कभी ऐसा लगता है कि हमारी यह इच्छा है कि हम फांसी दिये जायें, लेकिन नहीं, वह कहते हैं कि यदि वह पूरा समझदार होता तो उसको यही प्रतीत होता कि सचमुच मेरी इच्छा भी यही है कि मुझको फांसी दे दी जाय। यह समझना कठिन हो सकता है। लेकिन बहरहाल इस सिद्धान्त की यही एक ऐसी चीज थी, जिसने कि प्रशा के राज्य को बलवान बनाया, कि प्रत्येक व्यक्ति की पूर्णता इसी बात में है कि वह राज्य के साथ अपने को पूरी तौर से मिला दे। उसका कोई अपना अलग महत्व नहीं है। जैसे हमारा शरीर है और हाथ हैं। चाहे जितना भी अच्छा हाथ क्यों न हो, हाथ की महत्ता क्या है? इसी बात में हाथ की महत्ता है कि वह शरीर का हाथ है। आंख की महत्ता क्या है? इसी बात में आंख की महत्ता है कि वह शरीर की आंख है। शरीर से अलग हाथ का कोई महत्व नहीं है, शरीर से अलग आंख का कोई महत्व नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। शरीर से अलग किसी भी अवयव का कोई महत्व नहीं है। जो कुछ भी उसकी महत्ता है, उसके जीवन का जो कुछ भी अर्थ है, वह इसी बात में है कि वह इस शरीर का अंग है।

दूसरी बात, जो कुल है कुल के सामने टुकड़े का क्या अधिकार हो सकता है? यह जो हमारा शरीर है, यदि यह कहें कि शरीर के मुकाबले में हाथ का यह अधिकार है, इसका कोई अर्थ नहीं होता। इसी तरह से वह कहते हैं कि राज्य के सामने किसी व्यक्ति का कोई जन्मसिद्ध अधिकार नहीं है।

आज हमारे संविधान में कई मौलिक अधिकार गिनाये हुए हैं, जो कहना चाहिए हमारे स्वयंसिद्ध अधिकार हैं। हीगल के मत के अनुसार किसी व्यक्ति का कोई जन्मसिद्ध अधिकार नहीं है। अधिकार वही है जो राज्य अपनी ओर से दे दे। सुविधा के लिए राज्य लोगों से कह देता है कि तुम खाओ, पिओ, कमाओ, घर-मकान बनाओ, जो कुछ वह कह दे। लेकिन यदि कोई यह कहे कि किसी मनुष्य का, किसी व्यक्ति का यह जन्मसिद्ध अधिकार है, यह बात गलत है। जो अधिकार राज्य ने दिया वह आपका अधिकार है। बाकी राज्य जब चाहे उस अधिकार को ले सकता है, दूसरा कोई अधिकार हासिल नहीं हो सकता, मौलिक अधिकार कोई नहीं। थोड़े में, यही हीगल का सिद्धान्त है।

अब एक बात आप समझ सकते हैं, इसका परिणाम क्या होगा? उसका आगे मैं आपसे थोड़ा सा जिक्र करूंगा। जब कार्ल मार्क्स मैदान में आये तो उन्होंने क्या किया? एक मानी में उन्होंने हीगल के मत को ज्यों का त्यों ले लिया, एक फर्क कर दिया। हीगल ने कहा था कि जगत् के मूल में जो कुछ है वह एक चैतन्य पदार्थ है। मार्क्स ने यह कहा कि जगत के मूल में जो कुछ है वह जड़ पदार्थ है, निर्जीव है। लेकिन उस निर्जीव पदार्थ का विकास उसी नियम के अनुसार हुआ जिस नियम से कि हीगल के कहने के अनुसार चैतन्य पदार्थ का विकास हुआ था, ठीक वैसे ही इसका विकास हुआ। अब हम लोग भी अपने को चैतन्य समझते हैं। कीड़े-मकोड़े, मनुष्य सभी चैतन्य हैं। चेतनता उनमें कहां से आयी? वह कैसे कह सकते हैं कि जब जड़ पदार्थ का विकास हो रहा था तो होते-होते एक ऐसी अवस्था आयी कि जिससे उसमें एक विशेष प्रकार का गुण प्रकट हो गया, जिसको कहते हैं चेतनता। मिसाल के लिए हमारे यहां जो प्राचीन आचार्य हो गये हैं उन्होंने मिसाल दी है कि एक पान का पत्ता होता है। उसका एक स्वाद है। चूने का अपना एक अलग स्वाद है। कत्थे का अपना एक अलग स्वाद है, सुपाड़ी का अपना अलग स्वाद है। इस सब को मिला दीजिए तो एक विशेष प्रकार का स्वाद होता है जिसको आप पान का स्वाद कहते हैं। न वह पान में था, न कत्थे में था और न चूने में था, न सुपाड़ी में था: कहीं भी नहीं था। अगर पान, सुपाड़ी कत्था और चूना अलग-अलग हो जायें तो वह स्वाद गायब। इसलिए जिसको हम प्रत्येक जीव में चेतन कहते हैं उसको आत्मा कहें, जो कुछ चाहे कह लीजिए, वह भौतिक पदार्थों का आकस्मिक गुण है। इस शरीर के बनने से पहले वह था नहीं, इस शरीर के नष्ट हो जाने के बाद रहेगा नहीं। इस बात को उन्होंने कहा। बाकी और हीगल वाली बात मान ली। दूसरी जो राज्य वाली बात थी, उसको भी उन्होंने मान लिया। लेकिन फर्क यह था कि राज्य की जगह पर उन्होंने 'समाज' के लफ्ज का इस्तेमाल किया। बाकी अगर आप गम्भीरता से विचार करके देखें तो करीब-करीब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्कुल वही बात है। वहां राज्य सर्वोपरि है, यहां समाज सर्वोपरि है। समाज के सामने व्यक्ति का अलग कोई अधिकार नहीं, व्यक्ति का कोई जन्मसिद्ध अधिकार नहीं हो सकता। व्यक्ति की सिवाय इसके कि वह समाज का अंग है, अपनी कोई महत्ता नहीं है। समाज की तरक्की व्यक्ति की तरक्की है, जो समाज का हित वह व्यक्ति का हित है। इसके सिवाय व्यक्ति का कोई अलग हित नहीं हो सकता, उसका अलग कोई अधिकार नहीं हो सकता। उसके जीवन की सार्थकता इसी बात में है कि वह समाज के जीवन के साथ अपने को तन्मय कर दे। इन दोनों सिद्धान्तों से एक बात स्वभावतः निकलती है। समाज की इच्छा या राज्य की जो इच्छा है, वही व्यक्ति को अभीष्ट है। समाज की इच्छा क्या है? राज्य की इच्छा क्या है? जब राज्य या समाज का नाम लिया जायगा तो मानी यह होंगे कि उस राज्य या समाज में जिन लोगों के हाथ में शासनाधिकार है, उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई दूसरी चीज हो नहीं सकती। जब हम कहते हैं कि राज्य की ऐसी मर्जी है, राज्य की ऐसी इच्छा है, तो उसके मानी यह है कि जिन लोगों के हाथ में राज्य का शासन है उनकी ऐसी इच्छा है। राज्य की, समाज की ऐसी इच्छा है। जो लोग समाज में अधिकार रखते हैं उनकी ऐसी इच्छा है। ये शब्द सुनने में बड़े अच्छे लगते हैं लेकिन उनका इसके सिवाय दूसरा कोई अर्थ नहीं है कि जो लोग अधिकार में आते हैं उनकी यह इच्छा है। वह भी मनुष्य हैं। कितना भारी कोई मनुष्य क्यों न हो, राग-द्वेष उसके अन्दर भी होगा, लेकिन यह मान लेना कि उसकी इच्छा निर्विकार है, निर्दोष है, यह कहां तक सही है? यह आप सोचें। यदि यह मान लिया जाय कि जो थोड़े लोग हैं उनकी इच्छा सर्वोपरि है तो इन बातों से सिवाय इसके कि किसी न किसी प्रकार की अधिनायकशाही हो, इसके अलावा दूसरी कोई व्यवस्था हो ही नहीं सकती। इसका एक बड़ा अच्छा उदाहरण है। प्रशा के जो पहले सम्राट थे फ्रेडरिक दि ग्रेट वह एक बार अपनी राजधानी बर्लिन में घोड़े पर जा रहे थे। उस समय मोटर तो थी नहीं। उनके साथ फ्रांस के विद्वान वालटेयर भी थे। उन्होंने किसी सड़क पर एक जगह ऊँचे पर एक नोटिस लगी देखी, जिस पर लिखा था—"बादशाह बड़ा नालायक है, बड़ा जालिम है, बड़ा दुष्ट है।" उसमें बहुत सी गाली-गलौज़ की बात लिखी थी। खड़े होकर उन्होंने उसे पढ़ लिया। पढ़ने के बाद अपने आदमियों से कहा, "एक काम करो। नोटिस होशियारी से दीवाल में से निकाल लो और उसे ज़रा और नीचे लगाओ, ताकि जो सड़क पर चलें वह इसको आराम से पढ़ सकें" वालटेयर ने कहा "इसमें आपको इतना बुरा-भला कहा गया है, इसका क्या मतलब?" उन्होंने कहा "हमारे यहां मेरे और प्रजा के बीच एक समझौता है। मैंने उसको गाली देने का अधिकार दे रखा है लेकिन काम जो होगा वह मेरी इच्छा से होगा।" यह एक सिद्धान्त हुआ। सोचने की बात है कि जब हम समाजवाद की बात करते हैं तो क्या हम निश्चित रूप से समाजवाद चाहते हैं?

समाजवाद के सिलसिले में एक दूसरी भी विचारधारा हो सकती है। कई लोगों ने उन प्रश्नों पर विचार किया है। समाजवाद की जो दूसरी विचारधारा मैं आपके सामने रखता हूँ, वह विचारधारा यह है कि हम में से प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक चेतन पदार्थ है। उसको आत्मा या जो जी में आये कहिए। वह नित्य है, शरीर से पहले भी वह था और चूंकि नित्य है, इसलिए शरीर के नष्ट हो जाने के बाद भी रहेगा। एक नित्य चेतन पदार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे भीतर है। उस दूसरी विचारधारा के अनुसार यह बात मान लेने की है कि यह जो शरीर के भी चेतन पदार्थ है वह अपने स्वरूप को भूला हुआ है। पूरी तरह से उसको अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं है लेकिन प्रत्येक क्षण वह अपने स्वरूप को जानने के लिए बराबर कोशिश करता रहता है। संसार में संघर्ष देख पड़ते हैं, लड़ाई-झगड़े देख पड़ते हैं, राग-द्वेष देख पड़ता है। लेकिन ऐसे लोगों का कहना यह है कि वस्तुतः किसी मनुष्य को किसी दूसरे मनुष्य मे, किसी जीव को किसी जीव से कोई दुश्मनी नहीं है। होता है क्या? जैसे एक कमरा है, बिल्कुल अँधेरा कमरा है। उस अँधेरे कमरे में बहुत से आदमियों को आप बंद कर दीजिए। प्रत्येक आदमी निकलने की कोशिश करेगा। किसी को किसी दूसरे से दुश्मनी नहीं है, लेकिन निकलने की कोशिश में वे जरूर एक दूसरे से कभी न कभी टकरा जायंगे। प्रत्येक मनुष्य खुद अपना छुटकारा चाहता है, प्रत्येक मनुष्य उस कमरे से वाहर निकलना चाहता है, दूसरे भी चाहते हैं। उसी निकलने की कोशिश में, नासमझी के कारण, अज्ञान के कारण ऐसा होता है कि आप कभी टकरा जाते हैं। उसी तरह से प्रत्येक जीव चाहता है अपना छुटकारा। छुटकारा किस चीज से? अज्ञान से। अज्ञान की वजह से अविद्या है, अज्ञान की वजह से उसके अंदर दुर्बलता है। इन बन्धनों से प्रत्येक क्षण वह छूटना चाहता है। ऐसे तो वह छूट नहीं सकता। इसी वजह से राग और द्वेष उसके अंदर देख पड़ते हैं। अब ऐसे साधन होने चाहिए जिनके वल पर वह अपने स्वरूप को पहचान सके, अपने अज्ञान को दूर करके खुद अपने चेतन स्वरूप को जान सके।

साधन कई तरह के होते हैं। इन साधनों में राज्य भी एक साधन है, सोसायटी भी एक साधन हो सकती है, स्कूल भी एक साधन हो सकता है, नियोजन भी एक साधन हो सकता है। वीस साधन हैं, लेकिन ये जितनी भी चीजें हैं ये सब साधन हैं और इनकी पहचान, इनकी कसौटी, इनकी परख यही है कि जीव का जो असली लक्ष्य है, वह अपने अज्ञान को दूर करना है, उस लक्ष्य को वे कहां तक सिद्ध करते हैं। आप देखें पहले से इसमें जमीन-आसमान का फर्क हो गया। वहां यह चीज थी कि मुख्य चीज राज्य है और व्यक्ति का अर्थ वहीं तक है जहां तक वह अपने को राज्य में मिला देता है। यहां भी एक मुख्य चीज है व्यक्ति, वही साधन अच्छा है, वही राज्य अच्छा है, वही संगठन अच्छा है जो व्यक्ति की मदद करता है। जो संगठन व्यक्ति की मदद नहीं करता वह संगठन अच्छा नहीं। पहले मत में, चाहे वह हीगल का मत हो, चाहे जिस किसी का, समाज के लिए, समष्टि के लिए, जमात के लिए व्यक्ति है। यहां यह है कि व्यक्ति के लिए जमात है, व्यक्ति के लिए समाज है। दोनों में जमीन आसमान का अंतर हो गया। यह एक विचारधारा है जो भारत के लोगों को पसन्द है और जिस विचारधारा पर कई लोगों ने विचार किया है। कई पुस्तकों में भी इस पर विचार हुआ है। मैंने अभी आप से ऊटी के सेमीनार का जिक्र किया था। उसके बाद 'प्लानिंग सब-कमेटी' ने उसकी एक रिपोर्ट भी तैयार की थी। मैं ऊटी की सेमीनार रिपोर्ट का एक अंश आपको पढ़ कर सुनाता हूँ। यह पहला मौका है जब कि कांग्रेस के कुछ विद्वानों ने बैठ कर इस तरह के प्रश्नों पर विचार किया और उस पर एक राय कायम की:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'The fuller expression of human personality is the basic aim of the socialist society. This expression and development must be made possible for all members of society or group. Life has meaning to the extent it serves this essential purpose. The full development of the personality of man, the work and the dignity of an individual are essential elements of a democratic socialist society".

समाजवादी ढंग के शासन की विशेषता यह है कि व्यक्ति को पूरे तौर से विकसित होने का मौका रहता है, व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व को पूरे तौर से खिलने देने का मौका मिलना चाहिए और जितनी भी ग्रुप-लाइफ है, जितना भी सामूहिक जीवन है, चाहे राज्य का हो चाहे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का हो, चाहे जो कुछ भी हो, उसकी सार्थकता वहीं तक है जहां तक कि उसके द्वारा व्यक्ति को विकसित होने का मौका मिलता है। यह जो भारतीय समाजवाद होगा उसका एक बड़ा भारी सिद्धान्त है, बड़ी भारी एक आधार-भित्ति है, एक बड़ी भारी आधार-शिला है, जो कि हममें से हर आदमी को सोचना चाहिए। अच्छी-बुरी की बात आप सोचें। लेकिन जो कम्यूनिस्ट आधार-शिला है, कम्यूनिस्ट फिलासफी है उसमें इसमें जमीन-आसमान का फर्क है। दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है।

अब हमारा सिद्धान्त सुनिए। एक और चीज़ है। कम्यूनिस्ट साहित्य में आप इस बात का जिक्र देखेंगे कि मनुष्य और मनुष्य में, वर्ग और वर्ग में बराबर संघर्ष जारी है। वर्ग-संघर्ष बराबर जारी है। अब यह वर्ग-संघर्ष कैसे खत्म हो। वर्गहीन समाज होना चाहिए। कैसे हो, जब बराबर वर्ग-संघर्ष जारी है। इस वर्ग-संघर्ष को दूर करने का एक ही उपाय है वह यह है कि एक वर्ग इनमें से खत्म हो जाय। पूंजीपति या मिल-मालिक हैं, उनका एक वर्ग है। दूसरा वर्ग है मजदूरों का। सम्पन्न और विपन्न के दो वर्ग हैं। यह संघर्ष बराबर चलता रहेगा और खत्म तभी होगा जब इनमें से एक वर्ग खत्म हो जाए। कौन वर्ग खत्म होगा? जाहिर बात है कि जो थोड़े हैं वही खत्म होंगे। सम्पन्न खत्म होंगे; पूंजीवाले खत्म होंगे, जो मालिक हैं, वे खत्म होंगे, जैसा कि अपने ढंग से रूस में हुआ; चाहे उसके परिणामस्वरूप लाखों आदमी मरे हों। लेकिन ऐसा मानना चाहिए कि उसमें सफलता हुई। वर्ग कुछ न कुछ खत्म हुआ, वर्गहीन समाज बन गया।

हमारे यहां के सिद्धान्त में इसके लिए जगह नहीं। जो हमारा समाजवाद होगा उसमें इसके लिए जगह नहीं होगी। यह बात सही है कि समाज में संघर्ष देख पड़ता है। समाज में संघर्ष भले ही देख पड़ता है, लेकिन समाज के उस संघर्ष को दूर करने का हमारा उपाय दूसरा है। पहले तो एक बड़ी दिक्कत की बात हो गयी है वह यह कि विकासवाद की एक बात को लेकर अर्थशास्त्र और राजनीति में बड़ी गड़बड़ी हो गयी है। डार्विन ने जिस समय विकासवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उन्होंने बताया कि प्राणियों की जातियों का जो विकास हुआ है उसमें एक चीज बराबर देख पड़ती है कि प्राणियों में निरन्तर संघर्ष है। दो पेड़ लगा दीजिए पास-पास में, मिट्टी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए, हवा के लिए खाद के लिए लड़ाई होगी। एक पेड़ ऊपर बढ़ेगा, एक सूख जायगा। मनुष्य-मनुष्य में लड़ाई होती रहती है। मानव समाज में तलवार वन्दूकों की लड़ाई होती है। पदों के लिए उम्मीदवारों में लड़ाई होती है। जगह खाली होती है, सौ आदमी उसके उम्मीदवार होते हैं, हर उम्मीदवार सोचता है कि मुझको जगह मिल जाय चाहे ९९ आदमी मरें, चाहे कुछ भी हो। सभी जगह संघर्ष देख पड़ता है। लेकिन यह सोचने की बात है कि क्या जो है उसको होना चाहिए। मनुष्य के स्तर पर पहुंच करके यह सोचने का मौका आता है कि जो है, जो अब तक होता आया है क्या उसको होना भी चाहिए। दुनिया में चोरी होती है। प्राचीन से प्राचीन काल तक से चोरी होती आयी है तो क्या चोरी होनी चाहिए। मनुष्य को यह सवाल पूछने का मौका मिलता है। आप देखें कि मनुष्य ने इस सवाल का जवाब कैसे दिया? पशुओं में संघर्ष होता है लेकिन वहां यह कभी नहीं होता कि जो पशु दुर्बल है उसके लिए कोई परवाह की जाय। लेकिन जो मनुष्य दुर्बल हैं उनके लिए सब साधन हैं। जो कमाने लायक नहीं हैं उनको मनुष्य बैठा के खिलाता है। जिनकी बुद्धि काम लायक नहीं है, जो पागल हैं, जो समाज को नुकसान पहुंचा सकते हैं, उनको वह पागलखाने में बैठा कर भोजन कराता है; जो शत्रु हैं उनको, खा जाने के बदले, मार डालने के बदले, कैदी बना कर रखता है। उनके आराम और तकलीफ की फिक्र करता है। मनुष्य की मनुष्यता इसी बात में है। जहां तक संघर्ष वाली बात थी वह जरूर इस समाज में थी लेकिन जितना ही मनुष्य संघर्ष के ऊपर उठा उतना ही मनुष्य मनुष्य हुआ। उतनी ही मनुष्य की संस्कृति फैली, उतनी ही मनुष्य की सभ्यता फैली। संघर्ष की बात समाज में रही है, लेकिन जितना ही मनुष्य संघर्ष के ऊपर उठ सका है उतना ही मनुष्य संस्कृति में, सभ्यता में, मनुष्यता के रास्ते में उन्नति कर सका है।

हमको यदि वर्गहीन समाज कायम करना है तो उसका रास्ता भी कुछ सोचना चाहिए। हमारे यहां उसका जो रास्ता सोचा गया है वह यही है कि वर्गहीन समाज कायम करने के लिए वर्गों का संघर्ष इस तरह से दूर न किया जाय कि कोई एक वर्ग नष्ट कर डाला जाय बल्कि वर्गों में सहयोग की मात्रा पैदा की जाय। हम भी मार्क्स की सोसाइटी चाहते हैं, हम भी वर्गहीन समाज चाहते हैं लेकिन किसी एक वर्ग को मार डाल के नहीं; किसी एक वर्ग को खत्म करके नहीं। हाल की बात हमारे सामने है। हमने जमींदारी का उन्मूलन किया, इसको दूर करने के दो रास्ते थे। एक रास्ता वह था जैसा कि दूसरे देशों में हुआ, लाखों आदमी मारे गये, काटे गये। हमने उस रास्ते को अख्तियार नहीं किया। हमने यह सोचा कि जमींदार भी मनुष्य हैं। इस प्रथा का भले ही अंत करना है किन्तु उनको मार कर नहीं। हमने उनको मार नहीं डाला, बल्कि उनको जीवित रहने का मौका दिया; हमने उनको खाने-पीने का मौका दिया, उनके लड़के-बच्चों को पढ़ाने का मौका दिया। एक तरीका यह भी है। बात तो वही हुई, जिसको और लोगों ने एक तरीके से किया है उसको हमने दूसरे तरीके से किया। हमारा जो दार्शनिक आधार होगा, हमारा जो दार्शनिक तरीका होगा उसके अंदर जहां हमको संघर्ष खत्म करना है, वर्गहीन समाज बनाना है वहां इस तरह से नहीं कि बराबर बढ़ाते-बढ़ाते एक को मार डाला जाय, एक को खत्म कर डाला जाय; बल्कि इस तरीके पर कि आपस में उनके अंदर सहयोग की भावना आ जाय, दोनों ही समाज के हित में लग जायं ताकि आप से आप संघर्ष समाप्त हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय। एक चीज और बड़े महत्व की है। वह है साधन और साध्य का सवाल। यहां मैं हीगल की बात नहीं करता। शुरू-शुरू में हमारे देश में जब कम्यूनिज़्म आया, और देशों में भी आया तब 'बुर्जुआ मोरेलिटी' शब्द अक्सर सुनने में आते थे। सच बोलना, दान करना आदि फालतू चीजें बुर्जुआ मोरेलिटी की बातें हैं। असल में मोरेलिटी की कसौटी यह हो सकती है कि हमारा लक्ष्य ठीक होना चाहिए; निःस्वार्थ होना चाहिए। ऐसी बात होनी चाहिए, जो समाज के हित की हो। हम समाज के हित को सामने रखें, अपने स्वार्थ की बात न सोचें। उसके आगे फिर यह भी कहना पड़े कि सच बोल कर इस कार्य को करेंगे, या अमुक तरीके से करेंगे; तो यह बेवकूफी की बात होगी। यह तय कर लीजिए कि हमारा लक्ष्य अच्छा है, साफ है, शुद्ध है, उसके बाद जिस किसी तरीके से भी मतलब सिद्ध हो जाय, येन-केन-प्रकारेण, जैसे भी काम हो जाय; वह तरीका अच्छा है, सिद्ध है।

जहां तक हमारे यहां की बात है, हमारे यहां का सिद्धान्त कहता है कि शुद्ध लक्ष्य (Pure End) के लिए अशुद्ध साधन (Impure Means) से काम नहीं लिया जा सकता। महात्मा जी ने बार-बार इसी बात पर जोर दिया है। लक्ष्य हमारा भले ही शुद्ध हो, लेकिन शुद्ध लक्ष्य के लिए शुद्ध साधन से ही काम लेना होगा। यह हमारे यहां की एक खास बात है। साधन और साध्य दोनों की बहुत महत्ता है, साधन और साध्य दोनों को बराबर महत्ता देनी है। यहां एक खास बात और पैदा होती है। हमारी एक विशेषता है—सहिष्णुता (Tolerance)। यह भी एक बहुत बड़ी चीज है। असहिष्णुता के पीछे अच्छी नीयत होते हुए भी नुकसान होता है। संसार का अगर मोक्ष हो सकता है, तो जो तरीका मैं बतलाता हूं उससे मोक्ष हासिल करना होगा, यह असहिष्णुता का रूप है। आज किसी के राजनीतिक विचार हैं, हमको पसन्द नहीं आते। हम उनको आगे बढ़ने नहीं देंगे। ऐसे देश हैं जिनमें दूसरे विचारों को अखबार प्रतिपादित नहीं करते। दूसरी पार्टियों के विचार सामने नहीं आ सकते। हम जहां तक धर्म का विषय है यह कहते आये हैं:

रुचीणां वैचित्र्याद्‌ऋजुकुटिल नानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।

सभी मनुष्य चाहे वह किसी प्रकार की उपासना करें उसी ईश्वर तक पहुंचते हैं। जैसे सभी नदियां घूम फिर कर समुद्र में पहुंचती हैं। दूसरों की राय सुनने के लिए उन्हें अपने मत को प्रकट करने के लिए मौका देना चाहिए। इंगलैण्ड का एक किस्सा है, दो आदमियों में बातचीत चल रही थी। एक ने कहा कि तुम्हारी राय गलत है लेकिन अगर कोई तुम्हारी गलत राय को रोके तो मैं तुम्हारे लिए उससे लड़ूंगा। उसी तरह से हमारे यहां सहिष्णुता का भी बहुत बड़ा स्थान है। नियोजन उपसमिति (प्लानिंग सब-कमेटी) की रिपोर्ट में एक चीज है उसकी तरफ आपका ध्यान दिला सकता हूं:

"The discipline for life and education are the proper method for achieving this. In our relationship with our neighbours we must work for harmony. Spirit of tolerance and love for service are

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
indispensable for it in our relationship with other nations of the world. It must be reflected in our works for peaceful coexistence."

हमेशा अपने पड़ोसी,व्यक्ति हो चाहे राज्य हो, उसके साथ हमको सहिष्णुता से काम करना होगा, सेवा के भाव उनके साथ रखने होंगे जनता-राज्य के लिए हमको इस बात की कोशिश करनी होगी। हमारे देश में इस प्रकार की विचारधारा है। दूसरे देश में दूसरी तरह की विचारधारा है। एक देश में किसी एक प्रकार का शासन है, किसी दूसरे देश में किसी दूसरे प्रकार का शासन है लेकिन सभी मिलजुल कर एक दूसरे के साथ रह सकते हैं। इस बात के लिए हमको कोशिश करनी होगी। इसलिए यह जो हमारा समाजवाद है उसका दार्शनिक आधार हम लोगों को समझना जरूरी है।

एक सवाल आता है कि कर्तव्य क्या है, करणीय क्या है? अच्छा काम किसको कहते हैं? यह बड़े महत्व का सवाल आता है। जैसा मैंने पहले आप से कहा था, विचार करने का एक तरीका यह हो सकता है कि जो भी हमारा लक्ष्य अच्छा है वह सहयोग से पूरा हो। सोचने का एक दूसरा तरीका भी है। भारतीय दर्शन में उस पर खासतौर से जोर दिया गया है। उसको हम आपके सामने रखना चाहते हैं। इसमें ज़ोर इस बात पर दिया गया है कि यह जो हमारा मनुष्य का शरीर है तथा इस मनुष्य के शरीर में जितने भी अवयव हैं, उन सबका कल्याण इसी बात में है कि सभी एक दूसरे के साथ सहयोग करें। अगर कोई अवयव किसी दूसरे अवयव के साथ सहयोग नहीं करता तो सारे शरीर का नुक्सान करता है। इसी बात का जिक्र करते हुए हमारे यहां बार-बार कहा गया है कि बराबर एक दूसरे की मदद करते हुए, एक दूसरे का ख्याल करते हुए ही अपने कल्याण को प्राप्त करना होगा। इस बात पर खासतौर से जोर दिया गया है और इसीलिए हमारे यहां एक बात और कही जाती है वह यह कि आज दुनिया में हर जगह अधिकार का संघर्ष बड़ा भारी है —हमारे यह अधिकार हैं, हमारे वह अधिकार हैं। भारतीय दर्शन में इस बात की ओर ध्यान दिया गया। आप जितनी भी पुरानी किताबें हैं उनको उठा कर देख डालिए जैसे वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य, शूद्र की बात आती है। वर्ण-व्यवस्था अच्छी चीज हो या बुरी चीज हो, जैसी भी हो, लेकिन जितनी पुरानी किताबें आप देखेंगे उनमें लिखा होगा कि ब्राह्मण का धर्म यह है, अर्थात् ब्राह्मण को यह काम करना चाहिए। क्षत्रिय का धर्म यह है क्षत्रिय को अमुक-अमुक कार्य करना चाहिए। वैश्य को फलां-फलां काम करना चाहिए। शूद्र को फलां-फलां काम करना चाहिए। हमारी किसी भी पुरानी किताब में यही नहीं लिखा मिलेगा कि फलां-फलां के ये अधिकार हैं। जहां भी लिखा मिलता है इसी बात का जिक्र मिलता है कि फलां को फलां काम करना चाहिए और यह जाहिर बात है कि अगर हर आदमी अपने कर्तव्य को करता है तो उसके अधिकार आप से आप मिल जाते हैं। विद्यार्थी का कर्तव्य यह हो सकता है कि अध्यापक जब क्लास में आये तो उनको प्रणाम करें या उनको देख कर खड़े हों। मास्टर साहब को यह कहने की जरूरत नहीं, कि देखो, यह हमारा अधिकार है कि जब हम क्लास में आते हैं, तुम खड़े हो और हमको सलाम करो। यदि विद्यार्थी अपना कर्तव्य करता है तो अध्यापक का जो अधिकार है वह उसे स्वयं बिना परिश्रम के प्राप्त हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हमारे यहां इसका बार-बार जिक्र किया गया है। इस बात का एक वजह से और जिक्र किया गया है, वह यह कि आज कितने लोगों का एहसान हमारे ऊपर है इसका हमको अंदाज नहीं। दो चार दस आदमी हों तो उनके एहसान हम जानते हों। प्रकृति में हजारों प्रकार के पशु है, हजारों प्रकार के पक्षी हैं, हजारों प्रकार के कीड़े-मकोड़े हैं और हमारे जाने-अनजाने और जितनी भी चीजें हैं उन सभी का उपकार हमारे ऊपर है। कितने लोगों का उपकार है,कितने लोगों के सहयोग से हमारा यह काम चल रहा है। हम किस-किस के मुकाबले में अपने अधिकार की बात करते रहें, किस-किस से अधिकार छीनने की बात करें। लेकिन सिवाय इसके दूसरा उपाय नहीं कि ईमानदारी से जहां तक हमारी शक्ति है उस शक्ति के अनुसार अपने कर्तव्य के ऊपर ध्यान देना चाहिए। यदि प्रत्येक मनुष्य अपने कर्तव्य के ऊपर ध्यान देता है, तब जहां तक अधिकार की बात होगी वह बिना परिश्रम के प्राप्त हो जायगा। भारतीय दर्शन इस बात पर खास तौर पर जोर देता है कि मनुष्य को अपने अधिकार की चर्चा न करके अपने कर्तव्य का जिक्र करना चाहिए। हमको प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की शिक्षा देनी होगी। विद्यार्थी को लड़कपन से इसकी शिक्षा देनी होगी। आज स्कूल में लड़का पढ़ता है, उसको आज हम इस बात की शिक्षा देना शुरू करते हैं कि उसे करना क्या है, आदर्श क्या है, आगे चलकर तरक्की करना, रुपया पैसा कमाना, बड़े लोगों और जिस किसी को दबा कर आगे बढ़ना। यह उसके सामने हम रखते हैं कि तुम्हारे यह अधिकार हैं, फलां चीज़ के लिए तुम्हारे ये अधिकार हैं, फलां चीज के लिए वे अधिकार हैं और उन अधिकारों के लिए कदम-कदम पर लड़ना। कर्तव्य की शिक्षा हम नहीं देते हैं। सब के भीतर हमें बचपन से बार-बार यह भाव भरना होगा कि मनुष्य का जीवन तभी सफल हो सकता है जब अधिकार के ऊपर ध्यान न देकर कर्तव्य की तरफ ध्यान दिया जाय। हम जो नागरिक आगे बनाना चाहते हैं उसको इसी आधार पर हमको बनाना होगा, इसी तरह के नागरिक हमको आगे तैयार करने होंगे।

मैं कह रहा था करणीयता और अकरणीयता की बात। उसमें एक चीज और ध्यान देने की है। सब से अच्छा काम कौन सा होता? ऐसा वह कौन सा काम है जिसकी हम आप सब तारीफ करते हैं कि यह काम बहुत अच्छा है? एक घर में आग लग गयी, कोई जल रहा हो, एक आदमी है हिम्मत करके उसको निकालने के लिए उसमें पैठ जाता है। कोई ऐसा नहीं जो इस बात की तारीफ़ न करे कि बड़ा अच्छा काम हुआ, अपनी जान पर खेल कर निकालने की उसने कोशिश की। एक आदमी डूब रहा है, ऊपर से कोई पानी में कूद पड़ा बगैर इस बात की परवाह किये कि हमारा क्या होगा, उसको बाहर निकाल लिया या निकालने की कोशिश करता है। सभी कहेंगे कि यह अच्छा काम है, आप इस काम को जरा देखें। इस काम की अच्छाई इस बात में है कि जिस वक्त यह काम किया जाता है उस वक्त दोनों के बीच दीवार गायब हो जाती है। एक आदमी भूखा रहता है उसको जब अन्न देने चलते हैं तो यह ख्याल हो सकता है कि मैं इस आदमी को, क्योंकि यह भूखा है, इसको पेट भर अन्न दे रहा हूँ। लेकिन जिस वक्त आदमी जान पर खेल कर इस तरह का काम करता है तो बचाने वाले और जो बचाया जाता है दोनों के बीच की दीवार गायब हो जाती है। वही काम सब से अच्छा है जिस काम में द्वैत बुद्धि या भेद-बुद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गायब हो जाय। हम अच्छे काम कर सकें इससे लोग पानी में न डूबा करेंगे; अच्छे काम कर सकें इससे आग नहीं लगा करेगी। लेकिन अपने सामने यह आदर्श रखने की बात है। अपने काम की कसौटी यह होनी चाहिए कि वह कौन से काम हैं जो भेद-बुद्धि दूर करते हैं। मैं और तुम, मेरा और तेरा, इस भाव को दूर करने वाले कौन से काम हैं? जितना ही हम इस बात को सामने रखेंगे उतना ही हमारा जीवन अपने यहां के आदर्श के मुताबिक होगा और हमारा समाजवाद सफल होगा।

आज नियोजन के सिलसिले में एक चीज का जिक्र होता है। सब लोगों को मितव्ययिता करनी चाहिए। बहुत जिक्र मितव्ययिता में इस बात का रहता है कि सादगी से रहना चाहिए। मेरे पास अगर पैसा ज्यादा है तो मैं बाजार से सामान खरीद कर साल भर के लिए घर में रख दूँ, कोई और भूखा रहे, ऐसा नहीं करना चाहिए। मितव्ययिता का ख्याल क्यों करें? इसका जवाब देना बड़ा मुश्किल है। उसका भी अगर जवाब मिल सकता है तो इसी बात में मिल सकता है कि अगर मेरे और पराये के बीच में फर्क है तो मैं दूसरे के लिए मितव्ययिता नहीं करता हूँ; लेकिन अगर मेरे और पराये के बीच में फर्क नहीं है, मेरे और तेरे के बीच अगर फर्क नहीं है, तो मितव्ययिता के सिवाय आदमी के सामने दूसरा कोई रास्ता आ ही नहीं सकता।

एक चीज और है। प्राचीन काल से लेकर आज तक आदमी ने अनेक प्रकार की शासन-व्यवस्था रखी है। जाने कितने प्रकार की शासन की व्यवस्था हुई। एक आदमी के हाथ में राज्य हुआ, दो आदमी का राज्य अर्थात् द्वैत राज्य हुए। रिपब्लिक अनेक प्रकार की हुई। जाने राजशाही कितने प्रकार की हुई। कुछ बातें ऐसी हैं कि प्रत्येक राज्य, जो अच्छा राज्य है, देने की कोशिश करता है। किसी भी पार्टी का राज्य हो, लोगों को खाने-पीने की सुविधा देगा, कोई किसी को मारे-काटे नहीं, लूट-पाट से बचाना यह सभी राज्य करते हैं। और अगर इतनी ही बात हो तो आप देखेंगे कि इन चीजों में मनुष्य के जीवन में और पशु के जीवन में बड़ा भारी फर्क नहीं है। आप एक कुत्ता पाल लीजिए। कुत्ता चाहेगा कि उसको खाने-पीने को मिल जाय, आराम से बैठा रहे, उसकी जिन्दगी बीत जाय आराम से। लेकिन मनुष्य ऐसा है कि खाने-पीने की चीजों के अलावा कभी-कभी उसके मन में एक विशेष प्रकार की भूख पैदा होती है, जरूर अपने शासक को देख कर एक भूख पैदा होती है। वह अपने शासक को देखता है, शासक भी मनुष्य है। उससे भी गलती होती है। कभी-कभी जी चाहता है कि शासक की गलती को उससे अपने मुंह से हम कहें। अगर वह नहीं कह पाता है, चाहे डर के मारे न कह सके, हिम्मत न पड़े लेकिन उसकी आत्मा संकुचित रहती है, वह दबा हुआ अनुभव करता है और जितना उसका विकास होना चाहिए, नहीं हो पाता। अगर ऐसा होगा तो कभी न कभी एक दिन विस्फोट होगा, कभी न कभी एक दिन विद्रोह होगा। कभी न कभी एक दिन बलवा होगा। चाहे अंत में जो कोई भी जीत जाय लेकिन अगर मनुष्य बराबर दबाया जायगा तो एक बार कभी न कभी उठेगा जरूर। यह भी कोई अच्छी चीज नहीं कि लोग दबाये रहें और एक बार जब असह्य हो जाय तो फूट पड़े उनकी अशांति। इस वास्ते कोई न कोई तरीका निकाला जाता है। जो तरीका निकाला गया, वह लोकतंत्र है। अगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य को विकास का पूरा-पूरा मौका देना है, मनुष्य की आत्मा को पूरे तौर पर विकसित होने का मौका देना है, मनुष्य के व्यक्तित्व को फैलने देना है तो मनुष्य की आत्मा को असन्तुष्ट नहीं होने देना चाहिए। इसलिए भारतीय समाजवाद के साथ लोकतंत्र बंधी हुई चीज है। दोनों अलग हो ही नहीं सकते। जैसे दूसरा तरीका जो था उसमें मैंने आपसे कहा था कि, चाहे वह कुछ भी हो, उसका नाम कुछ भी हो, उसके साथ कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में अधिनायकशाही बंधी हुई चीज है। जहां पर यह चीज है कि राजा हो, सम्राट हो या स्टेट अथवा समाज का जो भी शासक हो वहाँ उसी से राज्य चलता है। लेकिन जहाँ पर भारतीय समाजवाद होगा उससे हम लोकतंत्र को अलग कर नहीं सकते, क्योंकि जब उसका लक्ष्य ही यह है कि व्यक्ति को फैलने देना है, व्यक्ति को उभरने देना है तो जब तक लोकतंत्र न हो किसी और तरीके से व्यक्ति उभर नहीं सकता। इसलिए भारतीय समाजवाद में सिवाय लोकतंत्र के और दूसरी किसी प्रकार की कोई शासन-व्यवस्था चल नहीं सकती।

मैंने शासन-व्यवस्था की बात की। इतनी बात ध्यान में रखनी चाहिए, जो शायद मैंने पहले कांग्रेस का जिक्र करते हुए, सहिष्णुता का जिक्र करते हुए कही थी कि हर प्रकार की राय को, हर प्रकार की विचारधारा को पूरी तौर पर फैलने का मौका होना चाहिए। जिस किसी व्यवस्था में कला के ऊपर, साहित्य के ऊपर, दर्शन के ऊपर विज्ञान के ऊपर रोकथाम हो, जहां पर यह कहा जाय कि यह बात हमारे सिद्धान्त के विरुद्ध है इसलिए ऐसी बात आप नहीं कह सकते, आपको दंड दिया जायगा, वह भारतीय समाजवाद नहीं हो सकता और चाहे जो कुछ भी हो।

मैंने घंटे भर के करीब आपका समय लिया। मैं नहीं कह सकता कि जो कुछ कहना चाहता था वह कह सका या नहीं, लेकिन जैसा कि मैंने पहले निवेदन किया था, यदि इतना मैं आपके सामने रख सका कि कोई शख्स उस समय तक अपने को समाजवादी कह नहीं सकता जब तक कि वह समाजवाद के दार्शनिक आधारों को न समझे। यह विषय विचार करने का, गौर करने का है। यदि यह बात मैं आपके सामने रख सका तो मैं समझता हूँ कि मैं सफल हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समिधा

प्रमुख व्याख्यान तथा रचनाएं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे अपने मित्र डा० मोहम्मद हफीज सैयद के एक लेख का स्मरण आ रहा है, जिसमें उन्होंने एक लब्धप्रतिष्ठ और बौद्ध दर्शन के माने हुए विद्वान वैदेशिक विचारक के कुछ निरूपणों का जिक्र किया है, कि उपनिषदों में नीति और आचार-शास्त्र का स्थान नहीं के बराबर है। डा० सैयद का यह अनुभव अपने में अकेला नहीं है। बौद्ध-दर्शन के विचारकों, विशेषतया वैदेशिक विचारकों द्वारा इस प्रकार की आलोचना समझ में आती है। पाश्चात्य विद्वान बौद्ध-दर्शन की ओर प्रायः आकर्षित होते हैं उसका कारण बौद्ध दर्शन का अध्यात्म तत्व नहीं वरन् उसमें सन्निहित नीति और आचार तत्व है। निर्वाण के व्यावहारिक रूप में उनकी रुचि नहीं है और न उनका समाधि द्वारा अर्हत्व प्राप्त करने का ही इरादा है। वे अष्टांग मध्यम मार्ग को, निश्चय ही, मानवता को पीड़ित करने वाले अधिकांश दोषों से मुक्त कर सकने का साधन मानते हैं। जिस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ भारत में बौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ, वह थी छोटे-छोटे राजाओं का एक दूसरे के विरुद्ध अनवरत युद्ध, गणराज्यों में विभिन्न गणों की आपसी ईर्ष्या और प्रतिद्वन्द्विता, पतनोन्मुख वैदिक कर्मकांड की उलझी हुई संस्कार विधियां रक्ताक्त बलि-प्रदान, जिसे श्रीकृष्ण ने गीता में तामस तप की संज्ञा दी है, शरीर को तरह-तरह की यंत्रणा देना ही जिसमें संयम की पराकाष्ठा मानी जाती थी, ऐसे तामस तप का प्रचार आदि बातों ने मिलकर एक ऐसा बौद्धिक और आध्यात्मिक वातावरण पैदा कर दिया था जिसमें मध्यम मार्ग का सार्वभौम स्वागत निश्चित था। यह सिद्धांत स्वयं में अच्छा है और सभी व्यक्तियों द्वारा सदा-सर्वदा पालन किये जाने योग्य है। दूसरी भाषा में इसकी शिक्षा भारतवर्ष में बहुत प्राचीन-काल से ही दी जाती रही, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि इसका बौद्ध दर्शन में महत्वपूर्ण स्थान काफी सीमा तक तत्कालीन वातावरण के कारण है जिसमें इसका उपदेश दिया गया। सार्वजनिक पूजा के किसी वाह्य रूप का अभाव जो प्रारंभिक बौद्ध धर्म का अंग रहा है इसमें निश्चय ही दूसरा सहायक उपादान रहा होगा। यह अन्तराय जो थोड़ा बहुत अनुभूत हुआ उसकी पूर्ति, महायान संप्रदाय ने देवी-देवताओं की विशाल परम्परा का, जिसमें बोधिसत्वों और बुद्धों का मूर्धन्य स्थान है, निर्माण करके की। तब तक मध्यम-मार्ग मात्र पवित्र विधिनियम ही रह गया था। जो भी हो, पाश्चात्य प्रशंसकों और बौद्ध धर्म के विद्यार्थियों ने इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि वैदिक विचारधारा में नीति और आचार-शास्त्र को उतना प्रधान स्थान नहीं मिला है जितना बौद्ध दर्शन में है।

हिन्दू दर्शन शास्त्र के अन्य वैदेशिक अध्ययनकर्ताओं ने भी इस कमी को, जिसे वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू दर्शन की एक विशिष्ट कमी मानते हैं, लक्ष्य किया है। वे यह नहीं समझ पाते कि ऐसे गम्भीर विचारक जिन्होंने मायावाद और अन्य वेदान्त सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन और विकास किया, वे नीति और आचार सम्बन्धी दर्शन की उतनी बड़ी आवश्यकता को कैसे हृदयंगम नहीं कर पाये? यहां तक कि पूर्व मीमांसा मार्ग भी, जैसा कि उनका कहना है, नीति और आचार के प्रति उतना सचेष्ट नैतिक दर्शन मार्ग नहीं है जितना कि वेदों की सत्यता और चिरंतनता प्रतिपादित करने तथा वेदविहित यज्ञानुष्ठानों की अवश्यकारिता को बताने के लिए बनाया गया तर्कशास्त्र है। जहाँ तक नैतिक आचार-व्यवहार का प्रश्न है, उसका अधिक से अधिक एक गौण स्थान मात्र है।

इस प्रकार की आलोचना का प्रभाव भारतीय पाठक पर भी पड़ा। एक ऐसी जाति का सदस्य होने के नाते, जो विदेशियों द्वारा शासित की जा रही थी, स्वभावतः ही शासक वर्ग के विद्वानों की ओर से आयी हुई आलोचना उस पर विशेष प्रभाव करती थी। अनजाने ही उसका एक भाव लज्जित क्षमाप्रार्थी जैसा हो गया और इस आलोचना का उसने पाश्चात्य विचारों से समता न रखने वाली वस्तुओं का इधर-उधर की व्याख्या करके सामना करने की कोशिश की। इस्लाम धर्म के शताब्दियों से चले आने वाले संपर्क ने हिन्दुओं को धीरे धीरे अपने ईश्वर का अल्लाह या खुदा के समकक्ष देखना सिखा दिया। अतः जब ईसाइयों के गॉड के समकक्ष अपनी ईश्वरवादी भावना को देखने का समय आया तो उसे कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। इस आधार से प्रारम्भ होकर यह आलोचना, कि जहां तक नैतिक आचार-शास्त्र का सम्बन्ध है हिन्दू दर्शन में यह कमी है, तर्क सम्मत ही थी। मेरे विचार में हमें इस प्रश्न पर बारीकी से विचार करना चाहिए। प्रथम तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कुछ कारणों से हिन्दू दर्शन में नीति शास्त्र का वह स्थान नहीं है जो कि अन्य कुछ दर्शनों में है। यद्यपि एक दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य नहीं, पर तथ्य अवश्य है। इसके कुछ विशेष कारण हैं। सेमेटिक धर्म, यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म, ये सब जिस हद तक एकेश्वरवाद के मानने वाले है वह भारतवर्ष में उत्पन्न होने वाले किसी भी धर्म में नहीं मिलेगा। उदाहरण के लिए सेमाइट का ईश्वर न केवल अद्वितीय अकेला ही है वरन् वह असहिष्णु भी है। वह अपने अतिरिक्त अन्य किसी की पूजा सहन नहीं कर सकता। प्राचीन बाइबिल (Old Testament) के इस वाक्य "मैं, जिहोवा, तुम्हारा ईश्वर ईर्ष्यालु देवता हूँ," (I Jehovah Thy God am a jealous God) से उक्त कथन की पुष्टि होती है। नवीन बाइबिल (New Testament) का ईश्वर इससे कोमल शब्दों में बोलता है परन्तु उस कोमलता के आवरण में छिपा लौह वहां भी अनुभूत होता है। यह ईश्वर हर दृष्टि से एक मात्र संसार का सृष्टिकर्त्ता, पोषणकर्त्ता तथा संहारकर्त्ता सभी कुछ है। यहूदी धर्म अपने प्राचीन मौलिक तत्वों को बाहरी प्रभावों से सुरक्षित रखने में सफल रहा; पर दूसरी ओर ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म, पाश्चात्य दर्शन, विशेषतः प्लेटो के विचारों के सम्पर्क में काफी पहले ही आ गये थे। अतः ये धर्म पाश्चात्य दर्शन तथा प्लेटो के विचारों से काफी प्रभावित हुए बिना न रह सके। असुविधाजनक संदेह जबरदस्ती सिर उठाते और तर्कसंगत उत्तर की मांग करते। इसके परिणामस्वरूप एक प्रकार के मिश्रित दर्शन, सब पक्षों के समन्वित समाधान का अभ्युदय हुआ जिसने इन धर्मों के वाह्य सिद्धान्तों को तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षुण्ण रखा परन्तु साथ ही एक अन्तर्निहित आधारशिला की रचना की, जो कि सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण और व्यवस्था करके जो चीजें असंस्कृत और भोंड़ी लगती थीं, उनका निर्वाह कष्ट-कल्पना द्वारा कर देते थे। जहां तक ईसाई धर्म का सम्बन्ध है संभवतः इसके प्रारम्भ में ही बौद्ध धर्म के सम्पर्क में आ जाने से भी यह दर्शन की पुनर्निकटता के लिए प्रेरित हुआ। ईरान और उसके आगे के अन्य पूर्वी देशों तक आते-आते भारतीय विचारधारा से संसर्ग होने पर इस्लाम धर्म पर भी ठीक इसी प्रकार का प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप प्राचीन धार्मिक सिद्धान्तों के साथ ही साथ एक नये रहस्यवादी दार्शनिक आन्दोलन का जन्म और विकास हुआ। लेकिन इस आन्दोलन को जहां कार्य करना था उस पृष्ठभूमि की अपनी सीमाएँ थीं, जिनको सम्भवतः यह तोड़ नहीं सकता था। यह एक निश्चित प्रकृति का धर्म था। जहां तक इस्लाम का सम्बन्ध है, इस प्रकार की विचारधारा ने अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में ब्रह्मवाद का विकास किया, जिसकी अभिव्यक्ति 'हम अजो़स्त' और 'हमः ओस्त, हम अजोस्त' (प्रत्येक वस्तु उसी से निसृत हुई है) जैसे सूत्रों द्वारा हुई। यदि इसके स्थान पर संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाता तो उपनिषद् के प्रसिद्ध शब्दों में यथासुदीप्तात्पावकाद्विस्फुल्लिगाः (जिस प्रकार प्रदीप्त अग्नि से चिनगारियां निकलती हैं, उसी प्रकार उससे आत्माओं और अन्य तत्वों का प्रादुर्भाव हुआ) विश्व का उद्भव स्पष्ट हो जाता। यह थोड़े से अन्तर से 'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च' (जिस प्रकार मकड़ा अपने अन्दर से तागा निकाल कर अपना जाला बुनता है तथा अपने में ही उसे समेट भी लेता है। उसी प्रकार उसके द्वारा इस विश्व का निर्माण और संहरण होता है) आदि वाक्यों द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है। 'हमः ओस्त' वाला सिद्धान्त उन औपनिषदिक स्थलों द्वारा भी अभिव्यक्त किया जा सकता है जो शुद्धाद्वैतवाद का प्रतिपादन करते हैं या करते मालूम पड़ते हैं। जैसा कि प्रसिद्ध रहस्यवादी नियाज़ दावा करते हैं कि 'हमवन्दः हम मौलास्तम' (मैं ही उपासक और मैं ही उपास्य, ईश्वर हूँ), और कहते हैं :

'दीद अपने की थी उसे ख्वाहिश
आपको हर तरह बना देखा।'

इससे अधिक ऊंचा उठना संभव नहीं था। 'वह' लिंगहीन, रूपहीन नहीं बन सका।

उसी प्रकार, यद्यपि ईश्वर (ईसाइयों का गॉड) कह सकता था 'मैं ही आदि और अन्त हूं' और अच्छा ईसाई ईसा-मसीह के साथ कह सकता था 'मैं और मेरे पिता एक हैं' किन्तु जहां जाकर वह पिता स्वयं उस वस्तु की जो है भी, और नहीं भी है, छायामात्र होकर रह जाता है, उस परम वास्तविकता की धारणा तक पहुंचना, उन्हें संभव न हो सका।

वह जीवन-दर्शन और विचारधारा जहां उपास्य एक व्यक्ति स्वरूप (Personal Diety) है, फिर वह चाहे कितना ही अच्छा दयालु और कोमलहृदय क्यों न हो उस व्यक्ति का उपास्य के प्रति दृष्टिकोण एक अनिवार्य आवश्यकता हो जाती है। उपास्य, प्रत्यक्षतः अपने हस्तकौशल के परिणाम मनुष्य को भ्रष्ट होने देना नहीं चाहता, वह अपनी सृष्टि का विनाश, जब तक वह स्वयं न चाहे, सहन नहीं करेगा। अतः अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निःसीम विवेक के अनुरूप समाज के लिए कल्याणकारी नियम बना दिये 'उसने'। जो नियम बना दिये हैं अथवा 'उसकी' सुनियन्त्रित समाज की धारणा के औचित्य पर प्रश्न करने से कोई लाभ नहीं। इस धारणा को स्वीकार करके उन नियमों का पालन करने में ही बुद्धिमानी है। इस प्रकार एक सद्व्यक्ति के लिए उसके कर्तव्याकर्तव्य का मार्ग पूर्वनिर्शिचत है। उसे ईश्वर के बताये मार्ग पर बिना ननुनच किये चलना है। ईश्वर ने उसे जैसा बनाया वैसा वह है, इसमें वह कोई कार्य कारण की कल्पना नहीं कर सकता, क्षमा करना या दंड देना ईश्वर के वश में है। उसे केवल उन्हीं उलझनवाली स्थितियों में अपनी निर्णयात्मिका बुद्धि का प्रयोग करना है जिनके बारे में धर्मशास्त्रों में कोई स्पष्ट आदेश नहीं है। नैतिक व्यवहार केवल धर्मानुमोदित व्यवहार है और नीति सम्बन्धी विवेचना केवल धर्मशास्त्रों की व्याख्या के बारे में विद्वानों का आपसी विचार-विनिमय है। सही मुसलमान इससे आगे नहीं जा सकता।

नयी बाईबिल इतनी अनुदार (Rigid) नहीं है। इसमें स्वतंत्र निर्णय के लिए काफी क्षेत्र है। 'अपने पड़ोसी पर अपने समान ही स्नेह करो।' और 'दूसरों के प्रति वैसा ही व्यवहार करो जैसा अपने प्रति वांछित है' व्यवहार के उत्तम नियम हैं किन्तु साथ ही उन्हें आसानी से घटावढ़ा कर व्याख्या की जा सकती है और उन पर दार्शनिक वाद-विवाद किया जा सकता है। मेरा पड़ौसी कौन है? मेरे सामने कितने ही व्यक्तित्व (number of selves) हैं जो एक दूसरे से केवल अहं केन्द्रित (ego centricity) की विभिन्न सीमाओं के कारण भिन्न हैं। कौन से व्यक्तित्व विशेष के अनुसार 'पड़ोसी के प्रति प्रेम' का सिद्धान्त निर्धारित होगा। विभिन्न परिस्थितियों में मैं स्वयं अपने प्रति विभिन्न व्यवहार करता हूं और दूसरों से भी वैसा ही चाहूंगा। कभी मैं इन्द्रिय तृप्ति में निरत रहता हूं और कभी कड़े आत्मानुशासन में। किस लक्ष्य का मैं अनुसरण कर रहा हूं इस पर यह सब निर्भर करता है। इससे पहिले कि धर्मशास्त्रानुमोदित आचरण मैं दूसरों के प्रति करूं पहिले मुझे खुद तो निश्चय हो जाना चाहिए कि मैं अपने प्रति किस प्रकार का आचरण उपयुक्त समझूंगा। इस विषय का विवेचन स्वभावतः दूसरे विषय तक पहुंचा देता है कि कौन से साध्य प्रयत्न योग्य हैं, कौन से अन्तिम मूल्यांकन में अधिक महत्वपूर्ण ठहरते हैं। इस प्रश्न का समाधान करने के लिए मुझे पहिले कुछ मापदंड निश्चित करने होंगे जिनके अनुसार विभिन्न वस्तुओं का मूल्यांकन किया जा सके। यह सब स्पष्टतः नीति-शास्त्र का क्षेत्र है और धर्मशास्त्र ने अपने अनिवार्य विधि-निषेध के बीच, अपने स्पष्ट आदेशों की प्राचीर के भीतर व्यक्ति को विचार और कार्य की काफी स्वतन्त्रता दे रखी है।

स्पष्टतः व्यक्ति उपर्युक्त जटिल समस्याओं का समाधान कर सकता है और किसी भी परिस्थिति विशेष में अपना उचित कर्तव्य निर्धारण कर सकता है यदि वह पूरी तरह से सही आधार को लेकर चले, उसकी बुद्धि पूर्णतः निर्मल हो और किसी प्रकार की बद्धमूल धारणा से प्रभावित न हो। दूसरे शब्दों में इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति का व्यवहार उसी सीमा तक ठीक हो सकता है जहां तक उसकी बुद्धि ईश्वरीय मस्तिष्क को प्रतिफलित करती है और तदनुकूल है। मनुष्य हमेशा तो इस पर भरोसा कर नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता। यह तो प्रभु की कृपा पर निर्भर है जो स्वतंत्र है और जिसके लिए जोर-जबरदस्ती तो नहीं की जा सकती। साधारणतः मनुष्य इतनी ही आशा कर सकता है कि यदि वह पूरे समय नम्रता के साथ अपनी दुर्बलताओं से आगाह रहते हुए अपने विवेक के अनुसार सामर्थ्य भर ईमानदारी से कर्त्तव्यपालन करता है तो हो सकता है कि ईश्वर उस पर कृपा करके उसके समस्त कृताकृत के अपराधों को क्षमा कर दे। इस विश्वास और प्रपत्ति में भी ईश्वर की करुणा पर परम निर्भरता में ही उसे क्षमा और मुक्ति की एक मात्र आशा हो सकती है। अतः जहां तक मनुष्य समझ सके दैवी इच्छा और आदेशों के अनुसार ठीक-ठीक कार्य करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

बहुत कम पाश्चात्य दार्शनिकों ने जानबूझ कर धर्मशास्त्रों से विवेचना का आरम्भ किया है। उनका विषय-प्रवेश बहुत कुछ धर्म-निरपेक्ष रहा है। यहां तक कि उनमें से जो बहुत धर्मप्राण ईसाई रहे हैं उन्होंने भी विवेचना में धर्म से निरपेक्ष रहने की चेष्टा की है। फिर भी प्रचलित वातावरण से अप्रभावित रहना सम्भव नहीं था। नैतिक विवेचना ने अपना प्राधान्य कायम रखा बल्कि इसकी धर्म-निरपेक्षता ने इसका महत्व बढ़ाया ही। धर्म हो या न हो मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज का सदस्य होने के नाते उसे अपना व्यवहार एक खास ढांचे में ढालना होगा। वह खास ढांचा कैसा होगा, उसका प्रेरक तत्व या तत्व समूह क्या होगा यह सब महत्वपूर्ण प्रश्न एकदम उपस्थित होते हैं। वे लोग जो सद्व्यवहार के लिए उचित मार्ग-दर्शन के लिए ईश्वरीय आदेश अथवा पथ-प्रदर्शन की ओर नहीं देखते, नीति-शास्त्र अथवा नैतिक विवेचना पूरे दर्शन-शास्त्र की धुरी बन जाती हैं। अध्यात्म विद्या, परम वास्तविकता का विज्ञान, विश्व की प्रकृति की विवेचना, इस सबका महत्व वहीं तक है जहां तक वह उचित व्यवहार समस्या को सुलझाने में मदद करती है। इसलिए, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि पाश्चात्य दर्शन में, चाहे वह धर्म शास्त्र से सम्बन्धित हो अथवा धर्म-निरपेक्ष, नीति-शास्त्र को बहुत अधिक महत्व दिया गया हो।

भारतीय विचारधारा इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि बन्धन का कारण कोई अप्रतिषेध्य अगम्य ईश्वरीय आदेश अथवा इच्छा नहीं है बल्कि अविद्या-अज्ञान है। अज्ञान तो ज्ञान से दूर किया जा सकता है जैसे प्रकाश से अंधकार दूर किया जा सकता है। इसलिए बन्धन का प्रतिकार ज्ञान से किया जा सकता है—प्रधानतः अपने आत्मस्वरूप का ज्ञान और फिर विश्व में और जो कुछ भी जानने योग्य हो उसका ज्ञान। यदि ईश्वर का अस्तित्व है तो वह भी जानने योग्य पदार्थों में से एक है। अतः यह निश्चित कर लेना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि ज्ञान योग्य विषय और ज्ञान के साधन क्या हैं। फिर उनका अनुशीलन करे। केवल यही निर्वाण के परमलक्ष्य तक पहुंचा सकता है। सच पूछिये तो 'निर्वाण' अथवा Salvation शब्द इस प्रसंग में ठीक नहीं है। उचित शब्द तो मोक्ष है—अविद्या के बन्धन से छूटना। भारतीय विचारक यह नहीं मानते कि आत्मा त्रुटिपूर्ण है, प्रारम्भतः पाप से उसकी उत्पत्ति है जिससे बाद में इसको निष्कलुष बनाना है और इसका उद्धार करना है। उनकी दृष्टि में आत्मा प्रकृत्या पूर्ण और इसकी नैसर्गिक प्रकृति को प्रकाश में लाने के लिए आपको केवल अविद्या का कोहरा हटा देना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न दर्शन आत्मा की, विश्व की और अविद्या की प्रकृति की विभिन्न रूप से व्याख्या करते हैं। अद्वैत दर्शन के मायावाद में यह चरमकोटि पर पहुंच जाती है। यहां पर ईश्वर के स्थान पर मात्र 'वह' संकेतित ब्रह्म है, वह परमवस्तु मात्र रह गया। किन्तु प्रत्येक दर्शन, बिना किसी अपवाद के, ज्ञान के परम महत्व पर बल देता है और मोक्ष को, अविद्या से मुक्ति को, परम पुरुषार्थ और जीवन का चरम लक्ष्य मानता है।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारतीय दर्शन की सभी विचारधाराओं का एक महत्वपूर्ण अंग है। मेरा यहां विवेचन करना व्यर्थ है कि वेद का संहिता भाग इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है या नहीं। उपनिषदों में इसको निश्चित रूप से स्वीकार किया गया है जो कि सभी दर्शनों का आदि स्रोत है। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' लगभग एक स्वतः सिद्ध प्रमाण जैसा ही मान लिया गया है। ऐसी विचारधारा में, ईश्वर की स्थिति, यदि उसके अस्तित्व को स्वीकार कर लिया जाय, सेमिटिक जिहोवा की स्थिति से बहुत अधिक भिन्न हो जाती है। विश्व उसके मन की तरंग पर निर्भर प्राणिमात्र नहीं रह जाता। जीव का कर्म पृथ्वी और स्वर्ग में उसकी भौतिक और मानसिक स्थिति निश्चित करना है। वह अपने भाग्य का सृजन स्वयं कर सकता है वह व्यक्ति जो इस सिद्धान्त में विश्वास करता है अपने को ऊंचा उठा सकता है। वह अपने कष्टों को धीरतापूर्वक सहन करता है और भविष्य को आशापूर्ण दृष्टि से देख सकता है।

अज्ञान का नाश लक्ष्य होने पर, व्यक्ति को एक सर्वशक्तिमान् व्यक्तित्व की इच्छा के अनुसार अपने को मोड़ने और अनुकूल करने की आवश्यकता नहीं रहती। उसके मार्गप्रदर्शन के लिए धर्मशास्त्र है पर उसके विधि-निषेध की निरंकुशता तब समाप्त हो जाती है जब व्यक्ति यह अनुभव कर लेता है कि यह केवल उसी प्रकार का विधि-निषेध है जैसा कि एक बड़ा भाई छोटे भाई के लिए कर सकता है। छोटा भाई किसी दिन बड़ा होकर स्वयं ही उस परामर्श का औचित्य और उपादेयता समझेगा। जैसे-जैसे अज्ञान का बन्धन दूर करने की चेष्टा होगी, जैसे-जैसे ज्ञान निर्बन्ध होता जायगा, वैसे वैसे उचित उसके लिए उतना ही स्वाभाविक होता जायगा जैसे कि बादल से पानी। उसकी स्थिति धर्म-मेघ जैसी ही है। इसके बाद वह धर्मशास्त्र के नियमों पर निर्भर नहीं रहेगा बल्कि उसकी अपनी स्थिति ही एक स्वतंत्र नियम होगी।

यह सरलता से देखा जा सकता है कि यहां बल ज्ञान पर दिया जाता है न कि आचार पर। इसलिए तत्सम्बन्धित पुस्तकों में जिनका मुख्य विषय तत्संबन्धी सिद्धान्त है नैतिक विवेचना को प्रथम स्थान नहीं दिया जा सकता। अज्ञान की तरह ज्ञान का आधार भी प्रज्ञा ही है। सत्य को प्रतिफलित करने के लिए बुद्धि को निर्मल बनाना होगा। साधारणतः ऐसा होता है कि हमारा मस्तिष्क अनवरतरूप से एक वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर दौड़ता रहता है और जो भी ज्ञान हम प्राप्त करते हैं वह चुना हुआ और अपूर्ण होता है। सैकड़ों इच्छाओं के दास होने के कारण और परिणामतः उतनी ही अनिच्छाओं के कारण हम केवल वही ज्ञान अर्जित करते हैं जो हमें सन्तोषजनक मालूम होता है। इस तरह हमारी दृष्टि सदैव विकृत और इच्छाओं-अनिच्छाओं से रंजित रहती है। परिपूर्ण ग्रहणशीलता के लिए यह आवश्यक है कि हमारा मस्तिष्क निर्विकार और एक लक्ष्योन्मुख हो। इसका तात्पर्य है कि सत्य का साक्षात्कार होने से पहिले समाधि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता होगी और समाधि अभ्यास और वैराग्य से ही प्राप्त हो सकती है, एक लक्ष्यता और चित्त को अस्थिर करने वाले विषयों से अपने को खींच लेने से ही यह सम्पन्न हो सकते हैं। कार्यशीलता का नितान्त अभाव स्पृहणीय होते हुए भी असम्भव है। जो प्राप्त किया और जिसके लिए चेष्टा की जानी चाहिए वह यह है कि हमारे कार्य अपने पीछे रुचि और अरुचि, अतृप्त इच्छाओं और निराशाओं की एक लम्बी श्रृंखला न छोड़ते जायें। दूसरे शब्दों में हमारे कार्यों को निष्काम होना है। ज्यों-ज्यों हमारा अज्ञान घटता जायेगा और हम समाधि के पथ पर अग्रसर होते चलेंगे त्यों-त्यों वे अधिकाधिक और स्वाभाविक रूप-निष्काम होते जायेंगे, पर प्रारम्भ में प्रयत्न करना होगा। चयन, अन्तरावलोकन और सूक्ष्म परीक्षण द्वारा पद-पद पर मार्ग-दर्शन होना होगा। अब यहीं पर नीति शास्त्र की आवश्यकता सामने आती है। सद्व्यवहार स्वयं अपने में लक्ष्य नहीं है और न मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुंचने का एकमात्र अथवा सीधा पथ ही है। किन्तु यह एक सहायक है, अविद्या के नाश के लिए जिस बौद्धिक सन्तुलन की आवश्यकता है उसे प्राप्त करने में एक अनिवार्य सहायक है। यह इच्छाओं की पूर्ति का नहीं बल्कि उन्हें समाप्त करने का साधन है।

यदा सर्वेप्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिश्रिताः।
तदा मर्त्योऽमृतो भवति (कठ-अध्याय २, वल्ली ३-१४)

जब हृदय में निहित सारी इच्छाएं छोड़ दी जाती हैं तो मर्त्य अमर हो जाता है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चात्य दर्शन की भांति जो हिन्दू दर्शन में भी नीति-शास्त्र सम्बन्धी विवेचना को वही स्थान और महत्व प्राप्त नहीं है यह कोई विस्मय करने की बात नहीं है।

फिर भी प्रासंगिक उल्लेख और महत्वपूर्ण वादविवाद तो जहां-तहां है ही जैसा कि होना एक प्रकार से अनिवार्य सा है। इस निबन्ध में अपने को उपनिषदों तक ही सीमित रखूंगा क्योंकि समस्त भारतीय दर्शन का आदि स्रोत उपनिषद ही हैं। समस्त प्राचीन दर्शनशास्त्र उनके भाष्य मात्र हैं।

प्रारम्भ में मैं आपका ध्यान ईशावास्योपनिषद् के प्रारम्भिक दो छन्दों की ओर आकृष्ट करूंगा। मेरे विचार में सम्पूर्ण भगवद्गीता इन दो छन्दों का भाष्य छोड़कर और कुछ नहीं है:

ईशावास्यमिदं सर्वम् यत्किञ्चिज्जगत्यांजगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।
कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।

मैं दूसरे मंत्र को पहिले लेता हूं। 'मनुष्य सौ साल तक यानी अपनी पूर्णायु भर, इस प्रकार से कार्य करता हुआ जिये कि उनके परिणापस्वरूप उत्पन्न होने वाला सुख दु:ख, आशा और आशंका पुण्य और पाप उसे न व्यापे। यह सौ वर्ष कैसे हों यह नीचे दिये गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्धरण में बताया गया है (शुक्ल यजुर्वेद ३६वां अध्याय २४वां मंत्र)':

पश्येम शरदः शतम्. जीवेम शरदः शतम् श्रृणुयाम शरदः शतम्
प्रब्रवाम शरदः शतम्, अदीनाः स्याम शरदः शतम्।

हम सौ वर्ष तक जियें, हमारी बुद्धि सौ साल तक कार्य करे। चक्षु पांचों ज्ञानेन्द्रियों का प्रतीक है। हम सौ साल तक आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करते रहें (वेद यानी श्रुति का मतलब है समाधि में जो सुना गया हो) हमारी कर्मेन्द्रियां सौ साल तक कार्य करती रहें (वाक् पांचों कर्मेन्द्रियों का प्रतीक है) हम सौ साल तक किसी के ऊपर भार-स्वरूप न हों।

पहिला मंत्र यह बताता है कि कार्य किस प्रकार किया जाय कि उसका फलाफल हमें प्रभावित न कर सके।

संपूर्ण विश्व ईश्वर से आच्छन्न है, उसके द्वारा देखा जा रहा है और वह उसमें परिपूर्ण रूप से व्याप्त है। चूंकि संपूर्ण विश्व ईश्वर ही, और उसका प्रकाशन ही है, अतः एक वस्तु की अपेक्षा दूसरी को अधिक पसन्द करने का, एक वस्तु को चाहने का और दूसरी को घृणा करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए मनुष्य को त्याग और निर्लिप्तता द्वारा उपलब्ध जो कुछ भी जीवन में सामने आये उसका अनुभव करना चाहिए और उसका रस लेना चाहिए। उसे लोभ न हो,दूसरों की संपत्ति प्राप्त करने की इच्छा न करे। यह अन्तिम वाक्य बाइबिल के "Thou shalt not steal तुम चोरी नहीं करोगे" का वैदिक समकक्ष नहीं है। यहां दूसरों से तात्पर्य दूसरी इन्द्रियों से है और जो वस्तुएं उन्हें आकृष्ट करती हैं वही उनकी संपत्ति है। इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति अपने आप को इन्द्रियों के तद्गत विषयों की ओर आकृष्ट न होने दे।

कठोपनिषद की द्वितीय वल्ली अच्छे जीवन के कुछ पक्षों पर और परमपुरुषार्थ, यानी अविद्या से मुक्ति, के नीति-शास्त्र से सम्बन्ध पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। इसका प्रारम्भ प्रेय और श्रेय में भेद दिखाते हुए होता है और यह बताया जाता है कि श्रेय ही साध्य है:-

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते
उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः
तयोः श्रेय आददानस्य साधु
भवति हृयतेऽर्थाद्य उप्रेयोवृणीते।

प्रेय से श्रेय भिन्न है। दोनों का लक्ष्य भिन्न है और भिन्न प्रकार से वे मनुष्य को बांधते हैं। वह जो श्रेय को चुनता है उन्नति करता है पर जो प्रेय को चुनता है परम पुरुषार्थ से, जो जीवन का चरम साध्य है, गिर जाता है। आगे और भी बताया गया है:-

तमः क्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः।।

वह व्यक्ति जो फल के प्रति निर्लिप्त होकर कार्य करता है, इच्छाओं की आपूर्ति से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न हुए सारे क्लेशों से जो परे हो चुका है वह धातु के प्रसाद से उपलब्ध हुए आत्मा की महत्ता के दर्शन करता है। धातु से तात्पर्य मस्तिष्क और इसकी साधना-भूत इन्द्रियों से हैं। मस्तिष्क का प्रसाद किस प्रकार सुलभ हो यह पतंजलि के योग दर्शन के निम्नांकित प्रसिद्ध सूत्र में बताया गया है:—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणाम् सुखदुःख—
पुण्यापुण्यविषयाणां भावना तश्चित्तप्रसादनम्।।

बुद्धि का प्रसाद, सुख के प्रति मैत्री का, दुःख के प्रति करुणा का, पुण्य के प्रति मुदिता का और अपुण्य के प्रति उपेक्षा का अभ्यास करने से प्राप्त होता है। जो प्रसाद प्राप्त करना चाहता है वह सक्रिय रूप से विश्व की सुख वृद्धि का उपाय करे, दुःखियों के प्रति सक्रिय करुणा का अभ्यास करे, जो लोग सत्कार्य करने में लगे हुए हैं उनकी सहायता करे, बुरे लोगों के प्रति अक्रोध का अभ्यास करे पर साथ ही अनेक कार्यों का सक्रिय विरोध करता रहे—पाप से, अपकर्म से घृणा होनी चाहिए, पापी से नहीं।

अन्तिम मंत्र कहता है:—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तोनासमाहितः
नाशान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।

'जो दुष्कर्मों से विरत नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियां वश में नहीं हैं जिसने समाधि द्वारा स्थिरता प्राप्त नहीं कर ली है उसे ज्ञान द्वारा इस परम सत्य की उपलब्धि नहीं होगी।'

ज्ञान साधन के रूप में कार्य के स्थान पर नीचे दिये गये स्थल की तरह अन्य स्थलों पर भी बल दिया गया है:—

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वांगानि
सत्यमायतनम् (केन० खंड ४, मंत्र ८)

तप, यानी इंद्रियों और कार्यों पर नियंत्रण, षडंग वेद (ज्योतिष, व्याकरण आदि) विद्या (ज्ञान) के आधार हैं, विद्या उनमें प्रतिष्ठित है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में, वेदान्त की भूमिका में सद्व्यवहार के प्रश्न पर प्रकाश डालने वाले कुछ मनोरंजक स्थल हैं। प्रसंगतः यह हिन्दू दर्शन में मिलने वाले विशाल कर्तव्य-क्षेत्रों की भावना को और अधिक स्पष्टता देती है। विश्व एक समन्वित इकाई है। इसका प्रत्येक भाग दूसरे से संबंधित है। बड़े से बड़ा देवता और क्षुद्र से क्षुद्र कीट एक अविभाज्य विराट के अंग हैं। प्रत्येक अंग का सुचारु रूप से कार्य करना समष्टिगत हित के लिए आवश्यक है। नीतिसम्मत व्यवहार, अच्छा व्यवहार केवल मानव जगत तक ही सीमित नहीं रहना है बल्कि इसे समस्त सृष्टि का जहां तक सम्बन्ध है, कार्य करना है। भले ही किसी को, और प्रारम्भ में संभव भी नहीं है, विश्व अपनी परिपूर्णता में कैसे है, इसका स्पष्ट ज्ञान न हो, मानवेतर प्राणियों के प्रति अपने कर्तव्य का बोध बहुत अस्पष्ट हो, फिर भी उसे आवश्यक प्रयत्न तो करना ही होगा। यह प्रयत्न ही उसे सफलता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान की वृद्धि की ओर ले जायगा और ज्ञान अधिक अच्छे कार्य व्यवहार की ओर ले जायगा। हर एक को एक बार अपना कर्तव्य समर्पण की भावना से प्रारम्भ करने भर दीजिये फिर उसके अधिकार तो स्वयं ही सुरक्षित हो जायेंगे क्योंकि जो एक व्यक्ति का कर्तव्य है वह दूसरे का अधिकार तो स्वभावतः बन जाता है।

स नव व्यभवत्तच्छ्रेयो रूपमत्यसृजत धर्म्मं तदेतत्क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मस्तस्मात्धर्म्मात्परं नास्त्यथो अवलीयान्वलीयान् समाशंसते धर्म्मेण। (वृहत् अध्याय १, ब्राह्मण ४ मंत्र १४)

यद्यपि प्रजापति ने क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप धारण किये फिर भी वह सुचारु रूप से कार्य नहीं चला सके अतः उन्होंने धर्म की रचना की। धर्म नियम कानून को नियंत्रित करता है जो कि अन्य सबको नियंत्रित करता है। धर्म से बड़ा और कोई नहीं है। धर्म के द्वारा निर्बल बलवान को जीत लेता है।

यहां यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि वर्तमान प्रसंग में धर्म से अभिप्राय किसी सम्प्रदाय विशेष या मतविशेष से नहीं है। वास्तव में संस्कृत में 'रेलीजन' (Religion) का ठीक समकक्ष कोई शब्द उपलब्ध नहीं है। धारयतीति धर्म, इत्याहुः धर्म वह है जो निखिल विश्व का आधार है, उसे संभाले रहता है। मनु ने इसके दस अंग बताये हैं, वे हैं अच्छे कार्य के लिए सतत् प्रयत्न, दया, आत्म-नियंत्रण, निर्लोभ, सत्य आदि।

अथोऽयं आत्मा सर्वेषां भूतानांलोकः सयज्जुहोति यद्यजते तेन देवानां लोकोऽथ यदनुब्रूते तेन ऋषीणामथ यत्पितृभ्यो निपृणाति यत्प्रजामिच्छते तेन पितृणामथ यन्मनुष्यान्वासयते यदेभ्योऽशनं ददाति तेन मनुष्याणामथ यत्पशुभ्यस्तृणोदकं विन्दति तेन पशूनां यदस्यगृहेषु श्वापदा वयास्या पिपीलिकाभ्य उपजीवन्ति तेन तेषां लोको यथाहवैस्वाय लोकायारिष्टिमिच्छेदेवं हैवंविदे सर्वाणि भूतान्यरिष्टिमिच्छन्ति। (वृहत् अध्याय १, ब्राह्मण ४, मंत्र १६)

कार्यों में लगी हुई आत्मा ही लोक है जो प्राणिमात्र के जीवन, आश्रय और प्रसन्नता का आधार है। जो पूजा और बलिदान वह करता है उससे वह देवताओं का लोक हो जाता है। अपने अध्ययन-अध्यापन से ऋषियों का, पितरों के तर्पणश्राद्ध से और वंशधरों को छोड़ जाने की इच्छा से पितृलोक, मानवजाति की सेवा करने से मनुष्यों का, पशुओं का दाना पानी देने से वह कुत्तों, पक्षियों और छोटे-छोटे चींटी आदि जन्तु जो उसके घर में रहते हैं और उससे अप्रत्यक्षतः अपना भरण-पोषण पाते हैं, वह पशु लोक हो जाता है। जिस प्रकार मनुष्य अपना कल्याण चाहता है उसी प्रकार प्राणिमात्र उसका कल्याण चाहते हैं जो इस मार्ग को जानता है और तदनुसार चलता है।

पांचवें अध्याय के द्वितीय ब्राह्मण में एक मनोरंजक कथा है। प्रजापति के तीनों प्रकार के पुत्र यानी देव, दानव और मनुष्य कुछ काल तक शिष्य रूप से उनकी सेवा करते रहे। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने प्रत्येक समूह को एक ही सलाह दी 'द'। प्रत्येक ने उसे अपने अपने स्वभाव के अनुसार समझा। देवताओं ने समझा 'दाम्यत' (दबाओ, वश में करो) मनुष्यों ने 'दत्त' (दो) और असुरों ने 'दयध्वम्' (दया करो)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राय: देवताओं और असुरों का उल्लेख सौतेले भाइयों और प्रजापति के पुत्रों के रूप में किया जाता है। वे मस्तिष्क की सामाजिक और असामाजिक स्वोन्मुखी और परोन्मुखी, सभ्य और असभ्य प्रवृत्तियां ही हैं। वे प्राय सदैव ही विरोधोन्मुखी रहती हैं। अच्छी प्रवृत्तियों को उचित नियंत्रण में रखना होता है ताकि वे ठीक मार्ग पर बढ़ सकें और उनका उद्देश्यपूर्ण उपयोग हो सके। एक सुधारोन्मादी, अपने उत्साह से लाभ की जगह हानि ही अधिक पहुंचायेगा। दुष्प्रवृत्तियों को 'दया करो' (अपने कार्यों से मानव जाति पर होने वाली प्रतिक्रिया पर विचार करो) इस सिद्धान्त से रोका जाता है। मनुष्य के लिए आदेश है 'दो—जो कुछ तुम्हारे पास है उस सबका त्याग करो, दूसरों की सेवा के लिए सब कुछ दे दो।'

देवों और असुरों के सम्बन्ध में एक मनोरंजक कथा पुराणों में है, जिसमें महिषासुर के नेतृत्व में असुर और इन्द्र के नेतृत्व में देवताओं का संग्राम हुआ। देवताओं की पराजय हुई। तब समस्त देवों के समष्टिगत तेज से महालक्ष्मी का प्रादुर्भाव हुआ और देवताओं ने असुरों को पराजित किया। देवी ने उनको नष्ट नहीं किया ताकि 'लोकान् प्रयान्तु रिपवो हि शस्त्रपूताः'—उनकी कृपाण से पवित्र हुए शत्रु भी उच्चतर लोकों को जा सकें। असुरों की असुर रूप में हत्या कर दी गयी पर इससे पवित्र होकर उन्होंने उच्चतर लोकों की प्राप्ति की। अर्थ स्पष्ट है। जैसा कि प्राय: होता है असत्प्रवृत्तियां सत्प्रवृत्तियों पर हावी हो जाती हैं और सत्प्रवृत्तियां दब जाती हैं। महिषासुर की सेना (भैंस, क्रोध, अनियंत्रित बल और शक्तिमद की प्रतीक है) विजयिनी हो जाती हैं। विनाश सन्मुख उपस्थित होने पर इच्छाशक्ति अपना प्रभाव दिखाती है। मनुष्य अपनी समस्त शक्ति एक चरम प्रयत्न में लगा देता है। सत् की असत् पर विजय होती हैं, किन्तु वह मानसिक शक्ति जो असत् का आधार थी इससे नष्ट नहीं होती। यह तद्विरुद्ध दिशा में कार्य करने के लिए उपलब्ध रहती है। असद्भावनाएं, असामाजिक प्रवृत्तियां निष्कलुष हो जाती हैं। फ्रायड की शब्दावलि का प्रयोग करें तो वह परिष्कृत होकर सामाजिक कल्याणयुक्त प्रवृत्तियों में बदल जाती हैं। असुरों पर विजय पाने पर देवताओं का गर्व, अथवा वह गर्व जो कोई मनुष्य अपने आत्मनियंत्रण अथवा मानवीय दुर्बलताओं से मुक्त होने पर करे, उसका अध:पतन कर सकता है और पूरी तरह से असंगत है, यह केनोपनिषद के तीसरे खंड में सुन्दर यक्षोपाख्यान द्वारा स्पष्ट किया गया है। जिसमें उमाहैमवती देवताओं का विजय गर्व खंडित कर देती हैं।

उपनिषदों ने सुव्यवहार के सामान्य सिद्धान्त बता दिये हैं। वे उनकी बारीकियों में नहीं गये हैं क्योंकि उनके लिए यह आवश्यक नहीं था। किंतु उन्होंने सत्य के चरम महत्त्व पर बार-बार बल दिया है। मनुष्य सत्य हो, अपने प्रति दूसरों के प्रति सत्य हों, आत्मदर्शन द्वारा वह उस आवरण को छिन्न कर दे जो उसकी वास्तविक प्रकृति को उससे छुपाये रखता है, फिर सारे गुण स्वयं उसके पीछे-पीछे चले आयेंगे।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा,
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।
सत्यमेव जयते नानृतम्,
सत्येन पंथा विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामाः,
यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्।
(मुण्डक-मुण्डक ३, खंड १, मंत्र ५ और ६)

'यह शुद्ध प्रकाशमय आत्मा, जिसका सारे चारित्रिक दोषों से मुक्त होकर यति लोग अपने अन्दर दर्शन करते हैं, सत्य, तप, ज्ञान और ब्रह्मचर्य द्वारा प्राप्त की जा सकती है। सत्य ही केवल विजयी होता हैं असत्य नहीं। जिनकी समस्त कामनाएं पूर्ण हो चुकी हैं ऐसे ऋषि जिस देवमार्ग द्वारा उस सत्यकोष को प्राप्त करते हैं वह सत्य द्वारा ही खोला जाता है।

यज्ञ के बारे में कुछ शब्द कहे बिना हिन्दू नीतिशास्त्र का कोई भी वर्णन संपूर्ण नहीं होगा इस शब्द का प्रायः उन धार्मिक क्रियाओं के लिए ही प्रयोग किया जाता है जिनमें घृत और हवि अग्नि में छोड़ा जाता है। हालांकि यज्ञ का यह सामान्य और जनप्रिय रूप है फिर भी उसका यह एकमात्र स्वरूप नहीं है। इससे कहीं उच्चतर और अधिक परिष्कृत रूप हैं। भगवद्गीता के चौथे अध्याय में श्रीकृष्ण द्रव्य यज्ञ (सामान्य यज्ञ) तप यज्ञ, योग यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ और ज्ञान यज्ञ का उल्लेख करते हैं। कोई भी कार्यमात्र कर्तव्य दृष्टि से किये जाने पर यज्ञ हो जाता है। प्रत्येक कार्य यज्ञ की भावना से ही किया जाना चाहिए। जैसा कि श्रीकृष्ण कहते हैं, नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः—'दूसरे लोकों की तो बात ही क्या यह लोक भी उस व्यक्ति के लिए नहीं है जो अपने समस्त कार्य यज्ञ की भावना से नहीं करता, जो अपना समस्त जीवन ही यज्ञ के रूप में नहीं व्यतीत करता'।

वास्तविक क्रिया के सिवा भी यज्ञ के दो प्रधान भाग हैं। पहिला, जो और सब चीजों से पहिले आता है, संकल्प है, कार्य को करने का निश्चय। याजक, जो यज्ञ करता है, चाहे वह किसी तरह का हो अपने कार्य का आरम्भ अभिमान के साथ नहीं करता बल्कि बहुत ही विनम्रता के साथ करता है। वह ईश्वरीय शक्ति से अपनी सहायता के लिए प्रार्थना करता है और कहता है; 'व्रतं चरिष्यामितच्छग्येयमेतन्मेराध्यताम्—मैं इस कार्य को करना चाहता हूं, इसे पूर्ण करने की मुझे शक्ति दें,' और फिर कहता है—यह वास्तव में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है—'इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि—मैं अब असत्य को छोड़कर सत्य को वरण करता हूं।' कोई यज्ञ, कोई कार्य तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि यह पूर्णरीति से सत्यपूर्ण भावना से नहीं किया जाता। किसी प्रकार के छल का मिश्रण नहीं होना चाहिए या जो उससे भी बुरा है वह आत्मप्रवचना नहीं होनी चाहिए, कोई मानसिक निग्रह अथवा शर्त न रहे, किसी प्रकार की उत्तेजना अथवा अवसाद न रहे; किसी भी कार्य के उचित रूप से होने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने लिए ही किया गया हो न कि दूसरों की प्रशंसा पाने के लिए अथवा निंदा से बचने के लिए।

यज्ञ का दूसरा महत्त्वपूर्ण आवश्यक अंग बलि है। सिद्धान्त यह है कि बलि पशु में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रहने वाली शक्ति बलिप्रदाता में समाविष्ट हो जाती है। निम्नाकित एक तान्त्रिक उपनिषद् का मन्त्र बलिप्रदान पर काफी प्रकाश डालता है, जिसका भ्रमपूर्ण अर्थ कितने ही निरीह पशुओं के रक्तपात का कारण बनता है—

मैषैर्नरैश्च वैडालैरौष्ट्रैराजैश्चमाहिषैः।
पलैरेभिर्यजेद्यस्तु स मुक्तो नात्र संशयः।।

'जो व्यक्ति अपना यज्ञ, भेड़, मनुष्य, बिल्ली, बकरी और भैंस के मांस से करता है उसे मोक्ष में कोई सन्देह नहीं है,

क्या ही सुन्दर चुनाव है! हिन्दू भारतवर्ष में आजतक किसी ने बिल्ली और ऊंट का बलिदान नहीं सुना होगा। वास्तव में यह शब्द प्रतीकात्मक हैं। भेड़ मोह का प्रतीक है (घबराहट, मोहान्धता, लिप्तता, बुद्धि का ठीक कार्य न करना) मनुष्य अहंकार का, बिल्ली लोभ की, ऊंट मत्सर का (ईष्या द्वेष) बकरी काम की (असंयम) और भैंस क्रोध की प्रतीक है। वास्तव में जो कुछ कहा गया है वह है कि मोह, अहंकार, लोभ, मत्सर, काम और क्रोध का बलिदान करना चाहिए। यही छह बलिपशु हैं। बलिदान करने के परिणामस्वरूप जो शक्ति उनमें है—यानी जो मानसी शक्ति वे व्यय करते हैं और जो दोष वे संचित करते हैं वह सब शक्ति बलिप्रदाता को उपलब्ध हो जाती है। इन दूर होती हुई प्रवृत्तियों का सात्म्य उसकी इच्छाशक्ति और चरित्र में वृद्धि करता है और अन्यथा कठिन कार्यों को करने की शक्ति देता है।

कितने ही अच्छे और उच्च कार्य, स्वार्थपरता का अंश उनमें प्रविष्ट होते ही, दूषित हो जाते हैं। इसीलिए याजक के लिए ब्रह्मचर्य का विशेषतः विधान है। अपने संकीर्ण अर्थ में यह शब्द यौन संबंध से परिहार का बोध कराता है। किन्तु इसका एक विशद अर्थ भी है. जो कि सम्पूर्ण इन्द्रियगत विषयों के परिहार का प्रतीक है। छान्दोग्योपनिषद में इसके इस विशद अर्थ से ही तात्पर्य है जब वहां कहा गया कि 'यदयज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेवेतत् (जिसे वे यज्ञ कह कर पुकारते हैं वह वास्तव में ब्रह्मचर्य ही है)।' (अध्याय ८, खंड ५, मंत्र १)

अतः कर्म नम्रता, ईमानदारी और सत्यता से किये जाने चाहिए, उन्हें केवल कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर ही करें और स्वार्थ और प्राकृतिक प्रलोभनों के विरुद्ध सतत संघर्ष करते रहें।

ऊपर जो थोड़े से उद्धरण मैंने दिये हैं, मुझे आशा है कि वे नीति तत्व के संबंध में औपनिषदिक विचार-धारा दिखा सकने में समर्थ हुए होंगे। इसे प्रथम स्थान न देते हुए भी उपनिषदों ने सद्व्यवहार की आवश्यकता पर काफी बल दिया है। उन्होंने दूर तक पहुंचने वाले सामान्य सिद्धान्त निर्धारित कर दिये हैं। वेदान्त का आग्रह है कि विवेक—सत्य और असत्य के बीच, कर्तव्य और अकर्तव्य के बीच विभेद करना—अधिकारी की—वह व्यक्ति जो शिष्य बनाने योग्य हो—आवश्यक योग्यता है। यह दिखाता है कि सत्कर्म—उचित कार्य और तप, आत्मसंयम और निग्रह, साथ-साथ चलते हैं और, जैसा कि—'पाल ड्यूसन' (Paul Deussen) ने कहा है कि केवल यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अकेला 'क्यों' का बुद्धिसंगत और पर्याप्त उत्तर प्रस्तुत करता है, जो कि बाइबिल के इस सुन्दर उपदेश 'अपने पड़ोसी को अपनी ही तरह प्रेम करो' के बारे में पूछा जा सकता है। यह उत्तर है: 'क्योंकि तुम्हीं अपने पड़ोसी हो।' पागल के सिवा कोई जानबूझ कर अपने आप को नुकसान नहीं पहुंचायेगा। उस व्यक्ति के लिए जो आत्मानं सर्वभूतेषु सर्वभूतान् चात्मनिं—सम्पूर्ण प्राणियों में अपने आप को और अपने में सब प्राणियों को देखता है; उच्चतम सद्व्यवहार के अलावा और कुछ सम्भव ही नहीं है। सम्पूर्ण सृष्टि की एकता-आदर्श बराबर अपने सामने रखना चाहिए। जहां कहीं भी 'मैं' और 'तुम' विभेद है, 'मेरे' और 'तुम्हारे' का विभेद फिर वह चाहे कितना सूक्ष्म ही क्यों न हो, उठ खड़ा अवश्य होगा। इससे स्वार्थों में विरोध उत्पन्न हो सकता है और उससे अनुचित व्यवहार की आशंका है। इसीलिये उपनिषद में कहा है 'द्वितीया द्वै भयं भवति' भय वहीं उत्पन्न होता है जहां द्वैत की भावना रहती है।

ऐसा नहीं है कि उपनिषदों ने केवल अपने सैद्धान्तिक आदर्श विवेचनाओं में ही उलझायें रखे हों और सामान्य व्यक्ति की आवश्यकताओं का कोई ध्यान न दिया हो। पहिली बात तो यह है कि जो कुछ उन्होंने सत् और उचित व्यवहार के बारे में कहा है वह केवल कोरी कल्पना की बात नहीं है या आदर्शों की वह ऊंची उड़ान नहीं है जहां मानवीय प्रयत्न से पहुंचा न जा सके। मनुष्य स्वभावतः दुर्बल और दुष्ट नहीं है। वह त्याग और स्वार्थहीनता की पराकाष्ठा तक पहुंच सकता है। उसके स्वार्थ की दुहाई देने के बजाय हम उसकी स्वाभाविक अनुभूति, कि वह बंधन में है, को जगायें और उसे प्रेरित करें कि वह अपने इन बंधनों को तोड़ दे और अपनी स्वतंत्रता को प्राप्त कर ले। हम उसे बतायें कि वह क्या है। हमारे सबसे सुन्दर और नीतियुक्त कार्य वे होते हैं जिन्हें करते समय हम उस काल के लिये द्वैत की भावना को भूल जाते हैं। किसी डूबते हुए को बचाने के लिए नदी में कूद पड़ने वाला व्यक्ति अथवा किसी असहाय शिशु की रक्षा के लिए जलते हुए घर में घुस पड़ने वाला व्यक्ति, शीत से स्वयं ठिठुरती हुई भी फटी साड़ी के आंचल से अपने बच्चे को ढंकती हुई भिखारिन, यह सभी एक क्षण के लिए अपने अलग अस्तित्व को भूलकर जिनकी सेवा करने चलते हैं उनके अस्तित्व के साथ अपने को मिला देते हैं। और सात्म्य के उस क्षण में, द्वैतभावना की विलगता के उस क्षण में वे काल और दिक् के बन्धनों के उस पार जाकर अपने सत्यस्वरूप जो आनन्दमय है, उसकी अनुभूति करते हैं। भले ही दूसरे क्षण ही वे इस धरातल पर उतर आयें पर वह अनुभूति क्षणिक होते हुए भी सामान्य व्यक्ति की श्रेणी से उनको अलग ला खड़ा कर देती है। संतों के अनुपम मार्ग पर चल चुके होते हैं। यदि प्राणि मात्र के साथ हम इस तादात्म्य की अनुभूति अपने में जगा सकें, तो हमारा जीवन कहीं अधिक सुखद और ऊंचा हो जाये और हमारे कार्यों पर वास्तविक नीतियुक्त व्यवहार की मोहर लग जायेगी। तादात्म्य की यह भावना एक दिन में प्राप्त करने की वस्तु नहीं है। इसलिए भूलें भी होंगी। हमारे पग भले ही डगमगायें किन्तु इससे हमारे प्रयत्न की ठीक दिशा में अन्तर नहीं पड़ता। उद्दिष्ट की सहायता के अलावा करने वाला स्वयं भी पवित्र होकर उन्नत होगा। जब तक हम स्वयं आत्मज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते तब तक हम शास्त्रों से, महान् व्यक्तियों के उदाहरण से, महान् विचारकों के लेखों से हर तरह से सहायता लेते रह सकते हैं। अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विचार के अनुसार हम औचित्य का मार्ग ईमानदारी से अनुसरण करते रहें। किन्तु हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि कार्य कितना भी अच्छा क्यों न हो ज्ञान का स्थान नहीं ले सकता। आत्मज्ञान के परिणाम स्वरूप किया हुआ कार्य समस्त विश्व की शांति और समन्वय का कारण होता है, बिना इस ज्ञान के किया हुआ कार्य स्थायी नहीं होता—प्रवाह्येते अदृढ़ाः। जो कोई भी वस्तु इस तादात्म्य की भावना को जगाती और दृढ़ करती है वही सत्कर्म है, वही पुण्य है। दूसरी ओर जो वस्तु द्वैत को उभाड़ती और बल देती है वह पापपूर्ण है। जिस व्यक्ति ने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया वह सांसारिक कार्य करता हुआ भी निरन्तर सहज समाधि की अवस्था में रहता है। वह उस परम आनन्द की अनुभूति करता है जो उसका सहज स्वरूप है और अपने चारों ओर शान्ति और प्रकाश विकीर्ण करता रहता है। मेरे विचार में नैतिक समस्याओं के प्रति उपनिषदों की विचारधारा का यही प्रमुख तत्त्व है।

•

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देव गण

इससे पहिले कि हमें हिन्दू देवी-देवताओं की सद्भावना की धारणा (Concept) के विषय में कुछ कहने का अधिकार हो यह आवश्यक है कि इसके विषय में हमें पूर्ण जानकारी हो कि आखिर ये देवगण हैं क्या? सम्भव है कि हिन्दू विश्वदेवसभा के सदस्यों में से कुछ सदस्य वास्तव में कुछ अमूर्त उद्भावनाओं जैसे सत्य या न्याय या सौन्दर्य के मूर्त रूप हों, और दूसरे कुछ देवगण ऐसे हों जो कि आर्येतर जातियों के जो कि उस समय और आज भी देश के काफी बड़े भाग में रहती हैं वंशचिन्हों और भूतात्माओं की परिष्करण-प्रक्रिया की उपज हों। इसी के साथ हम क्रमिक विकास की एक प्रक्रिया देख भी सकते हैं जिसके द्वारा कोई देवी या देवता अपेक्षाकृत निम्नस्थिति से धीरे-धीरे उन्नति करता हुआ एक महत्वपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित हो गया। गणेश इसके सबसे बड़े उदाहरण हैं, वेदों के विनायक से, जो कि लगभग दुष्टात्माओं के एक परिवार के सदस्य हैं, वे अब प्रत्येक मंगल कार्य में प्रथम पूजे जाने वाले देवता हो गये हैं। वास्तव में उनकी अंताराष्ट्रीय वृत्ति तो और भी अधिक रोचक है। उदाहरणार्थ स्याम, चीन और जापान जैसे महायान बौद्धमतावलम्बी देशों में जो रहस्यात्मक शक्ति उनमें निहित की गई है वह उनके व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण सम्भावनाओं का उपहार है, जो कि निश्चय ही अपने पुराने भौतिक और आध्यात्मिक स्थिति में अपने को घुटता हुआ महसूस करतीं। इसकी विपरीत दिशा में भी उदाहरणों की कमी नहीं है। उदाहरणार्थ देवी तारा और नीलतारा, यद्यपि वे शक्ति का स्वरूप हैं, जिसका हमसे परिचय उमा हैमवती के रूप में वेदों में होता है, अपने वर्तमान रूप में इन्होंने सनातन हिन्दू धर्म में महायान बौद्धमत द्वारा स्थान प्राप्त किया।

किन्तु इनमें से प्रत्येक व्यक्ति (देवी या देवता) सामान्य परिकल्पना या सिद्धान्त के अन्दर ठीक बैठ जाता है। जब कभी कोई विशिष्ट देवता ऐसा नहीं कर पाता तो समझ लीजिए कि वह निश्चय ही धर्मशासन में इस समय अस्थिर स्थिति में है।

ऊपर जिस सिद्धान्त का मैंने जिक्र किया है, उसके दो पहलू हैं, जिनमें से प्रत्येक समान महत्त्व का है यद्यपि कुछ धर्म दर्शन इनमें से केवल एक को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हैं। लेकिन इन सिद्धान्तों पर विचार करने से पहले मैं एक तीसरे सिद्धान्त का भी सरसरी तौर पर उल्लेख करना चाहूंगा, जो कि अपने मूल में बहुत ही प्राचीन और पूरी तरह से सनातन धर्म के अनुकूल है, और जो कि यह बताता है कि देवी-देवता वास्तव में प्राकृतिक वस्तुओं की शक्ति और स्वरूपों के जैसे सूर्य, चन्द्र, वर्षा, बिजली, पानी आदि के नाम है। यूरोपियन विचारक और विद्वान अर्थबोध और व्याख्या के इस मार्ग को खोज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकालने का श्रेय लेना चाहते हैं किन्तु वस्तुतः यह उतना ही प्राचीन है जितना कि श्रुतिभाष्य, जिसके कि महान भारतीय भाष्यकार यास्क व्याख्याता हुए हैं। इस मत का अब भी सम्मान है। किन्तु इसके अधिक अनुयायी नहीं हैं।

पूर्वोल्लिखित दोनों मतों में से जो सामान्यतः स्वीकृत हैं एक, जो कुछ कट्टर अर्वाचीन मतानुयायियों, जैसे आर्यसमाजियों आदि को मान्य है—इस मानी में कि वह दूसरा सिद्धान्त विल्कुल ही मानने को तैयार नहीं है—बताता है कि देवी-देवता कोई स्वतंत्र सत्ताएं बिल्कुल नहीं हैं बल्कि ईश्वर के विभिन्न पक्ष और कार्यों के नाममात्र हैं। ईश्वर ही सर्जक, पालक और संहारकर्ता है। वह न्याय करता है, वही वांछित जल बरसाता है, वही ज्ञान, धन और शक्ति देता है, वही मृत्यु को भेजता है और रोगी को स्वस्थ करता है। इसलिए ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, धर्मराज, इन्द्र, सरस्वती दुर्गा, लक्ष्मी, यम और अश्विनीकुमार ये सब उसी के नाम हैं। हो सकता है अपनी अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति के क्षणों में बने उपासक कवि और कलाकारों ने इन परिकल्पनाओं के प्रत्येक के अनुकूल समझ पड़नेवाले भाव वस्त्रों से ढककर—आज भी कलाकार सौंदर्य, आकांक्षा, मातृत्त्व या अन्य किसी अमूर्त भाव का चित्रण करते समय ऐसा करते हैं-कुछ तो शुद्ध सौंदर्य वृत्ति से प्रेरित होकर और कुछ इन अमूर्त परिकल्पनाओं को आध्यात्मिक रूप से पिछड़े लोगों के लिए अधिक बोधगम्य बनाने के विचार से मूर्त रूप दे दिया हो। अन्ततः, प्रत्येक एकेश्वरवादी धर्म में, चाहे वह कितना ही कट्टर क्यों न हो, यह करना ही पड़ता है। इस्लाम और ईसाई धर्म भी ईश्वर को मानवीय रूप प्रदान करने की इस प्रक्रिया से अपरिचित नहीं हैं। लेकिन मूल सिद्धान्त किसी प्रकार भी आंख से ओझल नहीं होना चाहिए—इन विभिन्न रूपों में, विभिन्न नामों से एक ही ईश्वर की पूजा की जा रही है, और जो भी पूजा का स्वरूप बाह्य उपादान इस अन्तर्निहित सत्य को आच्छादित करते हैं वे निंदनीय हैं। जैसा कि वेद कहते हैं 'एकं सत्, विप्रा बहुधा वदन्ति'—वह सत्यरूप या सत्य एक है, विद्वान इसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं'—या जैसा कि पुष्पदन्ताचार्य कहते हैं—

रुचीणां वैचित्र्यादृजु कुटिल नाना पथजुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

'भिन्न रुचि वाले व्यक्ति भिन्न टेढ़े या सीधे मार्गों का अवलम्बन भले ही करें लेकिन उनका गन्तव्य लक्ष्य तुम्हीं हो जैसा कि विभिन्न नदियों का गन्तव्य एकमात्र समुद्र है।'

लेकिन केवल यही अकेला सिद्धान्त देवी-देवताओं के सम्बन्ध में विश्वास का आधार नहीं है। एक और भी है जो कि उपर्युक्त विचारों का पूर्णतः समर्थन करते हुए दूसरी व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। यह मत विश्वास करता है कि देवी और देवता लोगों का उसी प्रकार और उसी सीमा तक अपना-अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है जैसा कि अन्य प्राणियों का, उदाहरणार्थ मनुष्यों का है। यह पक्ष यह भी स्वतः स्वीकृत मान लेता है कि इस लोक से भिन्न अन्य सूक्ष्म लोक हैं, स्वर्ग या बहिश्त शब्दों से कुछ-कुछ इन लोकों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अनुमान किया जा सकता है। इन लोकों की स्थिति यदि हम त्रिपरिमाण स्थिति (Three-dimensional Space) के अनुकूल अपूर्ण परिभाषा का प्रयोग करें तो इन लोकों की स्थिति एक सीढ़ी जैसी है, प्रत्येक उच्चतर लोक अपने से निम्नलोक की अपेक्षा सूक्ष्मतर परिष्कृत तत्त्वों से बना है जहाँ मस्तिष्क अधिक उन्मुक्त होकर कार्य कर सकता है और जहां कि जीवन शारीरिक की अपेक्षा बौद्धिक और आध्यात्मिक स्तर पर बिताया जाता है। वस्तुतः यह कहना अधिक संगत होगा कि प्रत्येक उच्चतर लोक अपने से निम्न सम्पूर्ण लोकों को ढांक कर उन सब पर छाया रहता है। प्रत्येक वैयक्तिक अहं साररूप में ईश्वर के समकक्ष है—अभी मैं परब्रह्म की चर्चा नहीं करता दोनों ही जिसके स्वरूप हैं—और इसीलिए बीजरूप में ईश्वर की प्रत्येक शक्ति के अधिकारी हैं। कर्म परिणाम के अनवरत क्रम के कारण 'अहं' इतने भौतिक और आध्यात्मिक व्यवधानों से लिपटा रहता है कि वह अपनी शक्तियों का उपयोग नहीं कर पाता। किन्तु निष्काम आत्मत्याग, प्राणिमात्र के प्रति प्रेम के कारण कर्तव्य-पालन, शारीरिक सुख और इंद्रियजन्य भोगों के प्रति निरासक्ति और सबसे बढ़कर समाधि का अभ्यास के द्वारा यह अपने को बंधनमुक्त कर सकता है और उत्तरोत्तर उन्नति करके उच्चतर लोकों को प्राप्त करता जाता है। आध्यात्मिक उन्नति के अनुपात से यह अपनी नैसर्गिक शक्तियों का अधिकाधिक प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार देवगण वह व्यक्ति-विशेष हैं जिन्होंने तपस्या के द्वारा अपने को पार्थिवों से ऊपर उठा लिया है और ईश्वरीय शक्तियों का उपयोग करते हैं, या यों कहा जाये कि विश्व ब्रह्मांड के समस्त जीवन के भिन्न विभागों के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हैं। इस तरह देवगण वह व्यक्ति हैं जो पूर्वजन्मों में मानव थे और अपने पुण्यकर्मों के द्वारा उन्होंने अपने को इस स्थिति तक पहुंचा लिया है। कभी तो यह पूर्वजन्मों का क्रम हजारों वर्षों का होता है। अब प्रश्न उठता है, उनका अंत क्या होगा? क्या वे जो हैं और जहां हैं वहीं बने रहेंगे? उत्तर है, 'नहीं', अपने पुण्यों के अनुपात से वर्तमान लोकों के आनन्द और अधिकारों का उपभोग करने के बाद उनको फिर जन्म लेना होगा और यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक वे मोक्ष प्राप्त नहीं कर लेते। अथवा जन्म मृत्यु के क्रम से छुट्टी नहीं पा लेते। कुछ इसके अपवाद भी हैं। कुछ बड़े सन्त या योगी देवत्व प्राप्त कर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का कार्यभार पीड़ित प्राणियों के कल्याण के लिए स्वयं स्वीकार कर लेते हैं और कार्यावधि, जो प्रायः एक ब्रह्माण्ड के पूर्णायुष्य के बराबर होती है, समाप्त होने पर निर्वाण में प्रवेश कर जाते हैं। यह सिद्धान्त बौद्धों के बोधिसत्त्व वाले सिद्धान्त से बहुत मिलता-जुलता है जो कि यदि चाहते तो उसी जन्म में निर्वाण प्राप्त कर लेते किन्तु संसार के दीनदुःखी प्राणियों के कल्याण के लिए एक और अवतार लेते हैं। कुछ देवता स्वयं भी मोक्ष तक पहुंच जाते हैं, कुछ अपने से उच्चतर लोकों में पहुंच जाते हैं और वहां से अपने को मोक्ष के योग्य बना लेते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि देवी या देवता ब्रह्मा, इन्द्र या अग्नि किसी लोक विशेष के लोकपाल हैं और लम्बी अवधि तक साधना के बाद उस स्थान तक पहुंचे हैं। वहां और भी प्राणी हैं जिनके पुण्यों ने उनको उस लोक तक पहुंचने का और वहां की सुख-सुविधाओं के उपभोग का अधिकारी बना दिया है पर जिनके पुण्य इतने पर्याप्त नहीं हैं कि वे वहां के शासक बन सकें। यह देवनाम कभी इस लोक के निवासियों के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सामान्य संकेत के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिए अग्नि शब्द का व्यवहार वहां के अधिष्ठाता लोकपाल के लिए, उसके अधिकार क्षेत्र के लिए और उस लोक के निवासियों के लिए भी हो सकता है।

यह सब जरा उलझा हुआ भले ही लगे किन्तु अपने में संपूर्ण सुन्दर सिद्धान्त का आवश्यक अंग है। यहां पर इसके सत्यासत्य का निर्माण हम लोगों का कार्य नहीं है। साधारणतया न केवल बातचीत में बल्कि धार्मिक साहित्य में भी, दार्शनिक विचार की बात अलग है, दोनों विचार और परिकल्पना का एक साथ व्यवहार होता है। किसी भी देवता का नाम, ईश्वर के उस विशेष रूप के लिए और जो प्राणि उस स्वरूप के अधिकार कर्तव्यों का प्रयोग कर रहा है दोनों के लिए हो सकता है। अब भिन्न देवताओं के स्वरूप का प्रश्न उठता है। किसी अंश तक काव्य और ईश्वर दोनों के विभिन्न पक्षों की आदर्शात्मक प्रतीकात्मता की बात जिनका मैं पहले उल्लेख कर चुका हूं, ठीक है किन्तु दूसरी ओर पहुंचे हुए सिद्ध और योगी इन लोगों के प्रत्यक्ष अनुभव का दावा करते हैं और उनके द्वारा जो वर्णन उपलब्ध होता है, कहा जाता है, कि हमारी अशक्त लौकिक भाषा में जितना कुछ बताया जा सकता है वहां तक पहुंचने की चेष्टा की गयी है।

मेरा आपसे हार्दिक निवेदन है कि आप हिन्दू धर्म के कुछ देवी-देवताओं का इस दृष्टि से अध्ययन करें। विश्वास करिये यह काफी रोचक अध्ययन होगा। उनमें से कुछ नाम, उनकी आकृति, शरीर का रंग, उनके वस्त्र, उसके हाथों में रहने वाली वस्तुएँ, उनके वाहन, ये सब आपके अध्ययन का श्रम सार्थक कर देंगे।

सिर्फ एक उदाहरण देता हूं, क्या धार्मिक विचारों के निखिल विश्व में कहीं भी कोई परिकल्पना इतनी सुन्दर, इतनी परिपूर्ण, इतनी विचारोत्तेजक है जितनी महादेव या शिव की है। वह शिव जो शंकर या समस्त कल्याणों के विधायक है और साथ ही जो रुद्र रूप में संहार भी करते हैं। मेरी आकांक्षा थी कि यदि समय होता तो मैं इस विषय पर विस्तार से विवेचन करता। वर्तमान स्थिति में कुछ थोड़ी सी उन बातों का उल्लेख कर संतोष करूंगा जो अध्ययन और अन्वेषण को सार्थक बना देंगी। उनके शरीर का रंग गौर है, जो कुछ भी अकलुष है, निर्मल है, उसका वह प्रतीक है, जिसमें सभी रंग, जो गतियों की असंख्य विभिन्नताओं का प्रतिनिधित्व करते है, समन्वय के साथ स्थान पाते हैं। उनका वर्णन दिगम्बर के रूप में किया जाता है। तात्पर्य यह है कि दिशाएं ही हैं वस्त्र जिसका, अभिप्राय हुआ कि अपरिसीम आकाश केवल उनके एक भाग को ही ढके हुए है। कहा जाता है कि वह कमर पर गजासुर का चर्म जो हाथी के रंग का है धारण किये हैं। प्रसंगतः शरीर और वस्त्र के वर्ण में निहित भिन्नता में, चाहे वह आकाश वस्त्र हो या गजासुर का चर्म, जो सौंदर्य है वह अनुभव किया जा सकता है। वह प्रलयंकर हैं। पर संसार तो अविद्या से प्रसूत है। अविद्या को नष्ट करने में विद्या या परमज्ञान का उद्घाटन स्वयं हो जाता है, वह परमज्ञान जो कि समस्त कल्याण का मूल है। अतः रुद्र क्या वास्तव में शंकर नहीं है? उनके प्रधान नामों में से एक नाम अर्धनारीश्वर है, वह देव जो आधा पुरुष और आधा स्त्री है। यह नाम पुरुष और प्रकृति की पदार्थ और शक्ति, ब्रह्म और माया, विद्या और अविद्या की अनिवार्य अभिन्नता का द्योतक है, इनमें प्रत्येक दो भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोधी तत्त्वों का युग्म, एक दूसरे का पूरक होकर जगत का निर्माण करता है। मैं जानबूझ कर उनके वाहन बैल का उल्लेख नहीं कर रहा हूँ, न उन सर्पों का जो उनके शरीर से लिपटे रहते हैं और न मुण्डमाला, त्रिशूल और भिक्षापात्र का। शिव का प्रतीक लिंग स्वयं अपने में एक स्वतंत्र विवेचना की अपेक्षा रखता है। इनसे संबंधित मन्दिरों का स्वरूप जहां इनकी पूजा की जाती है, मंदिरों की उल्टी घंटी के आकार की छतें स्वयं बहुत रोचक विषय हैं किन्तु यह हमें बहुत दूर योग धर्म और कला के क्षेत्र में घसीट ले जायेंगे। इन सबके लिए अभी मेरे पास समय नहीं है किन्तु चलते चलते मैं यह बताना चाहूंगा कि योगियों का यह अधीश्वर न केवल योगविज्ञान के लिए बल्कि व्याकरण और संगीत के प्रवर्तक के रूप में भी प्रसिद्ध है। मैं यह आशा करता हूँ कि मैं यह दिखाने में सफल हुआ हूँ कि आर्यों और आर्येतर जातियों के पारस्परिक परिचय के बाद की शताब्दियों में और भी इधर-उधर से आये हुए विचारों को आत्मसात् करने के बावजूद हिन्दू देवगणों की परिकल्पना यों ही क्रमहीन गड़बड़झाला नहीं है बल्कि दार्शनिक सिद्धान्तों पर आधारित क्रमिक विकास है जिसके ऊपर ही एक सांस्कृतिक ईसाई के रूप में हिन्दू धर्म का स्थैर्य या विनाश सम्भव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक सम्भावनाएँ

इलाहाबाद के दैनिक पत्र 'लीडर' में एक लेख छपा था जिसका शीर्षक था मंगल ग्रह से कोई नहीं आया। लेखक ने जो कुछ कहा वह संक्षेपतः इन शब्दों में आ जाता है 'विज्ञान ने, इन ग्रहों पर भी प्राणी हैं, इस विश्वास को निरुत्साहित किया है।' मुझे भय है कि यह मत विज्ञान-सम्मत नहीं है। एक समय था जब कि वैज्ञानिक इस प्रकार के निश्चित निर्णय दे सकना सम्भव समझते थे। आज वे कहीं अधिक सावधानी बरतते हैं।

आइए, उन तीनों तत्वों पर विचार करें जो सौरमण्डल के अन्य किसी ग्रह पर प्राणी नहीं है, यह निर्णयात्मक ढंग से सिद्ध करते दिखायी पड़ते हैं। सबसे पहला तर्क ओषजन के वातावरण की उपस्थिति या अभाव पर आधारित है। ऐसा समझा जाता था कि चन्द्रमा पर पूर्ण रूप से वायुमण्डल का अभाव है, पतला वातावरण सम्भवतः कार्बन डाइ आक्साइड से बना हुआ है और शुक्र तथा बृहस्पति का वायुमण्डल मिथेन (Methane) और अमोनिया (Ammonia) का बना है। मंगल ग्रह के पतले वायुमण्डल पर संभवतः निम्नकोटि के प्राणी, जैसे फफूंदी या काई आदि रह सकें। चन्द्रमा एकदम वातावरण शून्य है, ऐसा अब कोई विश्वास नहीं करता। विल्किन्स तथा मूर जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त समर्थ पर्यवेक्षकों के अभी हाल के पर्यवेक्षणों से चन्द्रमा के सिरों का घटना-बढ़ना सिद्ध हो चुका है। साथ ही उसके मृत ज्वालामुखियों के निम्न मुखपार्श्वों के पास दिखायी पड़ने वाला कोहरा भी ध्यान देने योग्य है। यह सत्य है कि गणना द्वारा अनुमान होता है कि उसके वायुमण्डल का दबाव पृथ्वी की तुलना में १/१०,००० की अपेक्षा अधिक नहीं होगा। पर इतना भी वायुमण्डल सतह से ५० मील की ऊंचाई पर अंतरिक्ष से आती हुई कॉस्मिक किरणों को या सूर्य से आती हुई अल्ट्रा वायलेट किरणों को सोखने और उल्काओं के भीषण प्रहारों को रोकने का कार्य उतनी ही सफलता से कर सकता है जितना कि हमारी पृथ्वी का वायुमण्डल। इन चीजों से वहां पर प्राणियों के रहने की संभावना हो सकती है। वहां के वातावरण के तत्वों के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता पर जीवन के लिए ओषजन अनिवार्य है, ऐसा मान लेने का कोई कारण नहीं। एक क्षण के लिए मान लें कि शुक्र या बृहस्पति पर भी बुद्धिमान प्राणी निवास करते हैं तो उनके विद्वान पृथ्वी पर जीवन का होना असंभव ही मानेंगे क्योंकि उनकी समझ में विषाक्त ओषजन गैस में किसी का जीवित रहना असंभव है। आखिर हमको जीवन की स्थिति और विकास के बारे में ज्ञान ही कितना सा है? सघन छन्नी में से भी निकल जाने वाले जीवाणुओं (वायरस) को अध्ययन कर सकने की क्षमता प्राप्त हुए अभी हमें कितने दिन हुए हैं, और अभी यही क्या निश्चय है कि हमारे ही ग्रह पर इनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अधिक विचित्र प्राणी नहीं हैं? तब फिर भला अन्य ग्रहों के बारे में क्या कहा जा सकता है! जो बात वायुमण्डल के बारे में सत्य है वही जल के बारे में भी कही जा सकती है। ऐसे प्राणियों की कल्पना कर सकना असंभव नहीं है जो वातावरण में स्थित रासायनिक तत्वों से अपने शरीर के ही अन्दर जल अथवा उसी के समान द्रव्य बना लेने की क्षमता रखते हों।

यदि जीवित प्राणि अपने शरीर से विद्युत शक्ति का प्रवाह उत्पन्न कर सकने जैसा अद्भुत कार्य कर सकते हैं तो फिर ऐसी साधारण रासायनिक प्रतिक्रियाएं कर सकना कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिये। आखिरकार पौधे वातावरण के लिए परिमाण में क्लोरोफिल और विटामिन उत्पन्न करते ही हैं, यहां तक कि मानव शरीर भी किसी हद तक विटामिन 'डी' उत्पन्न कर ही सकता है।

जहां तक तापक्रम का प्रश्न है, न तो मंगल और न अन्य ग्रह अथवा शुक्र के संबंध में ही कोई कठिनाई होनी चाहिए। बहुत ही गरम और बहुत ही ठंडे दोनों प्रकार के तापक्रम में जीवनस्थिति हो सकती है। चन्द्रमा की स्थिति अवश्य कुछ भिन्न है। यहां पर कुछ घंटों के अन्दर ही तापक्रम में भीषण परिवर्तन होता प्रतीत होता है। 'प्रतीत होना' शब्द का इसलिए प्रयोग किया गया है, क्योंकि चन्द्रमा पर कोई वातावरण नहीं है, इस अनुमान पर ही यह निष्कर्ष आधारित है। यदि उस पर वायुमण्डल की एक सूक्ष्म पर्त है भी तो उसे सामान्य तापक्रम पैदा करने के लिए बहुत शक्तिवान शोषक होना होगा। मैं यह अवश्य कहूंगा कि जीवन का अपने को विभिन्न परिस्थितियों के अनुकूल कर सकने की क्षमता के बारे में हमारा ज्ञान अभी चरम सीमा तक नहीं पहुंचा है। विज्ञान ने यदि अपनी हाल की सफलताओं और विकास से कुछ सीखा है तो वह है नम्रता का उपदेश। ज्ञान का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसके संबंध में कोई निश्चयात्मक मत यों ही प्रकट कर सकना संभव नहीं है। हम लोग केवल इतना ही कह सकते हैं कि जिस प्रकार के बुद्धियुक्त जीवन के हम अभ्यस्त हैं वह अन्य ग्रहों पर सम्भव नहीं। उसके आगे जा सकना किसी के वश की बात नहीं है।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार

मैं आप लोगों का कृतज्ञ हूं जो मुझे आपने आज यहाँ बुला कर अपने से मिलने का अवसर प्रदान किया, क्योंकि मेरे जैसे लोगों के लिए जो अधिकांशतः नीरस पुरानी फाइलों में विवश होकर व्यस्त रहते हैं, ऐसे क्षण दुर्लभ होते हैं जिनमें आप जैसे विशिष्ट व्यक्तियों के संपर्क में आकर विशेष अनुभव प्राप्त हो सके।

समिति के सचिव द्वारा प्रस्तुत किये गये विवरण में शब्दों का उपयोग बहुलता से नहीं किया गया है, जैसा कि एक वैज्ञानिक द्वारा वैज्ञानिकों के संगठन के सामने प्रस्तुत किये गये विवरण के बारे में उचित ही है, किन्तु संक्षिप्त होते हुए भी यह आपके विस्तृत होते हुए कार्यक्षेत्र और विज्ञान संसार में दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए इसके मूल्यांकन का परिचय दे ही देता है। यदि आपके पास अधिक धन हो तो निस्संहेद आप और भी अधिक विस्तृत शोधकार्य में सहायता भी कर सकें और अन्यत्र शोधकार्य में सहायता भी कर सकें। साथ ही आपकी संस्था के लिए अधिक अच्छे स्थान का प्रबन्ध भी हो जाये। इस समय देश गहन आर्थिक कठिनाइयों के बीच से गुजर रहा है। वर्तमान परिस्थिति में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि प्रदेश-सरकार को आपके उद्देश्यों के प्रति पूरी सहानुभूति है और वह हर सम्भव उपाय से उनके पूरा होने में आपकी सहायता करना चाहेगी, जहां तक इसके साधन, जिन पर इस समय अत्यधिक भार है, साथ दे सकेंगे।

सचिव ने अपने विवरण में डा० बीरबल साहनी की मृत्यु का उल्लेख किया है। इस प्रतिभाशाली और उदारमना वैज्ञानिक की मृत्यु एक बहुत बड़ी राष्ट्रीय क्षति है। मुझे आशा और विश्वास है कि उनके द्वारा स्थापित संस्था उत्तरोत्तर उन्नति करती रहेगी। इस मामले में हम जो भी सहायता कर सकें वही उनकी स्मृति के लिए उपयुक्त श्रद्धाञ्जलि होगी।

वैज्ञानिक अध्ययन और अनुसधान की महत्ता के बारे में अथवा वैज्ञानिकों के इस सामाजिक उत्तरदायित्व के बारे में कि उनके अनुसंधानों का उपयोग सभ्यता और संस्कृति के विनाश के लिए न हो, मेरा आप लोगों को धर्मोपदेश देने का कतई इरादा नहीं है। आप लोग भी यह सब उतनी ही अच्छी तरह जानते हैं जितना कि मैं। सच पूछिये तो सामान्य व्यक्तियों को अपने सम्मेलनों में भाषण देने के लिए जो आप आमन्त्रित करते हैं उसका यह दण्ड है कि आपको इस प्रकार के भाषण सुनने पड़ते हैं। आप स्वयं विज्ञान में दुरुपयोग द्वारा सभ्यता के लिए उत्पन्न खतरे से उतने ही परिचित हैं जितना कि कोई भी दूसरा वर्ग और निश्चय ही आप भी उस बौद्धिक और भौतिक वातावरण की सुरक्षा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए उत्सुक होंगे जिसने आप जैसे लोगों के कार्यकलापों को सम्भव बनाया है। यह सत्य है कि किसी हद तक वैज्ञानिक जानकारी को सभ्यता के विरुद्ध होने वाले आक्रमणों से रक्षा के लिए उपयोग में लाया ही जायेगा। 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र चर्चा प्रवर्तते' किन्तु आत्मरक्षण और आक्रमण एक ही चीज तो नहीं है पर वैज्ञानिक के लिए दोनों में भेद कर सकना संभव नहीं है। गियादीनों ब्रूनों जैसे व्यक्तियों ने सत्य के प्रति, जैसे भी सत्य का उन्हें ज्ञान था, झूठे बनने की अपेक्षा अपने जीवन की बलि दे दी। अब उनके उत्तराधिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे चाहे प्राणों की आहुति देनी पड़े किन्तु संभावित आक्रमण की सेवा में अपने ज्ञान का उपयोग न होने दें। हम लोगों की संस्कृति आप लोगों को उत्तराधिकार में मिली है और साहित्य तथा कला में अनुराग रखते हैं। न सिर्फ जो सत्य है बलिक उसके साथ ही जो सुन्दर है और शिव भी है वह आपके भी हृदय को स्पर्श करता है। मानव जाति औचित्य के पथ से विरत न हो यही विज्ञान के भी हित में है। अतः हमारी सभ्यता का अस्तित्व, और भी वह सब जो मनुष्य को सही माने में मनुष्य बनाता है आपके हाथों में बिल्कुल सुरक्षित होना चाहिए। अब आज की परिस्थितियों में यदि वैज्ञानिक अपना सम्पूर्ण भार न्याय और स्नेह वाले पलड़े की ओर नहीं रख पाता तो उसका कारण है कि विश्व आज भयंकर आध्यात्मिक व्याधि से ग्रस्त है जो इसका मर्मोच्छेद किये जा रही है। निश्चय ही आपको हार्वर्ड में प्रो० पिटरिम रु० सोरोकिन द्वारा किये जाने वाले कार्यों का पता होगा। आजकल वे एक नवीन कार्य में लगे हैं जिसे परोपकारवृत्ति के अध्ययन (Researches on Altruism) कहा जाता है और जो इस कार्य के लिए उनके अधिकार में दी हुई एक निधि द्वारा चलाया जा रहा है। उनकी सम्मति में वस्तुओं के यथार्थ मूल्य-निर्णय में, वास्तविक मूल्य ऐन्द्रिय है, मुख्यतः यह सिद्धान्त जो हमारा निर्णायक होता है, मूलतः दोषपूर्ण है। इसके अनुसार आनन्द लाभ ही जीवन का चरमोद्देश्य हो जाता है। और जीवन की परिभाषा एक का अनेक के विरुद्ध सघंर्ष बन कर रह जाती है। जीवन की यदि परिभाषा वास्तव में सत्य है तो वैज्ञानिक का काम यह है कि जो व्यक्ति उसके सम्पर्क में आते हैं उन्हें वह कुशल हत्यारा बना दे ताकि वह इसके दूसरे विकल्प—यानी स्वयं एक असहाय भेड़ों की तरह हत्या कर दिये जाने से बच सकें। वह कभी यदि अपने जीवन लक्ष्य के बारे में सोचने की हिम्मत करता है तो निश्चय ही यह उसके जीवन-लक्ष्य की परिकल्पना नहीं है। अपने मात्र तकनीकी कार्यकलापों के साथ-साथ यदि वैज्ञानिक जैसा कि प्रोफेसर सोरोविन कहते हैं 'मानवता के पुनर्गठन' में भी थोड़ी अधिक रुचि लेने लगे तो निश्चय दुनिया कहीं अधिक अच्छी जगह बन जाये। मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण का पुनर्नवीनीकरण ही स्थायी पुनर्गठन के लिए विश्वसनीय नींव होगी। वैज्ञानिक, विशेषतः भारतीय वैज्ञानिक गम्भीरतापूर्वक सोचें कि क्या 'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ'—हम पारस्परिक सहयोग से परम श्रेय की प्राप्ति करते हैं। यहां पर 'हम' शब्द का प्रयोग प्राणिमात्र के लिए किया गया है, जिससे छोटे से छोटे से लेकर बड़े से बड़े प्राणि आ जाते हैं जीवन के लिए अधिक अच्छा नियम नहीं है। मैं इस आशा के साथ कि भारतवर्ष जिसने पहले-पहिल विश्व को वेदान्त का संदेश दिया, वह संदेश जो विश्व एकात्मता का पाठ पढ़ाता है, विज्ञान और दर्शन के बीच की खाई पाटना प्रारम्भ करने वालों में पहिला होगा। यह कार्य दोनों ही को शक्ति देगा और मानवता के परम कल्याण की ओर ले जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम कल्याण की ओर ले जायगा।

भारतवर्ष को यदि राष्ट्रपरिवार में शांति के लिए सुदृढ़ आधार स्तम्भ के रूप में अपना स्थान ग्रहण करना है, तो उसे पहिले अपने बीच से दरिद्रता और अज्ञान को हटाना आवश्यक है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन(आई०एल०ओ०) के सिद्धान्तों में से एक प्रमुख सिद्धान्त यह है कि एक देश की दरिद्रता बाकी और देशों की संपन्नता के लिए खतरा है। अज्ञान के लिए भी वही बात लागू होती है। इन दोनों खतरों को हटाने में विज्ञान सबसे बड़ा सहायक हो सकता है। हमारे साधन बहुत सीमित हैं और उसी से हमें भविष्य के लिए सुरक्षित मार्ग तैयार करना है। उसका परिणाम यह होता है कि उच्च शिक्षा और शोधकार्य पर हम उतना ध्यान नहीं दे पाते जितना कि देना चाहिए। दुर्भाग्यवश इस समय कोई औद्योगिक विस्तार नहीं हो रहा है और अर्थाभाव के कारण, केन्द्रीय और प्रदेश सरकारों की बहुत सी स्कीमें भी, जो वे चलाना चाहती थीं, रुकी पड़ी हैं, किन्तु जो थोड़ी सी मांग इस समय है उसे भी पूरा करने के लिए पर्याप्त वैज्ञानिक उपलब्ध नहीं हो रहे हैं। इस मामले में भविष्य की मांग को पहिले से समझ कर उसे पूरा करने के लिए विश्वविद्यालयों में साधनों को एकत्र कर किसी प्रकार के नियोजन का कोई लक्षण दिखायी नहीं पड़ रहा है। किसी सीमा तक शोध और अन्वेषण-कार्य हमेशा ही स्वतंत्र रूप में होना है। प्रतिभा नियंत्रित दैनिक कार्यक्रम में नहीं जकड़ी जा सकती, किन्तु जिन आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों से आज हम गुजर रहे हैं, वैज्ञानिकों, प्रयोगशाला संबंधी सुविधाओं और प्राप्त हो सकने वाला धन जिसकी हग भविष्य में आशा कर सकते हैं, इनके पूरे पूरे उपयोग के लिए काफी सीमा तक शोधकार्य के नियोजन की आवश्यकता होगी।

दूसरे देशों में विज्ञान के पोषण और प्रगति में औद्योगिक प्रगति का बहुत हाथ रहता है। दुर्भाग्यवश हमारे देश में अभी ऐसा नहीं है। कम से कम मैं प्रदेश सरकार द्वारा नियुक्त की हुई साइन्टिफिक रिसर्च कमेटी का कार्य देखकर, ऐसा परिणाम निकालने पर विवश हुआ हूँ। आप जानते हैं कि इस कमेटी के सदस्य कौन हैं और कमेटी ने अब तक कितना कार्य किया है। इसके द्वारा विज्ञान के क्षेत्र में कितने ही महत्वपूर्ण विषयों पर मूल्यवान शोध कार्य संभव हुआ है और कितने ही व्यक्तियों को ख्यातनामा वैज्ञानिकों के नीचे अन्वेषण कार्य की प्रशिक्षा मिली हैं। किन्तु साथ ही आप यह भी जानते हैं कि कमेटी की स्थापना में एक बहुत ही महत्वपूर्ण उद्देश्य यह भी था कि वह उद्योगपतियों को उनके कार्य प्रसंग में उत्पन्न हुई औद्योगिक समस्याओं को सुलझाने में सहायता करे। पिछले तीन वर्षों में जब से कमेटी ने कार्य प्रारम्भ किया है, लगता है मानो कोई समस्या उठी ही नहीं। जैसा कि कमेटी के चैयरमैन डा० कृष्णन् ने मुझसे कहा, आज हमारे उद्योगों में उत्साह और साहसिकता का अभाव है। नये काम, जिनमें वैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता होती है, यह प्रारम्भ करना नहीं चाहते और पुराने उद्योगों में इतनी कम प्रतिस्पर्धा है कि स्वयं अपने हित में भी आवश्यक नहीं है कि वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित नवीन तकनीकों का उपयोग करना अनिवार्य हो। सिर्फ इसी आशा पर भविष्य निर्भर है कि संभवतः सदा-सर्वदा यही स्थिति नहीं बनी रहेगी। उद्योगों के पूर्ण और प्रभूततम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तार पर ही देश की सम्पन्नता निर्भर करती है, जिससे आगे स्वयं ही शुद्ध और प्रायोगिक विज्ञान की उन्नति और विकास के लिए बढ़ते हुए साधन उपलब्ध होते जायेंगे।

मैं नहीं जानता कि क्या साइन्टिफिक रिसर्च कमेटी या अन्य कोई वैज्ञानिक संस्था, आज जो उद्योग हैं या जो निकट भविष्य में सफलता के साथ प्रारम्भ किये जा सकते हैं, उन्हीं की कुछ समस्याओं को प्रकाशित कर योग्य वैज्ञानिक देना उचित समझेगा। संभव है कि उद्योगों में वैज्ञानिकों के रुचि लेने पर उद्योगों की ओर से विज्ञान में रुचि उत्पन्न हो जाये। यदि आप सहमत हों तो मैं यह भी चाहूँगा कि आप हमारे प्रमुख उद्योगपतियों का ध्यान उन दरिद्र प्रयोगशालाओं की ओर आकर्षित करें जो वे अपनी फैक्ट्रियों के साथ जोड़े रखते हैं। एक असज्जित दरिद्र प्रयोगशाला, उसका उतना ही कम वेतन पानेवाला कार्यकर्ता जिसको कि बड़ा सा नाम देकर तकनीकी परामर्शदाता (टेक्निकल एड़वाइज़र) कहा जाता है सिर्फ एक दिखाने भर की चीज है। यदि ऐसी चीज को हटा ही दिया जाय तो अच्छा रहे।

देश में प्रतिभा की कमी नहीं है किन्तु उसके प्रकाशन के लिए प्रोत्साहन की आवश्यकता है। बहुत से प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को अर्थाभाव के कारण अपना अध्ययन बन्द कर देना पड़ता है और कितनों ही को शोध और अध्ययन के क्षेत्र से अधिक आशाप्रद क्षेत्र अपनी ओर खींच लेते हैं। आप ऐसी स्थिति में हैं कि प्रतिभा को लक्ष्य कर सक्ते हैं। अब तक विज्ञान की शिक्षा केवल नगरों में ही सम्भव थी किन्तु अब गांवों में खोले गये उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों ने इसकी शिक्षा वहां भी सम्भव कर दी है। केवल यही नहीं राज्य शासन धीरे-धीरे जूनियर स्कूलों को भी जो हिन्दी मिडिल स्कूल के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं, विज्ञान की शिक्षा के लिए सज्जित कर रहा है। इससे हमें निकट भविष्य में अब तक न खोजें गये नवीन क्षेत्रों में परिस्थितियों के कारण अविकसित प्रतिभा को प्रकाश में लाने में सहायता मिलेगी। इस सम्बन्ध में प्रसंगवश एक छोटी सी योजना का भी जिक्र कर दूं जो आजकल हम लोगों ने हाथ में ले रखी है। यह मैं पहिले ही बता दूं कि यह कोई नवीन मौलिक योजना नहीं है बल्कि संयुक्त राज्य अमेरिका की एक योजना का संक्षिप्त रूप है जो हमने अपने अनुकूल बना कर अपनाया है। हमारे उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में ऐसे कितने ही विद्यार्थी हैं जिनका रुझान रचनात्मक और मौलिक चीजों की ओर है। वे अपनी विज्ञान की कक्षा में जो कुछ पढ़ते-सीखते हैं उसको स्पष्ट करने के लिए काम चलाऊ यंत्रों का स्वयं निर्माण कर लेते हैं और बड़ी मशीनों के अच्छे खासे माडल तैयार कर लेते हैं। ठीक इसी तरह के बहुत से विद्यार्थी विश्वविद्यालयों और डिग्री कालेजों में भी होंगे। हम इस प्रकार के कुछ सबसे अच्छे कार्यों को चुन रहे हैं और हमारा विचार, उन्हें 'आगामी कल के वैज्ञानिक (साइन्टिस्टस आफ टुमारो) इस नाम से प्रकाशित करने का है। इस पुस्तिका में कार्यों का सचित्र विवरण और किशोर वैज्ञानिकों का छोटा सा जीवनवृत्त तथा चित्र रहेंगे। छोटे नकद पुरस्कार भी दिये जायेंगे। इस प्रकाशन को वार्षिक बनाने का विचार है। इससे हमें सुप्त प्रतिभा का पता लगाने और उसे विकसित करने में सहायता मिलनी चाहिए। यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम आपको यह बताने चलें कि आप शोधकार्य को किस दिशा की ओर उन्मुख करें तो यह हमारी धृष्टता होगी। आप जानते हैं कि किन समस्याओं का समाधान अविलम्ब होना आवश्यक है। सामान्य नागरिक के लिए पर्याप्त पौष्टिक भोजन सुलभ करने वाली किसी भी जानकारी का स्वागत होगा। कच्चे माल की बरबादी रोकने वाली और उसको तैयार करने में मेहनत और उकताहट कम करने वाली किसी तकनीक का उससे कम स्वागत नहीं होगा। आज सबेरे मैं कुछ मित्रों से कृत्रिम या रासायनिक भोज्य पदार्थों के बारे में बात कर रहा था। मैं सोचता हूँ कि काश कोई उस बहुत तरह से काम आने वाले सबसे अच्छे भोज्य पदार्थ दूध का अच्छा स्थानापन्न या निकटतम भोज्य पदार्थ दे सके। निकट भविष्य में तो हमारी बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त दूध मिल सकने की संभावना दिखायी नहीं पड़ती। सामान्य मध्य वित्त मां-बाप जो भोजन बच्चों को दे पाते हैं उसमें शक्ति, स्फूर्ति और रोगों से बचाव की शक्ति जो तत्व देते हैं उनका लगभग पूर्णतया अभाव रहता है। और इस प्रकार के भोजन पर पलने वाले बच्चों के कन्धों पर ही कल स्वतन्त्र भारत के प्रबन्ध का भार पड़ेगा। मुझे इस भविष्य की कल्पना करते ही रोमांच होता है। उत्तर प्रदेश सरकार अभी हाल ही में संयुक्त राज्य अमेरिका से आयात किये हुए बहुविधिउपयोगी खाद्य का परीक्षण करने जा रही है। किन्तु इस प्रसंग में लोगों की सहायता के लिए मेरी आशापूर्ण दृष्टि भारतीय वैज्ञानिक की ओर लगी हुई है।

इस सबके साथ क्या एक दो अप्रमुख शोध विषयों की ओर भी आपका ध्यान आकृष्ट करने की अनुमति है? मैं इन विषयों की ओर आकृष्ट हूँ, शायद और कुछ लोग भी हों। अभी हाल में ही मद्रास में एक महत्वपूर्ण संगीत सम्मेलन की आयोजना हुई थी। विचार-विनिमय के लिए समय कालावधि का प्रसंग भी जिनको शास्त्रीयरूप में श्रुति कहते हैं, आया था जिन्हें इस कल्प के पुराने आचार्यों ने षडज और निषाद, जो सप्तक के अन्तिम स्वर हैं दोनों के बीच स्थान दिया था। मुझे ध्यान आता है कि इस विचार-विनिमय में एक भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक महोदय ने भी भाग लिया था। इन श्रुतियों का ध्वनि विज्ञान में ठीक-ठीक क्या स्थान होगा यह जानना सचमुच में एक मनोरंजक बात होगी। अगर भाग्यवश कभी कोई इसमें रुचि लें तो वह एक महत्वपूर्ण कल्प की बड़ी उपयोगी सेवा करेगा और स्वर कम्पनों द्वारा भावप्रकाशन के आपसी सम्बन्ध पर प्रकाश डालेगा।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि आप फिलहाल आधारभूत अन्य अनुसंधानों को स्थगित कर दें। हमारी प्रतिभा, हमारे मस्तिष्क का पूरी तरह से तार्किक झुकाव अब तक के अनन्वेषित वैज्ञानिक क्षेत्र अनुसंधान के लिए विशेषरूप से उपयुक्त हैं, खास कर भौतिक विज्ञान और गणित आदि जिनके उच्चस्तर उस स्थान पर निहित हैं जहां विज्ञान और दर्शन में भेद नहीं रह जाता।

एक और विषय जिसकी ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करूँ वह है, 'चक्रों' का अध्ययन जिनका योग शास्त्र से संबंधित पुस्तकों में बहुधा संकेत रहता है। मुझे मालूम है कि बहुत से शरीरविज्ञानियों ने (Physiologists) इस प्रकार के अध्ययन में काफी श्रम किया है और उससे इस विषय पर पर्याप्त उपयोगी प्रकाश पड़ा है। लेकिन अभी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काफी काम पड़ा है। वस्तुतः अभी तो इस विशाल विषय की एक कोर मुश्किल से छुई गयी है। योगी का दावा है कि एक के बाद एक इन चक्रों पर नियन्त्रण स्थापित कर लेने पर इन्द्रियों की सूक्ष्मानुभूति बहुत अधिक बढ़ जाती है या कहना चाहिए कि उनकी वास्तविक कार्य शक्ति पर से अवरोध हट जाता है। इस प्रकार गंध, रंग और ध्वनि का एक नया संसार, जिसके अनुभव से साधारणतः हम अपरिचित ही रहते हैं, हमारे लिए उन्मुक्त होकर अनुभव का एक नया द्वार ही खोल देता है। यदि यह दावे उचित हैं तो इनका परिणाम होना चाहिए मानवीय ज्ञान की वृद्धि, अपने चतुर्दिक वातावरण को बदल सकनेकीहमारी शक्ति में वृद्धि और व्याधि और विनाश के तत्वों पर हमारी विजय। यह तो ठीक, जैसा योगी दावा करता है वही होगा। कुछ कारणों से, जिनकी यहां आलोचना की आवश्यकता नहीं है, मेरा व्यक्तिगत विश्वास है कि योगी का यह दावा सत्य है। जैसा कुछ भी हो यह विषय नियमतः उन प्राणिविज्ञानों के अन्तर्गत ही आता है जिनका अध्ययन करना आपका लक्ष्य है। चक्रों पर नियन्त्रण का प्राणिविज्ञान और शरीरविज्ञान की भाषा में क्या तात्पर्य होगा, यह विषय परिश्रम करने योग्य है।

इस प्रकार का अनुसंधान एक और बड़े महत्वपूर्ण विषय पर भी प्रकाश डाल सकता है। जैसा कि आप जानते हैं, भारतीय दर्शन शास्त्र के अनुसार ध्वनि के चार स्वरूप हैं—वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा, प्रत्येक बाद में आनेवाला स्वरूप अपने से पहिले वाले स्वरूप से सूक्ष्मतर है और पश्चाद्वर्ती रूप में अन्तरस्थ है। वैखरी बोला हुआ शब्द है और कर्णेन्द्रिय की अनुभूति के अतंर्गत आनेवाली प्रत्येक ध्वनि का इसमें समावेश है। परा को छोड़कर जो हमें सीधे अध्यात्मशास्त्र के लोक में ले जाती है, पश्यत्नी को हम भाषा का मूल स्वरूप कह सकते हैं या यों कहा जा सकता है कि जिसे हम ध्वनि के रूप से जानते हैं उस सब का मूल स्रोत है। इसके अवयव मातृका कहलाते हैं। यह कहा जाता है कि एक चक्र विशेष पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेने पर मातृकाओं का दर्शन किया जा सकता है। मैं अब आगे इस विषय को और न बढ़ा कर यह आपके निर्णय के लिए छोड़ देता हूँ कि इस क्षेत्र में आगे अध्ययन और अनुसंधान अभीप्सित है या नहीं।

मैं एक बार फिर इस समारोह में निमन्त्रित किये जाने के लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। मेरी आंतरिक कामना है कि ज्ञान की वृद्धि और प्रसाद के लिए आपके प्रयत्न सफल हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक ज्ञान और उसका उपयोग

यह तीसरा अवसर है जबकि मैं राष्ट्रीय विज्ञान परिषद् के सदस्यों को सम्बोधित कर रहा हूँ। ऐसे व्यक्तियों से मिलने का सुअवसर प्राप्त होना, जो कि विज्ञान के क्षेत्र में मूर्द्धन्य आसनों पर प्रतिष्ठित हैं, सदैव प्रसन्नता देने वाला होता है, हालांकि, यह भी साथ ही मानना पड़ेगा कि ऐसे व्यक्तियों के सामने दिया जाने वाला वक्तव्य निश्चित कर सकना काफी कठिन है।

मेरे लिए उन कृत-अकृत दोषों को लेकर आपको भाषण देना सरल होगा, जो कि न्यायतः वैज्ञानिकों के मत्थे मढ़े जा सकते हैं। यह कहना केवल शुद्ध सत्यमात्र होगा कि वैज्ञानिक वर्तमान समाज का ब्राह्मण है और वह जिस सीमा तक अपने क्षत्रियों के हाथ की कठपुतली बन जाने देगा उस सीमा तक अपने प्रति, अपने व्यवसाय के प्रति और अपने वर्ग के प्रति झूठा और दोषी होगा। राजनैतिक दलों के नेतागण और पूंजीक्षेत्र के अधिपति बहुत शक्तिशाली होते हैं। वे यदि चाहें तो व्यक्ति के जीवन को नर्म बना सकते हैं, किन्तु सरस्वती का उपासक विद्वान किसी मनुष्य के आगे सिर नहीं झुकाता। उसकी प्रतिभा धन से नहीं क्रय की जा सकती। प्रकृति के रहस्यों का उसका ज्ञान, यदि असुरों द्वारा दी गयी भेंट नहीं है तो वह केवल उन्हीं शक्तियों की सेवा में लगाया जा सकता है जो मानव जाति में एकता पैदा करना चाहती हैं।

विज्ञान किन्हीं अलगअलग शास्त्रों का मिलाया हुआ गड़बड़झाला नहीं। यहएक सुसमन्वित इकाई है जो कि अपने भिन्न अंशों के सम्पूर्ण जोड़ से कहीं बड़ी है और इसकी बाहरी सीमाएं धर्म और दर्शन की सीमाओं के पास जाकर रुकती हैं। वैज्ञानिक विचार-प्रणाली अभी ही धार्मिक और दार्शनिक विचार प्रणाली को प्रभावित करने लगी है। धार्मिक उपदेशक आज जिस ईश्वर की ओर संकेत करता है वह जिस अर्थ में आज सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है वह अर्थ कुछ शताब्दियों पहिले धर्मशास्त्रियों के लिए अकल्पनीय था; उसकी सत्ता के अधीन रहने वाला विश्व अतीत की अपेक्षा अधिक विस्तृत, अधिक विभिन्न और हाल की ज्ञानोन्नति के बावजूद अधिक रहस्यमय है।

आज विज्ञान उन अद्‌भुत दृग्विषयों अथवा अनुभवों के बारे में खोज करने के लिए तैयार है, जो कि पहिले केवल कुछ थोड़े से लोगों के अमूल्य अनुभव थे। यह आज योग से सम्बन्धित शारीरिक और मानसिक प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करना चाहता है। वस्तुतः धर्म के लिये विज्ञान से बढ़कर कोई मित्र नहीं हो सकता। विज्ञान स्वयं इस शिक्षा की गम्भीरता का उत्तरोत्तर अनुभव कर रहा है कि समस्त दृग्विषयों का मूलाधार एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही है, कि जीवित और अजीवित के बीच कोई अलंघनीय व्यवधान नहीं है। जिस यांत्रिक विश्व का विज्ञान ने सृजन किया था वह अभी ही अतीत की बात हो चुका है। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि वह दिन दूर नहीं जबकि स्वयं वैज्ञानिक यह अनुभव करने लगेंगे कि उद्देश्य और विधेय वास्तव में एक इकाई के ही दो पहलू हैं, जिसकी प्रकृति उपनिषद् के शब्द 'विज्ञान ब्रह्म' के द्वारा व्यक्त हो जाती है। परम यथार्थ शुद्ध ज्ञान, शुद्ध चेतना है। जिस व्यक्ति को इस सत्य का भास हो गया, धुँधला ही सा सही, वह कभी स्वेच्छा से ऐसे कार्यों से सम्बन्ध नहीं रखेगा जो शांति का उन्मूलन करने वाले अथवा लोभ, घृणा और अभिमान को प्रश्रय देने वाले हों। यह भावनाएं उस सत्य की प्रताड़ना करती हैं जो विज्ञान को ऐसे प्रयोगात्मक नुस्ख़ों की श्रेणी से अलग करता है जिनका प्रयोग ही संदेहात्मक नहीं है बल्कि याथार्थ्य से जिनका भेद भी संदेहात्मक ही है।

मैं केवल कुछ थोड़े से प्रश्न ही आपका ध्यान आकृष्ट करने के लिए आपके सन्मुख उपस्थित कर सकता हूं, जो कि मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के मन में उपस्थित होते हैं। हमारे आर्थिक साधन सीमित होते हुए भी हम राष्ट्रीय उन्नति और विकास की बड़ी-बड़ी योजनाएं प्रारम्भ कर रहे हैं। इनमें से बहुत सी योजनाओं की सफलता वैज्ञानिकों के सक्रिय सहयोग पर निर्भर करती है। यह सहयोग निश्चय ही उपलब्ध भी हो रहा है। किन्तु मैं चाहता था कि वैज्ञानिक इस सम्बन्ध में अधिक रुचि लेने का कोई मार्ग निकाल सकते। सरकार अथवा उद्योग द्वारा प्रस्तुत की गयी समस्याओं का हल निकालना आवश्यक है किन्तु उन समस्याओं का हल प्रकाशित करना जो उन्होंने स्वयं अपनी रुचि से समाधान के लिए उठायी हों, क्योंकि देश के लिए उनका आन्तरिक महत्व है, उतना ही आवश्यक है।

ऐसे बहुत से स्थल होंगे, जहां अपने सीमित साधनों के बावजूद, हमने विज्ञान द्वारा निकले हुए परिणामों से पूरा लाभ नहीं उठाया होगा; आपका कर्तव्य है कि आप जनता और शासन दोनों ही का ध्यान उस ओर आकर्षित करें। यह असंभव नहीं है कि हम राजनैतिक कबीले के लोग, प्रारम्भ में, आपकी बात सुनने से इन्कार कर दें, किन्तु हमारी ओर से इस प्रकार के व्यवहार की आशंका अपनी दृष्टि के अनुसार जन-जीवन को अधिक समृद्ध बनाने के हर सम्भव प्रयत्न के कर्तव्य-दायित्व से आपको मुक्त नहीं कर देती। सत्य की अन्त में विजय निश्चित है और आपकी राय माननी ही होगी। निस्संदेह साधनों के अभाव से आपको भी कठिनाइयां हैं किन्तु उससे आपके दायित्व में कमी नहीं आती। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश को ही ले लीजिए। यह राज्य मात्र क्षेत्रफल की दृष्टि से ही बड़ा नहीं है बल्कि यह महान् भी है। फिर भी, अगर पर्याप्त श्रम न किया गया तो इसका केवल कृषि प्रधान होकर रह जाना निश्चित है। किन्तु हममें से बहुतों को विश्वास करना कठिन है कि इस उबा देने वाली स्थिति का कोई निदान नहीं है। जहां-तहां ऊपरी सतह के नीचे खनिजों का होना निश्चित है। बिजली और इन्जीनियरिंग जो कुछ सेवाएं कर रहे हैं उनके अलावा भी जनजीवन को उन्नत करने के कुछ मार्ग होंगे। हम उनके लिए अपने वैज्ञानिकों की ओर आशा लगाये बैठे हैं।

मैं नहीं चाहता था कि एक क्षण के लिए भी कोई यह समझे कि मेरा ध्यान केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विज्ञान के उपयोगों पर ही केन्द्रित हैं। मैं जानता हूं कि व्यक्तियों की तरह देश भी बहुत दिनों तक उधार पर नहीं चल सकते। वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग तभी सफलतापूर्वक हो सकता है जबकि आवश्यक अनुसंधानों का वातावरण उपस्थित रहे। इस प्रकार के अनुसंधान बिना पर्याप्त धन लगाये नहीं हो सकते और इनसे शीघ्र परिणाम निकलने की आशा भी अनुचित है। हमारे देश की धारासभाओं के बहुत से सदस्यों को इस प्रकार के कार्यों के लिए धनराशि जुटाने की आवश्यकता समझा सकना कठिन हो जाता है। किन्तु जितनी शीघ्रता से मौलिक अनुसंधानों की आवश्यकता अनुभव की जा सके उतना ही हर एक के हक में अच्छा होगा। हो सकता है कि अनुसंधान की कुछ शाखाओं की उपयोगिता हमें उपयोग की दृष्टि से सन्देहास्पद लगे। यह वैज्ञानिकों के निश्चय करने की बात है कि क्या जो धन अनुसंधान के लिए मांगा जाता है,प्रारम्भ में उसमें से कुछ छोड़ा नहीं जा सकता। वैज्ञानिक को अपना दृष्टिकोण विस्तृत रखना होगा। अभी हाल में ही रुड़की यूनीवर्सिटी के अपने दीक्षान्त भाषण में मैंने अंतरिक्ष यात्रा का उल्लेख किया था। इसमें सन्देह नहीं कि यदि अन्तर्राष्ट्रिय ईर्ष्याद्वेष कुछ दिनों के लिए चिरवांछित अवकाश ग्रहण कर ले तो अबतक के उपलब्ध वैज्ञानिक ज्ञान के बल पर अगले दस वर्षों में एक कृत्रिम उपग्रह का निर्माण करके चन्द्रलोक की यात्रा पर निकल पड़ना कठिन नहीं होना चाहिए। यात्रा का पहला चरण ही सबसे अधिक कठिन होगा। दूसरी यात्राओं का कठिन होना अनिवार्य नहीं। लोग अभी भी उस ईंधन और मिश्रण की खोज में लगे हुये हैं जिससे भविष्य में बनने वाले राकेटों का निर्माण किया जा सके ताकि वे उस भयंकर ताप को सह सकने में समर्थ हों जो कि उन्हें पृथ्वी के वायुमंडल से निकलते ही सहन करना होगा। असामान्य गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी दबावों का शारीरिक और मानसिक रूप से मनुष्य के ऊपर क्या प्रभाव पड़ेगा इस पर भी अनुसंधान किये जा रहे हैं। मेरी कामना थी कि हमारे देश के लिए भी इसमें कुछ सहयोग देना संभव हो सकता। अतीत में राकेट के ऊपर हमारे यहां भी प्रयोग हुए हैं। इतिहास बताता है कि हैदरअली की सेना ने ब्रिटिश फौजों के विरुद्ध राकेटों का इतना सफलतापूर्वक प्रयोग किया कि यूरोप में सेनाओं की आवश्यक युद्धसज्जा के रूप में इसके प्रयोग की आवश्यकता पर गम्भीरतापूर्वक विचार होने लगा। बहुत शक्तिपूर्ण बन्दूकों के आविष्कार ने ही इस विचार को कार्यान्वित न होने से रोक दिया। हमारे लिए अपने यहां मानसिक और शारीरिक परीक्षण कर सकना असंभव नहीं होना चाहिए। मैं अंतरिक्ष यात्रा की चर्चा इसलिए कर रहा हूं क्योंकि मुझे इस विषय में बहुत दिलचस्पी है। मैं इसे केवल उदारहण के तौर पर प्रस्तुत कर रहा हूं। अनुसंधान के लिए असंख्यों क्षेत्र पड़े हुए हैं। इस प्रकार के कुछ अनुसंधानों के परिणाम निश्चय ही बहुत महत्वपूर्ण होंगे। निकट भविष्य में समाज की व्यावहारिक सेवा के लिए उनका उपयोग करना संभव होगा। मैं जिस वस्तु के लिए प्रतिवेदन कर रहा हूं वह है कि अनुसंधान, मानव के ज्ञानकोष में वृद्धि करना, व्यावहारिक रूप से जो कुछ उपयोगी हो, उसके सिवा भी स्वयं अपने आपमें महत्वपूर्ण और मूल्यवान है। मैं केवल आशा कर सकता हूँ कि अधिकाधिक धन इसके लिए उपलब्ध हो सकेगा। देश में प्रतिभा की कमी नहीं है। हमारे विश्वविद्यालयों से निकलने वाले विद्यार्थियों में से कुछ सचमुच में प्रतिभाशाली वैज्ञानिक निकले यदि उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक धन उपलब्ध हो सके और वैज्ञानिकों को कम से कम उन आवश्यक सुविधाओं के मिल सकने का भरोसा हो सके, जिनके बिना कोई एकाग्र प्रयत्न संभव नहीं। मैं जानता हूं कि अपने लिए ये विधाएं जुटा सकना वैज्ञानिकों के वश में नहीं है। यह संबंधित शासनों का उत्तरदायित्व है। मैं यह भी मानता था कि हमारे धनिक और उद्योगपति यह अनुभव कर सकते कि उनका भी इस बारे में एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है हालांकि वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग उनकी समस्याओं से सीधे संबंधित है किन्तु उन्हें मालूम होना चाहिए यदि ज्ञान ही उपस्थित नहीं है तो उसके उपयोग का प्रश्न ही नहीं उठता। उन्हें उन संस्थाओं में उदारतापूर्वक धन लगाना चाहिए जहां अनुसंधान हो सके।

जब हम विज्ञान की चर्चा करते हैं तो प्रायः हमारे सामने भौतिक विज्ञानों का ही चित्र रहता है, किन्तु जहां तक मुझे मालूम है आपकी अकादमी ने इस विषय में अपना कार्यक्षेत्र एकदम परिमित नहीं किया है। ज्ञान की कुछ ऐसी शाखायें हैं जो कि भौतिक विज्ञानों और दूसरे कुछ विज्ञानों की संधि रेखा पर रहती हैं जो कि अनुसंधानशाला की नापतौल के प्रति उन्मुख नहीं है। इस सम्बन्ध में मनोविज्ञान सरलता से सामने आ उपस्थित होता है। भारतवर्ष जैसे देश में आध्यात्मिक अनुभवों की एक लंबी परम्परा है—यह अनुभव केवल छुटपुट अनचीते और व्यक्ति के वश के बाहर जहां-तहां, किसी-किसी को जब-तब होने वाले अनुभव नहीं रहे हैं बल्कि इन अनुभवों को प्रस्तुत कर सकने के लिए एक नियमित विधि रही है। निश्चय ही इस मार्ग का अनुसंधान वांछनीय है। इस संबंध में प्रतिष्ठापित विधि का पूरा-पूरा अनुसरण करके देखना चाहिए कि यह हमें कहां पहुंचाती है। आत्मा और स्थूल वस्तुओं के बीच रेखा बहुत पतली है। वास्तव में यह मनुष्य की कल्पना की ही उपज है। हो सकता है कि नम्रता और सम्मान की भावना के साथ ठीक मार्ग पर किया जाने वाला अनुसंधान न सिर्फ हमें अधिक ज्ञान की प्राप्ति ही कराये बल्कि अधिकाधिक ज्ञान की ओर ले जाने वाले नये-नये मार्ग भी खोल दें। ज्ञान ही शक्ति है और हो सकता है कि इस प्रकार हम उस महत् शक्ति तक पहुंच जायें जिससे कि हम अभी तक अपरिचित हैं। सम्भवतः मैंने जो कुछ कहा है वह परम्परागत विश्वास से न मिलता हो पर यह तो आवश्यक नहीं है कि जो कुछ आप बार-बार सुनते रहे हैं वहीं मैं भी दुहरा दूं।

चूंकि सम्पूर्ण ज्ञान का अप्रतिबन्धित होना अनिवार्य आवश्यकता है, ज्ञानार्जन का किसी प्रकार के राजनैतिक अथवा आर्थिक सिद्धान्तों के निर्देश के बन्धन में बंध जाना मनुष्यता के लिए घातक होगा। ऐसे नियमन का विषाक्त परिणाम हमारे सामने है। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जब महान वैज्ञानिकों, इतिहासकारों और अन्य ज्ञान क्षेत्रों में लगे हुए विद्वानों को अपने अनुसंधानों अथवा विचार निष्कर्षों को विवश होकर परिवर्तित कर देना पड़ा है यदि वे, उस विशिष्ट देश पर शासन करने वाले तानाशाहों की प्रिय धारणाओं से मेल खाने वाले नहीं हुए। ऐसा किसी तरह नहीं होने देना चाहिए। किन्तु एक दूसरी तरह की विश्वसनीयता या निष्ठा है, जिसकी हम न्यायतः विद्वानों से भी आशा कर सकते हैं। ज्ञान की खोज और उसकी उपलब्धि के लिए प्रयत्न का औचित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहीं तक है जहां तक वह शिवेतरक्षति--अकल्याण का विनाश, अथवा जनगण की उन्नति और विकास में बाधा के विनाश के लिए है। राष्ट्रीय विज्ञान परिषद की यह बहुत बड़ी सेवा होगी यदि वह विज्ञान का लक्ष्य आगे बढ़ाते हुए ही वैज्ञानिक ज्ञान के साथ सही दार्शनिक विचार क्रम को गुम्फित करने में चिरवांछित नेतृत्व प्रदान कर सके, जो कि सत्य के सारे पक्षों को एक उज्ज्वल प्रकाश के रूप में एकत्र करके व्यक्ति और जातिगत जीवन के प्रत्येक कोण को आलोकित कर दे।

एक और समस्या है जो वैज्ञानिकों द्वारा गम्भीरतापूर्वक विचारणीय है। मेरा ख्याल है और मैं एक-आध बार पहिले भी इसका उल्लेख जनता में कर चुका हूं कि एक कृषि प्रधान देश में ऋतुविषयक अथवा वर्षा, वायु आदि सम्बन्धी ज्ञान व्यावहारिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। किसान को खास तौर पर खरीफ की फसल के समय पग-पग पर ठीक पथप्रदर्शन की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार के ज्ञान की एक विशाल राशि जनसाधारण की कहावतों में सुरक्षित है। ऐसी कहावतें स्पष्टतः युग-युग के निरीक्षण से बनी हैं किन्तु यह निरीक्षण विशेषज्ञों द्वारा नहीं किये गये थे। कुछ बातों के बारे में इनका अपर्याप्त और दोषपूर्ण होना स्वाभाविक है। सम्भवतः अपर्याप्त प्रमाणों के आधार पर ही सिद्धान्त बना लिये गये हों, फिर भी साथ ही साथ सम्भव है कि उनमें काफी मूल्यवान् सामग्री भरी पड़ी हो। जो हो, अब भी किसान के ऊपर उनका काफी प्रभाव है। वे न केवल वायु की दिशा का ही और बादलों की बनावट का ही ध्यान रखते हैं बल्कि कुछ विशेष पशु-पक्षियों के व्यवहार का भी अध्ययन करते हैं। यह आवश्यक है कि तथ्य को मिथ्या से अलग करने के लिए इन कहावतों का विस्तृत अध्ययन किया जाये। इस सिलसिले में पंचागों में दी हुई ऋतु सम्बन्धी पूर्व सूचनाओं का भी अध्ययन किया जाना चाहिए। यह देश की बहुत बड़ी सेवा होगी यदि वैज्ञानिक पक्षपातहीन दृष्टि से इसका विधिवत् परीक्षण करें।

प्रसंगतः मैं यहां डा० मेघनाथ साहा के सभापतित्व में हुई कैलेन्डर रिफार्म कमेटी की रिपोर्ट के प्रकाशन की भी कुछ चर्चा करना चाहूंगा। रिपोर्ट की संस्तुतियां काफी दूर तक प्रभाव डालने वाली हैं और मेरे लिए काफ़ी व्यक्तिगत संतोष का विषय है कि मेरे द्वारा किये गये कुछ प्रस्ताव स्वीकार करने योग्य माने गये। मेरी सिर्फ एक ही शिकायत है कि रिपोर्ट काफ़ी दूर तक नहीं गयी। पहिली बात तो यह है कि इसे वर्षारम्भ की तिथि इस प्रकार पीछे हटा देनी थी कि वह सूर्य मेष राशि में प्रविष्ट होने की तिथि से मेल खा जाती। मुझे विश्वास है कि इससे जनता में थोड़ी बहुत उलझन पैदा होने पर भी यह संस्तुति ग्राह्य हो जाती। रिपोर्ट की दूसरी कमी यह है कि ऐरियस या मेषराशि का पहिला बिन्दु निश्चित नहीं किया गया, अश्विनी का भी पहिला बिन्दु वही होना चाहिए। मैंने प्रस्ताव किया था, जैसा कि और भी बहुत से लोगों का प्रस्ताव था कि यह बिन्दु चित्रा से ठीक १८०° पर होना चाहिए। भारत सरकार को, जितनी जो कुछ दूर तक रिपोर्ट की संस्तुतियां गयी हैं उनको, प्रशासकीय स्वीकृति देने में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

ग्रह-नक्षत्र सम्बन्धी एक अच्छी एटलस का निर्माण भी चिरप्रतीक्षित है जिसमें ग्रह और नक्षत्रों के भारतीय नाम, जहां-जहां वे उपलब्ध हों, दिये गये हों और अन्य खगोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धी सूचनाएं भी रहें। मैं आशा करता हूं कि उत्तर प्रदेश सरकार जो वेधशाला स्थापित करने जा रही है वह इस कार्य को शीघ्रातिशीघ्र हाथ में लेगी। पर इस कार्य के सफलतापूर्वक समाप्त होने के लिए दूसरों के सहयोग की भी आवश्यकता होगी। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारी वेधशाला यद्यपि अभी पूर्ण नहीं हुई है फिर भी अगली शरद ऋतु में जब मंगल पृथ्वी की समीपतम कक्षा में होगा, उसके अध्ययन के लिए प्रबन्ध किया जा रहा है।

मुझे आशा है कि आप मुझे क्षमा कर देंगे यदि चलते-चलाते मैं एक और परम्पराविरुद्ध विषय का उल्लेख कर दूं। मेरा अभिप्राय फलित ज्योतिष से है। अभी तक मैं नहीं समझ सका कि इसका अध्ययन करने वाले व्यक्तियों को कुछ निम्नकोटि की बुद्धि वाला क्यों समझा जाता है। फलित ज्योतिष के विद्यार्थी से पहिला प्रश्न तो यही किया जाता है कि फलित ज्योतिष का विज्ञान होना किस प्रकार संभव है; उदाहरणार्थ नक्षत्र—अगर जनसामान्य की भाषा का व्यवहार करें, यद्यपि यह शुद्ध नहीं है, किस प्रकार मनुष्य के भाग्य को प्रभावित कर सकते हैं। यहां पर मैं यह संकेत करना चाहूंगा कि यह रुख बहुत ही अवैज्ञानिक है। विज्ञान में पहले तथ्य आते हैं। उसके कहीं बाद उसके बारे में सिद्धान्त और स्पष्टीकरण प्रस्तुत किये जाते हैं। यदि भूमि की ओर सेव का गिरना अथवा केपलर के सिद्धान्त के अनुसार सूर्य के चारों ओर ग्रहों की परिक्रमा, इन तथ्यों की सत्यता स्वीकार न की गई होती तो गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त के प्रतिपादन का कोई औचित्य ही नहीं होता। किन्तु जैसा कि गुरुत्वाकर्षण का तथ्य सार्वभौम रूप से स्वीकार किया गया भले ही उसके स्पष्टीकरण को सार्वभौम स्वीकृति न मिली हो। बहुत से लोग न्यूटन के सिद्धान्त से सन्तुष्ट नहीं हुए; संभवतः आइन्सटाइन का सिद्धान्त भी भविष्य में अस्वीकृत हो जाये। उसी प्रकार अविश्वासियों को पहिले फलित ज्योतिष द्वारा उद्भासित तथ्यों की परीक्षा करनी चाहिए। उनको देखना चाहिए कि क्या यह तथ्य सत्य हैं; फिर उसके बाद वैज्ञानिक स्पष्टीकरण के लिए पर्याप्त समय मिलेगा। उन तथ्यों के परीक्षण से ही इंकार करना जिनको कुछ लोग दृढ़ विश्वास के साथ सत्य बताते हैं, बहुत ही अवैज्ञानिक मस्तिष्क का परिचय देना है।

आपके सम्मेलन में प्रत्येक दिन उपस्थित हो सकना मेरे लिए संभव नहीं होगा। मुझे आशा है आप इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। मैं आपके सम्मेलन की पूर्ण सफलता की कामना करता हूँ। रजत जयन्ती का अवसर एक संस्था के जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण अवसर है, कहना चाहिए कि महत्वपूर्ण सीमा चिन्ह है। मैं आशा करता हूँ कि अब आप इसके बाद मानवता की और भी अधिक तथा सफल सेवा करने के युग में पदार्पण करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक का कर्तव्य

मैं नहीं जानता कि इस समारोह का सभापतित्व करने के लिए मुझे आमंत्रित कर चुकने के बाद आपको अपनी भूल पर अफसोस हुआ है या नहीं। एक सक्रिय राजनीतिज्ञ, विशेषतया जिसका हाथ हमारे जैसे बड़े प्रदेश के शासन में भी रहा हो, और जब हम असाधारण परिस्थितियों से गुजर रहे हों, वैज्ञानिकों की सभा का सभापतित्व करने के लिए शायद ही उपयुक्त हो। वैज्ञानिकों का संसार एक ऐसा शांत, निर्लिप्त जगत माना जाता रहा है जहां साधारण व्यक्ति के संसार के संदेह, अनिश्चितता और रागद्वेष का कोई प्रभाव नहीं होता। आप सत्य के, उसके परम शुद्ध रूप के उपासक हैं, आपका भावजगत् उन चिरन्तन सत्यों से बसा हुआ है जिनके लिए दार्शनिक भी इतने उत्कण्ठित रहते हैं।

पर आखिर यह सत्य है क्या? एक समय था जब धर्मशास्त्री दावा करते थे कि वे इसे और इसके बारे में सब कुछ जानते हैं। उनका दावा था कि उन्होंने इस ज्ञान की प्राप्ति सीधे परमसाक्षात्कार द्वारा की है। जैसे-जैसे वैज्ञानिक अनुसंधान का क्षेत्र बढ़ता गया विज्ञान ने उन्हें चुनौती दी। धीरे-धीरे विज्ञान शक्ति संपन्न होता गया, प्रत्येक नवीन खोज और जानकारी उसका आत्मविश्वास बढ़ाती गयी, अंत में उसने धर्मशास्त्रों और धर्मों का, सत्य के ज्ञान और विवेचन का दावा अस्वीकार कर दिया और इससे जो सिंहासन रिक्त हुए थे उन पर अपने नवीन देवताओं की प्रतिष्ठा की।

यह एक नया तेजस्वी विश्वधर्म था। यहां एक महान परमाणु प्रतिष्ठित था जिसका गौरव इस खोज से कुछ बढ़ ही गया कि यह छोटे पैमाने पर प्रोटोन्स और एलेक्ट्रान्स से निर्मित एक सौर मंडल ही था, दूसरी ओर वह रहस्यमय सबको परिव्याप्त रखने वाला तरल ईथर था, वहीं एक ओर गुरुत्वाकर्षण का महान नियम भी प्रतिष्ठित था जो बहुत दूर भागते हुए सितारों के आकर्षण से बचायी हुई पृथ्वी से लेकर पुराने कहावती न्यूटन के सेब तक को एक सूत्र में बांधे हुए था। इसमें समूह के और शक्ति के संरक्षण का सिद्धान्त भी था और गणित और यूल्कीडियन ज्यामिति के नियमों के आज्ञानुवर्ती देश और काल के सिद्धान्त भी उपस्थित थे। यह ठीक है कि इन सबके बीच दो परेशान करने वाली चीजें यानी प्राण और मस्तिष्क भी उपस्थित थे। क्रिस्टल से प्रोटोप्लाज्म से और प्रोटोप्लाज्म से चेतना तक का क्रमिक परिवर्तन बता सकना सरल नहीं था। यह समझना कठिन है कि किस प्रकार मस्तिष्क से असम्बन्धित कम्पन अपने को विचार और भावनाओं में परिवर्तित कर लेते हैं, जिनका कि व्यवहारवादियों के बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ कहने के बाद पूरी तरह स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता। इन सब बातों द्वारा उत्पन्न की गयी अनिश्चितताओं के होते हुए भी विज्ञान को अपने ऊपर और अपने तरीकों पर पूरा-पूरा विश्वास है। ऐसा लगता था मानों यह याथार्थ्य के सुदृढ़ शिलातल पर प्रतिष्ठित हो गया हो और जो चीजें अभी तक अस्पष्ट रहीं उनके लिए केवल थोड़े समय की आवश्यकता थी।

लेकिन विज्ञान का यह आत्मगर्व अब समाप्त हो गया है, अब वह अपने आधारों के विषय में असन्दिग्ध नहीं है। आवश्यक अनुमान और उसका बुद्धिसंगत परिणाम यह बताते से देख पड़ते हैं कि परमाणु निर्माण तत्वों के व्यवहार में एक ऐसी चीज़ है, जिसे स्वतंत्र संकल्पशक्ति जैसा ही कहा जा सकता है और परिणाम-स्वरूप जिसके बारे में पहिले से कुछ कह सकना असंभव है। यूक्लिड की ज्यामिति भी कुछ स्वतःसिद्ध प्रमाणों और स्वीकृत पक्षों पर आधारित एक तर्क संगत ढांचा मात्र है जिन प्रमाणों और पक्षों की आवश्यक रूप से कोई वाह्य स्वतः सिद्धता नहीं है। सर साह सुलेमान, आपके धीर गम्भीर प्रतिरोध के बावजूद ऐसा लगता है कि न्यूटन के भौतिक विज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्तों ने साक्षेपवाद के आगे करीब-करीब हार मान ली है, ईथर कहानियों की बात रह गयी है और हम लोगों को विश्वास दिलाया जा रहा है कि हम एक फैलते हुए विश्व के निवासी हैं जो एक साथ ही निस्सीम भी है और ससीम भी। देश और काल दोनों का (Space and time) आपस में कुछ सम्बन्ध है क्या? (Force, Matter, Energy) इन शब्दों से वास्तव में क्या अभिप्राय है, आज यह बता सकना कठिन है। जबकि आज से पहिले सब कुछ एक नियम और संयमित गति (Rhythm & law) के अन्दर बंधा हुआ बताया जाता था, आज अनिश्चितता का सिद्धान्त, (Principal of Indeterminacy) जहाँ तक ऐसी चीज को भी सिद्धान्त कहा जा सकता है, एक सर्वमान्य और पुरानी चीज हो चुकी है। विज्ञान की और शाखाओं की भी इससे कम आश्चर्यजनक दशा नहीं है। उनकी प्रमुख समस्याएँ आज भी सुलझने से उतनी ही दूर हैं जितनी हमेशा से थीं। फ्रायड, जंग और ऐडलर तथा अन्य मनोविश्लेषकों (Freud, Jung & Adler) के अनुसंधानों ने हमें इस योग्य बना दिया है कि हम मानव मस्तिष्क की गतिविधियों की गहराई से जांच कर सकें। तुलनात्मक मनोविज्ञान और बालमनोविज्ञान ने भी कुछ कम सहायता नहीं की है। श्री जगदीश बसु के अनुसंधान चेतन और अचेतन प्राणियों पर किसी उत्तेजक वस्तु की प्रतिक्रिया में आश्चर्यजनक समानता दिखा चुके हैं, किन्तु जीवन और चेतना अभी तक वैसे ही पकड़ में न आने वाले रहस्य बने हुए हैं जैसे कि हमेशा से थे।

इस सबका वैज्ञानिक मस्तिष्क पर और वैज्ञानिकों के साधारण दृष्टिकोण पर—इस विषय पर आप मेरी अपेक्षा अधिक आधिकारिक रूप से बोल सकते हैं—काफ़ी प्रभाव पड़ा। आवश्यकता से अधिक संतुष्ट आत्मपर्याप्तता का रुख सर्वज्ञता के झूठे अभिमान से उत्पन्न हुई श्रेष्ठता की भावना, धर्म का उपहास से भरा तिरस्कार और विज्ञानेतर किसी मार्ग से सत्य तक पहुंचने के मार्ग को बिना सोचे समझे ही तिरस्कृत कर देना यह सब बातें समाप्त हो गयीं और आशा है अब फिर नहीं लौटेंगी। कवि के इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों का सत्य अधिकाधिक अनुभव किया जा रहा है।

Let knowledge grow from more to more.
But more of reverence in us dwell.

यद्यपि कठिनाई होती है फिर भी मैं आधुनिक वैज्ञानिक प्रवृत्तियों और अनुसंधानों के बारे में जानकारी रखने की बराबर कोशिश करता हूँ। साथ ही मैं अध्ययन की और शाखाओं का भी एक विनम्र विद्यार्थी रहा हूँ। विज्ञान और दर्शनशास्त्र के बीच की चौड़ी खाई को पटता देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता और संतोष होता है। आशा है आप मुझे ऐसा कहने के लिए क्षमा करेंगे पर मैं अपनी सारी निष्ठा और विश्वास के साथ, जिसका कारण मैं यहां नहीं दूँगा, कह सकता हूँ कि यदि वैज्ञानिक योगियों के —पतंजलि के—कुछ तरीकों की ओर ध्यान दें तो उन्हें आज जहां अंधकार में टटोल रहे हैं उसकी जगह प्रकाश दिखायी देगा। आखिरकार विज्ञान ने केवल यांत्रिक परीक्षणों द्वारा ही उन्नति नहीं की बल्कि इसलिए भी की कि वैज्ञानिकों के पास प्रखर कल्पना शक्ति थी, सत्य का कभी कभी अतर्क्य रूप से दर्शन करा देने वाला अवचेतन था जिसका कारण दे सकना कठिन है, ऐसा अचानक हो उठने वाला प्रतिभा का स्फुरण था, एकाग्र होकर विषय विशेष में मनोनिवेश की क्षमता थी। वे अपने प्रति, अपने साध्य के प्रति अपराधी होंगे यदि वे उन यंत्रों के उन उपायों का उपयोग करने से इन्कार कर दें जो मानवमस्तिष्क की इन क्षमताओं को और भी अधिक प्रखर, और भी अधिक सूक्ष्मदर्शी बना देने के लिए प्रसिद्ध है। आप स्वयं अपने ढंग से उस वस्तु की खोज में हैं जो इस समस्त दृश्य जगत् का मूलाधार है। आप स्वयं अपने ढंग से इस परिणाम पर पहुंच गये हैं कि महाप्रतापी सूर्य से लेकर इलेक्ट्रान तक, मनुष्य से लेकर अमीवा तक प्रकृति का संसार बहुत ही वास्तविक अर्थों में किसी विशेष दृष्टिकोण पर (Subjective) आधारित है। क्या उस महान् खगोल विज्ञान के जादूगर सर जेम्स जीन (Sir James Jeans) ने नहीं कहा है कि यह विश्व एक सर्वोच्च गणितज्ञ के मस्तिष्क का शुद्ध विचारमात्र है उसे आपकी इच्छा हो आप ईश्वर कहें या न कहें? क्या एडिंग्टन (Eddington) ने यह विचार उपस्थित नहीं किया है:

'अपने वातावरण के सम्पूर्ण सौन्दर्य, नीति और आत्मा से संबंधित पक्षों को एक ओर रख देने पर भी हमारा सामना विशालता, सारवत्ता, विस्तार और कालावधि आदि तत्वों अथवा गुणों से पड़ता है जिनका उचित स्थान भौतिक विज्ञान माना जाता है। एक तरह से भौतिक विज्ञान उनका स्थान है भी किन्तु भौतिक विज्ञान उन्हें सीधे-सीधे हाथ में ले सकने की स्थिति में नहीं है। उनकी वास्तविक प्रकृत सारतत्व अगम्य हैं, हिसाब बैठाने के लिए हम मानस चित्रों का उपयोग कर सकते हैं पर कोई भी मानस चित्र उससे बाहर जो कुछ है उसकी प्रतिमूर्ति नहीं हो सकता इसलिए भौतिक विज्ञान वास्तव में इन अगम्य दुर्बोध गुणों का अध्ययन नहीं करता बल्कि जो कुछ हम अनुभव कर पाते हैं, देख पाते हैं उसकी ओर संकेत कर सकने वाला अध्ययन करता है। सत्य है कि यह अध्ययन सांसारिक गुणों का उतार-चढ़ाव प्रतिफलित करते हैं, लेकिन हमारा यथार्थ ज्ञान इन अध्ययनों का है न कि वास्तविक गुणों का। इन अध्ययनों का वास्तविक गुणों से वैसा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध है जैसा कि टेलीफोन नम्बर का उसमें चन्दा देने वाले से।'

अथवा जैसा कि उन्होंने एक दूसरी जगह पर कहा है:

'संसार का वस्तुतत्व मानस तत्व है।' मानस तत्व देशकाल में फैला हुआ नहीं है। देशकाल तो उस परम योजना चक्र के अंग हैं और उसी से अंत में उनका निर्माण हुआ है।

क्या यह दार्शनिक जिसे मनोराज्य कहता है उससे बहुत भिन्न है? इस सबकी पृष्ठ-भूमि में और इससे परे जो कुछ है, वेदान्त जिसके लिए कहता है कि 'यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति' जिसके जान लेने पर बाकी यह सब स्वयं ही ज्ञात हो जाता है, इसके बाद फिर पदार्थ से चेतना अथवा मस्तिष्क को विलग करने वाली उस चौड़ी खायीं का ज़िक्र करते समय क्या कभी आपने कपिल के सिद्धान्तों का अध्ययन किया है जिनमें एक 'प्रधान' से दोनों उद्भूत हुये हैं? मैं अब और इसी प्रकार के उदाहरण दे देकर आपको श्रमित नहीं करूंगा किन्तु मुझे विश्वास है कि इस प्रकार के अध्ययन से विज्ञान और दर्शन दोनों ही के लिए अकल्पनीय लाभ होगा।

यह उन बहुत से क्षेत्रों में से एक है जहां विज्ञान को हार मान कर रुक जाना पड़ा है। एक और क्षेत्र है जिसके बारे में, मैं सोचता हूँ कि वैज्ञानिक काफ़ी अपना हृदय टटोल रहे हैं। मनुष्य की जिज्ञासा को संतुष्ट करने के, और हमें बौद्धिक और सौन्दर्य भावात्मक संतोष देने के अलावा, विज्ञान के ऊपर एक बहुत बड़ा, व्यवहारात्मक उत्तरदायित्व है और वह है उसका कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति करना। यदि आज दैनन्दिन जीवन में सुविधायें अधिक हैं जितनी कभी नहीं थीं, यदि व्याधि और मृत्यु पर सर्वदा की अपेक्षा अधिक नियंत्रण है, यदि मानव जाति का आपसी पारिवारिकत्व इतिहास के किसी भी युग की अपेक्षा आज अधिक है तो इस सबका श्रेय विज्ञान को मिलना चाहिए। पर उतना ही भयंकर यन्त्रणापूर्ण मृत्यु, निर्दोष प्राणियों और संपत्ति का उन्मत्त विनाश, हृदय द्रावक अंगभंग और नगर के नगर क्षार कर देने का कलंक भी विज्ञान को मिलेगा। जिसके कारण आज के युद्ध इतने विभीषिकापूर्ण हो उठे हैं।माना कि इसमें साम्राज्यवाद और पूंजीवाद का अपराध गहन है किन्तु इसमें विज्ञान का और भी अधिक अपराध है जिसने यह सब कुछ संभव किया। ज्ञान अपने में बहुत अच्छी वस्तु है वह परम श्रेय साधन है पर उतना ही अकल्याणकारी भी हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति इस शक्ति का उपयोग करने के योग्य नहीं होता। इसलिए ही हमारे यहाँ यह नियम था कि ज्ञान केवल सुपात्र को देना चाहिए जो उस के योग्य हो। जैसा कुछ भी हो वैज्ञानिकों को शासकीय अथवा आर्थिक प्रभुता के आगे अपनी प्रतिभा को बेच कर कलुषित नहीं करना है। आज के ब्राह्मण की हैसियत से उसे अपने गौरव का ध्यान रखना है। केवल कोरे ज्ञान और भौतिक सुख-सुविधा का स्तर बढ़ाना उसका लक्ष्य न हो कर साथ ही आत्मा की उन्नति भी उसका लक्ष्य होना चाहिए। आज जैसा वह है, वैसे मनुष्य की मांगें पूरी करना भर ही काफ़ी नहीं है, यह भी निश्चित करना आवश्यक है कि हम इस संसार को किस प्रकार के मनुष्यों से बसा हुआ देखना चाहते हैं। अभी तक विज्ञान ने इस कर्तव्य की अवहेलना की है, जिसके परिणामस्वरूप आज जीवन विषाक्त हो उठा है। अब और आगे विज्ञान इस कर्तव्य की अवहेलना स्वयं अपने अस्तित्व को खतरे में डाल कर ही कर सकता है। आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक जिन वस्तुओं की सौंदर्य और पावनता के पीठ पर प्रतिष्ठा करके मनुष्य ने अपनी अमूल्य निधि माना है उन सब वस्तुओं के, सभ्यता और संस्कृति के विनाश का कलंक विज्ञान के मस्तक पर ही लगना है।

अब जरा अपने देश की सामयिक समस्याओं पर विचार कर लिया जाये। भारत के वर्तमान और भावी जीवन में विज्ञान का जो महत्वपूर्ण स्थान है उसके बारे में दो मत नहीं हो सकते। हम एक विशाल परिवर्तन की देहली पर खड़े हैं। हमारा देश बहुत शीघ्र ही स्वतंत्र राष्ट्रों की पंक्ति में अपना स्थान ग्रहण करने जा रहा है। हमारी भूमि खनिज और अन्य प्रकार के साधनों से, जिसमें से अधिकांश का हमें अभी ज्ञान भी नहीं है, भरी पड़ी है। इनमें से जो ज्ञात है उनका भी अभी पूरा-पूरा उपयोग नहीं हो रहा है। और भी हम भूल जाते हैं कि इस वन और खनिज सम्पत्ति का उपयोग विशेष व्यक्ति, निगम अथवा संस्था के लिए नहीं वरन् समस्त जनता के, सम्पूर्ण राष्ट्र के कल्याण के लिए होना है। इतना ही नहीं यदि कभी मानवता आज से अधिक अच्छी तरह संगठित हो सके तो सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिए उसका उपयोग होना है। इसमें की अधिकांश संपत्ति फिर दुबारा उत्पन्न नहीं की जा सकती अतः उसकी सुरक्षा भी रखनी है। बड़े-बड़े भूभाग जो आज बंजर पड़े हुए हैं थोड़े से प्रयत्न से लहलहाते शस्यश्यामल क्षेत्रों में परिवर्तित किये जा सकते हैं। बहुत से रोग जिन्हें, हमारी जलवायु और आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों में खासतौर से पनपने का मौका मिल जाता है, उनके उन्मूलन का उपाय सोचना है। उसी प्रकार दुर्भिक्षवाद और अकालमृत्यु के विरुद्ध संग्राम छेड़ना है। जनता की जीवनी शक्ति बढ़ानी है, स्वास्थ्य और कम थकान करने वाले काम के तरीके खोजने हैं, उनकी अर्जनशक्ति और आय बढ़ानी है। इन सब कार्यों में सहायता के लिए हम वैज्ञानिक की ओर दृष्टि लगाये हैं। उसे जनता का और जो जनता के नाम पर और उसके बदले जन-कार्य का प्रबन्ध करते हैं उनका मार्गदर्शक, मित्र और फिलासफर बनना है। यश अथवा अर्थलोभ से प्रेरित होकर नहीं वरन् सत्य के प्रति वास्तविक निष्ठा और मानवता की सेवा-भावना से प्रेरित होकर पुराने काल के ब्राह्मणों की भांति उसे कार्य करना है। दलबन्दी का उसके लिए कोई अर्थ नहीं है। इस सबसे ऊपर भारतीय वैज्ञानिक को यह स्मरण रखना है कि विद्वत्ता और जनसेवा की महान परम्पराओं वाले इस पुनीत देश के पुनर्निर्माण में सहयोग देने का यह विशेषाधिकार उसे मिला है। देश आज निर्धनातिनिर्धन है और उसकी सेवाओं का उचित पुरस्कार अथवा उसकी योग्यता और अनुसंधान का उचित सम्मान और मूल्य अभी दे सकने में असमर्थ है। इन सब असमर्थताओं के बावजूद, जहां तक भौतिक और मानसिक समृद्धि के आधार की बात है हमारी खानों पर कोई भी देश गर्व कर सकता है, बोस और रमण के नाम वैज्ञानिक जगत् में जादू का काम करते हैं। हमारी प्रयोगशालाएं कुछ स्मरणीय अनुसंधानों का क्षेत्र रही हैं। मेघनाद साहा, बीरबल साहनी, नीलरत्न धर और भोलानाथ सिंह के कार्य की देश के बाहर भी सराहना हुई है। यह स्वाभाविक है। यह प्रदेश चिरकाल से महान अध्ययन केन्द्रों का पीठ रहा है और मुझे विश्वास है कि भविष्य में विगत काल से भी अधिक मानवज्ञान में वृद्धि करने का श्रेय इसे मिलना निश्चित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके इस संगठन जैसी संस्था का हमारे बीच होने से वैज्ञानिक अनुसंधान को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा, इसके सिवा इस प्रकार के कार्य में लगे हुए व्यक्तियों के लिए आपस में मिलने, एक दूसरे के निकट आ सकने और आपस में एक दूसरे के कार्य का मिलान करके भविष्य की योजना बना सकने का इसके द्वारा सुयोग मिल सकेगा। एक ओर आप और शासन के बीच, दूसरी ओर व्यवसायियों और शिक्षा संस्थाओं के बीच जितना आज सहयोग है उससे कहीं अधिक अब संभव होना चाहिए। मैं आपके लिए जनसेवा के उत्तरोत्तर सफल जीवन की कामना करता हूँ और आशा करता हूँ कि आपका यहां का विचार-विनिमय शुद्ध और व्यावहारिक विज्ञान क्षेत्र के लिए मूल्यवान प्रमाणित होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोवैज्ञानिक चिकित्सा

इस अवसर पर यदि मैंने आपके समक्ष बोलना स्वीकार किया है तो इसका अभिप्राय यह नहीं है कि मुझे ऐसे विशेषज्ञों की इस सभा के सामने, जिन्होंने जीवन भर मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का न केवल सैद्धान्तिक अध्ययन किया है अपितु रोगियों में मानसिक सन्तुलन वापस लाने तथा उनके कष्ट दूर करने के लिए इसके व्यावहारिक रूप का भी अध्ययन किया है, बोलने की अपनी योग्यता के बारे में कोई भ्रम है। अन्य चिकित्सकों के साथ-साथ,जैसा कि रूढ़िगत अर्थ में विभिन्न स्वीकृत चिकित्सा पद्धतियों के चिकित्सकों को ही चिकित्सक स्वीकार किया जाता है, मनोवैज्ञानिक चिकित्सक भी मानव जाति का एक बहुत बड़ा हितैषी है और व्यक्ति तथा समाज दोनों की बहुत बड़ी सेवा कर सकता है।

एक प्रकार से मनोवैज्ञानिक चिकित्सा उतनी ही पुरानी है जितनी कि स्वयं मानव जाति। यहां तक कि आदिम जाति की जो वह अपने अस्वस्थ बच्चे को सुलाने में सफल होती है अथवा अंधकार से लगने वाले अकारण भय को झाड़फूँक कर दूर कर देती है वह भी प्रारम्भिक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का ही प्रयोग है। न सिर्फ आदिम भूतवैद्य और ओझा जिनकी भूतप्रेत और मृतात्माओं को वश में करना और भगाना आदि प्रमुख आजीविका होती है बल्कि प्रत्येक सुविज्ञ डाक्टर वैद्य जो कि रोगी की शैय्या के निकट आता है किसी न किसी रूप में इसका उपयोग करता है। डाक्टर जानता है कि यदि रोगी के मस्तिष्क तक वह पहुंच सका और उसने रोगी का विश्वास प्राप्त कर लिया तो आधा मोर्चा जीत लिया गया। किन्तु अभी हाल के अन्वेषण मनोवैज्ञानिक चिकित्सा को एक विशिष्ट अध्ययन का क्षेत्र बनाने में सफल हुए हैं जिसका चिकित्सा का अपना एक अलग तरीका है। मैं काफ़ी समय तक मनोविज्ञान का अध्यापक रहा हूँ और इस सिलसिले में मुझे इस विषय पर भी कुछ साहित्य का अध्ययन करना पड़ा। कान्फ्रेंस के उद्‌घाटन करने का निमंत्रण स्वीकार कर लेने के पीछे यह भी एक प्रोत्साहन था।

यह मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे 'इंडियन साइकियाट्रिक सोसाइटी' के कार्यकलापों के बारे में अधिक ज्ञान नहीं है। इस विषय में जो साहित्य मुझे उपलब्ध हो सका वह केवल १९४७ के मेमोरेन्डम ऑफ एसोसियेशन के नियमों की एक प्रति थी,मेरा विश्वास है कि तब से अब तक काफी उपयोगी कार्य हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि आपकी सदस्यता केवल चिकित्सकों तक ही सीमित नहीं होगी। आपको मालूम होगा कि मनोवैज्ञानिक चिकित्सा को अग्रसर करने का बहुत कुछ श्रेय मनोवैज्ञानिकों को है। असंतुलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्तिष्क का क्रिया-कलाप आखिरकार मस्तिष्क के कार्य करने की प्रक्रिया का एक पक्ष मात्र ही तो है। आप जैसे लोगों का समाज यदि उसे विश्वविद्यालयों का, मनोविज्ञान केन्द्रों का और अन्य मनोविज्ञान के अध्ययन और शोध कार्य में लगी हुई संस्थाओं का सक्रिय सहयोग मिल सके, तो बहुत लाभान्वित होगा। कुछ ऐसे व्यक्ति विशेष भी हैं अनजानेमाने नवीन क्षेत्रों में पथप्रदर्शन किया है। आखिरकार यदि कुछ व्यक्तियों में अनजाने मार्ग से चलनें का या नवीन मार्ग बनाने का साहस न होता तो विज्ञान की उन्नति संभव ही कैसे होती। एक ऐसे ही प्रकार का केन्द्र बनारस में प्रोफेसर लाल जी राम शुक्ल द्वारा चलाया जा रहा है। और भी बहुत से अवश्य ही होंगे। मैं केवल यह आशा मात्र कर सकता हूँ कि आप यह अनुसंधान करने में संकोच नहीं करेंगे कि क्या आपके क्षेत्र के लिए उपादेय कुछ उनके पास भी हैं।

मानव मस्तिष्क एक बहुत जटिल वस्तु है और हम अभी उसकी गहराई तक पहुंच पाने से बहुत दूर हैं। ऐसा लगता है मानो प्रायः जो व्यक्ति इसकी सहायता कर सकते हैं उनको धोखा देने में और गलत निष्कर्ष तक पहुंचाने में इसे एक प्रकार के विकृत आनन्द की उपलब्धि होती है। प्रत्येक मनोवैज्ञानिक चिकित्सक को ऐसे रोगियों से पाला पड़ा होगा जिनका मस्तिष्क अपने तमाम असंतुलन के बावजूद, मनोचिकित्सक का मस्तिष्क किस दिशा की ओर जा रहा है यह फौरन भाँप लेता है और उसी के अनुसार एक पूरे काल्पनिक संसार का निर्माण कर लेता है जहां प्रत्येक वस्तु दूसरी के साथ स्वाभाविक रूप से सम्बद्ध रहती है और पूरी काल्पनिक सृष्टि मनोचिकित्सा के रोगी के रोग-कारणों की निदान सूची में पूरी तरह मेल खा जाती है। कभी ऐसा भी मालूम होता है मानो इस मानसिक प्रयत्न द्वारा वह अच्छा हो गया है किन्तु देर-सबेर फिर हालत गिरना निश्चित है। इसका भी भय है कि रोगी अनजाने में चिकित्सक के प्रच्छन्न अथवा अनजान में किये हुए संकेतों को ग्रहण कर ले और उसके चारों ओर अपने द्वारा बुने हुए कल्पना के ताने-बाने में विश्वास करने लगे। उसकी मूल व्याधि, मस्तिष्क का वह भाग जहां व्याधि का वास्तविक स्थान है और जिसे उसने बाहर आने ही नहीं दिया है, छिपा ही रह जायगा। इसका परिणाम यह होगा कि बजाय अपनी मानसिक यंत्रणा के निदान के वह उसमें कुछ कल्पित अनुभव और जोड़ लेता है।निश्चय है कि ऐसी परिस्थिति में वह स्वस्थ न हो सकेगा बल्कि कुछ और अंतर्द्वन्द्वों और विषय भावनाओं का शिकार होकर मनोचिकित्सक के भार को अधिक बढ़ा देगा।

यह एक बहुत आकर्षक पर साथ ही बहुत कठिन कार्य है जो मनोचिकित्सक अपने लिए निश्चित करता है। उसे दूसरे के मस्तिष्क का अध्ययन कर कहा जाय तो मस्तिष्क के स्वामी को ही उसके मस्तिष्क के रहस्य बताना है, पर साथ ही इस बात की सावधानी भी रखनी है कि उसके (चिकित्सक के) अपने व्यक्तित्व का कोई अंश रोगी पर न लद जाय और किसी प्रकार भी रोगी की अपनी संकल्प-शक्ति दुर्बल न हो। संकल्प शक्ति नष्ट कर दिये जाने पर एक मनुष्य को कहां तक दूसरे के द्वारा संकेतित प्रस्तावों को मानने के लिए विवश किया जा सकता है, चाहे वे उसके अपने सबसे महत्वपूर्ण हितों के विरुद्ध हों। इसका सबसे बड़ा उदाहरण कुछ यूरोपियन देशों के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों की, उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर चलाये जाने वाले मुकदमों में, जिनकी सारे संसार में बड़ी बदनामी थी, अपराध स्वीकारोक्तियां हैं जिनके लिए उन पर प्रत्यक्षतः कोई बल प्रयोग नहीं किया गया था।

रोगी के मस्तिष्क के पुनर्गठन का प्रलोभन निश्चय ही बहुत बड़ा है, और इसका परिणाम कभी-कभी ऊपर से देखने में अच्छा भी होता है किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य मानवीय परीक्षा-पशु नहीं है बल्कि एक पवित्र व्यक्तित्व है जिसके साथ खिलवाड़ नहीं किया जा सकता।

इस तथ्य ने मुझे एक दूसरे किन्तु बहुत ही निकटवर्ती विषय दर्शन का स्मरण दिला दिया। चिकित्सकों की सभा में दर्शन का उल्लेख शायद कुछ अजीब सी बात मालूम हो किन्तु भारतीय परिपाटी और इस तर्क-पद्धति की पूर्णता मेरे पक्ष में है। विज्ञान का कार्य तभी प्रारम्भ होता है जबकि बहुत सी एक तरह की घटनाओं के बारे में व्यवहार-सिद्ध सूचना एकत्र की जाती है और घटनावली को एक विशिष्ट नियमों में खास ढांचे में फिट किया जाता है जो सारी घटनाओं में होता है। किन्तु सभी विज्ञान केवल यथार्थता के विभिन्न पक्षों से काम रखते हैं अतः वे स्वयं में अपूर्ण हैं। सम्पूर्ण यथार्थता का परिचय ही केवल एक ठीक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार का परिचय केवल दर्शन शास्त्र के द्वारा ही मिलता है विभिन्न सूचनाओं का और विभिन्न विज्ञानों का एक समन्वय प्रस्तुत कर यह बताता है कि वे किस प्रकार एक पूर्ण इकाई बनाते हैं। यह पूर्णता समस्त अंगों पर अपना प्रभाव डाल उन्हें वास्तविक महत्व प्रदान करती है। यही कारण है कि भारतीय चिकित्सा शास्त्र के जनक महर्षि चरक ने अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ में दर्शन शास्त्र का एक अध्याय रखा है।

अच्छी दार्शनिक पृष्ठभूमि मनोवैज्ञानिक चिकित्सक के लिए तो और भी आवश्यक है। जिस व्याधि का वह शमन करना चाहता है उसके पीछे कौन से कारण हैं? बच्चे के मस्तिष्क की प्रारम्भिक नींव क्या है और वयस्क व्यक्ति के जटिल मनोभावों का मूल स्रोत कहां है? क्या यह केवल विशेष वातावरण और तदनुकूल प्रतिक्रिया की ही उपज है? वंशपरम्परा प्राप्त गुणों का प्रभाव कहां तक चलता है। क्या स्वाभाविक प्रवृत्तियों और जातिस्मृतियों (racial memories) के वातावरण द्वारा उपस्थित किये गये तत्त्वों पर मिला-जुला प्रभाव होता है? जातिस्मृति से वास्तव में तात्पर्य क्या है? किंस अन्तर्भित्ति पर इस स्मृति का अंकन होता है? किस प्रकार दो विपरीत तत्व जैसे शरीर और मस्तिष्क की एक दूसरे पर प्रतिक्रिया होती है, प्रभाव पड़ता है? प्रवृत्तिवितरण की इतनी बड़ी विबिधता का कारण क्या है? पूर्वजन्मों के संस्कारों के उल्लेख द्वारा क्या इस मस्तिष्क सम्बन्धी स्थिति का अधिक बुद्धिसंगत स्पष्टीकरण दिया जा सकता है?

यह केवल शास्त्रीय प्रश्न नहीं है जिसका महत्व सिर्फ कल्पना के लिए आहार जुटा कर समाप्त हो जाता है या जो थोड़ा समय-यापन में सहायक है। उदाहरणार्थ आपको मालूम है कि किस प्रकार जंग और एडलर, वर्तमान मनोवैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति के आधार मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के जन्मदाता अपने गुरु फ्रायड से अलग हो गये थे। इन तीनों पद्धतियों के प्रयोग में आने वाले बाह्य उपकरण, और हम लोग जानते हैं कि इस क्षेत्र में और पद्धतियां हैं, लगभग समान ही हैं किन्तु प्रत्येक विचार का मार्ग भिन्न होगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन फिर भी इनमें से कोई भी पद्धति मस्तिष्क का संतुलन लौटा सकती है। यह एक प्रमाणित तथ्य है। अब अगर तीन चिकित्सक एक व्याधि के तीन निदान करते हैं और तीनों अपने-अपने हिसाब से तीन विभिन्न व्याधियों की चिकित्सा प्रारम्भ करते हैं और फिर भी रोगी स्वस्थ हो जाता है तो उन्हें विचार करने के लिए रुकना होगा कि क्या वे मानव शरीर की प्रकृति और जिनके आधार पर उन्होंने चिकित्सा प्रारम्भ की उन बाह्य लक्षणों के पूर्ण अभिप्राय ठीक-ठीक समझ सके हैं। उनके प्रयत्नों की पूर्ण सफलता सिर्फ संयोग है। इस दशा में मनौवैज्ञानिक चिकित्सक के लिए मानवीय व्यक्तित्व और उसकी विकृतियों को समझने के लिए दार्शनिक निदान सामग्री की आवश्यकता अनिवार्य है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सक तटस्थ अथवा अनिश्चित सम्मति रखे इसका तो कोई विशेष कारण नहीं दिखायी पड़ता। कोई उससे अपनी सीमा लांघ कर धर्मशास्त्र की समस्याओं पर विचार व्यक्त करने की आशा नहीं करता या विश्वविद्यालय में जाकर दर्शन शास्त्र की अध्यापिकी करने को नहीं कहता किन्तु उसका कार्य औरों की अपेक्षा उसे मानव मस्तिष्क के अधिक निकट लगता है। यदि उस प्राणी की प्रकृति जिसकी वह चिकित्सा कर रहा है और दूसरे अस्तित्वों के बीच जो सम्बन्ध है उसके बारे में किसी निष्कर्ष पर, चाहे वह अस्पष्ट ही हो आने से इन्कार करता है तो वह एक विचारशून्य यंत्रमात्र बनकर रह जायेगा। इस प्रकार के निष्कर्ष न केवल उसके अपने व्यवसाय में सहायता करेंगे बल्कि उसके ज्ञान-कोष की भी वृद्धि करेंगे। साथ ही उस यथार्थता का जो हमारे अंदर और हमारे द्वारा कार्य करती है, जिसका हम सब तथा अन्य वस्तुएं केवल आंशिक स्वरूप मात्र हैं, उसे हम अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे। इस प्रकार के बोध के मूल्य और आवश्यकता के बारे में जितना कहा जाय थोड़ा है। भौतिक विज्ञानशास्त्री और गणितज्ञ आज ऐसे स्थानों तक पहुंच रहे हैं जहां विज्ञान पिघल कर बहुत कुछ दर्शन की सीमा में मिलता सा दिखायी पड़ता है। निश्चय ही उन लोगों में से जो मानव शरीर और मस्तिष्क.की कार्य-प्रणाली का अध्ययन करते हैं, दार्शनिक ज्ञान और सत्य में, परिज्ञान के कोष में अभिवृद्धि की आशा की जाती है।

और अधिक कहने का यत्न करना विशेषज्ञों के क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश की चेष्टा होगी। मैं ऐसी कोई दुश्चेष्टा नहीं करूंगा। सज्जनों, मैं असीम प्रसन्नता के साथ कान्फ्रेस के कार्यक्रम का उद्घाटन करता हूँ।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा–शास्त्रियों के सामने समस्याएँ

मित्रों,

आज यहां आप लोगों से मिलने और सम्मेलन से सम्बन्धित आपके कार्य में, थोड़ी सी ही सही, सहायता कर सकने का यह अवसर पाकर मुझे वास्तविक प्रसन्नता हो रही है। मैं यहां केवल गवर्नमेंट के एक सदस्य शिक्षामंत्री, होने की हैसियत से नहीं बल्कि उससे कहीं अधिक बड़े आत्मीय अधिकार से, आप लोगों में से एक होने के नाते, एक ऐसा व्यक्ति होने के नाते जिसने एक शिक्षक के जीवन के सभी उताार-चढ़ाव का अनुभव किया है और साथ ही जो अभी भी उसकी आशाओं और आकांक्षाओं में सहभागी हैं, आपके पास उपस्थित हुआ हूँ।

इस अवसर पर मेरी उपस्थिति किसी सीमा तक इस बात का प्रमाण है कि शासन आपके कार्य में कितनी रुचि लेता है तथा आप पर उसका कितना भरोसा है। लेकिन साथ ही मुझे यह विश्वास है कि आपको इस प्रकार के किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। शिक्षा विभाग ने कितने ही ढंगों से आपको यह बताने की चेष्टा की है कि आपको मिली स्थिति, स्वीकृति, (Recognition) सारगर्भित विशेषाधिकार है, और अभी हाल में ही हमने आपके संगठन से शैक्षिक पुनर्गठन समिति (Education Reorganization Committee) में कार्य करने के लिए एक प्रतिनिधि मांगा है।

आज मैं आपसे कुछ उन समस्याओं के बारे में बात करना चाहता हूँ जो हम लोगों के, आपके और मेरे जो लोग जनता की शिक्षा में रुचि रखते हैं, सामने आती हैं। जिन लोगों ने भी इस प्रश्न पर विचार किया है वे अनुभव करते हैं कि परिवर्तन कभी का आवश्यक हो गया है। काश, शिक्षक वर्ग, जिनके ऊपर शिक्षा सम्बन्धी नीति को कार्यान्वित करने का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है और जो अपने देखभाल में रखे गये अभिभाष्यों पर उस शिक्षा की प्रतिक्रिया देख सकने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त स्थिति में हैं, लगातार विरोध की जोरदार आवाज उठाते रहते। अब कम से कम इस समय और इस जगह किसी को दोषी ठहराना अथवा मकसद पहनाना ठीक नहीं है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हम शिक्षकों ने एक ऐसी शिक्षानीति के प्रसार के लिए स्वेच्छा से अपना उपयोग होने दिया जिसका परिणाम राष्ट्र के लिए बहुत अहितकर सिद्ध हुआ। हमारी शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा होने का परिणाम यह हुआ कि साधारण बालक-बालिकाओं की बुद्धि कुंठित हो गयी और उन्हें ऐसी बौद्धिक कलाबाजी लगाने के लिए विवश होना पड़ता है जिसका आनुपातिक परिणाम नहीं निकलता। प्रत्येक बच्चे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
को वह बुनियादी शिक्षा, जो भविष्य के सम्पूर्ण अध्ययन की सुनिश्चित नींव हो, देने का भी कोई प्रयत्न नहीं दिखायी देता। स्कूल में बच्चा जो कुछ सीखता है, उसमें से अधिकांश का बच्चे के जीवन और वातावरण से कोई सम्बन्ध नहीं होता और वह ज्ञान किताबों में ही सीमित रहता है, जिन में ज्यादातर की पृष्ठभूमि हमारे देश की प्रकृति के अनुकूल नहीं है और न राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्तराधिकार पर आधारित है। इससे भी अधिक एक और गम्भीर भय है। समस्त शिक्षा एक ही ढांचे में ढली है और जो भी बच्चे स्कूल पढ़ने जाते हैं उनके मस्तिष्क को एक ही ढांचे में ढालने की चेष्टा करती है। यह इसका कोई ध्यान नहीं रखती कि प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता भिन्न है और स्कूल से निकलने के बाद समाज में प्रत्येक व्यक्ति को एक ही सा कार्य नहीं करना है। इण्टरमीडिएट कालेज का निर्माण माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य को ध्यान में रख कर किया गया था और यह सोचा गया था कि यह शिक्षा अपने में स्वतंत्र, परिपूर्ण और छात्रों के बाद के जीवन के लिए उपयुक्त तैयारी साबित होगी। किन्तु यह इस उद्देश्य में असफल रही। आज माध्यमिक शिक्षा विश्वविद्यालय की आवश्यकताओं से भाराक्रान्त है जिस के लिए यह छात्र प्रस्तुत करती है। लेकिन इस आवश्यकता की पूर्ति भी यह ठीक से नहीं कर पाती क्योंकि इसकी कार्यसामग्री में यानी छात्रों में सभी तरह का मिश्रण रहता है। माध्यमिक शिक्षा का स्तर कमजोर से कमज़ोर बुद्धि वाले विद्यार्थी के स्तर तक लाने के लिए नीचा करना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि विश्वविद्यालयों को ऐसे विद्यार्थियों को भी लेना पड़ता है जो उच्च शिक्षा के योग्य नहीं होते और उसका स्तर गिराते हैं। संभवतः आप लोगों में से कुछ ने एम० एल्डर्टन पिक द्वारा लिखी गयी छोटी सी मनोरंजक पुस्तक 'Procrustes' अथवा 'इंगलिश शिक्षा का भविष्य' पढ़ी होगी। यह 'टुडे एण्ड टुमारो' सीरीज में प्रकाशित हुई है। मैं आपके सामने उसमें से एक उद्धरण देना चाहता हूँ जो यद्यपि लिखा तो इंग्लैंड के बारे में गया है पर भारतवर्ष के बारे में भी उतना ही सत्य है:—

"वे (यानी शिक्षक) अनुभव करते हैं कि छात्रों में साधारण परीक्षाओं को पास करने की योग्यता के अलावा भी कितनी तरह की योग्यताएँ होती हैं। वे अपने विद्यार्थियों में विशेष प्रकार की रुचियों और क्षमताओं का अनुभव करते हैं जिनका विद्यालय के आम दैनिक जीवन में कोई उपयोग नहीं होता है और न उनके विकास का ही कोई अवसर मिलता है। शिक्षकों की जीवन में प्रायः ही ऐसे पुराने छात्र-छात्राओं में भेंट होती रहती है जो विद्यालय के साधारण विषयों में बिल्कुल ही मूर्ख थे किन्तु जिन्होंने उसके बाद वाणिज्य व्यवसाय में इतनी सफलता प्राप्त की कि उनके लिए यह रोज की बात हो गयी कि विद्यालय की सफलता-असफलता बिल्कुल महत्त्वहीन है। विद्यालय की असफलता अनिवार्य रूप से जीवन की असफलता नहीं होती। लेकिन इस रोज की बातचीत से यह भी खेदजनक ध्वनि निकलती है कि विद्यालय विद्यार्थियों की असली क्षमता का पता नहीं लगा पाया बल्कि वे उन्हें हमेशा ऐसे कार्यों के लिए विवश करते रहे जिनके लिए उनमें कोई रुचि अथवा प्रतिभा नहीं थी।"

इस सम्बन्ध में उसी पुस्तक के एक और अंश की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० सिरिल बट ने लंदन स्कूल के बच्चों का बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test) के द्वारा व्यावसायिक मार्गदर्शन के लिए प्रमाण एकत्र करने के निमित्त सर्वेक्षण किया। उन्होंने पाया कि बहुत थोड़े से विद्यार्थियों को छोड़कर, जो माध्यमिक विद्यालयों में अपनी योग्यता से छात्रवृत्ति अर्जित करते हैं उसके बाद विश्वविद्यालय में भी उसी योग्यता के बल पर छात्रवृत्ति पाते हैं और उसके बाद सिविल-सर्विस आदि में ऊंचे पदों पर स्थान पाने योग्य होते हैं उनका अनुपात एक हजार बच्चों में एक से अधिक नहीं होता। लगभग दो प्रतिशत दूसरी श्रेणी में आते हैं; इनमें वे आते हैं जो माध्यमिक विद्यालय के लिए, छात्रवृत्ति तो अर्जित कर लेते हैं पर विश्वविद्यालय के लिए नहीं और जो अपेक्षाकृत कुछ छोटे पदों के योग्य होते हैं उदाहरणार्थ वे प्रारम्भिक शिक्षक, उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर कार्य करने वाले क्लर्क अथवा सफल व्यवसायी हो सकते हैं। तीसरी श्रेणी में दस प्रतिशत वे बच्चे आते हैं जो बुद्धि-सापेक्ष किन्तु यथासंभव नियमित दैनन्दिन कार्य करने वाले क्लर्क अथवा विशेष कुशल कारीगर होने की योग्यता रखते हैं। इसके बाद साधारण बुद्धि वाले बालक आते हैं जो पूरी संख्या का ४/५ होते हैं। वे साधारण व्यापारिक पदों के उपयुक्त होते हैं, हो सकता है कि वे छोटे मोटे दुकानदार बन जायें अथवा दुकान में सहायक का कार्य करने लगें। कुशल कारीगर भी इस श्रेणी में आते हैं। बाकी बच्चे केवल अविशेष योग्यता वाले कार्य करने लायक होते हैं। मानी बात है कि यह श्रेणी विभाग केवल प्रायोगिक है, किन्तु यदि इसमें कुछ भी तथ्य है तो यह सिद्ध हो जाता है कि बौद्धिक व्यवसाय के उपयुक्त अनुपाततः बहुत ही कम बच्चे ठहरते हैं। माध्यमिक कोर्स बनाते समय इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए।

यह सुनने में कुछ पुरानी वर्णव्यवस्था के औचित्य को सिद्ध करता सा लगता है। सम्भव है ऐसा हो, किन्तु यह ऐसे तथ्यों की ओर संकेत करता है जिसपर हम शिक्षकों को विचार करना आवश्यक है।

इन सब बातों से निष्कर्ष निकलता है कि कई प्रकार के माध्यमिक विद्यालय बनाने की आवश्यकता है। प्रत्येक बच्चे को पहिले साहित्य, विज्ञान और संस्कृति संबंधी प्रारंभिक शिक्षा,जो किसी एक हस्तशिल्प से संबंधित हो,मिलनी चाहिए। वह हस्तशिल्प ऐसा होना चाहिए जिसका बच्चे के वर्तमान जीवन और चारों ओर के वातावरण से घनिष्ठ संबंध हो। जहां तक माध्यमिक विद्यालयों का संबंध है उनको विभिन्न प्रकार का होना आवश्यक है क्योंकि उन्हें उस व्यक्ति का भी ध्यान रखना है जिसकी रुझान उद्योग-व्यापार की ओर है साथ ही जिन छात्र-छात्राओं की रुझान विज्ञान के दैनन्दिन उपयोग के क्षेत्रों की ओर है। अथवा वे विद्यार्थी जिनको अध्ययन-अध्यापन में रुचि है और यदि आर्थिक परिस्थितियों ने स्वीकृति दी तो विश्वविद्यालय तक अपनी योग्यता के बल पर पहुंच सकते हैं इन सभी की आवश्यकता पूर्ति करनी है।

आपने महसूस किया होगा कि एजूकेशन रिआर्गनाइज़ेशन कमेटी में बातचीत का रुख कम-बेश इन्हीं लाइनों पर रहा है। यह स्वाभाविक ही है। खेद है कि हम लोगों ने और पहिले से इस तरह के विचार करना और कार्य करना प्रारम्भ नहीं किया। किन्तु इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विषय में भी और विषयों की तरह ही मैं आपकी सहायता चाहता हूं। यदि नारों से प्रभावित होकर आप बह जायें तो यह आपका अपने साथ अन्याय होगा, किसी समय 'वोकेशलन ट्रेनिंग' का बड़ा बोलबाला था आजकल बेसिक एजूकेशन और 'वर्धा स्कीम' के नारों का बड़ा ज़ोर है। लेकिन आपको इससे गहरे जाना है। आपको मानव मनोविज्ञान का निकट से अध्ययन करके अपने छात्रों की उस प्राणशून्य यंत्र की वेदी पर भेंट हो जाने से रक्षा करनी है जो मनुष्य के व्यक्तित्व की कोई चिन्ता नहीं करती। अभी मनोविज्ञान का उल्लेख हुआ था। इस सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूँ कि बच्चे की रुझान और क्षमता को परखने के लिए उपायों के अध्ययन और विकास की बहुत बड़ी आवश्यकता है, जिससे कि हम उनके अभिभावकों को और भी जिन लोगों को उनकी शिक्षा के लिए आवश्यक पैसा जुटाना पड़ता है, इस संबंध में उचित परामर्श दे सकें।

मैं आपके कक्षागत कार्यक्रम के बारे में विशेष चर्चा तो क्या,वास्तव में बिल्कुल ही चर्चा नहीं करूँगा। अध्यापन शास्त्र (Pedagogic) एक विज्ञान और कला है। शिक्षक यदि अपने व्यवसाय की आधुनिकतम उन्नत कार्यप्रणालियों से स्वयं को अवगत नहीं रखता तो यह उसकी अक्षम्य लापरवाही होगी। इसे छोड़िए, किन्तु एक-आध प्रश्न ऐसे हैं जिनपर मैं आपसे बात करना चाहूँगा। अभी तक यौन मनोविज्ञान का ज्ञान अध्यापक के साधारण बंधे हुए साधारण कर्तव्यों की सीमा में नहीं गिना जाता। हमेशा से ऐसा नहीं था नहीं तो ऋषि वात्स्यायन ने कामसूत्र लिख कर इस संबंध में अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने की चिन्ता न की होती। मैं चाहता हूँ कि आपमें से विषेषत: जो हेडमास्टर या उच्च कक्षाओं के शिक्षक हैं, जिन कक्षाओं में वय:सन्धिप्राप्त छात्र-छात्राएं रहते हैं, यह विचार करें कि क्या आपका इन विद्यार्थियों को यौन मनोविज्ञान और तत्सम्बन्धित स्वास्थ्य और शुचिता की शिक्षा देना संगत होगा या नहीं। आप इससे इंकार नहीं कर सकते कि घर और स्कूल के षड्यंत्र अथवा मौन के बावजूद वे इस प्रकार की जानकारी पा ही लेते हैं, पर यह जानकारी ज्यादातर ग़लत या अधूरी होती है और बहुत बार तो इसका मूल्य भविष्य की काफ़ी शारीरिक और मानसिक यन्त्रणा से चुकाना पड़ता है। हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि हमारा जिन व्यक्तियों से व्यवहार है उनमें यौनवृत्तियाँ स्वाभाविक हैं। यह हमारा कर्तव्य है कि हम इन वृत्तियों को सही मार्ग पर ले जायें, जैसा कि हम अन्य स्वाभाविक प्रवृत्तियों के बारे में करते हैं। समय आ गया है कि आप इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना प्रारंभ कर दें कि इनको किस प्रकार यौन मनोवृत्ति और प्रजनन के तथ्यों के बारे मेंस्वास्थ शिक्षा दी जाये। एक शिक्षक के रूप में मैंने इस विषय पर कुछ प्रयोग किये थे। चाहे अभी शिक्षा विभाग शासकीय रूप से इस प्रश्न को भले ही न ले किन्तु आप लोगों में से कुछ को व्यक्तिगत रूप से इस संबंध में श्रीगणेश करने में तो कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। अनुमति हो तो मैं कुछ समय पूर्व अखिल भारतीय नैतिक और सामाजिक स्वास्थ्य संगठन के सचिव और केन्द्रीय संयोजक मि० मिलिस्यन्ट शेफर्ड द्वारा तैयार किये हुए एक नोट में से एक स्थल उद्धृत कर दूं:

''प्राणिमात्र में सृजनात्मक प्रवृत्ति दैवीय उद्देश्य का एक अंग है। विभिन्न प्रकार के जीवों का वंशक्रम स्थिर रखने के लिए इस प्रवृत्ति से संबंधित शक्ति बहुत बलशाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है। पशुजगत् और मानव जगत् में इतना ही अन्तर है कि मनुष्य विवेक द्वारा चुनाव कर सकता है और जीवन की सृजनात्मक शक्ति से तादात्म्य स्थापित कर सकता है। मनुष्य की इस चयनात्मक शक्ति के विकास और प्रशिक्षण में यदि शिक्षक कुछ सहायता दे सकता है तो वह विद्यार्थियों को स्थायी मूल्यों वाले चरित्र-निर्माण में सहायक होगी, उन्हें ऐसे संसार के निर्माण में मदद देगी जिसमें छोटे-छोटे बच्चों का जन्म लेना निरापद होगा, दूसरे शब्दों में नर-नारी के भिन्न संसारों को समीपतर पहुंचाकर उन्हें एक दूसरे के निकट ला देगा और वहां से वे साथ-साथ प्रेम और जीवन के युग्म रहस्य से अधिक विवेकपूर्ण और पवित्र दृष्टिकोण द्वारा अवगत हो सकेंगे।"

'ब्रह्मचर्य' एक बहुत पुराने ढंग का शब्द है, किन्तु इसके पीछे का भाव आज भी उतना ही सार्थक है जितना शताब्दियों पहिले। हम चाहते हैं नरनारी मानसिक और शारीरिक रूप से शुचि रहें, स्वस्थ रहें। यह तभी सम्भव हो सकता है जब उनको पहिले से ही मार्ग के उन खतरों से सावधान कर दिया जाय। यह खतरे, चूँकि इनके साथ प्रलोभन अनुभूतियों का सम्बन्ध जुड़ा रहता है, अपने शिकार को ऐसे सम्मोहन में डाल देते हैं कि उन्हें होश तब आता है जब संभलने का मौका निकल चुका होता है।

क्या मैं एक क्षण के लिए आपका ध्यान इतिहास की शिक्षा की ओर आकर्षित कर सकता हूँ। पाठ्य पुस्तकें तो आती ही जाती रहती हैं पर उनके शिक्षा के पीछे की भावना महत्वपूर्ण है। मैं एक क्षण के लिए भी आपसे यह नहीं चाहता कि आप इतिहास के तथ्यों को विगाड़ें अथवा राष्ट्रीय विभिन्नता और विशेषता के बारे में सही धारणाओं को बदलने की चेष्टा करें, किन्तु मैं यह ज़रूर चाहता हूँ कि आप जब इतिहास पढ़ायें तो स्मरण रखें कि आप भारतीय हैं और भारतीय बच्चों को पढ़ा रहे हैं। यदि हम चाहते हैं कि हमारे स्कूलों से निकले बच्चे समाज पर भार न होकर उसके अलंकार बनें तो हमें उनको आत्मनिर्भर बनाना होगा। हमें अपने हिन्दू, मुस्लिम, सिख और क्रिश्चियन विद्यार्थियों को बताना होगा कि हमारे यहां ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन पर, धर्मों की भिन्नता के बावजूद, हम भारतीय होने के नाते गर्व कर सकते हैं। हमें अपने विद्यार्थियों को बताना होगा कि भारतीय होना एक सौभाग्य की, गर्व की बात है। वह शिक्षक जो अपने विद्यार्थियों के मस्तिष्क में यह भावना बिठा सकेगा भले सक्रिय राजनीतिक से उसका संबंध न हो, हमारे भीतर से जातीयता को उखाड़ फेंकने में एक बहुत बड़ा हाथ बँटायेगा और उस भारतवर्ष के निर्माण में सहायता करेगा जिसके लिए हम जीवित हैं और जिसके लिए प्राण भी दिये जा सकते हैं।

एक काफ़ी महत्त्वपूर्ण प्रश्न अभी और रह गया जिसका मैं ज़िक्र करना चाहूँगा—वह है विद्यालयों में अनुशासन रखने का प्रश्न। एक दिन भी ऐसा नहीं बीतता कि एक न एक स्कूल में हड़ताल की बात सुनायी न पड़ती हो। किसी हद तक बात समझ में आती है। वातावरण में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अशान्ति छायी हुई है। मनुष्यों के स्नायुमंडल पर भारी बोझ पड़ रहा है और कोई भी इस तरह का काम, जितना ही ज्यादा जंगलीपन का हो, उतना ही अच्छा है, थोड़े समय के लिए इस घुटन को कम कर देता है क्योंकि थोड़ा ध्यान बँट जाता है। फिर इस समय पुराने बंधन शिथिल हो गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हैं, पुराने मूल्यों में विश्वास नष्ट हो चुका है और पुरानी विधि-निषेध के प्रति आस्था समाप्त हो चुकी है। ईश्वर और धर्मशास्त्र, सामाजिक निषेध और देश के दंडविधान से डरा कर आदमियों को दबाया नहीं जा सकता। परिवार और जातिगत प्रथाएं, विवाह की संस्था,पेशा चुनने के सम्बन्ध में बंधन, उत्तराधिकार में प्राप्त वैभव की प्रतिष्ठा, यह सब और भी कितनी ही समस्याएं न केवल गम्भीर विचारकों को ही अशांत किये हुए हैं बल्कि नवयुवक और नवयुवतियों को भी परेशान किये हुए हैं और उसका परिणाम अशांति, पारस्परिक कलह और विरोध होना ही है। उन्हें आपकी सहानुभूति की आवश्यकता है। अपने मस्तिष्क को निश्चेष्ट जड़ मत होने दीजिये। उनकी सक्रियता और उत्साह को जगाये रखिए, उनके मस्तिष्क और भावनाओं, उसकी आशाओं और आकांक्षाओं तक, उनकी आकांक्षाओं और निराशाओं तक पहुंच कर उनकी तह में पैठने की कोशिश करिए। उच्चासन पर बैठ कर उनका निर्णय न्याय मत करिए। आपका व्यक्तिगत चरित्र ही सर्वोच्च वेदी है। यदि आपका छात्र अनुभव करता है कि आप पर भरोसा किया जा सकता है तो समझिए कि विद्यालय के अनुशासन की समस्या काफी सीमा तक स्वयं ही सुलझ जायेगी। लेकिन आपको अपने विषय में सावधान रहना होगा। मिनिस्टर की हैसियत से काम करते हुए कितनी ही बार ऐसी घटनाएं मेरे सामने आयीं हैं जब कि तुच्छ ईर्ष्या द्वेष अथवा जातीयता के वशीभूत होकर स्वयं ही अनुशासन-हीनता की अग्नि में आहुति दी। यह सहन नहीं किया जा सकता और इसे मजबूती से बिना कोर-कसर किये दबाना होगा। हम लोगों को अपने विद्यालय उपद्रवों के अखाड़े नहीं बनने देने हैं।

मैंने अभी तक आपके वेतन और सेवा के नियमों के बारे में (Service Conditions) कुछ नहीं कहा। यह विषय महत्वपूर्ण हैं। शासन इस ओर ध्यान दे रहा है। कुछ प्राइवेट संस्थाओं में शिक्षकों को जिन गम्भीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उनसे हम अवगत हैं। बहुत-सी जगहों पर उनकी सर्विस का कोई ठिकाना नहीं होता और ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं है जहां प्रबन्ध समिति के प्रभावशाली सदस्यों द्वारा व्यक्तिगत सेवकों की तरह उनसे व्यवहार किया जाता है। यह बहुत लज्जा की बात है। हम आशा करते हैं कि कुछ दिनों में इस प्रकार की चीजें विगत काल की बातें भर रह जायेंगी। हम चेष्टा कर रहे हैं कि यह और इनसे सम्बन्धित और समस्याओं की भी जल्दी ही छानबीन की जाये। यदि समाज चाहता है कि उसके बच्चों को ठीक प्रकार से शिक्षा मिले तो शिक्षकों के प्रति अपने मनोभावों को सुधारना होगा। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि ऐसे आदरणीय वृत्ति द्वारा जीवनयापन करने वाले व्यक्तियों की—वर्तमान युग के ब्राह्मणों की—स्थिति प्रशासकीय कर्मचारियों और व्यापारियों से हीनतर हो। ऐसे समाज में कोई दीर्घकालीन शांति-समृद्धि अथवा आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती जहां कि शिक्षकों को हिंसकों और शोषकों के लिए स्थान छोड़ना पड़ता हो।

किन्तु कठिनाइयां कितनी भी हों, इनसे आपके प्रयत्नों की शिथिलता का औचित्य सिद्ध नहीं हो सकता। आप अपने प्रति झूठे होंगे, अपराधी होंगे यदि आप समाज को ठगें धोखा दें क्योंकि समाज ने आपके प्रति दुर्व्यवहार किया है। आपका लक्ष्य बहुत भव्य और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उच्च है। आपके व्यवसाय की परम्पराएं बहुत ही महान है और आपको उनके योग्य बने रहने का प्रयत्न करना होगा। आपके पास अवसर है कि आप चाहें राष्ट्र को बनायें अथवा नष्ट कर दें। राष्ट्र ही क्या संसार को बना दें या विध्वंस कर दें। संसार के प्रति आप उदासीन नहीं रह सकते, यह आपका है, आपके बच्चों और आपके बच्चों का संसार है। आपको ऐसे संसार का निर्माण करना है जहां कार्य करना हर्षपूर्ण होगा, मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण समाप्त हो जायगा और जिसमें पुराना आशीर्वचन –

सर्वे भवन्तुसुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

सार्थक होगा। आपकी भुजाओं को बल मिले यही मेरी प्रार्थना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा में नवीन दृष्टिकोण

आज की बातचीत का शीर्षक बहुत ही व्यापक है। उसमें किसी भौगोलिक सीमा का संकेत नहीं है। इसलिए यदि मैं चाहूं तो आपसे सभी सभ्य देशों की शिक्षा के संबंध में चर्चा कर सकता हूँ परन्तु इसके लिए न तो आपके पास समय है, न मुझमें योग्यता है। इसलिए मैं अपने को वहीं तक सीमित किए लेता हूँ जहां का मुझको प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव है। इसके साथ ही यह ठीक है कि हमारा सभी देशों से संपर्क है और दूसरे देशों में जो प्रयोग हो रहे हैं उनका प्रभाव हमारे कामों पर भी पड़ता है।

शीर्षक व्यापक होते हुए भी यह अनुचित होगा कि इसकी आड़ में मैं आपके सामने उन कामों की लंबी तालिका रखूं जो शिक्षा के क्षेत्र में अब तक इस प्रान्त में हुए हैं। आज तो मुझे नये दृष्टिकोणों की ओर संकेत करना है, अपने कारनामें नहीं सुनाने हैं।

यों तो शिक्षा उत्तरकालीन जीवन के लिए तैयार करती है इसलिए उसका जीवन से संबंध भुलाया नहीं जा सकता। । यदि विद्या अर्थकरी न हो, यदि ऐसे विषय न पढ़ाये जायें जिनका आगे चलकर काम पड़ता है, तो कोई पढ़ने का नाम ही न ले। फिर भी, स्कूल समाज से अलग ही रहता था और विद्यार्थीकाल जीवन का स्वतंत्र और अलग सा भाग माना जाता था। आज यह धारणा बदल गयी है। यह ठीक है कि प्रत्येक अवस्था के अनुरूप अलग धर्म, अलग कर्तव्य होते हैं; विद्यार्थी को अपने ऊपर वह काम नहीं लेने चाहिए जिनका बोझ गृहस्थ ही अच्छा उठा सकता है; उसको साधारणतः सक्रिय राजनीति से पृथक् रहना चाहिए और अध्ययन को अपना प्रधान लक्ष्य बनाना चाहिए। परन्तु विद्यालय के कपाट इतने जकड़ कर बन्द न होने चाहिए कि बाहर की हवा का प्रवेश न होने पाये। आज की बदलती दुनिया में विद्यार्थी तभी ठीक-ठीक व्यवहार कर सकता है जब विद्यार्थी जीवन में वह इसके लिए तैयार किया गया हो। खस की टट्टी से जो कृत्रिम ठंडक पैदा होती है उससे निकल कर बाहर की गरम हवा लगते ही तबीयत खराब होती है।

इस बात को आज सब जगह ध्यान में रखा जाता है। बच्चों की शिक्षा के लिए जो बेसिक पद्धति लोक-सम्मत होती जा रही है उसका यही रहस्य है। कोई उद्योग जो बच्चों के पास-पड़ोस में प्रचलित हो शिक्षा का आधार बना लिया जाता है। देहात का बच्चा खेती से परिचित है। समझदार अध्यापक खेती के द्वारा भाषा, गणित, भूगोल सबको एक डोर में बांध सकता है, खेती सरल भौतिक विज्ञान और ज्योतिष की कुंजी बन सकती है। इस प्रकार खेती की रोचकता बढ़ जाती है और उसको ऐसी खिड़की बनाया जा सकता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें झांक कर सारे जगत् को देखा जा सकता है। घर, खेत, स्कूल और प्रकृति एक दूसरे के पास आ जाते हैं। आज इस बात को प्रोत्साहन दिया जाता है कि गांव के बड़े-बूढ़े स्कूल में आयें, वहीं अपनी सभा और पंचायत करें। नये सरकारी प्राइमरी स्कूलों के साथ गांव के निवासियों की कमेटियां देखभाल के साथ संबद्ध हैं। इससे भी घर और स्कूल, विद्यार्थी जीवन प्रौढ़ जीवन के बीच की दीवार पतली पड़ती है। आज से लगभग दस वर्ष पहले प्रौढ़ शिक्षा की ओर देश का ध्यान गया। कई प्रान्तीय सरकारों ने इस दिशा में पांव उठाया। अभी बहुत काम करना है। अब भी साक्षरता का प्रसार प्रौढ़ शिक्षा का प्रधान अंग होगा परन्तु केवल साक्षर होना ही पर्याप्त नहीं है। इस विचार का संकेत प्रौढ़ शिक्षा के नये नाम से मिलता है। अब वह केवल 'ऐडल्ट एजुकेशन' नहीं वरन् सामाजिक शिक्षा (सोशल एजुकेशन) कहलाती है। इस शिक्षा की रूपरेखा निश्चित करने के लिए हमने लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सिद्धान्त की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की थी। भारत सरकार के विशेषज्ञों ने भी इस पर विचार किया है। शीघ्र ही इस दिशा में काम आरम्भ हो जायेगा।

जनसम्पर्क सिद्धान्त के फलस्वरूप आजकल समाज-सेवा पर बहुत जोर दिया जा रहा है। यों तो बाय स्काउट पहले भी मेलों और पर्वों पर समाज-सेवा का काम करते थे, पर अब तो यह सर्वसम्मत है कि प्रत्येक छात्र को समाज की यथा-शक्ति सेवा करनी चाहिए। हम सब पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाज का ऋण है; उस ऋण को बराबर याद रखना चाहिए और समाज की यत्किंचित् सेवा करते रह कर उस ऋण के शोधन का उपाय रखना चाहिए। हम में से कोई कितना भी दुर्बल, धनहीन या विद्याहीन हो पर कोई न कोई हमसे भी कम बल, धन या विद्या वाला मिल जायगा। आज छात्रों को देहातों और शहरों में प्रौढ़ शिक्षा, किसानों की सहायता आदि कामों के लिए प्रवृत्त और प्रोत्साहित किया जाता है। फैज़ाबाद में ग्रैजुएटों के लिए तो शिविर भी खोला गया है। मैंने स्वयं इन बी०ए०/, एम०ए० लड़कों को सिर पर मिट्टी और पानी ढोकर किसानों के घरों की मरम्मत करते देखा है। समाज-सेवा के काम से एक तो छात्रों की वह हिचक मिट जाती है जो पढ़े-लिखे लोगों को शारीरिक श्रम से होती है, दूसरे उनको समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का ऐसा ज्ञान होता है जो उनको आगे चल कर अच्छे नागरिक बनने में सहायक होता है और तीसरे अपने देश का वास्तविक स्वरूप पहचान में आता है। बिना ऐसे काम में लगे देश की गरीबी या अज्ञान का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। हम आशा कर रहे हैं कि थोड़े दिनों में समाज-सेवा का अवसर किसी न किसी रूप में प्रत्येक छात्र को मिलेगा। स्वतन्त्र भारत के लिए यह परमावश्यक है। हम यह भी सोच रहे हैं कि लम्बी छुट्टियाँ ऐसी ऋतुओं में दी जायं जब छात्र देहातों में जाकर किसानों की सहायता कर सकें।

सैनिक शिक्षा भी इसी दिशा में ले जाती है। प्रत्येक नागरिक को यह समझना चाहिए कि स्वाधीनता की रक्षा केवल सेना नहीं कर सकती। सेना को जनता की सहानुभूति और सक्रिय सहायता की पदे-पदे आवश्यकता होती है। सैनिक शिक्षा विद्यार्थी में स्वदेश-भक्ति और स्वतांत्र्य-रक्षा का भाव दृढ़ करती है और उसको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्यत् के गुरु कर्त्तव्यों के भार उठाने के लिए तैयार करती है। हमारे प्रान्त में इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। भारत सरकार की नेशनल कैडेट कोर के अलावा प्रान्तीय सरकार की ओर से इस वर्ष लगभग १५,००० विद्यार्थियों को सैनिक शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जा रहा है। पिछले साल ऐसे विद्यार्थियों की संख्या ७,००० थी।

आजकल यह बात तो आवश्यक समझी जाती ही है कि प्रत्येक नागरिक कुछ हद तक शिक्षित हों क्योंकि इसके बिना न तो कोई व्यक्ति अपने नागरिक कर्त्तव्यों का ठीक ठीक पालन कर सकता है, न अपनी सांस्कृतिक या आर्थिक उन्नति कर सकता है; परन्तु जैसा कि मैंने कहा है, शिक्षा साक्षरता से बड़ी चीज़ है। इसलिए शिक्षा के साधनों में केवल पुस्तकों से काम नहीं चल सकता। साधारण ज्ञान की वृद्धि के लिए ऐसे उपायों से काम लेने की आवश्यकता है जो जल्दी बोध करा सकें और जिनका प्रभाव दूर तक पहुंचे तथा देर तक रहे। इस दिशा में चल-चित्र-पट और रेडियो से बड़ी सहायता मिलती है। हमने अपने प्रदेश में चलचित्रों का प्रबन्ध प्रारम्भ किया है, कुछ बनवाये भी हैं। इस बात का भी शीघ्र प्रबन्ध करने जा रहे हैं कि रेडियो से शिक्षा के उद्देश्य से नित्यप्रति विशेष प्रोग्राम सुनाया जाय। इसके लिए धीरे-धीरे शिक्षालयों में रेडियो सज्जित करने का भी आयोजन सोचा जा रहा है।

इधर विद्या के क्षेत्र में परीक्षाओं का स्थान बड़े महत्व का रहा है। प्राचीन काल में इस प्रकार के इम्तहान नहीं होते थे। आचार्य जिसको योग्य समझता था वह योग्य माना जाता था आजकल प्रत्येक कक्षा में इतने विद्यार्थी रहते हैं कि गुरु-शिष्य का वह संबंध नहीं रह गया, अध्यापक छात्रों को उतनी अच्छी तरह पढ़ा नहीं सकता। परीक्षा ली जाती है पर उससे योग्यता की ठीक-ठीक जांच नहीं होती। प्रतिभावान छात्र फेल हो सकता है या नीचे गिर सकता है। यह सभी जानते हैं कि किसी-किसी विषय में नंबर पाना सुकर होता है। यह हो सकता है कि दो विद्यार्थी जिनमें से एक का विषय गणित हो और दूसरे का फारसी १०० में ६० पा जाय परन्तु क्या इसका यह अर्थ होगा कि दोनों की प्रतिभा बराबर है? परीक्षार्थियों की संख्या ऐसी बढ़ रही है कि हाईस्कूल और इंटरमीडिएट की परीक्षाओं में बैठने वाले छात्रों की संख्या दो वर्ष में लगभग ३२ हजार से ७१ हज़ार हो गयी हैं। हमारा ध्यान इस ओर गया है। यकायक तो कुछ नहीं कहा जा सकता, पर हम सोच रहे हैं कि परीक्षाओं की संख्या घटायी जाय और ऐसे उपाय निकाले जायँ जिनसे वस्तुतः विद्या, श्रम-शीलता और प्रतिभा का परिचय मिल सके।

एक और बात ध्यान देने की है। आज लड़के जब ऐच्छिक पाठ्य विषयों को चुनते हैं तो चुनाव का कोई निश्चित आधार नहीं होता। कुछ तो रुचि देखी जाती है परन्तु मुख्यतया यह देखा जाता है कि स्कूल में किस क्लास में अधिक जगह खाली है या यह कि अभिभावक की समझ में आगे चल कर किस विषय के लेने से लाभ होने की संभावना है। यह ठीक नहीं है। जिस लड़के की बुद्धि जिस विषय के अनुकूल नहीं है उसको वह विषय पढ़ाना उसके साथ जुल्म करना है। नीचे की कक्षाओं से ही इस बात की जांच होनी चाहिए कि बच्चे का झुकाव किधर है। हमने उच्च माध्यमिक शिक्षा के चार पृथक भेद किये हैं—वांग्मय मूलक अर्थात् साहित्य, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि, विज्ञान, उद्योग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
और कला। प्रयाग में हमारे साइकोलाजीकल व्यूरो में कई प्रयोग हो रहे हैं। यदि उनमें यथेष्ट सफलता हुई तो हम अभिभावकों को यह परामर्श दे सकेंगे कि वह अपने बच्चों को किस प्रकार की शिक्षा दें।

शिक्षालय का काम छात्रों को केवल विद्वान बनाना नहीं प्रत्युत सुशील, विद्वान और सज्जन बनाना है। आजकल हमारे यहां इसकी ओर प्रायः बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता। उठना, बैठना, खाना, यह सब सभ्य समाज में कुछ नियमों के अनुसार होता है। पढ़ा-लिखा भारतीय यूरोपियन समाज में टेबुल मैनर्स—खाना-पान के नियमों-का पालन करता है, पर अपने यहां के नियमों को या तो वह जानता ही नहीं या जानकर मानता नहीं। दस शिक्षित व्यक्ति खाने बैठ जायेंगे, बस जब जिसके जी में आया खाना आरम्भ कर देगा, जब जी में आया उठ जायगा। यह हमको शोभा नहीं देता। इस प्रान्त में शिक्षा विभाग का ध्यान इस ओर गया है। हम शिक्षालयों के प्रधानाध्यापकों का ध्यान भी इधर आकृष्ट करना चाहते हैं। हमारे देश और प्रान्त की अपनी संस्कृति है। हमको अपने आचरण में उसे बरतना चाहिए। उच्छृखलता विद्या का चिह्न नहीं है।

हम लोग जब शिक्षा की चर्चा करते हैं तो हमारी दृष्टि उन स्कूल कालेजों पर ही रहती है जिनको आज तक ऐंग्लो-वर्नाक्युलर कहते हैं। परन्तु प्रान्त में शिक्षा की यही संस्थाएं नहीं हैं। उदाहरण के लिए, कई हजार विद्यार्थी हैं जो संस्कृत की परीक्षाएं देते हैं। आज इनमें भी नवयुग ने नये प्राण का संचार किया है। गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस के छात्र सैनिक शिक्षा ले रहे हैं। पंडित समाज बहुत ही रूढ़िवादी माना जाता है परन्तु आज तो पंडित लोग बड़े हर्ष से अपने पाठ्यक्रम में परिवर्तन और परिवर्धन करने को तैयार हैं। उनके सामने फिर वह आदर्श आ रहा है जब संस्कृत जानने वाले विद्वान राज-शासन का संचालन करते थे और सैनिक कामों में भी अग्रसर रहते थे। आज का संस्कृत छात्र द्रोणाचार्य, चाणक्य और सायण का अनुसरण करना चाहता है। उसको अतीत पर गर्व है परन्तु अनागत को उज्ज्वल बनाना, भारत को ऊपर उठाना और भारतीय संस्कृति का सन्देश मनुष्य को सुनाना वह अपना कर्तव्य समझता है।

अब तक शिक्षा में सबसे बड़ी कमी यह रही है कि उसका कोई लक्ष्य नहीं था। छात्र को योग्य नागरिक बनाना लक्ष्य माना जा सकता है परन्तु जब बार-बार इस बात पर जोर दिया जाय कि जीवन निरन्तर संघर्ष है, तो फिर योग्य नागरिक वस्तुतः अपने स्वार्थ में डूबा हुआ, अपने सुख का खोजी, सिपाही मात्र होगा। इसीलिए आज पृथ्वी से शांति उठ गयी है। सर्वत्र और हर समय संघर्ष का वातावरण है। या तो लड़ाई होती रहती है या लड़ाई की तैयारी होती रहती है। इस प्रकार तो सभ्यता नष्ट हो जायगी, मानव मिट जायगा। हमको मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य, पुरुषार्थ फिर से स्थिर करना होगा। यदि मनुष्यता को बचाना है तो जीवन संघर्ष न कह कर वह पुराना पाठ पढ़ाना होगा जो भारतीय दर्शन की देन है:

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ

देवगण से लेकर कीड़े-मकोड़े तक सब एक सूत्र में बंधे हैं, सबको एक शक्ति अनुप्राणित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रही है। सबका सुख-दुख एक दूसरे पर निर्भर है। यदि अपना भला चाहते हो तो दूसरों का भला करो। अपने अधिकारों का राग मत अलापो, अपने कर्त्तव्यों का पालन करो, अधिकार आप ही मिल जायेंगे। हमको यह भाव लोगों में भरना है। सारी शिक्षा इसी भूमिका में देनी है। यह शिक्षा में न्यूनतम दृष्टिकोण है। अभी शिक्षा की समस्याएं इस दृग्विन्दु से नहीं देखी जा रही हैं परन्तु लोग ऐसा सोचने लगे हैं कि हमको शिक्षा को यथार्थ दार्शनिक आधार देना चाहिए। मुझे ऐसी आशा है कि धीरे-धीरे भूला मानव इस जगह पहुंच जायगा और उसकी शिक्षा-पद्धति उसको सच्चे अर्थों में मनुष्य बना सकेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा के आदर्श केन्द्र

इस समारोह में भाग लेने के लिए आमंत्रित करके आपने जो सम्मान मुझे दिया है उसे मैं हृदय से अनुभव कर रहा हूँ, पर मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि मुझ जैसे राजनैतिक दल के सदस्यों पर वैज्ञानिक इतने कृपालु कैसे हो जाते हैं। इसमें शक नहीं कि हम लोग हर जगह मौजूद रहते हैं और हर जगह झंझट खड़ा कर सकने की क्षमता के कारण हमारी महत्ता भी कुछ कम नहीं है। अगर एक पुरानी कहानी पर विश्वास किया जाय तो वह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने भी हमारे ही झंझट उपद्रव से परेशान होकर इस संसार की रचना कर अपनी जान छुड़ायी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हम आपको अपने अनुभवों का लाभ भी दे सकते हैं लेकिन इसके लिए आपको हमारी जितनी वक्तृताएं सुनने की यन्त्रणा सहन करनी पड़ती हैं उससे तो इस लाभ के बिना ही आप भले हैं।

आप भारत के नागरिक हैं, उस भारत के जिसे अपनी सीमा के अंदर शांति, सुरक्षा और सम्पन्नता स्थापित करके अपनी स्वतंत्रता की न्यायोचितता सिद्ध कर देनी है और देश के बाहर भी प्रत्येक राष्ट्र के, स्वतंत्रता, शांति, भौतिक और बौद्धिक साधनों को विकसित करने के अधिकार का सक्रिय समर्थन करना है। हमें अपनी पुरानी महती परम्पराओं और गौरवपूर्ण अतीत के अनुरूप ही मानवता के प्रगति-कोष में अपना योग देना है। भारतीय वैज्ञानिक यह उतनी ही अच्छी तरह समझता है जितना और कोई। इस विशाल कार्य में उसे बहुत महत्वपूर्ण पार्ट अदा करना है। न सिर्फ उसे ऐसे मोर्चों के लिए अपनी प्रतिभा को बिकने नहीं देना है जिनसे मानवता केवल कलुषित हो सकती है अथवा सभ्यता, संस्कृति के मूलोच्छेद का डर है बल्कि ऐसे कार्यों के लिए उसका उपयोग करना है जिससे रोग-व्याधि, दरिद्रता, राजनैतिक, आर्थिक या आत्मिक स्वतंत्रता के ऊपर अनुचित हस्तक्षेप के विरुद्ध लड़ सकने का मानवता को बल मिले और उसकी आत्मोन्नति और सुखवृद्धि में सहायता पहुंचे। मुझे पूरा विश्वास है कि इस सम्बन्ध में अपने उत्तरदायित्व से आप पूर्णतः परिचित हैं और मुझे उनका स्मरण दिलाने की आवश्यकता नहीं।

आज एक पागल दुनिया में हमें रहना पड़ रहा है जिसमें भय और अविश्वास का साम्राज्य छाया हुआ है। ऐसे भी कुछ देश हैं जहां के वैज्ञानिकों को अपना मत निर्बाधतापूर्वक व्यक्त कर सकने की भी स्वतंत्रता नहीं है और प्रायः उन्हें अपनी प्रिय से प्रिय सम्मति को इसलिए बदलने को विवश किया जाता है क्योंकि वह उस समय की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यसत्तारूढ़ पार्टी के दर्शन से मेल नहीं खाती। आज के प्रजातंत्र किसी विचारप्रणाली विशेष अथवा कल्पित सिद्धान्त विशेष में रुचि नहीं रखते किन्तु सभी जगह ज्ञान अथवा जो व्यक्ति इसकी उपासना करते हैं स्वतंत्र नहीं हैं। आज सरस्वती काली और लक्ष्मी की दासी है और एक विद्वान् वहीं तक सहायता और संरक्षण की आशा कर सकता है, जहां तक कि वह उन निर्धारित नीतियों के कार्यरूप में परिणत होने में सहायता कर सके जिनके निर्धारण में उसका कोई हाथ नहीं है। हो सकता है कि उसकी सम्मति में वे पूर्णतः मानवता के कल्याण के लिए घातक ही हों।

मेरी सम्मति में, यह उन्माद तभी दूर हो सकता है जबकि मानवता, खोखले शब्दों की नहीं, जैसा कि हम आज देखते हैं बल्कि प्राचीन वर्णाश्रम धर्म की आत्मा की पुनः अनुगामिनी हो जाये। सामाजिक सम्मान, राजनैतिक शक्ति और धन पर नियंत्रण उन्हीं हाथों में केन्द्रीभूत होने से प्रत्येक विचारशील व्यक्ति, जिसमें वैज्ञानिक भी शामिल हैं, विरोध करेगा। ब्राह्मण, अर्थात् विद्वान शिक्षक और वैज्ञानिक को अपनी मर्यादा और गौरव पुनः प्राप्त होने चाहिए। वह दूसरों के साथ धन एकत्र करने की दौड़ में होड़ नहीं करेगा पर समाज का भी यह कर्त्तव्य है कि वह देखे कि उसकी आवश्यकतापूर्ति में तो कमी नहीं होती फिर वह चाहे सरकारी व्यक्ति की हैसियत से हो या विधान सभा के सदस्य की हैसियत से हो, दिन-प्रति-दिन के शासनकार्य में हस्तक्षेप नहीं करेगा। पर समाज में उसका स्थान प्रथम होना चाहिए—राज्य के गम्भीर मसलों का जहां तक सम्बन्ध है चाहे वे राष्ट्रीय हों या अन्तर्राष्ट्रीय उसकी राय को सर्वोपरि महत्त्व प्राप्त होना चाहिए। राजनीतिज्ञ उसकी उपेक्षा सर्वनाश के खतरे को मोल लेकर ही कर सकता है। और किसी प्रकार की व्यवस्था में मैं समाज का कल्याण नहीं देख पाता।

सामाजिक संगठन की इस व्यवस्था में कुछ उलझनें भी होंगी जिनमें से कुछ उल्लेखयोग्य हो सकती हैं। यदि आज के इस ब्राह्मण को समाज में उसका योग्य स्थान मिलना है तो उसे अपने कार्यक्षेत्र की कार्यप्रणाली को निश्चित करने में अपना प्रमुख यज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, जिसके क्षेत्र में विश्वविद्यालय और शिक्षा के अन्य उच्च केन्द्र आते हैं, संपादित करने में, पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। इस क्षेत्र को शैक्षिक और शासनात्मक इन दो भागों में विभक्त करने से काम नहीं चलेगा। दोनों अलग-अलग नहीं होते। मुझे पूरा विश्वास है कि बड़ी-बड़ी तानाशाहियों को शिक्षासंस्थाओं के पाठचक्रमों पर ध्यान देने की फुरसत कभी नहीं रही। उन्होंने तो सीधे शासन की बागडोर पकड़ ली शेष सब तो स्वभावतः उनके हाथ में पहुंच गया। यह स्मरण रखना चाहिए कि सम्पूर्ण जीवन मिलकर एक इकाई बनता है। इसके विभिन्न भाग और कार्य एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। सिर्फ पुस्तकों में या प्रयोग-नलिकाओं में डूबे रहने से विद्वानों का कार्य नहीं चलेगा। कभी-कभी राजनीति में सक्रिय रुचि लेते रहना भी आवश्यक है क्योंकि ज्ञान की उन्नति और प्रगति के लिए राजनैतिक स्थिरता पहिली आवश्यकताओं में से है। इसी प्रकार राज्य भी अपना उत्तरदायित्व विश्वविद्यालय के सीमाद्वार पर छोड़ कर छुट्टी नहीं पा सकता। समाज की इच्छा की सर्वाधिक संगठित संस्थात्मक अभिव्यक्ति होने के नाते इसका कुछ उत्तरदायित्व है जिसे छोड़ सकना असंभव है। यदि, किसी दुर्भाग्यपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण से, एक विश्वविद्यालय इतना असंगठित हो जाता है कि अपने कर्तव्यों का ठीक-ठीक संपादन नहीं कर सकता, अथवा अपने को असामाजिक कार्यवाहियों का केन्द्र बन जाने देता है—मैं यहां विभिन्न विचारधाराओं की शास्त्रीय चर्चाओं की ओर संकेत नहीं कर रहा हूँ—तो राज्य को हस्तक्षेप करके परिस्थिति सुधारनी ही होगी। परिस्थिति संभलने के बाद इस संगठन के स्थायी महत्व वाले आवश्यक अंगो के साथ बिना किसी प्रकार का हस्तक्षेप किये राज्य वहां से हट जायेगा जिनकी रक्षा और सेवा करने के लिए यह सदैव प्रयत्नशील रहता है।

हमारे विश्वविद्यालयों, अनुसन्धानशालाओं,पुस्तकालयों और अन्य शिक्षापीठों के पास साधनों की कमी है। शासन की कृपणता के कारण ऐसा नहीं है। यह तो बहुत ही सस्ती किस्म की आलोचना है जो सूक्ष्मता से परीक्षण करने पर ज़रा देर भी नहीं टिकेगी। स्वतंत्रता प्राप्ति कितनी ही समस्याओं को प्रकाश में लायी है और राज्य के आय के साधन अधिकांशतः अप्रसरणशील हैं। मैं यह नहीं कहता कि राज्य इन साधनों को बढ़ा नहीं सकता। सच पूछिये तो इसके लिए बराबर प्रयत्न हो रहे हैं पर यह भी सत्य है कि वे इसे बहुत अधिक नहीं बढ़ा पायेंगे। इसका यह भी मतलब नहीं है कि देश के पास पैसा नहीं है। व्यापारिक वर्ग ने एक संगठन की हैसियत से इस सम्बन्ध में अपने पूरे कर्त्तव्य का पालन नहीं किया है। वैश्य ने ब्राह्मण को उसका उचित प्राप्य नहीं दिया है। महात्मा जी के शब्दों में उसने अभी तक पूरी तरह से यह महसूस नहीं किया है कि वह तो सिर्फ इस धन का संरक्षक मात्र है। अगर संरक्षक धन का हिसाब स्वेच्छापूर्वक नहीं देता तो समाज को उसे ऐसा करने के लिए उपाय निकालना होगा।

हमारे शिक्षा केन्द्रों को, आधुनिक जीवन की सीमाओं के अन्दर पुराने कुलपति के वास्तविक आश्रमों जैसा बनने की चेष्टा करनी होगी। उन्हें ज्ञान को स्वयं पहिले आत्मसात करके वितरित करना होगा और अध्यवसायपूर्ण अनुसंधानों से इस ज्ञानभंडार की वृद्धि करनी होगी। उन्हें यह भी देखना होगा कि जीवन को अधिक निष्कलुष, सुखी और परिपूर्ण बनाने में इस ज्ञान का प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है। पर हमारे विद्वानों और वैज्ञानिकों को पूरे समय यह स्मरण रखना होगा कि जीवन का यही पक्ष, जिसे हम भौतिक पक्ष कह सकते हैं, सब कुछ नहीं है। आप किसी बहती हुई सरिता के पूरे प्रवाह को, उसकी धारा में चाहे कितने ही छोटे-बड़े पात्र क्यों न रख दें, बन्द नहीं कर सकते। उसका वास्तविक प्रवाह, वह वस्तु जो छोटे से तालाब से नदी को विभक्त करती है, वही अंश है जो अपने आपके बर्तनों को लांघकर निकल जाता है। उसी प्रकार वास्तविकता को उतने से अंश से, जिसकी हम प्रयोग नलिका में डाल कर अथवा विद्युतमापी यन्त्र की सुई के उतार-चढ़ाव से परीक्षा कर सकते हैं, नापा नहीं जा सकता। मैं चाहता हूँ कि हमारे शिक्षा केन्द्रों में एक वास्तविक धर्म का वातावरण व्याप्त रहे—गुरु के लिए, सत्य के लिए, उस यथार्थ के लिए जो हमें परिव्याप्त किये हुए हैं, जो हमारे अंदर हैं और हमारी पंहुच से बाहर भी है उस सबके लिए श्रद्धापूर्वक सम्मान हो। वैज्ञानिक विश्व को गणित के कुछ फार्मूलों में सीमित कर लेता है जिनसे कि सिर्फ अधिक से अधिक कुछ अनुभवों को प्रकट करता है। एक अनुभव, एक मनोवृत्ति अथवा चेतना में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक स्फुरणमात्र है। क्या विश्व स्वयं एक विचारमात्र से कुछ अधिक है? किन्तु यदि यह विचार है तो किसका विचार है? कुछ वैज्ञानिकों ने, विशेषतः रूस में, इन्द्रियों की ग्राहिणी शक्ति को बढ़ाने के कुछ प्रयोग किये हैं। जहां तक मैं समझता हूँ, उनको इसमें पर्याप्त सफलता मिली है। 'हैपरऐस्थेसिया' जो अब तक बहुत ही कम यदाकदा होने वाली बीमारी मानी जाती थी वह हो सकता है कुछ दिनों में हिप्नोटिज्म की तरह वश में आ जाये। यहां पर हम योगराज के अंदर पड़ने वाली सीमाओं का स्पर्श करने लगते हैं। मैं इस सबका जिक्र यहां इसलिए कर रहा हूँ कि शरीर शास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शन और धर्मशास्त्र किस प्रकार आकर मिलते दिखायी देते हैं। भले ही हम उनकी ठीक संधि रेखा न देख पायें पर उसकी एक झलक तो मिल ही जाती है। यह झलक किसी भी व्यक्ति के अविश्वास को दूर करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए।

आज चारों ओर भ्रष्टाचार का शोर मचा हुआ है। यह कहना तो एक फैशन हो गया है कि हमारा चरित्र गिर गया है और हम भ्रष्ट हो गये हैं। मैं इस राय से सहमत नहीं हूँ जो ज्यादातर फरीसी अंदाज में दी जाती रहती है पर मैं यह मानता हूँ कि जनजीवन में अधिक निर्मलता की गुंजायश है, अधिक उत्सर्ग भावना की आवश्यकता है। इस विषय में प्रेरणा के लिए अपने विद्वानों, वैज्ञानिकों और विश्वविद्यालयों को छोड़कर हम और किसकी ओर देखें? वे यथार्थता के तमाम पहलुओं से विभिन्नता के पीछे निहित एकता के सीधे सम्पर्क में आते हैं। सम्पूर्ण सृष्टि में निहित एकता के बारे में बोलने का उनसे अधिक अधिकारी और कौन हो सकता है? उस एकता के बारे में जिसमें लोभ, घृणा, असहिष्णुता का कोई स्थान ही नहीं है। निश्चय ही आप लोगों के मध्य एक नैतिक और आध्यात्मिक आन्दोलन आपके बीच स्वरूप धारण करे जिससे राष्ट्र को नवजीवन प्राप्त हो। भारतवर्ष ने अतीत में महान् सैनिक और राजनीतिज्ञ उत्पन्न किये हैं। हमें उनके लिए गर्व है। लेकिन हमें अपने महान योगियों पर, अपने विचारकों पर और भी अधिक गर्व है। उनकी स्मृति के पुनरुज्जीवित करने के लिए हम आपकी ओर दृष्टि लगाये हुए हैं। हम लोगों ने इस विषय में बहुत ही लज्जाजनक अपराध किया है। क्या हम लोग, हमारे विद्यालय और हमारे कालेज, अथवा पुस्तक कभी अपने विद्यार्थियों का उन व्यक्तियों के प्रति जिन्होंने अल्जेबरा और दशमलव प्रणाली का आविष्कार किया, डाल्टन और लूक्रिटियस से कितनी ही शताब्दियों पहिले पदार्थ के आणविक निर्माण का सिद्धांत स्थिर कर लिया था उन महर्षि कणाद के प्रति, उन महान् भास्कराचार्य के प्रति भिन्नगणित प्रणाली की पूर्वानुवर्ती प्रणाली निकाली थी, श्रद्धांजलि अर्पित करना सिखाते हैं। क्षुद्र प्रादेशिक अहंतुष्टि की भावना से इन नामों को स्मरण नहीं करना है। यह वे मील के पत्थर हैं जो हमें लक्ष्य की ओर और भी वेग से बढ़ने का उत्साह देते हैं। उनके कार्य महान थे पर हम आप से और भी अधिक महान् कार्यों की आशा करते हैं। हमें विश्वास है कि आप उस नम्रता, यज्ञ और धर्म की भावना से कार्य करेंगे जिसने उन्हें प्रेरणा दी थी।

मित्रो! आज संध्या के इस निमन्त्रण के लिए मैं एक बार फिर आपको धन्यवाद देता हूँ। यदि इससे आपको ऊब हुई हो या मैं आपको उपदेश देता सा लगा होऊं तो मुझे क्षमा करेंगे। मेरा ऐसा विचार कभी नहीं था। इस अकादमी के साथ बड़े-बड़े नाम सम्बन्धित हैं। अपने इस नये आवास में इसका भविष्य उज्ज्वल होगा, ऐसी आशा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य

भारतवर्ष में शिक्षा का भविष्य क्या है, इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर उसी समय दिया जा सकता है जब हम पहले यह स्पष्ट कर लें कि वास्तव में शिक्षा का उद्देश्य क्या है। कुछ ही वर्षों में साक्षरता सर्वजन सुलभ हो जायगी और माध्यमिक विद्यालय इस प्रकार व्यवस्थित हो चुकेंगे कि वे अपने में ही एक पूर्ण इकाई हो जायँ और अपने अधिकांश विद्यार्थियों के लिए जीविका और समाज-सेवा के अनेक मार्ग सुलभ कर सकें। विश्वविद्यालय की शिक्षा और भी अधिक विस्तृत और परिपूर्ण हो जायगी और उसका स्तर इतना उन्नत हो जायगा कि विदेशी विद्यार्थी तक आकर शिक्षा ग्रहण करना चाहेंगे, भारतीय वैज्ञानिक विज्ञान के शुद्ध और प्रायोगिक दोनों ही क्षेत्रों को बहुत ही ठोस और उपादेय भेंटें देने में समर्थ होंगे तथा तकनीकी शिक्षा की सुविधाएं पूरी तरह से उपलब्ध रहेंगी यह सब स्पष्टतः देखा जा सकता है। सचमुच यह एक बहुत बड़ी सफलता होगी जिस पर कि देश न्यायतः गर्व कर सकता है। किन्तु सीधी सी बात है जो व्यक्ति भारतवर्ष में शिक्षा के भविष्य की समस्या का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करना चाहता है उसका मतलब इन सब बातों से नहीं है। भले ही वह अपने विचारों को शाब्दिक रूप न दे सके वह इन सबसे परे की और विस्तार के इस महत्वपूर्ण दिखायी पड़ने वाले कार्यक्रम से उच्चतर जाने वाली वस्तु के बारे में सोचता है। अन्ततोगत्वा यह कार्यक्रम, जो कुछ हम आज अपने सीमित साधनों में कर पा रहे हैं उसकी किस्म और परिमाण में वृद्धिमात्र ही तो है।

वर्तमान शिक्षा पूर्णतः उद्देश्यहीन नहीं है। इसका प्राथमिक उद्देश्य व्यक्ति को जीवन-संग्राम में सफलतापूर्वक लड़ सकने के योग्य बनाना है, उसे अपनी बौद्धिक शक्तियों और व्यक्तित्व को समुन्नत करने का अवसर प्रदान करना है और उसकी भावनाओं को परिष्कृत करना है। इन सभी उद्देश्यों को इस सीमा तक ग्रथित किया जाता है कि परिणामतः जिस राज्य में व्यक्ति रहता है वह समाज एक कल्याणकारी संस्था का रूप ग्रहण कर लेता है। शिक्षा का उद्देश्य एक अच्छे नागरिक का निर्माण करना है।

आगे बढ़ने से पहिले मैं 'शिक्षा के उद्देश्य' के बारे में एक विचार जो कि मेरी समझ में खतरनाक रूप से प्रचार पा रहा है समाप्त कर लेना चाहूंगा। इस दुर्विचार ने बेकारी की समस्या के सिलसिले में अधिक जोर पकड़ा है। यह एक गम्भीर समस्या है जो कि हमारे मस्तिष्क और साधनों के पूर्ण उपयोग की मांग करती है और इस प्रकार की योजना के विकास की मांग करती है जिससे न केवल आज खाली हाथों को काम मिल सके बल्कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जहां तक संभव हो भविष्य में खाली हाथों की संभावना ही न होने पाये। जहां तक शिक्षा का उद्देश्य योग्य नागरिकों का निर्माण है जिससे कि जीवन-संग्राम में आत्मनिर्भर हो सकें इसे प्रत्येक को उसकी यागेयता के अनुसार इस योग्य बनाना चाहिए कि वह समाज द्वारा प्रस्तुत जीविका-साधनों से लाभान्वित हो सके। यदि कोई शिक्षाक्रम ऐसा नहीं करता और अपने छात्रों को न्यूनाधिक केवल बौद्धिक जीविकाओं के ही योग्य बनाता है, तो स्पष्टतः उस शिक्षाक्रम की रचना दोषपूर्ण है और उसका अनिवार्यरूपेण सुधार होना चाहिए। यह पूर्णतः न्यायसंगत बात है और इस दिशा में शिक्षा-शास्त्रियों और प्रशासन द्वारा किये जाने वाले प्रयत्न सराहनीय हैं। किन्तु इस मामले में तराजू के एकदम विपरीत दिशा में झुक जाने का भय है। लोगों में कुछ ऐसी धारणा सी दिखायी पड़ती है कि शिक्षा स्वयं जीविका दे सकती है। सरकारें अधिक अच्छी आर्थिक परिस्थितियां बनाने में असमर्थ हैं, व्यापार उद्योग का जो विस्तार स्वभावतः जीविका के नये मार्ग खोल दे, पर्याप्त शीघ्रता से नहीं हो रहा है; रूजवेल्ट के (New Deal) के आधार पर जीविका के मार्ग प्रशस्त करने का, यह सोच कर, कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है कि स्वयं ही उद्योग को प्रोत्साहन मिल जायेगा। परिणाम यह है कि बेकारी दिन-ब-दिन और अधिक गम्भीर और भयप्रद समस्या बनती जा रही है। सारा दोष किसी के मत्थे मढ़ने के लिए कोई न कोई मिलना ही चाहिए और लगता है कि इस बार यह दोष वर्तमान शिक्षा प्रणाली में पकड़ा गया है। लगता है प्रत्येक व्यक्ति इस विषय पर साधिकार बोलने की योग्यता रखता है और एक भयंकर बहुमत इस पक्ष में है कि इस प्रणाली को बदलना ही होगा। इस बारे में बहुत से प्रस्ताव उपस्थित किये जा रहे हैं। उनका आदर्श-वाक्य यही लगता है--प्रणाली बदल जाय, इसके बाद चाहे जो हो। लोग यह भूल जाते है कि भाषा, इतिहास और विज्ञान की कक्षाओं से हटा कर केवल यन्त्रगृहों की ओर मोड़ देने भर से कुछ नहीं होगा, जब तक कि व्यापक और परिपूर्ण आर्थिक व्यवस्था इसके आगे-पीछे और साथ-साथ नहीं रहेगी। मैं नहीं समझता कि यह निर्णयात्मक रूप से सिद्ध किया जा चुका है कि उद्योगों का प्रसार आवश्यक प्रशिक्षित व्यक्तियों की कमी से रुका पड़ा है। खैर, कुछ भी हो प्रतिवर्ष निकलने वाले युवकों के इसमें खप सकने की तर्कसंगत सम्भावना होनी ही चाहिए। जो लोग कुटीर उद्योगों में लगना चाहें उनके लिए सस्ते दरों पर विद्युत शक्ति और पूंजी सुलभ हो। और इस प्रकार जो उत्पादन हो उसके लिए पर्याप्त बाजार सुलभ हो। इसका अभिप्राय यह है कि एकाएक आ पड़ने वाली असामान्य परिस्थितियों का सामना करने के लिए राज्य द्वारा किये जाने वाले छुटपुट कार्यों का स्थान कुटीर उद्योग और वृहत् उद्योगों का क्षेत्र विभाजित करने वाली निश्चित और सुदृढ़ नीति को ग्रहण करना चाहिए। इन सब बातों पर पूर्णतः विचार किये हुए केवल शिक्षा में रद्दोबदल करना नीमहकीमी है जिससे कोई लाभ नहीं होगा। बिना दूरदर्शी और साहसपूर्ण आर्थिक नीति और कार्यक्रम के मात्र शिक्षाक्रम में परिवर्तन बेकारी की समस्या नही सुलझा सकेगा, और यह याद रखना चाहिए कि एक बुभुक्षित व्यक्ति बुभुक्षित ही कहलायेगा फिर चाहे वह इतिहास का स्नातक हो या व्यावहारिक यन्त्रकला का। सामान्य बौद्धिक शिक्षा क्रम को किसी सीमा तक छोड़ कर बेकारी की समस्या के साथ जोड़ना अनुचित है और इससे विचारणीय विषय उलझ जाता है। हम लोग भोज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रबन्ध में दी हुई उस पुरानी कहानी को जानते ही हैं जिसमें एक जुलाहा भोजराज के सम्मुख इस राज्यादेश को, उसकी प्रत्येक प्रजा को साहित्यार्जन में अपने को लगाना चाहिए, भंग करने के अपराध में उपस्थित किया गया। जुलाहे ने अपनी बातचीत से यह प्रमाणित कर दिया कि वह पढ़ा लिखा और बुद्धिमान व्यक्ति है और फिर उसने संक्षेप में प्रश्न किया; कवयामि, वयामि, यामि,—मैं काव्य-रचना करूं, कपड़ा बुनूं या आपका राज्य छोड़कर चला जाऊँ? सम्राट ने बुद्धिमत्तापूर्वक उसे अपने करघे में ही जुटे रहने की सलाह दी। पर जैसे कि साहित्यिक जीवन पर आवश्यकता से अधिक बल देना अनुचित है उसी प्रकार शारीरिक श्रम के उपदेश पर भी अनुचित बल देना ठीक नहीं है। आखिरकार सांसारिक शिल्पकारों से उस प्रसिद्ध द्वीप के निवासियों की तरह जीवित रहने की आशा नहीं की जा सकती, जिनमें से हर एक केवल दूसरों के कपड़े धोकर गुजारा करता था।

अब मैं अपने विषय "शिक्षा का उद्देश्य" पर आता हूँ। यह उद्देश्य, जीवन के उद्देश्य से भिन्न नहीं हो सकता, क्योंकि शिक्षा का वास्तविक कार्य तो मनुष्य को उसकी आन्तरिक सामर्थ्य के अनुसार, इस योग्य बना देना है कि वह मानवीय जीवन के उद्देश्य को समझ सके। और मनुष्यता के चरम आदर्श को प्राप्त कर सके। यहां पर यह असंगत न होगा यदि भारत के पुराने विचारकों के अनुसार निर्दिष्ट मानवजीवन के उद्देश्यों पर संक्षेप से दृष्टिपात कर लें। पहिले दो हैं अर्थ एवं काम। इन दोनों को सामयिक शब्दावली में, आत्मरक्षा और जाति अथवा वंश-परम्परा की रक्षा की प्राकृतिक भावना कह सकते हैं। पर यह केवल मानवजाति की ही विशेषताएं नहीं हैं बल्कि यह छोटी से छोटी वनस्पति और क्षुद्र से क्षुद्र पशुओं में भी पायी जाने वाली भावनाएं हैं। ये मनुष्य के समस्त जाने-अनजाने शारीरिक और बौद्धिक कार्यकलापों को उसके जीवन भर प्रभावित करती रहती हैं चाहे इनका स्वरूप कुछ भी हो?

यहां तक कि अवचेतन रूप से कुछ पशु तक इस बात को समझते हैं और अपने व्यवहार और स्वभाव द्वारा इसका परिचय भी देते हैं कि समुदाय के अन्य सदस्यों के अर्थ और काम का किसी सीमा तक ध्यान रखना आवश्यक है। दल के प्रत्येक सदस्य को भोजन का, सहवास का और बच्चों को पालने का अवसर अवश्य देना होगा और दल के शिशुओं की रक्षा एक अनिवार्य उत्तरदायित्व है। मनुष्य इन प्राकृतिक भावनाओं के साथ बुद्धि का ग्रथन करता है और इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वह दूसरों की हितसिद्धि करने से ही अपनी हितसिद्धि अच्छी प्रकार कर सकता है, क्योंकि दूसरों के अर्थ, काम की उपेक्षा करके वह अपने अर्थ और काम का पूर्ण उपभोग नहीं कर सकता। ज्ञानपूर्ण स्वार्थ, सहयोग और समाजसेवा का निर्देश करता है। ज्ञान और संस्कृति की परिवृद्धि के साथ-साथ स्वभाव भी दृढ़ और परिष्कृत होता जाता है और एक समय जो कार्य किसी अन्य साध्य का साधन मात्र था वह स्वयं साध्य बन जाता है। दूसरों के अधिकारों का ध्यान रखना, अपने अधिकारों पर अड़ने के बजाय कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहना, स्वार्थहीन, निष्काम कर्म यह जीवन का तीसरा उद्देश्य है यही तीसरा पुरुषार्थ 'धर्म' है। समस्त प्राणियों में केवल मनुष्य ही इसका साधन कर सकता है। तीसरे से चौथा उद्देश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं ही सामने आ जाता है। पग-पग पर अज्ञान के कारण मनुष्य का मार्गावरोध होता है। वह नहीं जानता कि वे दूसरे सब कौन हैं जिनके साथ वह सम्बन्धित है और जिनकी सेवा उसे करनी चाहिए। वह उनका संबंध विश्व से नहीं जानता और उनकी सेवा करने का सर्वोत्तम उपाय भी नहीं जानता। वह जो करना चाहता है कर नहीं पाता क्योंकि उसके पास साधनों का अभाव रहता है। वह स्वयं को और विश्व को पूरी तरह नहीं जानता और वह उससे सक्रिय तादात्म्य भी स्थापित नहीं कर पाता। वह अज्ञान से, अविद्या से मुक्ति पाना चाहता है और यही जीवन का वह चौथा अंतिम और सर्वोच्च उद्देश्य 'मोक्ष' है। यह भी किसी अन्य साध्य यानी 'धर्म' के साधन के रूप में प्रारंभ होकर अंत में स्वयं साध्य बन जाता है। जैसे चुनाव में अर्थ और काम क्रमशः धर्म के नीचे हो जाते हैं उसी प्रकार अंत में जाकर ज्ञानी में धर्म मोक्ष के नीचे हो जाता है। वह उससे उसी प्रकार निस्यूत होता है जैसे मेघों से वर्षा। वे जहां तक होता है छोड़ने के बजाय आत्मसात् कर लिये जाते हैं। इस प्रकार मुनष्य के जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य मोक्ष होना चाहिए और जीवन इस प्रकार ढला हो कि वह धर्म का प्रतिरूप बन जाये। यही दो वस्तुएँ हैं, जो मनुष्य को इतर प्राणियों से भिन्न बनाती हैं।

यह सब जीवन का उद्देश्य होने पर शिक्षा का उद्देश्य अपने आप स्पष्ट हो जाता है। किसी शिक्षाक्रम की परीक्षा इसी से हो सकती है कि वह मनुष्य को कहां तक इस साध्य को प्राप्त करने के योग्य बनाता है। यहां यह नहीं कहा जा रहा है कि शिक्षा-संस्थाएं मोक्ष का विशेष अध्ययन करने वाली विचारधाराओं द्वारा बताये हुए योग या अन्य साधनों की शिक्षा देने वाले आश्रमों का स्थान ग्रहण कर लें। किन्तु इतना निश्चय ही उनकी परिधि के भीतर और कर्त्तव्य का एक अंश ऐसा होना चाहिए कि वे ऐसी बौद्धिक, परिष्कृत और भावात्मक पृष्ठभूमि तैयार कर दें कि व्यक्ति यदि चाहे तो मोक्ष का अनुसंधान उत्तरोत्तर करता रह सके। सम्पूर्ण शिक्षा धर्म से अनुप्राणित रहे और स्कूल-कालेज का वातावरण उससे परिपूर्ण हो। समाज सीधे-सीधे और तुरन्त केवल इतना ही चाहता है।

धर्म धार्मिक मत विश्वास नहीं है किन्तु मतविश्वास निश्चय ही धर्म का एक अंग है। जब मैं रिलीजन (Religion) की चर्चा करता हूँ तो मेरा अभिप्राय किसी धार्मिक मत विशेष के उपदेशों से नहीं बल्कि उस वस्तु से होता है जो कि मतों और सम्प्रदायों का आधार है। कुछ मूलभूत विश्वासों के बिना कोई भी धार्मिक मत संभव नहीं, व्यक्तिगत चेतना की अभौतिक प्रकृति में विश्वास, एक ऐसी सत्ता या सत्ताओं में विश्वास जो पिता के समान मनुष्य को ज्ञान और सत्यता के मार्ग का प्रदर्शन करते हैं और आपत्ति से, उसकी रक्षा करते हैं, व्यक्ति का अपने कार्यों के लिए उत्तरदायित्व आदि ऐसी ही वस्तुएँ हैं। इन महाशक्तियों के प्रति सम्मान का भाव और प्राणिमात्र के प्रति सहानुभूति भी धर्म का आदेश है। यह भी अधिकाधिक अनुभव किया जा रहा है कि धर्म के बिना स्कूल और कालेजों में नैतिक प्रशिक्षण कठिन है। बिना धर्म के नैतिक शिक्षा का बुद्धिसम्मत स्वार्थसाधना से इतर और कोई आधार नहीं रह जाता किन्तु यह इस मनुष्य नामक प्राणी के लिए बहुत ही हल्का प्रतिरोधक है। समय पड़ने पर यह साथ नहीं देगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म के लिए, समाज के लिए और इसीलिए शिक्षा के लिए भी सबसे अधिक सारपूर्ण आधार विराट पुरुष की कल्पना है। सम्पूर्ण विश्व एक शरीर है और हम सब एक दूसरे से उस विश्व पुरुष के शरीर के कोषों की भांति अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध हैं। रक्तस्रोत की भांति जो शरीर के सभी अंगों को बराबर भोजन पहुंचाता है हम सभी उस महाप्राण दैवी शक्ति द्वारा आच्छादित हैं और जीवनस्थिति प्राप्त करते हैं। एक के विचार और कार्य सभी के विचारों और कार्यों को प्रभावित करते हैं। और सीधे इसी से वह सिद्धान्त निकला है जिसके अनुसार पुराने विचारकों ने भारतीय समाज की नींव डाली और वह है प्रत्येक कर्तव्य धर्म। अधिकारों पर बल न देकर कर्त्तव्य पर बल दें। अधिकारों पर बल देना सदैव कभी न समाप्त होने वाले और प्रतिदिन बढ़ते जाने वाले संघर्ष को जन्म देता है, किन्तु कर्त्तव्य के क्षेत्र में प्रतियोगिता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अधिकारों के लिए, संघर्ष मनुष्य की बहुत सी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को अपने नग्न रूप में उपस्थित कर दे सकता है पर कर्त्तव्य पालन का प्रयत्न मनुष्य को सदैव ऊंचा ही उठाता है। और प्रत्येक यदि अपने कर्त्तव्य-पालन करने लगे तो बिना किसी झंझट के ही दूसरों को अपने अधिकार मिल जायेंगे।

यह पाठ पाठ्य-पुस्तकों से लेकर जीवन में, व्यक्ति और जाति के जीवन में अनूदित करने हैं। पर यह सब तभी सम्भव है जब वे नींव से लेकर चोटी तक शिक्षाक्रम के अंग बनें। कला, साहित्य, विज्ञान और शिल्प की सेवा और अभिवृद्धि पहिले से कम नहीं होगी, स्कूल और कालेज फिर भी अपने विद्यार्थियों को समाज द्वारा प्रस्तुत जीविका के अवसरों से लाभ उठाने योग्य बनायेंगे और कल्याणकारी राज्य भी सक्षम तत्पर कार्यकर्त्ताओं के अभाव से नष्ट नहीं होने पायेगा, किन्तु जीवन की समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण बदल जायेगा। सक्रिय शिक्षा के समय केवल बुद्धिश्रम अथवा भावनाओं पर बल नहीं होगा बल्कि विद्यार्थी की आत्मा पर बल दिया जायेगा स्पष्टतः यह मान कर कि उसके पास आत्मा नाम की वस्तु है, जो कि पथप्रदर्शन करती है और मस्तिष्क शरीर और भावनाओं का मूलाधार है। इसके बाद जो व्यक्तित्व सामने आयेगा वह एक आशा और विश्वास से परिपूर्ण लक्ष्य और उत्सर्ग के संकल्प से पूर्ण समन्वित व्यक्तित्व होगा। ऐसा व्यक्ति थोथी भावनाओं की आंधी में बह जाने वाला और हर नये विचार द्वारा अपने स्थान से डिग जाने वाला व्यक्ति नहीं होगा। ग्रहणशील मस्तिष्क होने के लिए एकदम कोरा होना आवश्यक नहीं है।

इस प्रकार के व्यक्तित्व का निर्माण किया जा सकता है,यह आशा करना किसी असम्भव की इच्छा करना नहीं है। अपने से और अपने दैनिक जीवन क्रम से किसी उच्चतर वस्तु में विश्वास मनुष्य को एक विशिष्ट व्यक्तित्व में परिवर्तित कर देता है—वह व्यक्तित्व, जिसकी दृष्टि भौतिक सीमाओं से बंधी नहीं है और जो आवश्यकता पड़ने पर अपने को और अपने सर्वस्व को बलिदान कर देने के लिए उद्यत रहता है। यह पहिले भी हो चुका है। गौतम, ईसा और मुहम्मद यह कर चुके हैं, अपने स्वयं के जीवन में हम महात्मा गांधी को मिट्टी से फौलाद में बदलते देख चुके हैं।

विश्वास का यह अंश हमारे आज के शिक्षा क्रम में नहीं है क्योंकि हमारे जीवन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इसका अभाव है। हमारे सामने अच्छी तरह से जिन्दा रहने के अलावा—मेरा मतलब स्थूल ऐन्द्रिक रूप से नहीं है—और कोई उच्चतर उद्देश्य नहीं है। बलिदान का कोई आह्वान नहीं है। ऐसी कोई वेदी दृष्टिगत नहीं होती जो इस भावना को जगाये। भले ही कोई सहमत हो या न हो, महात्मा जी के पास ऐसा दर्शन था जो कि व्यक्ति और समाज की समस्त समस्याओं को उनके विचारों और कार्यक्रमों में समन्वित करता था। किसी अन्य वस्तु ने उस स्थान की पूर्ति नहीं की। हमने इनके दर्शन को छुटपुट बातों के अलावा आत्मसात् नहीं किया और उसकी जगह किसी दूसरे दर्शन का विकास भी नहीं किया। इस तरह जीवनक्रम आज भी समन्वित नहीं हो सका है। हमारा सम्पूर्ण दृष्टिकोण असंगठित और क्रमहीन है। जैसे-जैसे समस्याएं सामने आती जाती हैं हम एक-एक कर अलग-अलग विचार करना प्रारम्भ करते हैं। और परिणामस्वरूप यह आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए कि हमारी प्रगति रुक-रुक कर झटकों के साथ या एकदम लम्बी छलांगों से होती है और राजनैतिक सत्ता सदैव एक खींचतान और अवसाद के भार से ग्रस्त रहती है। भौतिक सुख सुविधा और मात्र बौद्धिक प्रगति सदैव मानसिक असन्तुलन को जन्म देती है और इस संसार में जो कि धन को और धन से उपलब्ध हो सकने वाली सांसारिक स्थिति को ही अपना परम उपास्य मानता है, भौतिक अभाव और भी अधिक मानसिक असन्तुलन के कारण होंगे। मनुष्य को इससे उच्चतर वस्तुओं को अपना आधार बनाने और इससे उच्चतर आदर्शों का निर्माण करने की शिक्षा देनी ही होगी। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वह एक आध्यात्मिक नशे में अपने को डुबो ले बल्कि अपने आपको उस परमार्थता के साथ सामंजस्य स्थापित कर ले जो कि हम सबके चारों ओर श्वास ले रही है। उसे पुनः धर्म के निकट लाना होगा।

यदि धर्मनिरपेक्षता के शाब्दिक अर्थ पर और झूठी बौद्धिकता पर अनुचित बल हमें रोक न ले, हमारे विश्वविद्यालय अवसर की चुनौती स्वीकार कर कटिबद्ध हो जायें और जिन व्यक्तियों के हाथों में हमारी शिक्षानीति और कार्यक्रम का स्वरूप निश्चित करने का अधिकार है, वे हमारी महती परम्पराओं को उनका उचित स्थान दें, तो मैं भारतवर्ष का भविष्य उज्ज्वल देखता हूँ। भारतीय शिक्षाक्रम, सुख-सन्तोष का एक नया युग और जीवन में अधिक पूर्णता लाने में समर्थ होगा, वह उस नये मनुष्य की सृष्टि करेगा जो अपने सर्वतोमुखी विकास के कारण विशिष्ट होगा, जो न तो शुष्क सन्यासी ही होगा और न घोर विलासिता का उपासक ही और साथ ही जो हमेशा दिमाग़ी कलाबाजियाँ लगाते रहने वाला बौद्धिक रोगी भी न होगा। भले ही मनुष्य नक्षत्रमंडल के दूरतम पार्श्वों में पहुंचने की आकांक्षा करे किन्तु वह सदस्य उसी मण्डल का रहे जिसका हृदय अथर्ववेद के शब्दों में सदैव परमे व्योमन्—आत्मा के परम शान्त और स्थिर लोक में ही निवास करता है। सभी एक समान ऊँचे नहीं उठ सकते—किसी भी युग में सब एक समान नहीं हुए—किन्तु कामना सभी कर सकते हैं, जो ऊँचा उठ पाते हैं वे दूसरों के लिए उदाहरण का कार्य करेंगे।

दूसरी ओर, यदि हमारे शिक्षा शास्त्री प्रतिक्रियावादी समझे जाने के डर से अथवा राजनीतिज्ञों या अन्य लोगों के उपहास-पात्र बनने के भय से, जो कि इन सब मामलों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिम का अन्धानुकरण छोड़ना नहीं चाहते, अपनी पाठ्य-पुस्तकों में अपना सिर छुपा कर सन्तोष कर लेते हैं, और हमारे विचारक प्रतिस्थापनवादी कहलाने के डर से धर्म को पाठ्यक्रम का अंग बनाने और पूर्व शिक्षा क्रम को पुनस्संगठित करने के बारे में अपने विचार निर्भीकतापूर्वक प्रकट करने से रुक जाते हैं तो हमारी प्रगति का अवरोध निश्चित है। पुनर्नवीनीकरण का मूलकेन्द्र व्यक्ति के महत्व की निस्संशय स्वीकृति होगी और इस तथ्य की स्वीकृति होगी कि समाज इसकी संस्थाएं और परम्पराएं इसलिए हैं कि वे मनुष्य को आत्मदर्शन का अपने परमपुरुषार्थ को साकार करने का परिपूर्ण अवसर मिल सके। बिना नैतिक जीवन के सही अर्थों में सामाजिक जीवन सम्भव नहीं और नैतिक जीवन का मूलाधार विराट्—वह महाशक्ति जिसके शरीर के हम सब अविभाज्य अंग हैं, अस्तित्व का स्वीकृति है। यह हमें सीधे धर्म की धारणा तक पहुँच देता है। सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग, एक अभिभावक की भाँति सबकी भलाई के लिए करना है। अधिकार केवल सेवा का है, कर्तव्यपूर्ति का है। मस्तिष्क और शरीर को, चरित्र और भावनाओं को इस लक्ष्य के अनुरूप ढाल देना शिक्षा का उद्देश्य है। ऐसी शिक्षा मनुष्य को मनुष्य से दूर रखने वाले व्यवधानों को अगर बिल्कुल ही हटा न भी सके तो भी काफी ढीला तो कर ही देगी। यदि भारतवर्ष ने इस मार्ग का अनुसरण किया तो सम्पूर्ण विश्व का आशीर्वाद उसे प्राप्त होगा। नहीं तो पश्चिम के अनुवर्तियों के रूप में अवसादग्रस्त किसी प्रकार घिसटता रहेगा। जापान ने पश्चिम की साम्राज्यवादिता की नकल की जिसका भयंकर परिणाम उसे और उसके पड़ोसियों को भुगतना पड़ा। भारतवर्ष को भी आत्महीन पश्चिमी बौद्धिकवाद का अनुसरण करके इससे अधिक कुछ मिलने की आशा नहीं की जा सकती।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा में सामाजिक संकट

सारे संसार में आज शिक्षा के बारे में उथल-पुथल मची हुई है किन्तु भारतवर्ष में लगता है जैसे हम लोगों को इसकी कोई खबर नहीं है। यह अजीब सी बात है कि वह देश जो शताब्दियों से विभिन्न प्रकार के दर्शनों का क्रीड़ा-क्षेत्र रहा हो, उसने दर्शन की ओर से बिल्कुल ही पीठ फेर ली है। हम लोगों ने अपना विधान इधर-उधर से कतरनें लेकर और चिपका कर तैयार कर लिया, दर्शन का कहीं से स्पर्श भी नहीं होने दिया और अब शिक्षा की समस्या का हल उसी अदार्शनिक दृष्टिकोण से करने जा रहे हैं। हमारे लिए शिक्षा पूर्णतः बौद्धिक विषय है – किसी साध्य के लिए साधन जुटाना भर है। साध्य का निर्धारण आज की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों से होता है। यह परिस्थितियां समय समय पर और देश-देश में बदलती रहती हैं। परिवर्तन का वेग कभी बहुत तीव्र होता है। यदि जो रुख हमने अपना रखा है वह सही है तो शिक्षा का कोई निश्चित लक्ष्य अथवा दार्शनिक पृष्ठभूमि होना कठिन ही है। शिक्षा शास्त्री को केवल इतना ही करना होगा कि वह वातावरण के अनुसार अपनी तकनीक बदलता रहे। उस वातावरण को बदल सकने में उसका कोई वश नहीं होगा।

सदैव ऐसा नहीं था। प्राचीन भारत और जिन देशों से उसका सांस्कृतिक और आत्मिक संबंध था, उनमें शिक्षा का एक निश्चित दर्शन था। यही नहीं आज के संसार में भी लोग इतने पुराने विचारों के हैं जो विश्वास करते हैं कि शिक्षा का व्यावहारिक पक्ष, कला और तकनीक, सैद्धान्तिक विचारों पर ही निर्भर होने चाहिये। यह दर्शन साधारण जीवन दर्शन का ही एक महत्वपूर्ण अंग है।

वर्तमान जीवन पर मशीनों का आधिपत्य और भौतिक विज्ञानों की शीघ्रगामी प्रगति, जिसका परिणाम हाइड्रोजन बम के रूप में हुआ, मनुष्यों को सावधान होकर सोचने के लिए विवश कर रही है कि संसार में सब कुशल है क्या? साक्षेपतावाद का सिद्धान्त, छिन्नसूत्रता और अनिश्चय के सिद्धान्त, लगता है जिनसे बचा नहीं जा सकता, मनुष्यों में शांति और समझदारी ला सकने में धर्म की विफलता, शक्तिशाली तानाशाहियों का उद्भव, अधिकाधिक विध्वंसक युद्धों की पुनरावृत्ति का भय, इन सबने मिल कर ऐसी मानसिक स्थिति पैदा कर दी है जो मनुष्यों को बौद्धिक और आध्यात्मिक आलस्य दूर करके जीवन में मूल्यों की समस्या पर गम्भीरतापूर्वक सोचने को विवश करती है। इसी प्रकार के विचार-वातावरण में दर्शनों का सृजन, पुनर्गठन अथवा पुनरार्वतन होता है। क्रिश्चियानिटी, बौद्धधर्म और वेदान्त इन सभी की परीक्षा की जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रही है; इस जेल से निकलने के लिए जिसमें उन्होंने अपने आप को स्वयं बन्द कर लिया मनुष्य अंधेरे में मार्ग टटोल रहे हैं।

यह अनिवार्य ही था कि मानव जीवन की इस विषम वेला का प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रतिविम्बित होता। शिक्षा के क्षेत्र में कई प्रकार की कठिनाइयां उपस्थित हुई हैं। पहिली तो शिक्षा के पाठ्यक्रम से सम्वन्धित गम्भीर समस्या है जिसका सम्बन्ध दूसरी प्रकार की शिक्षा की अपेक्षा विशेषतः वैज्ञानिक पक्ष पर बल देने वाली शिक्षा से है। इससे सम्बन्धित प्रश्न इन दोनों के सम्मिश्रण की संभावना और उसकी आवश्यकता है। एक दूसरी और समस्या है जो प्रधानतः सामाजिक है। यह इस लेख का विषय है इसमें संदेह नहीं कि और भी कितनी ही महत्वपूर्ण समस्याएं हैं किन्तु वे सब वास्तव में एक दूसरे से संबंधित हैं और उन सबका वास्तविक उत्तर एक व्यापक रूप से समन्वित दर्शन में मिलेगा जो कि व्यक्ति और समाज के जीवन के हर पक्ष का स्पर्श करता हो।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, इस लेख में मैं प्रधानतः शिक्षा में सामाजिक उथल-पुथल की ओर ही, जैसा कि साधारणतः इसे कहा जाता है, ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। कुछ लोग मानते हैं कि व्यक्ति का स्वयं अपने में ही सर्वोच्च महत्त्व है। इस विचारधारा के अनुसार उसके कुछ ऐसे स्वभावगत गुण हैं जो सुप्त पड़े रहेंगे यदि उसे सामाजिक जीवन का अवसर न मिला। अतः समाज उसके व्यक्तित्व विकास का एक साधन मात्र है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को अपने चरम विकास में सहायता देना है, उसे पूर्ण विकास का अवसर देना है। ऐसे बहुत से तथाकथित असामाजिक तत्त्व हैं जो मनुष्य की बौद्धिक बनावट में स्थान पा जाते दिखायी पड़ते हैं। उनका त्याग आवश्यक है, इसलिए नहीं कि वे असामाजिक हैं बल्कि वे व्यक्ति के विकास में बाधक हैं। वे उसके स्वभावगत अंश नहीं हैं बल्कि दुर्व्यवस्था और अज्ञान के कारण उत्पन्न होने वाले दोष हैं। अपनी प्रकृति, आसपास की वस्तुओं और इनसे अपने सम्बन्ध का ठीक-ठीक ज्ञान मनुष्य को उन दोषों से इसी प्रकार मुक्त कर देगा जैसे तितली पूर्णता प्राप्त कर लेने पर अपने प्यूपा की दशा में चढ़े रहने वाले खोल से मुक्त हो जाती है। शिक्षा के परिणामस्वरूप निखरकर व्यक्ति जिस मनुष्य के रूप में सामने आयेगा वह न तो सामाजिक पशु के रूप में होगा और न शुष्क बौद्धिक के रूप में ही, अर्थशास्त्री के रूप में तो निश्चय ही नहीं होगी। पूर्ण मनुष्य वास्तव में, पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिरूप होगा। प्रकृति और उसके द्वारा समस्त प्राणियों के साथ अपनी एकात्मता अनुभव करने के कारण वह असीम सहानुभूति से परिपूर्ण व्यक्ति होगा, जिसके पास दूसरों की सहायता करने के लिए वह इच्छा और शक्ति होगी जो केवल ज्ञान, सत्य और स्वार्थहीनता से ही प्राप्त होती है।

एक दूसरी भी विचारधारा है जो इस सबसे सहमत नहीं है। यह इस विचार की सत्यता से इंकार करती है कि मनुष्य के अन्दर कोई अमर आत्मा अथवा तत्व है, और इसलिए व्यक्तित्व के क्रमशः विकास की बात नहीं कर सकती। यह ऐसे शब्द का प्रयोग नहीं कर सकती जिनसे आध्यात्मिक गंध आती है। व्यावहारिक सुविधा के लिए प्रयोग की बात दूसरी है। इसके विश्वास के अनुसार व्यक्ति का महत्त्व मात्र सामाजिक अंग के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में है। कहा जा सकता है कि वह शून्य में ही से आता है और शून्य में चला जाता है पर समाज अविच्छिन्न रहता है। अतः चेष्टा जिस बात की होनी चाहिए वह है समाज का कल्याण और उसका सर्वतोमुखी विकास। समाज के विरुद्ध व्यक्ति के कोई अधिकार नहीं हो सकते और वैयक्तिक जीवन का हर पक्ष सामाजिक जीवन पर इसके प्रभाव के अनुसार आंका जायेगा। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को ऐसा बनाना है ताकि वह सामाजिक कल्याण का स्वेच्छा से उपयोगी यन्त्र बन जाये। समाज-सेवा की स्वतंत्रता के अलावा और किसी स्वतन्त्रता की कामना करना एक जंगली प्रवृत्ति है जिसका दवाना आवश्यक है।

इससे अधिक स्पष्टता से समस्या को सामने रख सकना मेरे लिए संभव नहीं है। दोनों विचारधाराएं अपनी जगह दृढ़ हैं। शताब्दियों से चली आ रही हैं किन्तु व्यक्तिवाद ही अधिकांशतः सामयिक दर्शन रहा। सभी धर्मों का सहयोग इसे मिला। अभी कुछ समय पूर्व से, विशेषकर रूस की सफलता के परिणाम स्वरूप, और अब चीन की क्रान्ति के बाद से दूसरी विचारधारा का प्राबल्य हुआ। इसने काफी स्थान प्राप्त कर लिया है। समस्या अब इतनी काफी बड़ी हो चुकी है कि अब और उसे टाला नहीं जा सकता। युगों तक मानवता का भविष्य इसके ठीक उत्तर पर निर्भर करता है। यहां भारतवर्ष में हम लोगों को जैसे इन सब बातों पर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं है। हम बड़ी वीरता के साथ इस 'नयी शिक्षा' के बारे में बात करते हैं। इसकी बहुचर्चित नवीनता स्कूल के साथ कृषि योग्य भूमि की एक पतली सी पट्टी जोड़ देने में है। शिक्षा सुधार के बारे में हमारे सबसे महान विचार बेकारी की प्रधान आर्थिक समस्या के चारों ओर केन्द्रित रहते हैं। हम यह नहीं अनुभव करने लगते हैं कि यह सब—सही है कि बहुत महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है—सिर्फ तकनीकी प्रश्न है और प्रधान प्रश्न का स्पर्श भी नहीं करता जिस पर कि आज के कुछ सबसे अच्छे मस्तिष्क विचारग्रस्त हैं। खेद है कि इतने महत्त्वपूर्ण विषय के समाधान में हमारा कोई भाग नहीं हैं, सम्भवतः दूसरों से उधार लेकर ही हम सन्तुष्ट रहेंगे।

काफी वर्षों से व्यक्ति हारती हुई लड़ाई लड़ रहा है। बड़ी-बड़ी संख्याओं में बनने वाली वस्तुओं ने उसे मात्र पुर्जा भर बना दिया है। वह अब सर्जक नहीं बल्कि एक जीवित रोबट भर बनकर रह गया है। इसमें संदेह नहीं कि समाज की भौतिक समृद्धि में उसका भी भाग है किन्तु इसमें भाग न लेने की स्वतंत्रता उसे नहीं है। उसका सुखोपभोग एक अच्छे जन्तुगृह के निवासियों से अधिक नहीं है। समाज की जिस इच्छा के आगे उसे सब कुछ बलिदान कर देना है वह कुछ निरंकुश व्यक्तियों की इच्छा होती है जिनके हाथों में सम्पूर्ण शक्ति प्रतिष्ठित रहती है। यहां तक कि वह अपने सांस्कृतिक जीवन में भी स्वतंत्र नहीं रहता, जो किताबें वह पढ़ता है, जो नाटक वह देखता है, जो संगीत वह सुनता है सब दूसरों द्वारा उसके लिए चुने गये होते हैं। उसे स्वयं कुछ बनाने की अथवा उस वस्तु को संरक्षण देने की स्वतंत्रता नहीं है जो उसके स्वामियों की प्रत्यक्ष इच्छा के अनुरूप नहीं है। एकदम परिपूर्ण एकता सम्भव नहीं है, विचारों पर कड़े से कड़ा शासन यह बात नहीं लाया था, किन्तु लक्ष्य एक ऐसे समुदाय का निर्माण ही मालूम पड़ता है जिसमें सारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति एक सा सोचने वाले, एक सा अनुभव करने वाले और एक सी घृणा करने वाले हों। ऐसे नागरिकों का समाज एक ऊंचे प्रकार की मधुमक्खियों का छत्ता ही होगा। अपनी असंख्य पीढ़ियों से गुजर कर मानवता को यही बनकर निकलना था, यह बात तो अधिक बुद्धिसंगत नहीं जंचती। अलावा भी कितने ही बार यह प्रश्न पूछा गया है कि सत्य क्या है और पूर्ण दार्शनिक यथार्थ के साथ इसका प्रतिपादन कर सकना कठिन हो गया। यह शिव और सुन्दर के साथ इस अविभाज्य ढंग से मिला हुआ है कि इसे अलग करने के प्रयत्न की विफलता निश्चित है। पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि सत्य की मानवीय व्यवहार की सरलता के उपयोग के अलावा और कोई स्थिति नहीं है। हो सकता है कि क्षणिक वस्तुओं के अलावा किसी उच्चतर वस्तु के प्रति निष्ठा कभी-कभी सर्वस्व बलिदान की आवश्यकता उपस्थित कर दे, किन्तु छोटे-छोटे बच्चों का माता-पिता के ऊपर गुप्तचर का कार्य करना, अपने को परम्परा-निष्ठ सिद्ध करने के लिए एक मित्र का दूसरे मित्र के साथ विश्वासघात, विचार या अभिव्यक्ति की थोड़ी सी भी भिन्नता होने पर सभी के विश्वासपात्र व्यक्तियों की आये दिन हत्या, शासक वर्ग द्वारा अननुमोदित विचारों का दबाना, इन सबका परिणाम युग-युग के सांस्कृतिक विकाय-कार्य पर पानी फेर देना होगा। संदेहोन्माद केवल किसी-किसी व्यक्ति की अस्वाभाविक अवस्था नहीं रहती बल्कि एक पूरे देश की ही मानसिक स्थिति बन जाती है। ऐसी परिस्थितियों में मस्तिष्क अपना संतुलन बनाये रखने के लिए निन्दाशीलता में शरण खोजता है और जिन गुणों का स्वयं सुरक्षा के साथ व्यवहार नहीं कर सकता उनकी गुणशीलता से ही इंकार करने लगता है। हो सकता है अस्वीकृति सीधी-सीधी न हो बल्कि सापेक्षतावाद के दर्शन में लिपटी हुई हो और ऐसे तार्किक वितण्डावाद के द्वारा व्यक्त की गयी हो जिससे कि ठिकाने का अभिप्राय निकालना ही कठिन हो। जैसा कुछ भी हो इस सबका अन्तिम परिणाम यह होगा कि मानवता पशुवत् होकर उन सब भावनाओं के प्रति विमुख हो जायेगी जो कि. मानवीय सम्बन्धों को प्राणवान बनाती हैं। वह विभिन्न मानसिक परिस्थितियों में एक विशेष बंधे प्रकार की प्रतिक्रिया उपस्थित करने में प्रशिक्षित होकर, राजनैतिक स्वामियों की इच्छा की स्वेच्छा से दास रहेगी जिनको, उनकी अपनी महत्त्वाकांक्षाओं अथवा धारणाओं के अनुसार जो कुछ वे झुंड के लिए अच्छा समझते हैं उन लक्ष्यों को प्राप्त करने से कोई भी धर्म और नीति का बंधन रोक नहीं सकेगा।

यह कहा जा सकता है कि यह केवल एक उदाहरण से अयाचित साधारणीकरण किया जा रहा है, याकि मैं कम्युनिस्ट फोबिया से ग्रस्त हूँ और कम्युनिज्म के विरुद्ध अपने विचारों को आरोपित कर रहा हूँ, मैं प्रत्येक समाजवादी विचारधारा के विरुद्ध उपस्थित कर रहा हूँ। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे पहिले से ही अपने विरुद्ध इस दोषारोपण किये जा सकने की आशंका थी अतः जहां तक हो सका है मैंने तटस्थ रहने की चेष्टा की है। मेरा साधारणीकरण अप्रत्याशित नहीं है। वह सारी विचारधाराएं जो समाज को व्यक्ति से ऊपर रखती हैं और समाज के सदस्य होने के नाते जो कुछ अधिकार मिले हों उसके सिवा उनके और कोई मौलिक अधिकार स्वीकार नहीं करती। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि यह अधिकार मौलिक और अपरिवर्तनीय अधिकार नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सकते बल्कि समय के साथ परिवर्तित होते रहते हैं—और यह धीरे-धीरे आदेश का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसी परिस्थिति में जीवन का जो चित्र मैंने खींचा उसमें भी अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया है। एक स्थायी भय की भावना, एक संशयात्मक और चौकन्नारहने वाला स्वभाव, आत्मा की शाश्वत् भावात्मता को विकसित करने वाला नहीं होता। मनुष्यों के सामने प्रस्तुत किये जाने वाले गायन-वादन और संगीत की तकनीकी पूर्णता कितनी भी अधिक क्यों न हो, इससे कोई प्रेरणा नहीं मिलेगी, क्योंकि जो वस्तु सम्पूर्ण कलाओं का आधार है वह इसमें नहीं होगी। वह वस्तु है धर्म। मैं भय के उस दूसरे स्रोत को भी भूला नहीं हूँ। वह प्रजातंत्र, जो कि धर्म से प्रेरित नहीं है और अपने धर्म की अस्वीकृति और भौतिक विज्ञान रूपी देवताओं का दम्भ करता रहता है जैसे कि वही वास्तविक प्रगति के आधार हों, उससे कम भयंकर नहीं है। यदि पहिला व्यक्तित्व को कुचलता है तो दूसरा भी उतने बुरे दोषों—प्रत्येक वस्तु का उपहास और आत्म-दम्भ की सृष्टि करता है। व्यक्तित्व को दोनों प्रकार की परिस्थितियों में एक दूसरे से कम आघात नहीं पहुचता। हम चाहे जैसी परिष्कृत शब्दावली का प्रयोग करें दोनों ही जगह वही निरंकुशता के वातावरण का साम्राज्य रहता है। प्रचार दोनों ही जगह एक-सा उन सामूहिक और आदिम प्रवृत्तियों और भावनाओं को जगाने में समर्थ है, जिनके लिए हम बड़े भरोसे के साथ आशा करते थे कि मानवता उनसे आगे बढ़ चुकी है, और व्यक्ति फिर उस आदिम समूह में वापस डुबा दिया जाता है।

आज वैज्ञानिक आणविक विस्फोटों द्वारा उत्पन्न विकेन्द्रीकरण द्वारा सम्भावित विकलांगिता की चर्चा करते हैं किन्तु बौद्धिक विकलांगिता की बात पर विचार उससे कम आवश्यक नहीं है।

मानवता के लिए भविष्य की आशा एकमात्र इसी में है कि वह पशुओं के से झुंड की विचारश्रृंखला को छिन्न-भिन्न कर दे जिनमें कि वर्तमान परिस्थितियाँ उसे जकड़ती चली जा रही हैं। सारे विश्व के विचारकों को एकमत होकर इस बात पर बल देना होगा कि व्यक्ति अपने में एक अर्थ और महत्व है इसलिए नहीं कि वह इस दल या उस दल का सदस्य है। इसलिए भी नहीं कि वह मानव-समाज का सदस्य है बल्कि इसलिए कि वह मनुष्य है। उसके कुछ अधिकार हैं, जो न किसी के देने से मिले हैं और न कोई ले ही सकता है। यह मानव-सम्बन्धों पर प्रकट किये जाने वाले उदार उद्गार मात्र नहीं हैं। इन्हें धार्मिक विश्वासों की मान्यता देनी होगी, इनकी वीरतापूर्वक रक्षा करनी होगी और इनके लिए ही जीना और आवश्यकता पड़ने पर मरना भी होगा। यह मनुष्य केवल सजीव भौतिक कोषों का, प्रोटोप्लाज्म के ऐसे छोटे-छोटे कणों का, जिनमें जीवन अप्लुत रूप से विकसित हो गया हो, पिण्ड मात्र नहीं है, बल्कि वह एक ऐसी वस्तु है जो मूलतः अभौतिक है, आप चाहें तो कह सकते हैं कि आध्यात्मिक तत्त्व का एक अंश है। जो साररूप में उस परम-तत्त्व के ही समान है, जिसके साथ समस्त विश्व ब्रह्मांड की सृष्टि अगोचर रूप से बँधी हुई है। हमारी रुचि-अरुचि भले ही इन सूत्रों को छिपाये रहें किन्तु इन्हें तोड़ नहीं सकतीं, क्योंकि यही परम यथार्थ्य है।

यही वह नींव है जिस पर शिक्षारूपी भवन का निर्माण होना चाहिए। इतर गौण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बातों के साथ मनुष्य की स्वाभाविक, आध्यात्मिक प्रकृति की मुख्य बात पर सतत् ध्यान रखना चाहिए। मानवता ने जितनी भी संस्थाओं की सृष्टि की है, उदाहरणार्थ, राज्य, समाज, शासन, आर्थिक विधान आदि सभी इस लक्ष्य-प्राप्ति में सहायता के लिए हैं और उनका औचित्य वहीं तक है जहां तक वे मनुष्य को इस वास्तविक प्रकृति के हृदयंगम करने में, अपनी सम्भावनाओं को खोज निकालने में और अपनी पूरी आध्यात्मिक ऊंचाई तक उठने में सहायता करती हैं। सत्य और अहिंसा के ढाँचे पर समाज का निर्माण आवश्यक है। जीवन का मुख्य उद्देश्य संग्रह नहीं बल्कि त्याग है। अधूरे उद्देश्यों पर बल देना, जैसे कि वर्तमान भारत की बेकारी समस्या का समाधान, सम्पूर्ण मनुष्य के बदले एक व्यंग चित्र की ही सृष्टि करेगा।

जीवन को पूर्ण बनाने वाले तत्त्वों का मूल्य फिर से आंकना होगा, उनका पुनर्नवीनीकरण करना होगा। प्रथम धर्म की पुनः स्थापना करनी होगी। मैं किसी मत विशेष की बात नहीं कर रहा हूँ बल्कि उस धर्म की बात कर रहा हूँ जो मनुष्य में एक कभी न नष्ट होने वाला आध्यात्मिक अंश है, कि विश्व में एक ऐसी आध्यात्मिक सत्ता है, एक सारतत्व, एक ऐसी वस्तु है जिसमें सारे चराचर प्राणी अस्तित्व पाते हैं, कि हम सब एक अज्ञेय किन्तु अविच्छेद्य सूत्र से बँधे हैं, कि एक की प्रसन्नता दूसरों की प्रसन्नता पर निर्भर है, इन सब विश्वासों का समन्वय है। एक सम्मान की भावना का उद्बोधन आवश्यक है, उस अज्ञात शक्ति के प्रति जिसके द्वारा हम सब आवृत्त हैं, प्रकृति के लिए सम्मान, शिक्षक के लिए सम्मान, वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध के लिए सम्मान। सत्य और अहिंसा केवल कुछ व्यक्तियों से व्यवहार के लिए सरल अस्त्रमात्र नहीं है बल्कि समझना चाहिए कि यह वे आवश्यक गुण हैं जिनको केवल विनाश का आमन्त्रण करके ही छोड़ा जा सकता है। मनुष्य के मनुष्य होने के नाते जो अधिकार हैं उन्हें स्वीकृति मिलनी चाहिए।

शिक्षा का पाठ्यक्रम इस लेख की सीमा के बाहर की बात है, फिर भी इतना कहा जा सकता है कि स्वस्थ वातावरण रहने पर किसी भी विषय का अध्ययन किया जा सकता है। व्यक्ति की सर्वोच्च महत्ता के स्वीकार हो जाने पर सामाजिक स्तर पर पुनस्संगठन होना अनिवार्य है। राज्य की शक्ति का नियमन आवश्यक है। नेतृत्व के लिए कसौटी, अनुभव की प्रौढ़ता, विवेक और तपस्या हो न कि विचारशून्य भीड़ की सम्मति। ऐसे समाज में अणु-भेदन या अन्य प्रयोग पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होगा, किन्तु वह वैज्ञानिक राजनीतिज्ञों का अनुवर्ती नहीं होगा और हर एक को मालूम रहेगा कि ज्ञानवृक्ष का फल हर गुजरने वाले कौए द्वारा चोंच मारने की चीज नहीं है। ज्ञानभंडार के प्रहरी वही नियुक्त होंगे जिन्होंने लम्बे अनुशासन के अन्तर्गत इसके लिए अपनी योग्यता सिद्ध कर दी है।

मैं फिर दोहराता हूँ कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का अपने विशिष्ट ईश्वरीय अंश का साक्षात्कार है और उसके मार्ग में जो बाधाएं हों उनको दूर करना है। समाज की रचना इसमें अधिकाधिक सहायता करने वाली होनी चाहिये। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के साधनों के बारे में मतभेद हो सकता है। पाठ्यक्रम और शिक्षण तकनीक का क्षेत्र यहीं से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ होता है। इस क्षेत्र में विचार विनिमय, प्रयोगात्मक परीक्षणों के लिए विस्तृत क्षेत्र उपलब्ध है। कोई भी यह नहीं कह सकता कि उसकी बात ही आखिरी बात है। और विषयों के बारे में चाहे जितनी विभिन्न सम्मतियाँ हों किन्तु जहां तक शिक्षा का सम्बन्ध है इसे राजनीति की दासी नहीं बनने दिया जा सकता। राजनैतिक व्यक्ति नियन्त्रण और कठोर क्रम-वद्धता के अलावा और फिर कोई मार्ग नहीं जानता, और जब इनका प्रवेश हो जाता है तो व्यक्तित्व पृष्ठभूमि में जा पड़ता है। राजनीति और अर्थशास्त्र व्यक्ति को स्वीकार नहीं करते उनका काम तो सिर्फ मनुष्यों से व्यवहार करना रहता है। सामाजिक मनोविज्ञान बताता है कि मानव समूह से व्यवहार का सबसे सरल मार्ग है कि उन्हें फौजी टुकड़ियों की तरह बना दिया जाय, उनमें आदिम मानव समूहोंवाली भय और अन्य भावनाओं को जाग्रत कर दे और उनके मस्तिष्क को इस प्रकार ढाल दे कि वे सब एक ही तरह से सोंचे उनकी एक ही तरह की अनुभूति हो जिसकी कि शक्ति और संरक्षकों की ओर से आते हुए संकेतों की ओर आतुर प्रतिक्रिया हो। यदाकदा यदि कोई विद्रोही निकल पड़े तो उसे समाप्त कर देना चाहिए। इस प्रसंग में यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी समय की अपेक्षा राज्य आज अधिक शक्तिशाली हैं और वह राज्य जहां कि व्यक्ति की अपेक्षा समवाय के चरम महत्व का विचार प्रतिष्ठित है, औरों की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली हो सकता है। ऐसा राज्य मात्र जीवनधारण, के साधन भी एकमात्र उसके अधिकार में होंगे और चाटुकार विज्ञान के समस्त साधन उसकी सेवा में रहेंगे, ऐसे व्यक्ति को मृत्युदंड भी दे सकता है जो स्वतंत्र विचार करने का दुस्साहस करे। या इसके विचार से यह और भी अधिक अच्छा होगा यदि वह उसे बड़बड़ाने वाले मूर्ख की स्थिति में पहुंचा सके। हो सकता है कि वह इससे भी अधिक भयंकर दंड निर्धारित करे—उसे कुछ दिन जीवित रहने दे, ताकि वह एक समाजद्रोही के रूप में स्वयं ही सामने आ जाये और स्वयं उपहासपात्र भेड़ों के झुंड की घृणा का पात्र बन जाये।

शिक्षा-शास्त्रियों और शिक्षा से प्रेम रखने वालों के सामने चुनाव स्पष्ट है और एक असंदिग्ध पग आगे उठाना है। यह केवल छोटे-छोटे ब्योरों के हेरफेर का प्रश्न नहीं है; कि यहां स्कूल छोड़ने की आयु बढ़ा दी वहां एक विषय और जोड़ दिया आदि। शिक्षा के पूरे उद्देश्य को ही तय करना है और यह केवल उस विशिष्ट सामाजिक पृष्ठभूमि में ही किया जा सकता है जिसमें शिक्षित वर्ग को कार्य करना है। हम किस प्रकार का समाज चाहते हैं? हम भविष्य में किस प्रकार के मनुष्य की कल्पना करते हैं? मनुष्य का समाज से क्या संबंध है? यह मूलतः सामाजिक महत्व के प्रश्न है और इनका उत्तर केवल दार्शनिक दृष्टि से ही दिया जा सकता है। मनुष्यों को इनका उत्तर देना ही होगा क्योंकि इसमें लापरवाही करना या इनकी उपेक्षा कर देना जातिगत आत्महत्या करना होगा। शताब्दियों तक हजारों विद्वानों का श्रमपूर्ण कार्य और असंख्य व्यक्तियों की अनजाने ही सही संस्कृतिहीनता से संस्कृति की ओर दृढ़ और अनवरत प्रगति कुछ ही शताब्दियों में समाप्त होकर मिट सकती है। मेरे विचार में केवल इसका एक ही सही उत्तर हो सकता है, एक ही कुँजी है जिससे सारे अवरूद्ध मार्ग खुल सकते है और वह है कि व्यक्ति फिर अपना स्थान प्राप्त कर ले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महत्वपूर्ण प्रश्न

हाल के एक दूसरे पत्र में प्रकाशित लेख में मैंने शिक्षा में सामाजिक संकट की समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया था। शिक्षा-शास्त्रियों के सामने शिक्षा-पद्धति की तकनीक और पाठ्यक्रम आदि की गौण समस्याओं के अलावा अब शिक्षा के निश्चयात्मक रूप से लक्ष्य की महत्त्वपूर्ण समस्या आ उपस्थित हुई है। क्या व्यक्ति का स्वयं अपने आप में भी कुछ महत्व है या केवल समाज के सदस्य होने के नाते ही है? क्या समाज व्यक्ति के जीवन को पूर्णता देने का एक साधन है या व्यक्ति समाज के हित साधन का साधन मात्र? जो व्यक्ति उस समय शक्ति के शिखर पर है उसकी इच्छा के सिवाय और समाज का हित क्या है? एक पक्ष में, सामान्यतः जिन्हें असामाजिक कार्य कहा जाता है, उसकी निन्दा की जायेगी, क्योंकि वे व्यक्ति के पूर्ण विकास में बाधा पहुंचाते हैं दूसरी ओर क्योंकि वे सामाजिक हितों में बाधा डालते हैं। किन्तु इसमें एक अन्तर होगा। पहिले पक्ष में, वास्तव में कौन-सी वस्तु निंदनीय है इसका बहुत-कुछ सही अंदाज लगाया जा सकता है; किन्तु दूसरे मामले में किसी अंतिम निष्कर्ष तक पहुंचना कठिन है। दार्शनिक विचारधाराएँ, वैज्ञानिक सिद्धान्त, ऐतिहासिक निष्कर्ष—इनमें से कोई भी किसी वक्त कुल्हाड़ी के नीचे आ सकते हैं अगर ये शासकीय वर्ग की जो सामाजिक हित की धारणा है उससे मेल नहीं खाते। ऐसे में शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसे मनुष्य का विकास करना होगा जिसका नाम समूहवाची संज्ञा मात्र, एक नम्बर भर होगा, एक ऐसे समूह का निर्माण करना होगा जिसका प्रत्येक अंग केन्द्रों से आते हुए प्रत्येक सम्मोहनात्मक संकेत के अनुसार एक ही प्रकार सोचेगा, एक ही प्रकार अनुभव करेगा, एक ही प्रकार घृणा करेगा और एक ही प्रकार कार्य करेगा। यह वही आदिम मानव का पशुओं का सा झुंड होगा, अन्तर थोड़े से परिष्कृत स्वरूप भर का रहेगा।

शैक्षिक समस्या की ओर मैंने थोड़ा-सा ध्यान आकृष्ट किया है। इसका उल्लेख मात्र यह दिखाने के लिए पर्याप्त है कि यह अपने से कहीं अधिक बड़ी समाज शास्त्रीय समस्या से जुड़ी हुई है बल्कि यों कहा जा सकता है कि उस समस्या का ही एक अंग है और वह समस्या है समाज का भविष्य में स्वरूप क्या होगा। सम्भवतः बहुत से लोग कहेंगे कि उन्हें ऐसे समाज की जरूरत नहीं है जिसमें बोलने और संगठन बनाने की स्वतंत्रता नहीं है, रुचिगत विषयों जैसे कला और साहित्य के संबंध में स्वतंत्रता नहीं है। धार्मिक, दार्शनिक, राजनैतिक और आर्थिक सिद्धान्तों को, चाहे वे कितने ही आधुनिक क्यों न हो, प्रतिपादित करने या विस्तार करने की स्वतंत्रता नहीं है, और गार्हस्थ्य जीवन के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई पवित्रता की भावना जुड़ी हुई नहीं है। शायद ही कुछ लोगों को ऐसी परिस्थिति रुचिकर होगी जहाँ भय ही प्रधान भावना हो, सन्देह समस्त सामाजिक व्यवहारों की पृष्ठभूमि में उपस्थित रहे और एक दूसरे के ऊपर खुफियागीरी करना ही सबसे बड़ी देश सेवा हो। किसी को भी यह सब अच्छा नहीं लगता, उनको भी नहीं, जो दुर्भाग्य से ऐसी परिस्थितियों में रहने को विवश हैं। उनकी विचार शक्ति अपने में ही अन्तर्निहित हो जाती है और किसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए वे उपहास और व्यंगपूर्ण दृष्टिकोण और अश्रद्धा की दोहरी दीवार खड़ी कर लेते हैं जो कि श्रद्धा विश्वास जैसी ही सबल दिखायी पड़ती हैं। ऐसी सम्भावना फिर चाहे उसके साथ सारी सुख-सुविधाएं जुड़ी हुई क्यों न हों, आकर्षित नहीं करती। एक सुसज्जित पशुगृह या गोशाला में रहने की अपेक्षा अभावग्रस्त किन्तु स्वतंत्र मनुष्य के रूप में रह सकना कहीं अधिक रुचिकर है।

किन्तु अधिक से अधिक यह एक नकारात्मक उत्तर है। हम चाहते क्या हैं? यह प्रश्न एक निश्चित उत्तर चाहता है जिसके ऊपर राजनीति, अर्थशास्त्र और शिक्षा के सैकड़ों प्रश्नों का उत्तर निर्भर करता है।

इसका एक मात्र सुलभ उत्तर है एक उदार, प्रजातान्त्रिक सिद्धान्त जिसको संक्षेप में 'लोककल्याणकारी राज्य' कहा जा सकता है। जितनी कुछ दूर तक इसकी पहुँच हो पाती है यह बुरा नहीं है किन्तु बहुत गहराई तक इसकी पहुंच नहीं है। इस सिद्धान्त के आलोचक इसको संकीर्ण अर्थ में नहीं लेना चाहते क्योंकि गम्भीर प्रश्नों को केवल वाद-विवाद की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। यह हम प्रारम्भ में ही मान लें कि लोककल्याण में न सिर्फ भोजन, वस्त्र, निवास स्थान, चिकित्सालय, यातायात और सड़कें आदि ही आ जाते हैं बल्कि स्कूल, कालेज, पुस्तकालय, संग्रहालय, नाट्यगृह और पार्क वगैरह भी शामिल है। उसमें अवकाश का समय, उपासना करने या न करने का अधिकार और सम्भवतः मतदान का अधिकार भी शामिल है। अधिकारों के साथ कर्त्तव्यों का जुड़ा रहना भी अनिवार्य है और किसी जन्मजात विकृत बुद्धि वाले व्यक्ति को छोड़ कर शायद ही कोई मनुष्य ऐसा होगा जो इस प्रकार से कार्य न करना चाहे कि सभी को यह सुविधाएं समान रूप से उपलब्ध रहें। यदि कोई राज्य इस प्रकार से अपने नागरिकों के लिए इतने परिपूर्ण जीवन की पक्की व्यवस्था कर पाता है तो समझिए कि उसने अपने कर्त्तव्य का पूरा-पूरा निर्वाह कर दिया, क्योंकि किसी भी समाज के लिए इससे अधिक ऊँचे उद्देश्य की कल्पना करना सरल नहीं है।

यहाँ मैं यह भी कह दूँ कि मैंने प्रारम्भ तो समाज से किया था और अब मैं विचार राज्य पर कर रहा हूँ मैं मानता हूँ, दोनों शब्दों का अर्थ एक नहीं है। किन्तु यदि हम राज्यों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखें तो भी कोई हानि नहीं होगी। मानव समाज जिससे हम आज परिचित हैं, राज्यों में ही संगठित है और इस तरह संगठन के अभी भविष्य में काफी समय तक चलते रहने की आशा है। किसी निकट भविष्य में,जिसकी हम कल्पना कर सकें,राज्य के धीरे-धीरे लुप्त हो जाने की आशा तो नहीं दिखायी पड़ती। अतः मैं दोनों शब्दों का एक अपारिभाषिक साधारण अर्थ में इस प्रकार प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
करने के लिए मानो दोनों पर्यायवाची शब्द हों, क्षमा चाहता हूं।

थोड़े से विश्लेषण से यह मालूम हो जाता है कि कुछ कठिनाइयां हैं जिनको स्पष्टतः समझकर उनका निवारण किया जाना चाहिए। किसी भी प्रकृति का राज्य इस परिधि से बाहर नहीं छूट पायेगा। बड़े से बड़े तानाशाही राज्य इन सुविधाओं का अपने नागरिकों के लिए प्रबन्ध करने का उद्देश्य रखते हैं। एक उदाहरण लीजिए सोवियत प्रभाव के अंतर्गत रहने वाले देश बराबर जीवनस्तर ऊँचा करने की चेष्टा में संलग्न हैं। और न सिर्फ जहां तक भौतिक सुविधाओं का प्रश्न है बल्कि बौद्धिक और सौन्दर्यबोध के क्षेत्र में भी अपनी सीमा के भीतर बसने वाले लोगों का स्तर ऊँचा उठाने के लिए पूरी चेष्टा कर रहे हैं। उनके नागरिकों को मतदान का अधिकार उपलब्ध है, हालांकि उनको प्रजातंत्र पश्चिमी यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रजातंत्र की पद्धति से बहुत भिन्न हैं। रूस तक में नागरिक को उपासना का अधिकार प्राप्त है यद्यपि उसका शासक वर्ग ऐसी विचारधारा का कट्टर अनुगामी है जिसमें धर्म के लिए कोई स्थान नहीं है।

अब इससे तुरन्त ही यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या लोककल्याणकारी राज्य का आदर्श तानाशाही और इसके विपरीत प्रकृति के राज्य दोनों ही में व्यावहारिक हो सकता है अथवा दोनों में उद्दिष्ट कल्याण भी प्रकृति में कुछ सूक्ष्म अन्तर है चाहे वे देखने में बहुत कुछ एक से ही लगते हों। आजकल हम दोनों की सहस्थिति (को-इग्ज़िस्टेंस) के बारे में बहुत सुनते रहते हैं। राजनैतिक सहस्थिति का तात्पर्य केवल इतना होता है कि दोनों प्रकार के राज्य एक दूसरे के मामले में हस्तक्षेप न करें। यह सिर्फ एक सुविधा की बात है। बहरहाल कुछ भी हो यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं चलायी जा सकती। आधुनिक तानाशाहियाँ पुराने जमाने के निरंकुश राजतंत्र अथवा कबीलों के कुलीनतंत्र अथवा थोड़े से सरदारों द्वारा शासित राज्यों की तरह नहीं है। इस प्रकार के शक्ति संगठनों को बनाने और उनको कायम रखने की पुरानी भावनायें समाप्त नहीं हो गयी हैं बल्कि उनका स्थान आंशिक रूप से परिष्कृत, नयी भावनाओं ने ले लिया है। तानाशाही न केवल राजनैतिक सत्ता और उसके साथ जो कुछ शक्ति निहित रहती है उसका कुछ थोड़े से लोगों के अधिकार में रखने का साधन मात्र ही है बल्कि एक विशेष प्रकार के मत का प्रचार करने का साधन भी है। उदाहरणार्थ कम्यूनिज़्म साम्यवाद न केवल एक सामाजिक राजनैतिक-अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त मात्र है बल्कि एक साम्यवादी राज्य, अपने सत्यतम अर्थ में, इस पृथ्वी पर ईश्वरीय राज्य होगा, हालांकि उसे आशीर्वाद देने के लिए किसी ईश्वर का उसमें स्थान नहीं होगा। इन्हीं कारणों से किसी प्रकार की चिर-सहस्थिति की संभावना नहीं की जा सकती। इस प्रकार की तानाशाही अपने मत के प्रति झूठी होगी यदि वह सारे संसार के मतपरिवर्तन में शीघ्रता के लिए यह आवश्यक होगा कि प्रचार के सभी साधनों का प्रयोग किया जाय और आवश्यकता होने पर उचित मात्रा में बल प्रयोग भी किया जाय। परम सत्य की सेवा के लिए झूठ बोलना गुण में सम्मिलित हो जाता है, और दुर्भाग्यवश, समाज की अधिक प्रतिष्ठा के लिए, यदि मनुष्यों पर जबरदस्ती करनी होती है या उनको यन्त्रणा देना अथवा समाप्त कर देना ही आवश्यक हो जाता है तो मजबूरी है। यह आशा करना मूर्खता होगी कि इन शक्तिशाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रेरणाओं से प्रेरित राज्य बहुत दिनों तक उन अन्य राज्यों के साथ शांतिपूर्वक रह सकते हैं जो सिर्फ यह चाहते हैं कि उन्हें शांति के साथ चुपचाप छोड़ दिया जाय भले ही उनको आधार देने के लिए उनके नागरिकों के पास कोई शक्तिशाली आदर्श न हो। लोककल्याण की खोज मनुष्य की कुछ बहुत ही गहरी भावनाओं के साथ जुड़ी हुई है पर यह एक सिद्धान्त का स्थान नहीं ले सकती और न मनुष्य में वह भावना ही जगा सकती है जो मनुष्य को बलिदान के लिए प्रेरित करती है। देर-सवेर इस संघर्ष का उपस्थित होना अनिवार्य है और तब उदार प्रजातान्त्रिक राज्य अपने को बहुत ही दुर्बल स्थिति में पायेंगे। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि युद्ध में उनकी पराजय निश्चित है। किन्तु अगर युद्ध क्षेत्र में इनकी विजय हो भी गयी तो भी उससे अधिक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक क्षेत्र में इनकी पराजय निश्चित है। इन्हें अपने प्रतिद्वन्द्वी तानाशाही राज्य का लोहा उस रूप में मानना होगा जो किसी भी एक शत्रु की दूसरे द्वारा बड़ी से बड़ी प्रशंसा सम्भव है, और वह होगा कि उसकी तानाशाही तकनीक को स्वीकार करके जिन बहुत-सी स्वतंत्रताओं का ये अभी तक बहुत बड़े समर्थक रहे थे, उन पर प्रतिबन्ध लगा दें। इसके बाद परम्परा विरुद्ध विचारों के लिए बाकायदा एक खोज शुरू करनी पड़ेगी किन्तु दुख इस बात का है कि उस मोर्चे को बौद्धिक आधार देने के लिए कोई परम्परा बाकी न बची होगी। तानाशाही के अंतर्गत जो अत्याचार होते हैं उनका कारण प्राणहीन, शुष्क, केन्द्रित तर्क होता है, साधारणतया उनका पार्थक्य केवल कूटनैतिक मोर्चाबन्दी है और उनके विरोधियों को भी उनके क्रमपूर्ण मनोवैज्ञानिकता के प्रयोग की दाद देनी पड़ती है। जो व्यक्ति इनका शिकार बनता है उसके लिए यह सब एक भयंकर स्वप्न की ही तरह होता है किन्तु इस विच्छृंखलता में भी एक प्रकार की श्रृंखला रहती है। दूसरी ओर प्रजातंत्र की सुरक्षात्मक सीमातिक्रमण का कारण अविचारित भय रहता है। मैकार्थिज्म इस रोग का एक लक्षण मात्र है। अन्ततोगत्वा इसका परिणाम यह होगा कि प्रजातान्त्रिक लोककल्याणकारी राज्य यदि बच भी गया तो अपना स्वरूप ही खो बैठेगा। यह भय और सन्देह द्वारा प्रताड़ित रह कर ऐसे किसी लक्ष्य पर स्थिर न रह सकेगा जो मनुष्य को अपने क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठाकर क्षणभर के लिए ही सही, उसका एक परमशक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित करा देता है जो कि सब में उपस्थित रहने के साथ ही सबसे ऊपर भी है।

यहीं पर जो कुछ मैंने ऊपर कहा है उसकी संगति मालूम होगी। शक्तिवादी या तानाशाही राज्य का विचार इस मामले में बिल्कुल स्पष्ट होता है कि वह किस प्रकार के समाज को प्रतिष्ठित देखना चाहता है और अपनी दृष्टि के अनुसार उसके लिए प्रयत्न भी करता है। जो लोग इस तानाशाही आदर्श और उसके तरीकों में विश्वास नहीं करते उनको किसी दूसरी पद्धति का विकास करना चाहिए। इस पद्धति के विकास की आवश्यकता एक जवाबी नारे के रूप में नहीं है बल्कि ऐसे प्रकाशस्तंभ के रूप में है जो लक्ष्य उस मार्ग को प्रकाशित करेगा जिसके प्रति जीवन अपने लम्बे विकासोन्मुखी मार्ग पर अनजाने ही उन्मुख रहा। सामाजिक और आर्थिक शिक्षा और शासन के क्षेत्र में उन्नति के संपूर्ण प्रयत्नों का परिचालन मात्र इसी एक उद्देश्य से प्रेरित होना चाहिए। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उद्देश्य एक दार्शनिक दृष्टिकोण से ही निश्चित हो सकता है कि हमारा समाज किस Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रकार का होना चाहिए।

मैं आपके सामने समस्या उपस्थित भर कर रहा हूं जिस पर प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए वस्तुतः दूसरे देशों में इस पर विचार किया भी जा रहा है—यद्यपि यहां लगता है कि मानों हमारा इस मामले से कोई सम्बन्ध ही नहीं मानवता का संपूर्ण भविष्य इस दांव पर लगा हुआ है। हमें निश्चय कर लेना होगा कि क्या हम व्यक्ति के जीवन की पूर्णता और उसके व्यक्तित्व का विकास चाहते हैं या समूह को ही अपना उपास्य बना लेने के लिए तैयार हैं। धर्मनिरपेक्षता के मार्ग से विरत होने की आवश्यकता नहीं किन्तु एक प्रश्न पर चाहे उसे धार्मिक कहिये या दार्शनिक पूरी तरह से विचार करके उसका उत्तर स्पष्ट कर लीजिये। क्या मनुष्य में कोई एक ऐसी वस्तु है जो उसके शरीर और बुद्धि पर आधारित नहीं है और जो उसके जन्म से पहिले भी थी और बाद में भी बची रहेगी? हमारी सारी समस्याओं का समाधान इसी एक प्रश्न के उत्तर में निहित है। सिर्फ यों ही कम्युनिस्ट पार्टी अपने सदस्यों के लिए मार्क्सिस्ट दर्शन स्वीकारने पर बल नहीं देती, जिसमें कि इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट शब्दों में नकारात्मक है। इस मूल प्रश्न से कतराकर और तात्कालिक समस्याओं में अपने को उलझाये रखने से, हम यथार्थता से अपना पीछा नहीं छुड़ा सकते। हम सिर्फ अपने को इस तरह उलझाते भर जा रहे हैं कि हो सकता है कि एक दिन यह हमारे सारे कार्य को मटियामेट कर दे। अतीत में भारतवर्ष ने विश्व को विचार और संस्कृति के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण उपहार दिये हैं। आज भी उसका अपने प्रति और मानवता के प्रति इतना दायित्व शेष है कि वह राजनीति और समाज शास्त्र को प्रतिष्ठित होने में सहायता करे और साथ ही उस महत् प्रश्न का उत्तर भी प्रस्तुत करे जो कि वास्तव में उनकी समस्त शिक्षा की पृष्ठभूमि का निर्माण करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालयीय शिक्षा

सज्जनो, इस कमेटी के कार्य करने के लिए जो आपने हमारा निमन्त्रण स्वीकार किया उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। मैं आपके उस श्रम का स्वागत करता हूँ जिसके लिए आगामी कई सप्ताहों तक आपको अपना काफी समय और शक्ति प्रदान करनी पड़ेगी।

आपने ध्यान दिया होगा कि हमारी कमेटी का विवरण काफी विस्तृत रखा गया है। इसके कारण हम पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र का परीक्षण कर विषय-वस्तु पर विस्तार के साथ विचार कर सकेंगे जैसा हो सकना अन्यथा संभव न होता। ऐसे समय में जब शिक्षा की समस्या, संभवतः हमारे निकटवर्ती इतिहास में पहिली बार जनता का ध्यान अपनी ओर केन्द्रित कर सकी है, जब कि स्कूली शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने जा रहे हैं, यह उचित ही है कि विश्वविद्यालय की शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया जाये। मेरा विश्वास है कि इतर प्रान्तीय मित्र भी इस विषय का अध्ययन कर रहे हैं किन्तु परिस्थितियों ने इसके समस्त पक्षों का विश्लेषण करने का कर्त्तव्य हमारे ऊपर ही डाला है। हमारे यहां दो ऐसे विश्वविद्यालय हैं जो सीधे भारत सरकार द्वारा नियन्त्रित होते हैं और हमारे यहां की दो महान जातियों की सांस्कृतिक आवश्यकताओं की एक विशिष्ट सीमा तक पूर्ति करने का दावा रखते हैं। इसके बाद आगरा विश्वविद्यालय आता है जो कि पूरे प्रान्त भर में और पड़ोसी देशी राज्यों तक में फैले हुए कालेजों का एक संगठन मात्र है जो कि शिक्षास्तर निश्चित करने और डिग्री प्राप्त करने के इच्छुक परीक्षार्थियों की परीक्षा लेने का निसंदिग्ध रूप से उपयोगी कार्य करता है। कोई भी दूसरा प्रान्त अनुभवों की विभिन्नता और उपयोगी विषय-वस्तु की दृष्टि से इतना सौभाग्यशाली नहीं है। और भी देखा जाय तो यह हमारा ही प्रान्त था जिसने सैडलर कमीशन के निर्णयों को इण्टरमीडिएट कालेजों की स्थापना करके पहिले-पहल कार्यान्वित किया। इन सब कारणों से सम्भवतः हम इस विषय पर सफलतापूर्वक विचार करने की विशेष स्थिति में हैं और मुझे विश्वास है कि हमारी कार्यवाहियों में दूसरे प्रान्तों के शिक्षाशास्त्री भी रुचि लेंगे और हमारे पर्यवेक्षणों द्वारा निर्णीत परिणाम उनके भी काम आयेंगे। मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि इस गुरुतर उत्तरदायित्व को सुरक्षापूर्वक इस कमेटी को सौंपा जा सकता है। इस कमेटी में वे व्यक्ति हैं जिनको हमारे विश्वविद्यालय की आभ्यंतरिक कार्यप्रणाली की निकट से जानकारी है, इसके सदस्यों में ऐसे व्यक्ति भी हैं जिन्होंने वैदेशिक विश्वविद्यालयों में जीवन के कितने ही वर्ष बिताये हैं और ऐसे व्यक्ति भी हैं जो राष्ट्रीय शिक्षा की प्रतिष्ठा में अग्रणी हैं और जिन्होंने काशी विद्यापीठ जैसी महान संस्थाओं की स्थापना की, साथ ही शिक्षा विभाग का प्रतिनिधित्व भी है जो कि विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय तक पहुंचाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए उत्तरदायी है और वहां से शिक्षा समाप्त कर निकलने वाले स्नातकों का भी नौकरी तलाश करने आने वालों के रूप में सीधा सम्बन्ध पड़ता है। कांग्रेसजन और गैर-कांग्रेसजन हम सब एक ही इच्छा से प्रेरित होकर यहां इकट्ठे हुए हैं और वह है अपनी अपनी दृष्टि के अनुसार देश और प्रान्त के सर्वोच्च हित में जिस प्रकार हो सके इस समस्या का समाधान करें।

अस्सी साल से भी अधिक हो चुके हैं जब कार्डिनल न्यूमैन ने इस विचार का सूत्रपात किया था विश्वविद्यालय 'विश्वजनीन शिक्षा के केन्द्र' हैं। उनके अनुसार इनका लक्ष्य बौद्धिक है न कि नैतिक, ज्ञान का मिश्रण है न कि उसका विकास। किन्तु वह यह स्पष्ट कर देते हैं कि ज्ञान से उनका मतलब उस वस्तु से नहीं है "जो किसी पुस्तक को देखकर जान लिया और फिर उतनी ही जल्दी उसे भूल भी गये" बल्कि "एक प्रकाश की प्राप्ति, एक द्वितीया प्रकृति, एक व्यक्तिगत रत्नकोष और एक आंतरिक संपन्नता" से है। आधुनिक सिद्वान्त के अनुसार जैसा कि सैडलर कमीशन ने बताया है विश्व-विद्यालय का कार्य क्षेत्र कही अधिक विस्तृत है "प्रायः अधिकांश उन्नत देशो के अनुसार विश्वविद्यालय एक ऐसा स्थान होना चाहिए जहां कि विद्वानों का समुदाय सहयोग की भावना के साथ मनुष्यों के प्रशिक्षण और ज्ञान का समन्वय और विकास करने के लिए श्रम करता है।"

हमें देखना है कि हमारे विश्वविद्यालय इस त्रिधा कर्त्तव्य का कहां तक पालन करते हैं। आइए, इन तीनों पक्षों पर ज़रा विस्तारपूर्वक विचार करें। ज्ञान का समन्वय करने में हम कहां तक सफल हुए हैं इसका अनुमान स्नातकों की प्रकृति से लगाया जा सकता है। विश्वविद्यालयों में जो भारतीय छात्र पहुंचते हैं उनको गम्भीर विषमताओं के बीच कार्य करना पड़ता है। चूंकि उसे स्कूल स्तर पर विदेशी भाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है वह प्रायः उतना योग्य नहीं होता जितना कि होना चाहिए। विश्वविद्यालय में पहुंच कर उसकी कठिनाइयां घटने की बजाय और बढ़ जाती हैं। फिर भी काफ़ी सीमा तक जो इन कठिनाइयों पर विजय पायी जा सकी उसका श्रय हमारे विद्यार्थियों के अध्यवसाय, मेधा और ज्ञानप्रेम को ही है। हम आशा करते हैं कि भाषा के प्रश्न पर हमारे विश्वविद्यालय गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे न कि इंग्लिश के बदले हमारी अपनी भाषा को स्थानापन्न करने के प्रश्न पर ऐसा रुख अख्तियार करेंगे मानो कि वह दूर का स्वप्न हो जिसको साकार करने में सहायता पहुंचाना किसी भी व्यक्ति विशेष की कर्त्तव्य-श्रेणी में नहीं आता। मैं यह भी अनुभव करता हूं कि जहां ज्ञान की कुछ विशेष शाखाओं में विकास के लिए, बहुत कुछ सफलता के साथ भी, विशेष चेष्टा की जा रही है वहीं हम अपने विद्यार्थियों का सामान्य सांस्कृतिक स्तर ऊंचा करने की अथवा वह सर्वतोमुखी उदार शिक्षा देने की चेष्टा नहीं करते जो प्रत्येक विश्वविद्यालय के स्नातक का विशिष्ट चिन्ह होना चाहिए, उसके विशेष अध्ययन का विषय कुछ भी रहा हो।

ज्ञान की प्रगति के क्षेत्र के बारे में भी मैं सन्तुष्ट नहीं हूं। हम पर्याप्त प्रयत्न कर रहे हैं। मैं मानता हूं कि धन का अभाव है, किन्तु यही एकमात्र कारण नहीं है। अनुसंधान की प्रवृत्ति की कमी है और प्रांत में जो कुछ प्रतिभा उपलब्ध है उसके पूरे-पूरे विकास के लिए पर्याप्त प्रयत्न नहीं किया जाता। मैं इन शब्दों का प्रयोग पूरी उत्तरदायित्व की भावना के साथ कर रहा हूं। यह प्रान्तीयता की भाषा नहीं है। उस भाषा का व्यवहार मेरे लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभव नहीं है। क्षुद्र प्रान्तीयता से दूर रहना युग-युग से हमारी विरासत रही है किन्तु यह तो कोई कारण नहीं है कि हमारी प्रतिभा का पूरा-पूरा उपयोग न किया जाय। यह भी सोचने की बात है कि हमारे यहां इतनी बड़ी संख्या में जो स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय हैं और सबके सब एक ही प्रकार का पाठ्यक्रम पढ़ाते हैं, कहीं इसी से तो अनुसंधान का मार्ग रुद्ध नहीं हुआ है। हमारे आर्थिक साधनों में अधिक वृद्धि की गुंजायश नहीं है। हमें विचार करना है कि क्या हम कोई ऐसी योजना निकाल सकते हैं जिसके द्वारा एक विशेष कालेज या विश्वविद्यालय कुछ विशेष विषयों की शिक्षा पर ही ध्यान केन्द्रित करें, और इस प्रकार कुछ बचत कर सकें। इस प्रकार की अज्ञात प्रतिस्पर्धा की समाप्ति जो अज्ञात होते हुए भी वास्तविक है, संभवतः कुछ धन और प्रतिभा को दूसरी जगह अधिक उपयोगी काम में लगाये जा सकने के लिए मुक्त कर दे।

मनुष्यों का प्रशिक्षण, जो चारित्रिक विकास का ही दूसरा नाम है, विश्वविद्यालय का तीसरा महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है। हमारे विश्वविद्यालयों का उत्तरदायित्व वर्तमान परिस्थितियों में और भी बढ़ गया है। हमारे पूरे समाज के ढांचे में गहरे परिवर्तन हो रहे हैं। राष्ट्र अधिक पूर्ण जीवन की स्वतंत्रता उपलब्ध कर रहा है, निकट भविष्य में ही वह स्वयं पूरी तरह से अपने भाग्य का नियंता हो जायगा और दुनिया के मामलों में उससे अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण भाग लेने की आशा की जायगी। हमें ऐसे नागरिकों की आवश्यकता है जो उत्तरदायित्व वहन करने से नहीं डरते, जो यदि आवश्यकता पड़ने पर परम्पराओं को तोड़ने का साहस रखते हों पर साथ ही जो बड़े-बड़े नारों के उन्माद में बह जाने वाले न हों। हम ऐसे नागरिक चाहते हैं जो नेतृत्व कर सकें जो स्वतंत्ररूप से विचार और कार्य कर सकें। घुमा-फिरा कर बात करना अन्याय होगा। हम ऐसे नवयुवकों से परिचित हैं जो समाज सुधार की बड़ी-बड़ी डींग हांकते हैं और उसके बाद घर पहुंचकर समाज के बड़े से बड़े अन्याय को चुपचाप सहन कर लेते हैं। हम सभी ऐसे नवयुवकों से मिल चुके हैं जिनके लिए जब तब वे विद्यार्थी जीवन में रहते हैं, कोई भी राजनैतिक राय काफी क्रांतिकारी नहीं होती, पर जो दूसरों की सहायता के लिए उंगली तक नहीं हिलाते और जैसे ही उन्हें सुविधापूर्ण नौकरी मिली नहीं कि अपने समस्त सिद्धान्तों को तिलांजलि दे बैठते हैं। ऐसे व्यक्ति समाज के कोढ़ हैं, हमें इसकी आवश्यकता नहीं है। निस्संदेह वे परिस्थितियों के दास हैं जिनमें वे अपने को पाते हैं किन्तु हम लोग, जिन्हें देश के युवक समाज को प्रशिक्षित करना है, इस निन्दनीय तर्क की आड़ लेकर सुविधापूर्वक नहीं बैठे रह सकते। यदि हम अपने नवयुवकों के जीवन को प्रभावित करना चाहते हैं तो हमें जो विचार और अनुभूतियाँ उनके मस्तिष्क को सक्रिय करती हैं उन विचार और भावनाओं में प्रवेश करना होगा ताकि हम उनके संदेहों और समस्याओं को समझकर इनके जीवन में प्रविष्ट हो सकें। मैं कोई कट्टरपंथी नहीं हूँ किन्तु आप भी इस मामले में मुझसे सहमत होंगे कि शिक्षक को चरित्र का काफी ऊंचा उदाहरण प्रस्तुत करना होता है। किसी शिक्षक को यह कहने का अधिकार नहीं है कि हमारा उसके व्यक्तिगत जीवन से कोई संबंध नहीं है। ऐसे व्यक्ति को शिक्षक का व्यवसाय ग्रहण नहीं करना चाहिए। मनुष्य होने के नाते हम सभी में कमियां होती हैं किन्तु शिक्षक को तो पग-पग पर सावधान रहना होता है साथ ही पुराने कुलपतियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तरह समापवर्तन के समय उसमें यह कहने का साहस होना चाहिये कि:
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि

"केवल हमारे उन्हीं आचरणों की नक़ल करो जो अच्छे हैं दूसरों की नहीं।"

इस कमेटी में हमें गम्भीरतापूर्वक विचार करना है कि हमारे विश्वविद्यालयों ने इस कर्त्तव्य का पालन कहां तक किया है। हमें यह भी देखना है कि शिक्षक और शिष्य के बीच परिचय, जो कि शिक्षा का बहुत आवश्यक अंग है, हमारे आवासिक विश्वविद्यालयों द्वारा अधिक प्रोत्साहित किया जा रहा है या मात्र शैक्षिक विश्वविद्यालयों द्वारा। हमें देखना है कि किस प्रकार के विश्वविद्यालयों की कक्षाएं बड़ी होती हैं जिसकी स्वाभाविक परिणति व्यक्तिगत संबंध का अभाव होती है। हमें विचार करना है कि किस प्रकार आवश्यक सुधार किया जा सकता है। जहां तक मेरा संबंध है मैं कह सकता हूँ कि अपने वर्तमान रूप में आवासिक विश्वविद्यालयों ने हमारी प्रारंभिक आशाओं की पूर्ति नहीं की। जिस अनुशासनहीनता और संघर्ष की बातें आज हम सुन रहें हैं वे बहुत कुछ उस कुव्यवस्था का ही परिणाम है जिसको उन्होंने जन्म दिया है। हमारे कार्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण भाग यह देखना है कि विश्वविद्यालयों की प्रवन्ध व्यवस्था सुचारुरूप से कार्य कर रही है। अपने विश्वविद्यालयों का सुनाम हम सभी चाहते हैं और विश्वविद्यालयगत जीवन के संबंध में हम सभी ऊँचे आदर्श रखते हैं। ऐसी स्थिति में यह देखना कि वे वस्तुस्थिति को जैसा होना चाहिए वह वैसी नहीं है सभी के लिए कष्ट की वात होगी। षड्यन्त्र, पक्षपात और संकीर्ण दलवन्दी ने इस पवित्र क्षेत्र पर धावा वोल रखा है और राजनीति के कुछ भद्दे से भद्दे हथकंडों तक का प्रयोग कुछ मामलों में अनजाना नहीं है, जहां केवल चरित्र और विद्वत्ता को ही मूर्धन्य स्थान दिया जाना चाहिए था। इनमें से कुछ मामलों पर दैनिक पत्रों में भी चर्चा हुई थी। विश्वविद्यालय के गत जीवन के इस अधःपतन का चर्चा करते समय संयत भाषा का प्रयोग करना कठिन हो जाता है।

हम सब को इस पवित्र मंदिर की पुनः प्रतिष्ठा के लिए इन गंदे बाजारू तरीकों को दूर करने में कटिबद्ध हो जाना चाहिए। यह दूसरी बात है कि आदमी का दिमाग अच्छे से अच्छे नियम विधानों का भी धोखा देने का कोई न कोई उपाय निकाल ही लेता है किन्तु फिर भी हमें विश्वविद्यालय की प्रबन्ध व्यवस्था को इस प्रकार सुधारने की चेष्टा तो करनी ही है कि प्रलोभन कम से कम उपस्थित हो।

अंत में, हमें यह देखना है कि क्या विश्वविद्यालयों को जनमत के प्रति अधिक सचेष्ट बनाया जा सकता है। इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि वे राजनैतिक मंच के प्रतिनिधि वन जायं। मैं उस प्रकार की सचेष्टता भी नहीं चाहता जैसी कि कुछ अमेरिकन विश्वविद्यालयों में दिखायी पड़ती है। जैसा कि फ्लेक्सनर अपनी सुंदर पुस्तक, 'यूनीवर्सिटीज–अमेरिकन इंगलिश, जर्मन', में कहा है। 'उन्होंने (अमेरिकन विश्वविद्यालयों ने) युग की मांग और पुकार को सुना जो कि उचित ही था' किन्तु उसी के अनुसार 'उन्होंने बिना सोचे समझे क्षणिक, अस्थिर और तात्कालिक मांगों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता से अधिक प्रश्रय दिया। उन्होंने संस्कृति के लिए विचारों और वस्तुओं के आपेक्षिक महत्व को पहचानने में भूल की; वे जल के हल्के से कंपन और वेगवती लहरों के बीच भेद न कर सके और अब भी यह भूल करते ही जा रहे हैं। '''देवता लोग आत्मा की गहराई की प्रशंसा करते हैं उसके द्वंद्व की नहीं।'' हमारे साथ, इससे उल्टी शिकायत है। तो यहां न गहराई है और न है अंर्तद्वन्द्व, आत्मा की जगह एक काष्ठपिंड से ही काम चलता जा रहा है।

कोरी विद्वत्ता की आवश्यकता हमें नहीं है, जो कि यह स्वीकार नहीं करती कि वह एक महत्तर विश्व का अंग है, जो कि वाह्य और आभ्यंतर परिवर्तनशील तत्वों से अनुप्राणित है, साथ ही एक ऐसे विश्व का अंग है जहां पाशविक प्रवृत्तियों में अधिकार प्राप्त करने की होड़ लगी हुई है। यदि वह इस विश्व के प्रति अपना प्रधान दायित्व अनुभव नहीं करती तो हमें उसकी आवश्यकता नहीं है।

विद्वान को, आज के ब्राह्मण को, समाज के निर्भय और प्रतिष्ठित नेता तथा मित्र, दार्शनिक एवं मार्गदर्शक के रूप में पुनः अपना मूर्धन्य आसन ग्रहण करना है। हमें देखना है कि हम उसकी क्या सहायता कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालयीय स्वायत्तता और शिक्षा–सुधार

निदाघ की प्रौढ़ता में समावर्त्तन-संस्कार का आयोजन करके पटना विश्वविद्यालय ने समय की जिस परम्परा को तोड़ा है उसके लिए मैं यहां इसके आयोजकों की प्रशंसा करना चाहता हूँ, वहीं मुझे ऐसा लगता है कि उन्होंने मुझ जैसे व्यक्ति को समावर्त्तन-भाषण के लिए आमंत्रित करके उतनी ही बुद्धिमत्ता का परिचय नहीं दिया है। ऐसा करके पटना विश्वविद्यालय ने जो सम्मान मुझे प्रदान किया है उसका मैं अनुभव करता हूँ। इस विश्वविद्यालय को उन महान् विद्या केन्द्रों का उत्तराधिकारी मानना चाहिए जो कभी इस प्रदेश की परम शोभा थे। अपने ज़माने में नालन्दा और विक्रमशिला महान् संस्थाएं थीं और उनकी महत्ता उनके साथ विलीन नहीं हुई। विश्वविद्यालयों का क्या कर्त्तव्य होना चाहिए इसके लिए आज हम पश्चिम के मुखापेक्षी होते हैं लेकिन यह स्मरण रखना चाहिए कि विश्वविद्यालय की मूल कल्पना कभी भारतवर्ष से चलकर सभी दिशाओं में फैली थी। भले ही हम विश्वविद्यालय के उद्भव को भूल गये किंतु नालन्दा, काशी, उज्जैनी और तक्षशिला ऐसे विश्वविद्यालय थे जिनमें क्या धार्मिक और क्या लौकिक सभी विषयों की शिक्षा दी जाती थी और जहां क्या देशी और क्या विदेशी किसी प्रकार के विद्यार्थियों में कोई भेद नहीं माना जाता था। यह वह विश्वविद्यालय थे जिनकी प्रतिच्छाया आज विश्व के सभी विश्वविद्यालयों पर पड़ी है।

विश्वविद्यालयों की चर्चा करते समय स्वभावतः उनकी स्वतंत्रता की ओर ध्यान दिया जाता है। जो लोग भी विश्वविद्यालय की शिक्षा में रुचि रखते हैं उनमें "विश्वविद्यालयों की स्वतंत्रता" विवाद का विषय बना हुआ है। यह किसी को भी मान्यता नहीं है कि पाठ्यक्रम अथवा पाठ्यग्रंथ शासन के निर्देशन अथवा स्वीकृति से बनने चाहिए, किसी ने आज तक यह भी नहीं कहा कि भारतवर्ष की केन्द्रीय अथवा प्रादेशिक सरकारें वस्तुतः ऐसे मसलों में कोई सक्रिय रुचि दिखलाती हैं। अतः इस बात का तो भय नहीं है कि इस क्षेत्र में विश्वविद्यालय की स्वतंत्रता का किसी प्रकार अपहरण होगा। लेकिन यह कहा जाता है कि निश्चय ही सरकार आर्थिक सहायता और दूसरे प्रकार के प्रश्रय तथा शिक्षकों की नियुक्तियों इत्यादि में दखल देती हैं। वह किसी अध्यापक की उन्नति में बाधक हो सकती हैं यदि अध्यापक उनकी पसन्द का नहीं है और उनमें यह भी सामर्थ्य है कि वह विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों और अध्यापकों में ऐसा राजनीतिक वातावरण उत्पन्न कर दें जो उनकी दलगत राजनीति के हित में हो। ऐसा कहा जाता है कि शासन की ओर से चाहे छद्म रूप में ही क्यों न हो, ऐसी स्थिति उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
करने का सक्रिय प्रयत्न हो रहा है। कई सज्जन जो विश्वविद्यालय संबंधी शिक्षा में रुचि रखते हैं खुले तौर पर सरकारों की इस प्रवृत्ति को रोकने के उपायों का सुझाव दे रहे हैं।

ऐसे मामलों में कठिनाई तब उत्पन्न हो जाती है जब गम्भीर विचार के स्थान पर नारे लगने लगते हैं। यहां तक कि वर्तमान स्थिति के संदर्भ में 'आटोनामी' शब्द का भी उसके कोषार्थ से अलग करके उसका सापेक्ष प्रयोग किया जा रहा है। शासन, जो राज का चेतन स्वरूप है, प्राचीन विद्यापीठों के ज़माने में भी प्रत्यक्षतः उनके काम में दखल नहीं देता था। किन्तु कुछ मुख्य-मुख्य बातों के संबंध में विद्यापीठों और शासन में स्पष्ट समझौता रहता था। राजा से इस बात की आशा की जाती थी कि वह युगधर्म की, जिसे हिन्दू धर्मशास्त्र के आचार्यों ने वर्णाश्रम धर्म भी कहा है, रक्षा करेगा। विद्यापीठों के कुलपति और उनके सहयोगी धर्म की शिक्षा देते थे। इसकी व्यवस्था शासन करता था और शासन को तत्कालीन आश्रमों और गुरुकुलों के ऋषियों का नैतिक समर्थन प्राप्त था। मनु ने कहा है: ''ना विष्णु पृथिवीपतिः'' अर्थात् ऐसा कोई राजा नहीं है जिसमें विष्णु के गुण न हों। इस प्रकार कार्य और उत्तरदायित्वों का स्पष्ट विभेद और सामंजस्य राज्य और अध्यापकों में बना रहता था और कोई भी एक-दूसरे के क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश नहीं करता था। कहने का तात्पर्य यह है कि तत्कालीन जीवन का एक दर्शन था, जीवन की एक सुनिश्चित धारा थी। समाज ने उसे व्यष्टि और समष्टि के संतुलित जीवन के लिए स्वीकार कर रखा था और इसे नष्ट करने के लिए किसी को सक्रिय प्रयत्न करने का अधिकार नहीं था। मैंने ''सक्रिय प्रयत्न'' जानबूझ कर कहा है क्योंकि विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कोई रोक नहीं थी। वह लोग अच्छे मनोवैज्ञानिक थे और जानते थे कि किसी नवीन अथवा अनुपयोगी विचार का सामना उसे दबा कर नहीं, उस पर सम्यक् विचार करके ही किया जा सकता है। कहा भी है:—

''वादे वादे जायते तत्वबोधः।''

यहां तक कि केवल बुद्ध ने ही नहीं वरन् चारवाक् तक ने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन बिना किसी रोक-टोक के सर्वत्र किया, यद्यपि यह सभी जानते थे कि उनके सिद्धान्त प्रत्यक्षतः बिना किसी संदेह के वेद और वेदमूलक कर्मकांड का विरोध करते थे। इस प्रकार यदि नये विचार लोगों को अभिभूत कर लेते थे तो जीवन की नयी मान्यताएं और तदनुसार जीवन की नयी धारा निश्चित की जाती थी और फिर वही समाज के संतुलन के लिए स्वीकार कर ली जाती थी। इस प्रकार उन्हें स्वतः राज्य-संरक्षण प्राप्त हो जाता था।

भारत में आज हम अपने को एक विचित्र स्थिति में पाते हैं। हम ऐसे युग में रह रहे हैं जिसमें परस्पर विरोधी राज्य किसी न किसी दार्शनिक वाद की आड़ में लड़ा करते हैं। यहां तक कि कुछ लोगों के विश्वास के मतों की रक्षा के लिए हाईड्रोजन बम तक का सहारा लिया जा रहा है। पश्चिम के बड़े-बड़े गणतंत्रों ने यद्यपि स्पष्टतः अपने लिए कोई जीवन दर्शन निश्चित करने का प्रयत्न नहीं किया है तथापि वे अपनी निश्चित जीवन धारा की बात करते हैं और ऐसा मानते हैं कि उसकी विरोधी विचारों की प्रतिक्रिया से रक्षा की जानी चाहिए। यद्यपि हमने शस्त्रास्त्र संग्रह की प्रतिस्पर्धा में भाग नहीं लिया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
फिर भी भारत आज महान् देश माना जा रहा है। दक्षिण एशिया और उत्तरी अफ्रीका के देशों में यही एक ऐसा देश है जो पिछले १० वर्षों में सशक्त और स्थायी शासन तथा आंतरिक शांति कायम रखने में सफल हुआ है। भारत आज सत्य, न्याय और शान्ति का प्रवक्ता माना जा रहा है। यद्यपि भारत यह नहीं कहता कि उसे कोई खास संदेश देना है फिर भी लोग इसे ऐसा देश मानते हैं जिसका उद्देश्य पराधीनता, शोषण और जातिभेद के विरुद्ध युद्ध करना है। यह हमारी प्राचीन परम्परा के अनुरूप ही महान् कार्य है। भारत में जब बड़े और सशक्त सम्राट थे तब भी उसने अपने निर्बल पड़ोसियों का राज्य अपहरण करके साम्राज्य सीमा बढ़ाने का प्रयत्न नहीं किया परन्तु उसने जो शांति और विश्वबंधुत्व का संदेश जगत को दिया उससे उसकी साम्राज्यसीमा के बाहर भी करोड़ों व्यक्तियों को शांति मिली। हिन्दी कवि 'प्रसाद' ने ठीक ही कहा है:–

"विजय लोहे की नहीं धर्म की रही"

आज हम किसी भी प्रकार के जीवन-दर्शन के अभाव में रह रहे हैं। जीवनदर्शन की बात आने पर हम आसानी से महात्मा जी का नाम ले लेते हैं यह सही है कि कुछ हद तक हमारे व्यवहार में उनके उपदेशों की झलक मिलती है। लेकिन हममें से आज कोई भी इसे साहसपूर्वक नहीं कह सकता कि हमने अपने जीवन के लिए गांधीवादी दर्शन को अपनाया है। इससे देश और विदेश दोनों में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। हमारे विकास की बड़ी-बड़ी कल्याणकारी योजनाएं देश के स्वरूप को धीरे-धीरे किन्तु निश्चयपूर्वक बदल रही हैं। किन्तु वह देश में त्याग की उस भावना को स्फुरित नहीं कर पा रही हैं जो केवल आध्यात्म के बल पर ही की जा सकती है। मनुष्य अपनी पूर्णता को तभी प्राप्त कर सकता है जब उसे किसी ऐसी चीज के साथ तादात्म्य करने को कहा जाय जो उसके भौतिक रूप से बड़ी हो। हमारे भौतिक जीवन की आवश्यकताएं बहुत हैं और निश्चय ही हमसे सतत, प्रयत्न, धैर्य और समन्वित प्रयत्नों की अपेक्षा करती हैं। किन्तु इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को भुलाया नहीं जा सकता कि मनुष्य के जीवन में ऐसी कोई चीज अवश्य है जो इन भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयत्नों के प्रति उदासीन हो जाती है, वह किसी अभौतिक वस्तु के लिए विकल रहती है। मैं केवल यही आशा कर सकता हूं कि शीघ्र ही देश के विचारक, अध्यापक और राजनीतिक नेता हमारी संस्कृति और सभ्यता के अनुरूप किसी दार्शनिक आधार पर व्यष्टि और समष्टि के जीवन की पुनर्व्यवस्था की आवश्यकता का अनुभव करेंगे और अपने को इस ओर प्रेरित करेंगे।

जहां तक मैं सोच सकता हूँ, विश्व बन्धुत्व की भावना को सशक्त करने के लिए विराट पुरुष की कल्पना से उत्तम कोई दूसरी कल्पना नहीं और हमारे आचार और व्यवहार की आधारशिला के लिए अद्वैत से बढ़कर कोई दूसरी भावना नहीं हो सकती। "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" का उपदेश अच्छा है। लेकिन कोई भी व्यक्ति अनैतिक आचरण की बात सोच भी नहीं सकेगा यदि उसको मालूम हो जाय कि जिसको वह "पर" समझता है वह स्वयं वही है, दूसरे शब्दों में यदि वह यह समझ ले कि "पर" केवल उसके "स्व" की प्रतिच्छाया है।

साथ ही कुछ ऐसी चीजें भी हैं जिनके लिए हम भारतवासियों को सदा प्रयत्नशील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रहना है। हमने अपने लिए समाजवादी जीवन को स्वीकार कर लिया है। ऐसा करते हुए हमने अपने को जनतंत्रवादी भी घोषित किया है और जहां तक साधारण मानव के लिए संभव है अहिंसात्मक परिधि के भीतर रहना भी स्वीकार किया है। दुर्भाग्यवश, इस देश में ऐसे भी व्यक्ति हैं जो जनतंत्रवाद की उस परिभाषा को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं जिसे देश ने सामान्यतः मान लिया है। यदि वह इसे अपने लिए किसी दूरागत उद्देश्य के रूप में स्वीकार कर भी लें तो भी वह उसकी प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक तरीकों को अपनाने के लिए प्रतिश्रुत होना नहीं चाहते। स्पष्ट है कि समाजवादी व्यवस्था की उनकी कल्पना कम से कम उन लोगों से, जो कांग्रेस के नेतृत्व को स्वीकार करते हैं, भिन्न है। मैं यह भी मानता हूँ कि जहां इस आखिरी बात का संबंध है, इसमें विवाद की गुंजाइश हो सकती है। इस संबंध में जो भी दुराग्रह करेगा उसके ऊपर निश्चय ही इस बात का दोष लगेगा कि वह इस मसले पर निष्पक्ष भाव से विचार करने के लिए प्रस्तुत नहीं है। लेकिन अहिंसा और जनंतत्रवाद के संबंध में दो मत नहीं हो सकते। यह हमारे विधान की आधारशिलाएं हैं और हमारे लिए वह मार्ग प्रशस्त करती हैं जिस पर हमें चलना है। जिन लोगों का मैंने ऊपर संकेत किया है, मेरा मतलब उन लोगों से है जो प्रजातंत्रवादी और अहिंसात्मक तरीकों को इस देश की शासन-प्रणाली के लिए अनिवार्य नहीं मानते, उनका सन्तोष इन विषयों पर केवल शास्त्र-चर्चा से नहीं होता। वह केवल अपने विचारों के प्रचार मात्र से सन्तुष्ट नहीं होते। वह अपने विचारों को केवल यह मानकर कि यदि उनमें ताकत होगी तो वह जनमत पैदा कर ही लेंगे, प्रचार के आधार पर छोड़ नहीं देते। इस देश की प्राचीन परम्परा के अनुसार विचारों की शांतिमय क्रांति के स्थान पर वह अपने विचारों को उग्र क्रांति का रूप देना चाहते हैं। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, वह अपने विचारों की प्रगति जबरदस्ती करना चाहते हैं और ऐसी क्रियाओं को उत्तेजना देना चाहते हैं जिनका परिणाम हिंसात्मक आन्दोलन अथवा खूनखराबा हो सकता है। ऐसे लोग अपने अभिलषित विचारों को क्रांति रूप में अवतरित कराने के लिए यादवीय युद्ध तक की कल्पना करने से नहीं घबराते। भले ही वह कहें कि उनके तरीके अहिंसात्मक हैं लेकिन वह भली-भांति जानते हैं कि उनके कार्यक्रम से हिंसा को उत्तेजना मिलेगी। यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि अक्सर शिक्षा-संस्थाएं ऐसेआन्दोलनों के लिए आधार-स्थल बनायी जाती हैं। विद्यार्थियों के ऐसे समूह तैयार किये जाते हैं जो न केवल शिक्षा-संस्थाओं के सुव्यवस्थित जीवन में विघ्न फैलाते हैं वरन् उनके बाहर भी हिंसात्मक कार्यवाहियों में भाग लेते हैं। यदि कोई शिक्षा-संस्था ऐसी कार्यवाहियों में सहयोग देती है तो निश्चय ही राज्य का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह हस्तक्षेप करे और उसे जैसा कि किसी शिक्षा-संस्था को कार्य करना चाहिए व्यवहार करने के लिए बाधित करे। विश्वविद्यालयों को निश्चय ही विचार-आन्दोलनों का केन्द्र बनना चाहिए लेकिन यह उनके समुचित अधिकार-क्षेत्र के बाहर की बात होगी कि वह राजनीतिक क्रांतियों के उद्गम स्थान बनें। ऐसी स्थिति में राज्य कभी भी अपने उन कर्त्तव्यों के प्रति उदासीन नहीं हो सकता जिनके द्वारा उसे उन सिद्धान्तों की रक्षा करनी आवश्यक है जिनके अनुसार हमारे समाज और देश का जीवन आज व्यवस्थित हो रहा है, भले ही उसके ऊपर इस बात का दोष लगाया जाय कि वह विश्वविद्यालयों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहा है। जो लोग विश्वविद्यालयों अथवा अन्य विद्यालयों के संयोजन का काम करते हैं यदि इन विद्या केन्द्रों को ऐसी कार्यवाहियों से मुक्त कराने का प्रयत्न करें, जो इनकी अधिकार सीमा में नहीं आतीं तो निश्चय ही राज्य भी उनकी आंतरिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने का कोई प्रयत्न नहीं करेगा। प्राचीन काल में राज्य और विश्वविद्यालयों के कर्त्तव्यों में जो बँटवारा था वह भी पुनः स्थापित हो जायगा। शासन के लिए यह बहुत ही गलत बात होगी कि वह अपने अधिकारों का प्रयोग शिक्षक के जीवन और काम को प्रभावित करने के लिए करे। अधिनायकवाद कभी भी सफल नहीं हो सकता जब तक कि शिक्षक और विचारक को सत्य पर परदा डालने के लिए मजबूर न किया जाय और तब तक मानवता की हानि करते हुए अधिनायकशाही में आस्था की स्थापना न की जाय। लेकिन प्रजातंत्रवाद के लिए इस प्रकार की कार्यवाहियों की कोई आवश्यकता नहीं होती। सत्य और ज्ञान की अबाध धारा ही मनुष्य को सच्चे प्रजातंत्रवाद को समझने में वास्तविक सहायता देती है। मैंने प्रजातंत्रवाद के साथ "सच्चे" शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि प्रजातंत्रवाद तथाकथित रूप भी है। सच्चा प्रजातंत्रवाद ही मनुष्य को पूर्ण बौद्धिक और एक आध्यात्मिक विकास के लिए अवसर देता है और तभी वह अपने वास्तविक स्वरूप को अच्छी तरह पहचान पाता है। प्रजातंत्रवाद का दूसरा रूप व्यक्ति को नीरस एकरूपता में बांधने की कोशिश करता है और उसका मूल्यांकन उसकी इस तत्परता के आधार पर करता है जिससे वह अपने व्यक्तित्व का नाश करके समूह का आधा अंग बन जाता है।

'विश्वविद्यालयों की स्वतंत्रता खतरे में है' इस नारे का एक दूसरा पक्ष भी है। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो राज्य सरकारों में किसी प्रकार के गुण की कल्पना ही नहीं कर सकते। उन्हें ऐसा लगता है कि राज्य सरकारें बराबर विश्वविद्यालयों की स्वतंत्रता का अपहरण करने में प्रयत्नशील हैं, उनकी यह बराबर इच्छा रहती है कि यह विश्वविद्यालय सीधे केन्द्रीय शासन के अधीन हो जायं। किन्तु यह विचार कई दृष्टियों से अमान्य है। मैं ऐसा कोई कारण नहीं देखता जिससे कि मैं ऐसा मानूं कि राज्य शासन विश्वविद्यालयों की स्वतंत्रता अपहरण करने के दोषी हैं। मैं यह भी बताना चाहता हूं कि मानव-स्वभाव में यदि कोई कमजोरियां हैं तो वह प्रदेशीय राजधानियों से निकल कर दिल्ली में बैठ जाने मात्र से दूर नहीं हो सकतीं।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन करने की मांग देश में सर्वत्र की जा रही है। कभी-कभी यह मांग ऐसे लोगों द्वारा प्रस्तुत की जाती है जिनमें यह समझने की सामर्थ्य नहीं है कि वह क्या कह रहे हैं। स्वभावतः इस संक्रमणकाल में बहुत सी बातों में स्थिति वैसी नहीं है, जैसी होनी चाहिए थी। निदान सारे रोगों का घड़ा शिक्षा पद्धति के ही सर फूटता है। वर्तमान शिक्षा पद्धति की निन्दा करना आसान है किन्तु इसके स्थान पर किसी उपयुक्त शिक्षा-पद्धति का सुझाव देना उतना आसान नहीं है। ऐसा भी नहीं है, जैसा कि कुछ सुधारक कहते हैं कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति विदेशी शासकों की उस कूटनीति और चातुर्य का परिणाम है जिसके द्वारा भारतीयों को गुलाम रखना चाहते थे और उन्हें किसी प्रकार के भी व्यावहारिक काम के लिए असमर्थ बनाना चाहते थे। यह पद्धति उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रतिमानों के आधार पर निकाली गयी जो आज भी दूसरे देशों में मौजूद हैं। लेकिन यह सही है कि इस पद्धति का विकास भारत की पिछली शताब्दी की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों में हुआ। निस्संदेह इनका प्रभाव हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति पर पड़ा है। अब हमारा देश स्वतंत्र है, इसकी आवश्यकताएं बदल गयी हैं और इसीलिए हमारी शिक्षा पद्धति को भी उन आवश्यकताओं की पूर्ति के योग्य होना ही पड़ेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसा करने के लिए कई क्रांतिकारी परिवर्तन करने पड़ेंगे लेकिन हमें उन परिवर्तनों की खोज में और उनकी जल्दी में उस पुराने भवन को ध्वस्त नहीं कर देना चाहिए जो बड़े परिश्रम से और दीर्घकाल में निर्मित हुआ है। मैं तो ऐसा मानता हूं कि इस महान् कार्य के करने में न केवल राजनीतिक नेताओं को वरन् शिक्षकों को भी योग देना चाहिए। नयी पद्धति का जो भी रूप हो, एक-दो ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें हमें सदा ध्यान में रखना होगा। हमें वही गलती नहीं करनी चाहिए जो पश्चिम ने की है। पश्चिम में भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का इस कदर ध्यान रखा गया कि आध्यात्मिक आवश्यकताएं नितान्त गौण हो गयीं। हमें निश्चय ही डाक्टरों, इंजीनियरों, वैज्ञानिकों और दूसरे प्रकार के विशेषज्ञों की आवश्यकता है। हमें हिम्मती प्रयोगकर्त्ताओं की आवश्यकता जरूर है किन्तु हम यह नहीं चाहते कि वह मानव स्वभाव की उन विशेषताओं से हीन हो जायं जो विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले उन विषयों से मिलती हैं, जिन्हें हमने विज्ञानेतर पाठ्यक्रम के अन्तर्गत रख छोड़ा है। कोई वैज्ञानिक चाहे वह विज्ञान की खोज में कितना ही लीन क्यों न हो, केवल वैज्ञानिक नहीं होता। विज्ञान के प्रति उसकी साधना उसे मानवता के प्रति अपने कर्त्तव्यों से छूट नहीं दे सकती। यदि आज वैज्ञानिकों को इस बात की प्रशिक्षा मिलती होती कि वह मनुष्य पहले हैं और वैज्ञानिक पीछे तो एटम, हाइड्रोजन और कोबाल्ट बमों का अन्वेषण शायद न हुआ होता और यदि हुआ भी होता तो उनका उपयोग केवल मानवता की सेवा के लिए होता। वह वैज्ञानिक, जो उन लोगों के आदेशों की अवज्ञा करने का साहस नहीं कर सकता, जो अपने शक्ति संचय के उन्माद में मानवता का नाश करने के लिए तुले हुए हैं, हमारी प्रशंसा का पात्र नहीं है। हमें बर्नार्ड शा के नाटक "मेजर बारबरा" के उस हथियार बनाने वाले व्यापारी की बात याद आती है जिसकी नीति केवल इतनी थी कि "मैं हथियार बनाता हूँ और अच्छे हथियार बनाता हूँ। मैं उनको उस प्रत्येक व्यक्ति को बेचने के लिए तैयार हूँ जो मुझे उनका अच्छा दाम दे सके। मैं बिना किसी पक्षपात के उन्हें शासन के हाथ भी बेचता हूँ, विद्रोहियों के भी हाथ बेचता हूँ, साधु के भी हाथ बेचता हूँ और पापी के हाथ भी बेचता हूँ। यह निर्धारित करना मेरा कर्त्तव्य नहीं है कि कौन सही है और कौन गलत। यदि कोई ईश्वर है तो उसे उस पक्ष की विजय करानी चाहिए जो सत्य का अनुसरण कर रहा हो।" यह व्यवसाय का सही मार्ग हो सकता है किन्तु जो वैज्ञानिक इस रास्ते को अख्तियार करता है वह वैज्ञानिक के आसन पर बैठने के योग्य नहीं है। वैज्ञानिक शोधों को व्यवसाय नहीं बनाया जा सकता। वह साधना हो सकते हैं और साधना के लिए आवश्यक है कि वह मानवता की सेवा में संलग्न की जाय, उस शक्ति की सेवा में नियोजित हो जो प्रत्येक जड़ और चेतन में स्पंदित हो रही है, जो सूक्ष्मतम कीटाणुओं से लेकर परम शक्तिशाली देवों में भी समान रूप से संवेदनशील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है। हमें भी शिक्षा-पद्धति सुधार के लिए अपने सम्मुख इस बात को बराबर रखना है। हमें इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि हम ऐसे मनुष्य पैदा करें जो चाहे जिस भी विषय के पंडित क्यों न हो परन्तु पूर्ण मनुष्य हों, जो शरीरधारी बुद्धिमात्र न हों वरन् बुद्धि और शरीर से युक्त सूक्ष्म आत्मपदार्थ जैसा आचरण करें।

मुझे ऐसा भी लगता है कि हमारी शिक्षा-पद्धति में विशिष्टता प्राप्त करने की ओर अति अधिक ध्यान दिया गया है। एक ओर तो हम विद्यार्थियों के उस समुदाय को देखते हैं जो वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन करता हुआ भारतीय इतिहास और सभ्यता का प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं रखता और दूसरी ओर उन विद्यार्थियों का समुदाय दिखायी पड़ता है जो प्रकृति के साधारण से साधारण दृग्विषयों को समझने में असमर्थ होते हैं। हमें ऐसी व्यवस्था करनी ही पड़ेगी कि जिसके द्वारा हम प्रत्येक विद्यार्थी को आज के जटिल विश्व में संतुलित और शिक्षित युवक जैसा व्यवहार करने की हैसियत प्रदान करने वाला सामान्य ज्ञान दे सकें।

एक-दो चीजें और हैं जिनकी ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा। ज्ञान विश्वजनीन है और उसे भौगोलिक रेखाओं से सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। फिर भी यह बड़ा ही उपयोगी होगा यदि हमारे विद्यार्थियों को भारत की प्राचीन ज्ञान साधना से परिचित कराया जा सके। वह जान सके कि उनके पूर्वज कौन थे और उनकी क्या सफलताएं थीं। आप पाश्चात्य सभ्यता के किसी भी इतिहास को देखें। वह मिस्र की सभ्यता से प्रारम्भ होता है और धीरे-धीरे यूनान और रोम होता हुआ आगे बढ़ता है। लेकिन उसमें ज्ञान के क्षेत्र में भारतीय विचारधारा और उसकी खोजों का कोई जिक्र नहीं होता, सिवाय उसके कि स्यात् कहीं-कहीं अंकों की दशमलव प्रणाली का चर्चा मिल जाय। आज वह समय आ गया है जब भारतीय विद्यार्थियों को यह बताया जाना चाहिए कि भारत ने न केवल दशमलव प्रणाली की खोज की वरन् उसने बीजगणित का आविष्कार किया, कणाद का परमाणुवाद डाल्टन और ल्यूक्रीशियस के वादों से कई शताब्दी पुराना है। नागार्जुन के रासायनिक शोध और भास्कर के गणित संबंधी अन्वेषण भी हमारे पूर्वजों की सफलताएं हैं और दुनिया को भारत की देन है। यह कुछ थोड़े से उदाहरण हैं जो मैंने दिये हैं। इस प्रकार का ज्ञान उन्हें संकुचित नहीं करेगा वरन् उसमें अपने प्रति और अपने देश के प्रति अधिक निष्ठा, आत्मसम्मान और काम करने की अधिक प्रेरणा देगा। हमारे पाठ्यक्रमों में कुछ अजीब और दुरूह तत्वों का समावेश हो गया है जिनके बारे में भी विचार करना बहुत जरूरी है। सबसे पहले तो दर्शन का भारतीय और पाश्चात्य विभेद ही गलत है। दर्शन के अध्यापन के लिए कोई और अच्छा तरीका निकालना ही होगा। साधारण विद्यार्थी को दार्शनिक सिद्धान्तों का सामान्य ज्ञान तो होना ही चाहिए ताकि उसे दाशर्निकों के विचार-प्रवाह और दर्शन के क्षेत्र का ज्ञान हो जाय। हां, यह जरूरी है कि उसमें भारतीय पद्धति पर विशेष जोर दिया जाय। आगे चलकर जो विशेषता प्राप्त करना चाहें, यह उनकी इच्छा पर छोड़ दिया जाय कि पाश्चात्य और पौर्वात्य पद्धतियों में वह कोई भी अपने लिए चुन लें। इसी प्रकार यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि इस देश में जिसने नैयायिकों की एक महान् परम्परा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जन्म दिया हो, जिसमें अक्षपाद गौतम से लेकर नव्यन्याय के आचार्यों के सिद्धान्तों तक का प्रणयन हुआ है, हम ग्रीक लौजिक के अध्यापन पर क्यों जोर देते रहें। मैं समझता हूँ कि इसे भी उनके लिए छोड़ देना चाहिए जो इस क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त करना चाहें।

आज साधारण पढ़े-लिखे भारतीय का जीवन रस-विहीन हो गया है। मैं इस ओर भी आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। उसकी सौंदर्य निरीक्षण की शक्ति कुन्द हो गयी है और वह प्रायः सौन्दर्य के प्रति पूर्णतः उदासीन हो गया है, प्रकृति उसके लिए अनजानी-सी हो गयी है। शायद यही कारण है कि आज हिन्दी कविता का बहुत बड़ा भाग—दुर्भाग्य से मैं भारतीय भाषाओं में हिन्दी से ही परिचित हूं—नीरस और प्रभावहीन हो गया है। हो सकता है कि इन कविताओं के रचने में इनके कवि अपने हृदय को उड़ेल रहे हों किन्तु निश्चय ही उनके हृदय प्रकृति की स्फूर्तिमयी संवेदना से अछूते रह गये हैं। हमारे ऊपर आकाश रूपी एक ऐसा वितान तना हुआ है जिसे हम बिना किसी प्रयत्न के देख सकते हैं किन्तु हममें से कितने ऐसे हैं जो उसे देखने का प्रयत्न करते हैं? हममें से कितने लोग हैं जो ऋतुओं के साथ-साथ आकाश के परिवर्तनों से परिचित हैं? हमारे प्राचीन विश्वविद्यालय वनों में स्थित थे और हमारा प्राचीन साहित्य इस बात का साक्षी है कि उसके प्रणेताओं ने भरपूर प्रकृति-दर्शन किया था। रघुवंश और कुमार सम्भव का साधारण पाठक भी मेरे इस कथन की सत्यता में विश्वास करेगा। हम अपने विश्वविद्यालयों को अब वनों में नहीं ले जा सकते। लेकिन मैं इस बात को मानता हूं कि आज भी विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के लिए सम्भव है कि वह अपने विद्यार्थियों को प्रकृति और सौन्दर्य के प्रति संवेदनशील कर सकें। किसी भी मनुष्य का जीवन कृत्स्न नहीं है, पूर्ण नहीं है, जब तक कि वह प्रकृति के स्पन्दन में ईश्वर की पगध्वनि को सुनने में समर्थ नहीं होता, जब तक कि उसकी मनोवृत्ति कवि की अनुभूति के साथ तदाकारता नहीं प्राप्त कर सकती। यह स्मरण रहे कि कवि का अन्तर्दर्शन योगी की अनुभूतियों से बहुत दूर नहीं होता।

कोई भी समावर्त्तन भाषण तब तक पूरा नहीं माना जाता जब तक कि स्नातकों को न सम्बोधित कर लिया जाय। मुझे आपके सामने ऐसे शुष्क उपदेशों को रखने की लालसा नहीं है, जिनको आपने सैकड़ों बार पढ़ा और सुना होगा। मैं तो केवल तैत्तरीय उपनिषद् के उस समावर्त्तन सम्बोधन की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं जो स्नातकों के गुरुकुल छोड़ने के पूर्व किया जाता था। उसमें भी मैं केवल एक उपदेश 'धर्मम् चर' की याद दिलाना चाहता हूं। जो लोग आज जीवित हैं उनको जैसें अवसर आज प्राप्त है वैसे हमारी आने वाली पीढ़ियों के सम्मुख न होंगे। आप में बहुतों को भारतीय स्वातन्त्र्य युद्धों का कुछ आभास होगा किन्तु राजनीतिक स्वतन्त्रता ही सब कुछ नहीं है। आज हमें आने वाले भारत की नींव डालने का सुवर्ण अवसर मिला है। आप जो कुछ भी करें इसे याद रखें कि हमारे कन्धों पर भावी भारतीयों के सुख और समृद्धि का उत्तरदायित्व है। आप अपने प्रत्येक कार्य करते समय अपने से यह पूछे कि मैं जो कुछ भी करने जा रहा हूं वह हमारे देश की प्रगति में सहायक होगा अथवा बाधक? क्या हमारा कार्य भारत को विश्व के समस्त निर्बलों और शोषितों की सहायता करने में शक्ति प्रदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेगा अथवा उसके हाथों को पकड़ेगा? ऐसा करने में आप गलतियां कर सकते हैं और गलतियां सभी से होती हैं। हो सकता है कि आपके पग डगमगायें किन्तु यदि आप अपने सामने यह आदर्श रखेंगे तो निश्चय ही आप उस मार्ग से बहुत दूर नहीं जायेंगे जो आपका धर्म-पथ है। इस प्रकार आप अपने जीवन को अधिक पूर्ण बनायेंगे और मानवता आपसे समृद्ध होगी। यही आचार्य-ऋण से मुक्त होने का सही तरीका है। इसी प्रकार आप अपने विश्वविद्यालय से उऋण हो सकेंगे। भगवती सरस्वती शक्ति और बुद्धि प्रदायिनी हैं, उनके स्मित का सदा आपको दर्शन होता रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माध्यमिक शिक्षा की पुनर्व्यवस्था

पहिले तो मैं आपसे इलाहाबाद से लखनऊ के आकस्मिक स्थान परिवर्तन के लिए क्षमा चाहता हूं। इलाहाबाद प्रान्त की राजधानी है और शिक्षा विभाग का प्रधान कार्यालय है। साधारणतः इस प्रकार की कान्फ्रेंस वहीं होनी चाहिए। यदि बहुत ही विशिष्ट कारण उपस्थित न हो गये होते और चिकित्सा संबंधी कड़े आदेश न होते तो मैं निश्चित व्यवस्था में परिवर्तन कदापि न करता।

आप लोग हमारी शिक्षा संबंधी पुनर्व्यवस्था की मोटी मोटी रूपरेखा से तो परिचित ही हैं। इसको लगभग अंतिम रूप दिया जा चुका है,केवल रंग भरना शेष है जो कि विशेषज्ञ लोग इसका विस्तृत विवरण तैयार कर पूरा कर देंगे। कुछ ऐसे आलोचक थे जो इसे भी मेरा एक खब्त ही समझते थे और जिन्होंने बिना विशेषज्ञों की सलाह लिए हुए ही इसके बारे में जल्दबाजी करने का दोषी शासन को ठहराया। यह अभियोग अविचारित थे, कम से कम समय से पूर्व तो थे ही। हमारी योजना नरेन्द्रदेव कमेटी की रिपोर्ट पर आधारित है जहां कहीं आवश्यक समझा गया सार्जेन्ट कमेटी की संस्तुतियों के अनुसार उसमें परिवर्तन कर लिया गया है। पहिले इनकी परीक्षा एक विभागीय कमेटी द्वारा की गयी। उसके बाद आपके द्वारा हमने पूरे प्रान्त के हाई स्कूलों के हेडमास्टरों और इण्टरमीडिएट कालेजों के प्रधानाध्यापकों की सम्मति मांगी। फिर जो सम्मतियां प्राप्त हुईं उनके अनुसार परिवर्तन करने के बाद यह उस कमेटी के पास भेज दिया गया। जिसमें विश्वविद्यालयों बोर्ड आफ हाईस्कूल एण्ड इंटरमीडियेट इक्ज़ामिनेशन, संयुक्त प्रान्तीय माध्यमिक शिक्षा सम्मेलन और भी अन्य इसी प्रकार की संस्थाओं का प्रतिनिधित्व था। अब इस पर शिक्षा-शास्त्रियों की इस समिति की भी मुहर लग चुकी है और अब इसके लागू करने में हम किसी प्रकार दोष के भागी नहीं हो सकते।

विश्वविद्यालय संबंधी शिक्षा हमारे क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आती किन्तु उसके बारे में थोड़े से शब्द कह देना अनुचित न होगा। आखिर शिक्षा भी जीवन की तरह एक पूर्ण शरीरी है और यदि इसके विभिन्न स्तरों में कहीं कोई दोष रह जाता है तो परिणाम भयंकर होना निश्चित है। व्यर्थ हुये श्रम और क्षुब्ध जीवनों के रूप में वे दिखायी पड़ेंगे। डिग्री कोर्स की अवधि के उलझे हुए प्रश्न पर हम कोई राय जाहिर नहीं करते। हमारी शिक्षा की पुनर्व्यवस्था के परिणाम स्वरूप तैयार हुए छात्रों का स्तर देखने के बाद इस प्रश्न पर निर्णय करना हम विश्वविद्यालयों पर ही छोड़ देते हैं। जहां तक शासन और विश्वविद्यालयों का संबंध है, आवश्यक धन जुटाने के अलावा भी शासन के दो और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रमुख कार्य हैं; (१) ऐसे विद्यार्थियों की बाढ़ से उन्हें बचाना जो विश्वविद्यालय की शिक्षा के यारेग्य नहीं हैं या जिनकी रुचि दूसरी ओर है (२) यह देखना कि प्रत्येक डिग्री लेने की इच्छा करने वाले विद्यार्थी को वह सब सुविधाएं सुलभ हों जो कि ज्ञान की प्रगति के साथ आवश्यक हो गयी हैं। पहिला उद्देश्य तो माध्यमिक शिक्षा की पुनर्व्यवस्था के बारे में हमारी जो योजना है उससे सिद्ध हो जायगा। शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो जाने से कम समय में ही विद्यार्थी आज की अपेक्षा अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे साथ ही हम अंग्रेजी की शिक्षा भी इतने काफी ऊंचे स्तर की देते रहेंगे कि विश्वविद्यालय स्तर पर पहुंच कर किसी को असुविधा न हो। हमारे कला और रचनात्मक पाठ्यक्रम में कितने ही विभिन्न प्रकार के विषय रहेंगे जिनसे ऐसे कितने ही लोग व्यवसाय में लग सकेंगे जिन्हें उच्च शिक्षा की ओर अधिक रुचि नहीं है।

जिस दूसरे कर्तव्य का मैंने ऊपर उल्लेख किया है उसका निर्वाह अधिक कठिन है। इसे पूरा करने की चेष्टा में कितनी ही बार मुझे यह लांछन सहना पड़ा है कि मैं विश्वविद्यालयीय शिक्षा का प्रसार नहीं होने देना चाहता। इससे अधिक कोई बात सत्य से विपरीत नहीं हो सकती। हम इसका अधिक से अधिक प्रसार चाहते हैं लम्बाई में भी चौड़ाई में भी। देश को विचार और कार्य में ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता है जिसका निर्माण विश्वविद्यालयों द्वारा संभव है। किन्तु जैसा कि अन्य क्षेत्रों में है यहां भी विस्तार का सुनियोजित होना आवश्यक है। आज कल जो जिलों में और कभी कभी तो बहुत छोटे-छोटे जिलों तक में डिग्री कालेज खोलने का शौक चल पड़ा है जहां स्थानीय ईर्ष्या-द्वेष और कठिनाइयों का बोलबाला है, इसे तो रोकना ही होगा। शासकीय शासन ने जिन युद्ध संबंधी सहायता के लिए दी गई धनराशि और सामूहिक जुर्मानों की रकमों को जिलों को लौटा देने का निश्चय किया है उनमें से प्राप्त होने वाले अपने सहायता भाग की आशा के अलावा शायद ही इन कुकुरमुत्ते की तरह रोज़-ब-रोज़ उग आने वाली संस्थाओं का और कोई आर्थिक आधार रहता है। इनमें से अधिकांश के लिए अपने शिक्षकों को समुचित वेतन दे पाना भी असंभव है। वह अच्छे शिक्षकों को आकर्षित नहीं कर सकेंगी और न अच्छे पुस्तकालय अथवा अनुसंधानशाला की स्थापना कर सकना ही उनके वश की बात है। ऐसी साधनहीन संस्थाओं से निकलते रहने वाले छात्रों की संख्या स्वभावतःस्तर गिराती जायगी। मुझे पूरा विश्वास है कि शिक्षा शास्त्री इस आशंका से परिचित हैं। निकट भविष्य में प्रान्तीय सरकार के लिए संभव नहीं होगा कि वह इन कालेजों को इतना धन दे सके कि वे इलाहाबाद और लखनऊ से जिस स्तर की हम आशा करते हैं उसकी अपेक्षाकृत निकटता भी प्राप्त कर सकें। ऐसी स्थिति में सबसे अच्छा यही होगा कि हम इस समय यहीं पर रुक जायें। मैंने आगरा विश्वविद्यालय के कुछ अधिकारियों से व्यक्तिगत रूप में इस बात की चर्चा की भी थी कि वे लगभग कितने कालेजों को ठीक से चला सकते हैं इस पर एक सर्वेक्षण जैसा करें। यह कहीं अधिक अच्छा हो कि थोड़े ही सही कुछ अच्छे डिग्री कालेज हों जो योजना के अनुसार बंटे रहें, जिनका नाम विद्वत्ता और कुशलता का मापदंड जैसा रहे बनिस्बत इसके कि सारे प्रान्त भर में मध्यम श्रेणी के कालेज बिखरे रहें। बजाय इसके कि वे नये डिग्री कालेज खोलें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानीय देशभक्ति का एक यह भी स्वरूप हो सकता है कि वे उस धन से लब्धप्रतिष्ठ विश्वविद्यालयों और कालेजों में छात्र-वृत्ति और सहायतार्थ निधियां खोल दें।

छठीं और दशवीं कक्षाओं में कुछ पुनरावृत्ति होनी अनिवार्य है किन्तु मुझे आशा है कि इस दुष्परिणाम को किसी हद तक कम करने में सफल हो सकेंगे। आपको इसका भी ध्यान रखना है कि उन छात्रों के लिए भी कुछ प्रबन्ध हो जाय जो कि अन्यथा हमारे माध्यमिक विद्यालयों में चौथी और पाचवीं कक्षा में पढ़ते होते।

आगामी दो महीनों में आपको बहुत कार्य करना है। प्रत्येक हाई स्कूल और इण्टरमीडियेट कालेज पर अलग-अलग विचार करना होगा। आपको इनके अधिकारियों से परामर्श करके यह निश्चय करना होगा कि किस प्रकार की माध्यमिक शिक्षा और उसमें कौन से विषय चुनने का अधिकार इसे देना है, इसके साथ ही किस प्रकार की सहायता उसे दी जाय ताकि वह सफलतापूर्वक अपना कार्य चला सके। आपको अपनी सम्पूर्ण व्यवहारकुशलता, दृढ़ता और समझाने की शक्ति ऐसी महत्त्वाकांक्षाओं को रोकने में लगा देनी होगी जिनके पीछे साधनों का आधार नहीं है। आप चेष्टा करें कि संस्थाएं एक समन्वित इकाई के रूप में कार्य करें या तो वे पूरे-पूरे जूनियर हाई स्कूल की तरह कार्य करें जिसमें छठी, सातवीं और आठवीं कक्षाएं रहें या वे पूरे-पूरे हायर सेकेंडरी स्कूल की तरह हों जिनमें नवम कक्षा से लेकर बारहवीं कक्षा तक का पाठ्यक्रम रहे या दोनों का ही पूरा पाठ्यक्रम रहे। विवशता होने पर हम एक थोड़े समय की बुराई के रूप में कुछ स्कूलों को दसवीं कक्षा तक ही रुक जाने की आज्ञा दे सकते हैं पर यह अपने में वांछनीय नहीं है। ऐच्छिक विषयों की संख्या में वृद्धि करते जाने के बजाय स्कूल का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह अपने चार साल की पूर्ण पाठ्यावधि में कुछ थोड़े ही से ऐच्छिक विषय रखें किन्तु उन्हें कुशलतापूर्वक पढ़ाये।

हिन्दुस्तानी और ऐंग्लो हिन्दुस्तानी स्कूलों के वीच रहने वाले भेद को समाप्त कर देने का बहुसमर्थित निश्चय हमारे ऊपर एक बहुत बड़ा भार डाल देता है। हमें ऐंग्लो हिन्दुस्तानी स्कूलों का स्तर नीचा करना नहीं है बल्कि हिन्दुस्तानी स्कूलों का स्तर ऊंचा उठाना है। इसका मतलब यह होगा कि हमें दूसरी तरह के शिक्षक नियुक्त करने होंगे और अब तक पाठ्यक्रम से अलग रहने वाले विषयों की शिक्षा के लिए आवश्यक साधन जुटाने होंगे। इसके लिए काफी धनराशि की आवश्यकता होगी। अभी हमारे पास आर्थिक साधन नहीं हैं किन्तु इससे इस सिद्धान्त में अन्तर नहीं पड़ता कि गांव के बच्चों को भी अच्छी शिक्षा का उतना ही अधिकार है जितना कि उसके शहरी साथी को।

शिक्षकों की आवश्यकता की बात ने मुझे स्मरण दिला दिया कि हमारे पास पर्याप्त प्रशिक्षित शिक्षक भी उपलब्ध नहीं हैं। इनकी संख्या बढ़ाने का हम भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। हमने अपने इंटरमीडियेट के पाठ्यक्रम में शिक्षा शास्त्र (Pedagogics) भी सम्मिलित कर दिया है और ट्रेनिंग कालेजों में इण्टरमीडिएट पास प्रशिक्षणार्थियों के लिए प्रशिक्षण की अवधि भी घटा दी है।

हम दूसरे उपाय भी सोच रहे हैं। किन्तु अभी उनके बारे में बात करने का समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
नहीं आया है। मैं जानता हूं कि इन सब तरीकों का उपयोग कुशलता को थोड़ा घटा देता है किन्तु परिस्थितियां उनके उपयोग के औचित्य का समर्थन करती हैं। साधारण ढंग से चलने पर थोड़े समय के भीतर हम आवश्यक संख्या में प्रशिक्षित शिक्षक उपलब्ध नहीं कर सकते। इंग्लैंड जैसे अत्यधिक उन्नत देशों को भी कुछ समय के लिए (emergency) आकस्मिक तात्कालिक प्रशिक्षण कोर्स चलाना पड़ा जिससे कुछ समय के लिए प्रशिक्षण की अवधि घटा कर केवल ९ महीने कर दी गयी थी।

आप सब लोगों से मिलने का अवसर मुझे प्रायः बार-बार नहीं मिलता। मैं संक्षेप में कुछ और बातों का भी जिक्र कर दूं जिन पर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं। हमारी प्रारम्भिक शिक्षा की योजना कुल मिला कर आशा से अधिक सफल हुई है। इसकी लोगों ने सराहना भी की है। मैं जानता हूं कि इसमें काफी कमियां रही हैं जैसे कि —शिक्षकों के बिना विद्यार्थी, बिना इमारत के स्कूल, बिना ब्लैक बोर्ड की कक्षाएं आदि। निसस्देह यह सब अवांछनीय था। किन्तु बच्चे वहां जरूर उपस्थित थे और वास्तव में यही सबसे महत्त्वपूर्ण है। और सब अभावों की पूर्ति तो यथासमय हो ही जायगी। आश्चर्य की बात तो तब होती जब पूरे प्रान्त भर में एक साथ किये जाने वाले नवीन प्रयोग के प्रारम्भिक काल में कोई गड़बड़ी ही न होती। किन्तु मैं चाहता हूं कि आप इस योजना को आगे बढ़ाते हुए ही वर्तमान डिस्ट्रिक बोर्ड के स्कूलों की स्थिति पर भी विचार करते। बहुत सी पुरानी इमारतें बिल्कुल जर्जर हो चुकी हैं और बहुत सी एकदम गिरने वाली हैं जिनसे खतरा पैदा हो गया है। स्थानीय लोगों की देश सेवा भावना को प्रेरित कर उनसे इन इमारतों की मरम्मत और रख-रखाव के लिए अपील करनी चाहिए। मैं चाहता हूं कि आप लोग प्रौढ़ शिक्षा के प्रश्न पर थोड़ा अधिक ध्यान देते। शारीरिक शिक्षा के बारे में हम लोग जो निर्णय करने वाले हैं उनको लागू करने का भार भी आप पर ही होगा। सचल दलों का भी आपको निरन्तर ध्यान रखना होगा।

बहुत से लोग, जिनमें कुछ प्रशासकीय अधिकारी भी हैं, अभी तक आपकी स्थिति के महत्व को नहीं समझते। बहुत से प्रार्थनापत्र जिनके बारे में आप ही निर्णय लेकर कार्य समाप्त कर सकते निरन्तर शासन के पास आते रहते हैं। मुझे विश्वास है कि ऐसा अधिक दिनों तक नहीं होगा। यदि जिला निरीक्षकों की नियुक्ति का प्रयोग सफल रहा, जैसा कि हो रहा है, तो उन्हें अब से अधिक अधिकार हस्तान्तरित करने होंगे। शासकीय नीति से शिक्षकों को स्थानीय संस्थाओं के सदस्यों और अधिकारियों को, प्राइवेट संस्थाओं की प्रवन्ध समितियों को और साधारण जनता को प्रशासकीय नीति से अवगत कराना, और उसे स्पष्ट करना आपका काम है, किन्तु मैं यह नहीं चाहता कि आप सिर्फ दोहराने वाले ही बन कर रह जायें। जैसा कि मैंने पहिले एक अवसर पर कहा था आप यदि कोई सलाह भेजना चाहें तो उसका स्वागत है। वास्तव में कुछ इस प्रकार के मशविरे मेरे पास आ भी चुके हैं जो काफी क़ाम के थे।

फीस वृद्धि विरोधी आन्दोलन को जिस दृढ़ता और सहानुभूति के साथ आपने संभाला उसके लिए मैं आपको कृतज्ञतापूर्ण धन्यवाद देता हूं। मुझे आशा है कि ऐसे दुखद अवसर निकट भविष्य में अब और नहीं आयेंगे किन्तु यह गुण आपके कर्तव्यपालन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सिलसिले में हमेशा काम आयेंगे।

शिक्षा के क्षेत्र में हम कितने ही नये प्रयोग कर रहे हैं। किसी और प्रान्त ने इतने बड़े पैमाने पर इस प्रकार का या इतने प्रकार के कार्यों का उत्तरदायित्व नहीं लिया है। अतः इसके लिए हमारे सामने अनुकरण किया जा सकने वाला कोई उदाहरण नहीं है। पर फिर भी हमें इनको सफल बनाना ही है। सम्भव है कि इस दिशा में किये गये हमारे प्रयत्न भविष्य में दूसरों की सहायता कर सकें।

आपका भार गुरुतर है उससे कहीं अधिक बोझिल है जितना कि लोग समझते हैं। इसके अंगों का प्रत्येक बालक-बालिकाओं का पुनर्निर्माण करके समाज के पुनर्निर्माण का पूर्ण दायित्व उन लोगों पर है जो शिक्षा विभाग का प्रबन्ध करते हैं। आप स्वयं शिक्षा नहीं देते यह सही है किन्तु आप उनकी सहायता और मार्गदर्शन अवश्य करते हैं जो पढ़ाते हैं। मैं यहां पर यह कह दूं कि यद्यपि आप पर भार गुरुतर है पर उसे हल्का करने का मेरा कोई इरादा नहीं है। जब तक शिक्षा संबंधी प्रशासकीय नीति निर्धारित करने में मेरा कुछ भी हाथ है तब तक आपकी चिन्ता और कर्तव्यों का भार बढ़ता ही जायगा। मैं आपको अवकाश नहीं दूंगा यह सही है किन्तु आप विश्वास कीजिए कि मैं अपने को भी छोड़ता नहीं हूँ। हम लोग जो लोग शिक्षण के वास्तविक कार्य में लगे हुए हैं उनके साथ एक महान् कार्य में सहयोगी है। हम लोगों के लिए विश्राम संभव नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक प्रदर्शनियां

इस प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए यद्यपि मुझे प्रसन्नता हो रही है पर साथ ही मुझे अपनी कमियों और इस कार्य के लिए अपनी अयोग्यता की अनुभूति भी कम नहीं हो रही है। यह अनुभूति तब और भी गहन होती जाती है जब मैं प्रदर्शनी में उपस्थित उन अन्वेषकों और विद्वानों की ओर दृष्टिपात करता हूं जिनका ऐतिहासिक अन्वेषणों के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान है। मैं समझता हूं कि आप लोगों ने मुझे उद्घाटन करने के लिए बुलाया है वह व्यक्तिगत रूप से मेरे प्रति आपकी कृपापूर्ण सम्मान भावना के अतिरिक्त इस बात का भी द्योतक है कि आप इस प्रवाद में विश्वास नहीं करते कि कांग्रेस सरकारें उच्चतर शिक्षा, संस्कृति और शोधकार्य की विरोधी हैं।

इस प्रकार की प्रदर्शनियों के महत्त्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। इच्छा होती है कि इस प्रकार की और अधिक प्रदर्शनियां होतीं भले ही वे छोटे पैमाने पर हों। जैसा कि सर मैल्काम हैली ने लाहौर में १९२५ के नवम्बर में होने वाले इण्डियन हिस्टारिकल रेकार्ड कमीशन के अधिवेशन में कहा था "छात्रों की रुचि और मस्तिष्क को वास्तविक अभिलेखों और ऐतिहासिक अवशेषों की ओर उन्मुख करने में इस देश का सब तरह से लाभ ही लाभ है, यह अवशेष और लेख, चाहे पत्थर पर हों या धातु पर हों इतिहास के लिए असंदिग्ध आधार-सामग्री उपस्थित करते हैं।" आगे उन्होंने कहा:—"प्रमाण सामग्री के विश्लेषण के लिए इससे बढ़कर और कोई शिक्षा नहीं हो सकती। मुझे लगता है कि भारतवर्ष में प्रमाणित तथ्य और यों ही झटपट कर लिये गये विश्वासों में आलोचनात्मक विभेद करने वाली रुचि कोप्रोत्साहित करने की काफ़ी आवश्यकता है। जातीय दैनिक जीवन में दूसरों द्वारा कही गई बातों पर झटपट विश्वास कर लेने की किसी हद तक लज्जाजनक प्रवृत्ति पायी जाती है। प्रायः देखा गया है कि लोग ऐसे तथ्यों पर विश्वास कर लेते हैं जिनके आधार थोड़ा सा भी विश्लेषण कर लेने पर भहरा कर गिर पड़ेंगे।"

इतिहास हम में से बहुतों के लिए नीरस और प्रेरणाहीन नामावली मात्र है—अप्रसिद्ध गांवों और शहरों के नाम, विस्मृत विश्वासों को कार्यान्वित करते हुए जादूगर जैसे व्यक्तियों के नाम, धूर्त दरबारी और नीच वेश्याओं के नाम, रक्तपिपासु विक्षिप्त और संकोचहीन स्वार्थियों के नाम। यह एक क्रूरता, बर्बरता और स्वार्थ की लम्बी कहानी होती है जिसमें कभी कभी बलिदान और शौर्य की सौन्दर्य और आध्यात्मिक महत्ता की चमक अनवरत चलने वाली कालिमा को कुछ कम कर देती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विशेषतः भारतीय इतिहास, जैसा कि हमारे शिक्षालयों में पढ़ाया जाता है, और भी निरुत्साहित करने वाला है। किन्तु निश्चय ही यदि स्थिति ऐसी ही बुरी होती जैसी कि चित्रित की जाती है तो मनुष्य जाति कभी की समाप्त हो चुकी होती और पृथ्वी उन कीड़ों की संतोषपूर्ण आह्लाद ध्वनि की ताल के साथ घूमती रहती जिनका गौरव इस मनुष्य नामक प्राणी ने खतरे में डाल रखा है।

यदि मूल अभिलेखों तक आदमियों की आसानी से पहुंच हो और इनका ठीक ढंग से प्रयोग उन्हें मालूम हो तो यह अंधकारपूर्ण चित्र दो क्षण भी नहीं ठहर सकता—न सिर्फ लिखे हुए शब्द बल्कि मुद्राएँ, चित्र, वास्तु और शिल्प सभी-क्योंकि यह यहां भी उतना ही सही है जितना कि और कहीं कि किसी वस्तु को तभी देख सकते या प्राप्त कर सकते हैं जब कि हमें उसे पाने का ठीक मार्ग मालूम हो। जैसा कि दूसरे देशों में है वैसे ही यदि हमारे यहां भी पुनर्मुद्रित और पुनरांतिक अभिलेख और सिक्कों आदि की प्रतिलिपियां सुलभ हों तो हमें भी युद्धभेरी के निनाद के पीछे मानव हृदय की धड़कनें सुन सकना संभव होगा, खेती और शिल्पगृहों में कार्य करने वाले किसान और शिल्पी का अस्तित्व हम देख सकेंगे साधारण गृहिणी और गांव के पुरोहित अध्यापक के दर्शन कर सकेंगे, कुएँ से पानी भरती हुई कुमारिकाएं खेतों और पगडंडियों से भेड़ों को ले जाते हुए प्रणय गीत गाने वाले मस्त चरवाहे देख पायेंगे। साधारण इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के पृष्ठ जिन षड्यन्त्र और सार्वजनिक हत्याओं से भरे रहते हैं उनके पीछे इतिहास के असली जुलूस को साकार करने वाले इन सभी पात्रों और प्रासादों का दर्शन संभव होगा।

अगर इतिहास का अध्ययन सही दृष्टिकोण रखकर किया जाये तो बहुत अंश में जातीय संकीर्णता, विलगाव की मनोवृत्ति, जातीय द्वेष और झूठा अभिमान जो मनुष्य को मनुष्य से अलग किये हुए हैं स्वयं ही दूर हो जाये। इतिहासकार स्वयं अपने में राजनीतिक प्रोपेगण्डा करने वाला नहीं होता। हम लोग यह नहीं चाहते कि वह जानबूझ कर तथ्यों को उलट-पलट कर, अभिलेखों को तोड़-मरोड़ कर एक सिद्धान्त विशेष के पक्ष के प्रमाण प्रस्तुत करे। दुर्भाग्यवश ऐसे उदाहरणों की हमारे यहां या अन्य देशों में कमी नहीं है जहां इतिहासकारों ने राजसत्ता के प्रतिनिधियों के हाथ अपने ज्ञान को बेच दिया। हम यह नहीं चाहते किन्तु साथ ही हमें इतिहासकार से यह कहने का अधिकार है कि वह तथ्यों को इस प्रकार उपस्थित करे कि वे आवश्यक तत्व जो मनुष्य को मनुष्य के निकट लाते हैं, एक दूसरे के साथ सम्बद्ध करते हैं, मानव मात्र के सार्वजनीन सांस्कृतिक उत्तराधिकार हैं, स्पष्ट होकर प्रमुखतः सामने आ जायें।

यदि ठीक प्रकार से लगायी जायं तो प्रदर्शनियां, अथवा संग्रहालय जो वास्तव में स्थायी प्रदर्शनियां ही हैं, हमें विभिन्न कालों का अध्ययन करने में काफी सहायता कर सकती हैं। एक जगह हमें मुद्राओं का संग्रह मिल सकता है, दूसरी जगह हम तत्कालीन चित्र देख सकते हैं, तीसरी जगह उस काल के वस्त्राभूषणादि और चौथी जगह शस्त्र कवच और अन्य युद्ध सामग्री आदि सुलभ होगी। पर यदि हम इतिहास को विभिन्न कालों में बांट सकें—मैं मानता हूँ कि यह विभाजन किसी हद तक स्वच्छन्द होगा और हो सकता है कि कुछ काल एक दूसरे की सीमा भी लांघ जायें—और प्रत्येक काल विशेष की सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध सांस्कृतिक सामग्री एक स्थान पर ले आयें तो घटनाओं की और क्रमिक विकास का एक अधिक क्रमबद्ध तथा स्पष्ट चित्र उपलब्ध हो सकेगा। संभवतः तब दूसरे देशों के तत्कालीन अवशेषों के साथ अपने यहां के उस काल की संगति बैठाना असंभव न होगा, और इस प्रकार विश्व-संस्कृति की प्रगति और विकास को समझा जा सकेगा।

इस सबके लिए अनवरत श्रम और उर्वर कल्पनाशक्ति, स्पष्ट दृष्टि, वैज्ञानिक मस्तिष्क और धैर्यपूर्ण जिज्ञासा की आवश्यकता होगी। इस प्रकार के शोधकार्य के लिए इस देश में काफी सामग्री उपलब्ध है। हमारे प्रान्त की सामग्री को तो अभी तक अपेक्षाकृत हाथ भी नहीं लगाया गया है। जमीन के अंदर और बाहर कितनी ही सामग्री बिखरी पड़ी है कितनी सामग्री मठों के पुस्तकालयों, व्यक्तिगत संग्रहों में, पण्डितों और मौलवियों के घर पड़े हुए बेठनों में, साहित्य और सेवा की परम्परा वाले घरों के बस्तों में, संस्कृत में, अरबी फ़ारसी में, प्रस्तर और ताम्रपत्रों पर, तालपत्र और कागज पर, धुनी हुई और स्याही मद्धिम पड़ी हुई कितनी ही शोध सामग्री इतिहासकार के स्पर्श की प्रतीक्षा करती हुई समय गिन रही है।

यद्यपि इस प्रकार की सामग्री को उलटना-पुलटना सभी शोधकार्य नहीं है। इस देश में या दूसरे देशों में जो बहुत सा शोधकार्य कहा जाता है उसका काफी अंश पुराने कूड़ा-कर्कट को बेकार उखेड़ने और बिखेरने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता और जिसका किसी के लिए कोई उपयोग नहीं होता। मैं आपको इसका एक उदाहरण देता हूं कि वास्तव में व्यर्थ के कार्यों पर कभी-कभी लोग कितना श्रम और मनोयोग लगाते हैं। कई वर्ष हुए हम में से कुछ लोग गीता पर विचार-विनिमय कर रहे थे कि एकाएक एक तेज नवयुवक महाशय पूछ बैठे कि गीता में 'झ' अक्षर का भला कितनी बार उपयोग हुआ है। हम सब के सब निरुत्तर थे। यह भी एक प्रकार का शोधकार्य है जो कभी-कभी सम्मान भी प्राप्त कर लेता है। शायद आपको यह जानना रोचक लगे कि वास्तव में यह अक्षर गीता में बस एक बार 'झषाणाम् मकरश्चास्मि' में आया है।

ठीक तरह से अध्ययन करने पर इतिहास को हमें भूतकाल में घटित घटनाओं के पीछे क्या था यह समझने में, युगविशेष की निर्मात्री और व्यक्तियों का शतरंज के मोहरों के समान उपयोग करने वाली शक्तियों और भावधाराओं को समझने में सहायक होना चाहिए। यदि हम इस अंतःसूत्र को पकड़ने में असफल रहते हैं तो इतिहास केवल बिखरी हुई घटनाओं की कहानी मात्र रह जाता है जो भविष्य के कर्तव्याकर्तव्य के बारे में हमारा कोई पथप्रदर्शन नहीं कर सकता। यह अंतर्निहित सूत्र है क्या? क्या यह आत्मा का विकास और जागृति है, या कर्मपरिणाम है अथवा तर्क-संगत भौतिक या आध्यात्मिक विकास प्रक्रिया है—इस सब पर मैं यहां कोई मत प्रकट नहीं करूगा। लेकिन इतना मैं निश्चयात्मक रूप से कह सकता हूं कि यह निराशा और पराजय भावना को दूर करने वाली सिद्धौषधि है।

मैं इस प्रदर्शनी के आयोजकों को और उन सभी व्यक्तियों और संस्थाओं को जिन्होंने इसके आयोजन में सहायता की है और सहयोग दिया है, बधाई देता हूँ। उन्होंने ऐतिहासिक शोधकार्य और अध्ययन जैसे महत् उद्देश्य की बहुत बड़ी सेवा की है। मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास है कि हमारे भारतीय इतिहास के ज्ञान की-मैं यहाँ तक क़हने की धृष्टता करता हूँ कि आप जैसे विशेषज्ञ विद्वानों के भी ज्ञान की-वर्तमान संकलन में अध्ययन के इस सुअवसर से श्रीवृद्धि होगी।

हम आज एक बहुत ही विलक्षण युग के बीच से गुज़र रहे हैं। यह देश में एक राजनैतिक आर्थिक और सांस्कृतिक पुनरुत्थान का युग है। आज भारतवर्ष के निवासी दासता की उन भौतिक और मानसिक कड़ियों को तोड़ रहे हैं जिन्होंने उन्हें इतने दिनों बांधे रख कर उनके गौरव को कम किया है। हम इस समय एक नये राष्ट्रीय व्यक्तित्व की प्रसवपीड़ा का अनुभव कर रहे हैं—एक ऐसा व्यक्तित्व जिसमें इस पवित्र भूमि का गरिमामय उत्तराधिकार प्राप्त किया है और जिसमें उन सभी संस्कृतियों के महत्तत्वों का समन्वय हुआ है जिन्होंने इस देश को अपना नीड़ और आशास्थल बनाया। इस नवीन भारतवर्ष की ओर स्वयं इसके अपने तथा मानवता के उद्धार के लिए आंखें लगाये हुए हैं, और एक ऐसे युग प्रवर्तन की आशा करते हैं जिसमें मनुष्य केवल अपने स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि समाज के हित के लिए कार्य करेगा, और जिसमें शोषण, मुनाफाखोरी तथा मनुष्य के द्वारा मनुष्य की अवमानना के लिए कोई स्थान न होगा। निश्चय ही इतिहासकार को इस अवसर पर मनुष्य और मानवीय भावों के तटस्थ विद्यार्थी के रूप में और संसार के कल्याण में रुचि रखने वाले नागरिक के रूप में एक महत्वपूर्ण पार्ट अदा करना है।

D 6662

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

NGRI LIBRARY

29.10.90

4/2/91

9.2.91

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उ०प्र० द्वारा प्रकाशित एवं प्रतिभा प्रेस, लखनऊ द्वारा मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar